# निरन्तर विकासशील जीवन्त-यात्रा

श्रमण भगवान् महावीर द्वारा निर्दिष्ट साधना-मार्ग पर चलने वाले वर्तमान संगठनों में श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि संगठनात्मक स्तर पर इसकी स्थापना आज से २५ वर्ष पूर्व संवत् २०१९ में आश्विन शुक्ला द्वितीय को की गई, पर वैचारिक संवेदना के स्तर पर इसका संबंध आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से लेकर चरम तीर्थंकर भगवान महावीर से जोड़ा जा सकता है। इन सभी तीर्थंकरों ने अपने-अपने समय में विशुद्ध साधु धर्म अर्थात् समता धर्म, शुद्ध आत्म-धर्म, अहिंसा, संयम, तप, वीतराग धर्म का प्रवर्तन किया और तत्कालीन युग में व्याप्त विभावों, विकृतियों व विषमताओं के खिलाफ, विचार और आचार दोनों स्तरों पर, क्रांति कर सच्ची साधुता-सज्जनता-सात्विकता का मार्ग प्रशस्त किया। उसी परम्परा की विचार-ऊर्जा और आचार-निष्ठा को अपने में समाहित किये हुए साधुमार्गी संघ आज भी जीवन्त है।

यह सही है कि भगवान् महावीर के बाद विचार और आचार के स्तर पर तथाकथित मतभेदों को लेकर जैन धर्म विभिन्न सम्प्रदायों, मत-मतान्तरों और गच्छों में विभक्त हो गया। एक विचारधारा तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट और भगवान् महावीर द्वारा निरूपित साधना-मार्ग को अपने विशुद्ध स्वरूप में आत्मसात् करके चलने वाली रही तो दूसरी विचारधारा सम-सामयिक परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालने में प्रगति और विकास मानती, देखती रही। परिणाम स्वरूप एक धारा में निवृत्ति की प्रधानता रही तो दूसरी में प्रवृत्ति मुख्य बनती गई। निवृत्ति और प्रवृत्ति की मुख्यता, गौणता को लेकर समय-समय पर कई क्रांतिकारी परिवर्तन हुए और यह सिलसिला आज भी चालू है।

मध्ययुग में सुदीर्घकालीन यहां तक कि १२-१२ वर्षों तक के कई दुष्काल पड़े। उन विकट-विषम परिस्थितियों में निरतिचारपूर्वक साधु-धर्म का पालन कठिन हो गया और साधु-समुदाय अलग-अलग घटकों में बंटकर केन्द्रीय स्थान से अलग-अलग दिशाओं में चल पड़ा। समय पाकर कई संगठनों में बाह्य आडम्बर, प्रदर्शन, पद प्रतिष्ठा लोक रुचि और यशोलिप्सा का भाव प्रमुख बन गया तथा आत्म-साधना का पक्ष पीछे छूट गया। परिणामस्वरूप साधुमार्ग उतना पवित्र, सात्विक और तेजस्वी न रह सका। पर जो आत्मनिष्ठ साधक थे, वे अपनी सुदृढ़ चारित्रनिष्ठा और संयम धारणा के प्रति सचेत रहकर बाह्य क्रियाकाण्डों और पूजा-प्रतिष्ठानों के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द करते रहे तथा साधुमार्ग की पवित्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने में अपने आत्मतेज का उपयोग करते रहे।

इसी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सोलहवीं सती में धर्मवीर, क्रांतिकारी लोकाशाह हुए, जिन्होंने यति वर्ग में प्रचलित तत्कालीन बाह्य क्रियाकाण्ड एवं शिथिलाचार के खिलाफ क्रांति की और विशुद्ध साधुमार्ग का प्रतिपादन किया। इनसे प्रेरणा पाकर ४५ श्रावक दीक्षित हुए और भाणजी ऋषि, रूपजी ऋषि, जीवराजजी ऋषि आदि की आचार्य परम्परा में आगे चलकर आचार्य श्री लालचन्दजी महाराज हुए। इनके नौ शिष्यों में पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज सुदृढ़, आचार-निष्ठ, विद्वान सन्त थे।

आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म. सा. ने तत्कालीन समाज में व्याप्त शिथिलाचार को दूर करने के लिए विशुद्ध साधुमार्ग के पालनार्थ, कई मर्यादायें निश्चित कीं और संयम-साधना के कठोर नियम बनाये। दूसरे शब्दों में कहें कि आपने महान् क्रियोद्धार किया और आपके नाम से एक अलग परम्परा ही चल पड़ी। इस माने में आप साधुमार्गी जैन संघ के मार्गदर्शक पूज्य पुरुष हैं। आपने साधुमार्ग का जो शुद्ध, सात्विक, निर्मल स्वरूप प्रस्तुत किया, उसे जन, जन तक व्याप्ति देने में आचार्य श्री शिवलालजी म. सा., आचार्य श्री उदयसागरजी म. सा., आचार्य श्री चौथमलजी म. सा., आचार्य श्री श्रीलालजी म. सा., आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा., आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. एवं वर्तमान आचार्य श्री नानालालजी म. सा. का ऐतिहासिक योगदान रहा है। आचार्य श्री श्रीलालजी म. सा. ने जागीरदारों, सामन्तों, नवाबों आदि को अपनी अहिंसामयी अमृतवाणी से प्रेरणा देकर पशु-बलि बन्द कराने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आपके उपदेशों से प्रभावित होकर कई राजा-महाराजाओं, मुसलमान नवाबों, राजपूतों, मीणों आदि ने मद्य-मांस का त्याग किया एवं व्यसन-मुक्त सात्विक जीवन जीने की प्रतिज्ञाएं की।

आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. क्रान्तद्रष्टा वाग्मी महापुरुष थे। आपने आगमिक धरातल पर आत्म-धर्म के साथ-साथ समाज धर्म की, राष्ट्र धर्म की व्याख्या प्रस्तुत कर, देश की स्वतंत्रता के लिए किये जाने वाले अहिंसक संघर्ष को विशेष शक्ति, स्फूर्ति और प्रेरणा दी। आपने अल्पारम्भ महारम्भ की व्याख्या प्रस्तुत कर कृषि आधारित भारतीय अर्थ-व्यवस्था, स्वदेशी आंदोलन, राष्ट्रभाषा हिन्दी, अछूतोद्धार खादी-धारण, गो-पालन, व्यसन-मुक्ति, सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन जैसे राष्ट्रीय कार्यक्रमों की उचितता धार्मिक परिप्रेक्ष्य में प्रतिपादित की और इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त जड़ता और निष्क्रियता का उन्मूलन कर, धर्म निहित तेजस्विता, उत्सर्गमयी बलिदान भावना, त्याग-तपस्या व संयम-साधना का ओजस्वी रूप समग्र राष्ट्र के समक्ष प्रस्तुत किया।

आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. शान्त-क्रान्त, सरल आत्मा थे। उनके व्यक्तित्व में सेवा, विनम्रता, कर्तव्य-परायणता, कष्ट-सहिष्णुता और सत्यनिष्ठा का विरल संयोग था। समाज के बिखरे संगठनों को एक करने में, श्रमण संघ के गठन और निर्माण में आपकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही और आप उसके उपाचार्य मनोनीत किये गये, पर संयमी मर्यादा की शिथिलता से आपने कभी समझौता नहीं किया और जब ऐसा अवसर आया तब साधुमार्ग की शुद्धता की रक्षा के लिए पद-प्रतिष्ठा को तिलांजलि देकर, आप अपने चारित्र और संयम में सुस्थिर हो गये। समाज में बढ़ते हुए परिग्रह, शोषण, प्रदर्शन, आडम्बर और हिंसा के खिलाफ आपने सदैव अपनी आवाज बुलन्द की।

वर्तमान आचार्य श्री नानेश साधुमार्ग की परम्परा को और उसमें निहित समता तत्व को विश्व व्यापी बनाने में निष्काम भाव से सर्मपित हैं। आपने एक ओर अस्पृश्य समझे जाने वाले हजारों लोगों को शुद्ध धर्माचार का उपदेश देकर धर्मपाल बनाया है तो दूसरी ओर विषमता, व्यग्रता, तनाव और अशांति से बेचैन व्यक्तियों को समता दर्शन और समीक्षण ध्यान के माध्यम से अन्तरावलोकन व अन्तर्निरीक्षण की प्रेरणा दी है। आपके समता निष्ठ शान्त-गंभीर व्यक्तित्व का ही प्रभाव है कि आज के भौतिक युग की सुख-सुविधाओं को और विषय-भोगों को निस्सार और निरर्थक समझकर, २२५ से अधिक मुमुक्षु आत्माओं ने श्रमण दीक्षा स्वीकार की है।

साधुमार्ग का अर्थ है—साधु परम्परा से जो मार्ग आया है, साधु ने जो मार्ग बताया है साधु का जो मार्ग है। यह मार्ग प्रकारान्तर से वीतराग-मार्ग है, समता मार्ग है, सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र की साधना का मार्ग है। इस मार्ग पर चलकर जिसने अपने राग-द्वेष आदि विकारों को जीत लिया है, वह जैन है और ऐसे लोगों का समुदाय या संगठन जिसका स्वरूप किसी एक क्षेत्र विशेष तक सीमित नहीं,वरन् सम्पूर्ण भारत का है,ऐसा संघ है-श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ।

संघ सामान्य भीड़ या समूह का नाम नहीं है। तीर्थंकर भगवान् अपनी धर्म साधना के लिए, लोकोपकार की भावना से साधु साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चार तीर्थों की स्थापना करते हैं। इन्हें चतुर्विध संघ कहा गया है। संघ एक प्रकार का धार्मिक, सामाजिक संगठन है, जो आत्म-साधना के साथ-साथ लोक-कल्याण का पथ प्रशस्त करता है। नन्दीसूत्र की पीठिका में संघ को नगर, चक्र, रथ, कमल, चन्द्र, सूर्य, समुद्र और पर्वत की उपमा दी गई है। इन आठ उपमाओं से उपमित करते हुए उसे नमन किया है। संघ ऐसा नगर है जिसमें सद्‌गुण और तपरूप अनेक भवन हैं, विशुद्ध श्रद्धा की सड़कें हैं। संघ ऐसा चक्र है जिसकी धुरा संयम है और सम्यक्त्व जिसकी परिधि है। संघ ऐसा रथ है, जिस पर शील की पताकायें फहरा रही हैं और तप-संयम रूप घोड़े जुते हुए हैं। संघ ऐसा कमल है, जो सांसारिकता से उत्पन्न होकर भी उससे ऊपर उठा है। संघ ऐसा चन्द्र है जो तप-संयम रूप मृग के लांछन से युक्त होकर सम्यक्त्व रूपी चांदनी से सुशोभित है। संघ ऐसा सूर्य है, जो ज्ञान रूपी प्रकाश से आलोकित है। संघ ऐसा समुद्र है जो उपसर्ग और परीषह से अक्षुब्ध और धैर्य आदि गुणों से मंडित मर्यादित है। संघ ऐसा पर्वत है, जो सम्यक्, दर्शन रूप वज्र पीठ पर स्थित और शुभ भावों की सुगन्ध से आप्लावित है।

चतुर्विध संघ के प्रमुख अंग 'श्रमण' (साधु) को भी बारह उपमाओं से उपमित किया गया है। ये उपमायें हैं:-सर्प, पर्वत, अग्नि, सागर, आकाश, वृक्षपंक्ति, भंवर, मृग, पृथ्वी, कमल, सूर्य और पवन। ये सभी उपमायें साभिप्राय दी गयी हैं। सर्प की भांति श्रमण भी अपना कोई घर (बिल) नहीं बनाते। पर्वत की भांति ये परीषहों और उपसर्गों की आंधी से डोलायमान नहीं होते। अग्नि की भांति ज्ञानरूपी ईंधन से ये तृप्त नहीं होते। समुद्र की भांति अथाह ज्ञान को प्राप्त कर भी ये मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करते। आकाश की भांति ये स्वाश्रयी, स्वावलम्बी होते हैं, किसी के अवलम्बन पर नहीं टिकते। वृक्ष की भांति समभावपूर्वक दुःख-सुख को सहन करते हैं। भंवर की भांति किसी को बिना पीड़ा पहुंचाये शरीर रक्षण के लिये आहार ग्रहण करते

हैं। मृग की भांति पापकारी प्रवृत्तियों के सिंह से दूर रहते हैं। पृथ्वी की भांति क्षमाशील बनकर शीत-ताप, छेदन-भेदन आदि कष्टों को समभाव पूर्वक सहन करते हैं। कमल की भांति विषय-वासना के कीचड़ और लौकिक वैभव के जल से अलिप्त रहते हैं। सूर्य की भांति स्वसाधना और लोकोपदेशना के द्वारा अज्ञानान्धकार को नष्ट करते हैं।

ऐसे श्रमण संघ के वर्तमान आचार्य हैं:-श्री नानेश और इसके अनुयायी और उपासक हैं श्रावक-श्रमणोपासक। इन सब का संघ है-'साधुमार्गी जैन संघ"। इस संघ की औपचारिक स्थापना हुए २५ वर्ष हो गये हैं। इस दृष्टि से यह वर्ष इस संघ का रजत जयन्ती वर्ष है और इस संघ के धर्म-नायक आचार्य श्री नानेश को आचार्य पद ग्रहण किये २५ वर्ष पूर्ण होने जा रहे हैं। इस दृष्टि से उनका समता-साधना के अनुरूप यह वर्ष **"समता-साधना वर्ष"** है। इस वर्ष को मनाने के लिए संघ के केन्द्रीय कार्यालय की ओर से समता साधना मूलक, सामाजिक चेतनामूलक और धर्म जागृतिमूलक जो कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया है, उसे संघ की विभिन्न शाखाओं के माध्यम से क्रियान्वित करने का यथाशक्ति प्रयत्न हुआ है और हो रहा है।

रजत जयन्ती वर्ष एवं 'समता साधना वर्ष' के जीवन्त प्रतीक के रूप में यह विशेषांक पाठकों के हाथों में सौंपते हुए हमें प्रसन्नता है। इस विशेषांक में एक ओर संघ की सम्यक् ज्ञान, दर्शन और चारित्र के क्षेत्र में संचालित विविध प्रवृत्तियों का परिचय, प्रगति-विवरण प्रस्तुत किया गया है तो दूसरी ओर संघ के धर्मनायक आचार्य श्री नानेश के जीवन, व्यक्तित्व और देन से सम्बन्धित कतिपय प्रेरक प्रसंग, संस्मरण और उनके सत्संग में बीते अनुभव-क्षणों की झांकियां हैं। उनका व्यक्तित्व असीम और अमाप है, उसे शब्दों में बांधना संभव नहीं है। फिर भी जो कुछ शब्दार्चन है, वह श्रद्धा-भक्ति के भाव रूप में ही। विशेषांक का एक महत्वपूर्ण खण्ड वैचारिक खण्ड है जिसमें प्रमुख विद्वानों, चिन्तकों और साधकों के धर्म, दर्शन, इतिहास, समाज और संस्कृति विषयक महत्वपूर्ण विचार बिन्दु संकलित हैं।

"श्रमणोपासक" श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ का मुख पत्र है। संघ की स्थापना के साथ ही इसके आविर्भाव की कथा जुड़ी हुई है। इस दृष्टि से यह वर्ष 'श्रमणोपासक' का भी "रजत जयंती" वर्ष है इन वर्षों में 'श्रमणोपासक' ने न केवल संघ की गतिविधियों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है वरन् समाज और राष्ट्र की धड़कनों और स्पन्दनों को भी वैचारिक स्तर पर अभिव्यंजित, प्रेरित और प्रभावित किया है। वैयक्तिक आचार-निष्ठा, सामाजिक मर्यादा, राष्ट्रीय चेतना और विश्व-बन्धुत्व की भावना जागृत करने, विषमता में समता भाव स्थापित करने, अहिंसा-शाकाहार और सद् संस्कार निर्माण में यह सदैव अपनी वैचारिक भूमिका निभाता रहा है। व्यावसायिक पत्रकारिता से दूर 'श्रमणोपासक' विशुद्ध जीवन मूल्यवाही पत्र है। 'श्रीमद् जवाहराचार्य' 'बाल शिक्षा-संस्कार', 'समता' और 'धर्मपाल' आदि विशेषांकों के माध्यम से इसने पाठकों और बौद्धिक वर्ग के बीच अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित की है। इसी शृंखला में यह विशेषांक एक विनम्र भेंट है। संघ एक निरन्तर विकासशील जीवन्त यात्रा है। यह यात्रा ऊर्ध्व मुखी-चेतना के शिखर पर प्रतिष्ठित हो, इसी मंगल कामना के साथ चतुर्विध संघ का अभिवन्दन-अभिनन्दन।

**—डॉ. नरेन्द्र भानावत**
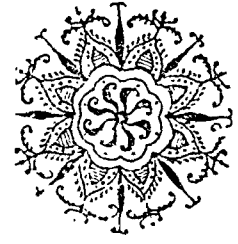
आचार्य श्री नानालालजी म. सा.
का सम्पादित प्रवचन

# निर्ग्रन्थ-संस्कृति और शांत क्रान्ति

आज का यह दिवस वीतराग देवों की निर्ग्रन्थ संस्कृति की पवित्र/पावन अवस्था का प्रतीक है। क्योंकि करीब पच्चीस वर्ष पूर्व आज ही के रोज, शांत क्रांति के जन्मदाता स्व. गणेशाचार्य ने एक बार फिर से शांत क्रांति के रथ को जोश एवं होश के साथ आगे बढ़ाया था। पवित्र श्रमण-संस्कृति के बुझते दीपक में तेल डालकर उसे अधिकाधिक रूप से प्रज्वलित किया था। एक शिक्षा-दीक्षा-प्रायश्चित व चातुर्मास की पूर्ण क्रियान्विति के साथ यह रथ गतिमान हुआ था। यद्यपि उनके सामने बीहड़-जंगल एवं कंटकाकीर्ण पथ आया, तथापि उस महापुरुष के सत्साहस के सामने सब पार होता चला गया। आज हम जिस शुभ्र प्रकाश एवं शीतल छाया की अनुभूति कर रहे हैं, वह सब उन्हीं के द्वारा कृत साहसिक शांत-क्रांति की देन है।

आज के इस उत्साहप्रद प्रसंग पर लेखकों और कवियों ने अपनी शुभ भावनाओं का प्रकटीकरण किया है। उन भावनाओं को जरा गहराई से आप भी अपने अन्त:करण में उतारें एवं निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के भव्य स्वरूप को ध्यान में लें तो इसकी सुरक्षा के प्रति कटिबद्धता आपके हृदय में भी जागृत हो सकेगी।

**दो बीज, राग-द्वेष :**

आज द्वितीया तिथि है। दूज को जो चन्द्रमा उदय होता है, वह अपनी कलाओं को अभिवृद्ध करता हुआ पूर्ण चन्द्र का स्वरूप ग्रहण करता है। आज की यह सामान्य शुक्लता शीतल तेजस्विता को धारण करती हुई पूर्णिमा के दिन पूर्ण शुक्लता को प्राप्त होती है। ठीक इसी प्रकार द्वितीया का वह दिवस भी निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति रूप चन्द्रमा की कला को निरन्तर विकसित करता गया है। तभी तो गत पच्चीस वर्ष की सुदीर्घ यात्रा ने वीतराग सिद्धांतों को जन-जन तक पहुंचाने के भगीरथ कार्य में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदाकर जनमन को सुखद प्रकाश से आलोकित किया है।

आत्मस्वरूप को जानने के लिये यह एक निमित्त है, जिससे आंतरिक विकृतियों का पता लगावें और आत्म-शुद्धि का प्रयास प्रगतिशील हो। वस्तुस्थिति की दृष्टि से चिन्तन करें तो स्पष्ट रूप से विदित होगा कि आत्मकल्याण का जो मार्ग वीतराग देवों ने प्रशस्त किया है, वही मार्ग महत्वपूर्ण, शुद्ध एवं पवित्र है। यह ऐसा मार्ग है जिस पर चलकर प्रत्येक भव्य-प्राणी अपनी अन्तश्चेतना के विकास के साथ अपने लक्ष्य तक पहुंच सकता है।

आत्मा की शुद्धि में तथा इस आत्मशुद्धि के चरम विकास में बाधक तत्वों की दृष्टि से दो मुख्य तत्व बताये हैं और वे हैं राग और द्वेष। उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान महावीर ने

बतलाया है:—

रागो य दोसो वि य कम्म-वीयं कम्मं च मोहप्पभवं वयंति ।

कम्मं च जाई मरणस्स मूलं, दुक्खं च जाई मरणं वयंति ।।

उ० सू० अ० ३२ गा० ७

राग और द्वेष के ही बीज आत्मा के धरातल पर अंकुरित होकर इस चतुर्गति संसार में विशाल वृक्ष का रूप धारण करते हैं, जिसकी टहनियों और पत्तों पर मदान्ध आत्माएं अपने निज स्वरूप के प्रति संज्ञाहीन बनकर परिभ्रमण करती रहती हैं। इस परिभ्रमण में अनेक तरह के कष्टों, दुखों एवं दुविधाओं का सामना करते रहने पर भी यह विडम्बना का विषय है कि आत्माएं इन बाधक तत्वों के घातक रूप को नहीं समझ पाती हैं। विरली ही आत्माएं होती हैं जो राग-द्वेष की जटिल ग्रंथियों को यथावत् जान पाती हैं और उनसे छुटकारा पाने के उपाय सोचती हैं। ऐसी आत्माएं जब मुमुक्षु बनती हैं—ग्रंथियों को हटाकर निर्ग्रन्थ बनना चाहती हैं तभी ऐसे प्रसंग उपस्थित होते हैं। महावीर प्रभु के इस शासन काल में उनकी वीतरागता की वह पवित्र धारा अपने अजस्र प्रवाह के साथ दीर्घकाल से प्रवाहित होती हुई चल रही है, जिसमें भव्य आत्माएं मुण्डित होकर अवगाहन करती रहती हैं।

समय-समय पर राग और द्वेष के बीजों ने अपने विभिन्न रूप लेकर मानवों के मन को भी प्रभावित करने की चेष्टा की और कभी-कभी साधक आत्माएं भी राग-द्वेष के लुभावने दृश्यों में उलझने लग गई। परिणामस्वरूप वीतराग देवों की पवित्र संस्कृति कुछ ओझल-सी होने लगी। धीरे-धीरे राग-द्वेष और काम-क्रोध की छिपी हुई लालसाएं धार्मिक क्षेत्र में भी यदा-कदा व्याप्त-सी होने लगीं। उस समय में जागृत आत्माओं ने अंगड़ाई ली—अपने जागृत स्वर को उन्होंने बुलन्द किया। उन्होंने अपना ध्यान निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की सुरक्षा पर भी केन्द्रित किया तथा राग-द्वेष की आंतरिक ग्रंथियां किन-किन रूपों में उभरती हैं—इसका भली-भांति विश्लेषण किया और इस पवित्र संस्कृति की सुरक्षा के लिये अपने जीवन का बहुत बड़ा योगदान दिया। उनकी यह जागृति आत्मशुद्धि के परिणामस्वरूप प्राप्त हुई।

**निर्ग्रन्थ संस्कृति और एकता :**

यह आत्म-जागृति का पवित्र प्रवाह सतत प्रवाहित होता चला आ रहा है, जो कि महावीर प्रभु के शासन की शुभ्र धारा में उभरता रहा है। आधुनिक समय में क्रांति के जो कुछ स्वर उभरे, उसमें आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म. सा. ने इस संस्कृति की पवित्रता की सुरक्षा के लिये अपने जीवन में एक ज्वलन्त आदर्श उपस्थित किया तथा उनके पीछे एक के वाद एक महापुरुष ने इस पावन आध्यात्मिक दीप शिखा को सतत प्रज्वलित रखते हुए अपने जीवन की अर्पणा की।

अभी-अभी कुछ वर्ष पूर्व भी ऐसा समय आया था, जव राग और द्वेष की कुटिल प्रवृत्तियां, न मालूम प्रचार-प्रसार के नाम से अथवा अहं लिप्सा की दृष्टि से या यश कीर्ति की

कामना से कुछ साधकों का मन मस्तिष्क झक-झोरने लगी थी और ऐसा लगने लगा था कि कई साधक अपनी प्रतिष्ठा और अपने सत्कार सम्मान के लिये राग-द्वेष की प्रवृत्तियों में उलझ रहे हैं। तब एक ऐसी दिव्य आत्मा ने अंगड़ाई ली कि जिसका शरीर दीखने में वृद्ध था किन्तु भीतर की चेतना तरुणाई से भरी हुई थी। शारीरिक कमजोरी में भी इस महापुरुष ने निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की सुरक्षा के लिये अपनी आंतरिक आवाज बुलन्द की और यह स्पष्ट किया कि मुझे अपने मानसम्मान और विरुदावली की कोई कामना नहीं है—मेरी तो यही आकांक्षा है कि निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की पवित्रता सुरक्षित रहे। मुझे तो आत्मा का शुद्ध स्वरूप तथा वीतराग देव की पावन संस्कृति चाहिये। मुझे संख्या की विपुलता की आवश्यकता नहीं है, अपितु शुद्धतर चारित्रिक जीवन की अपेक्षा है।

उस नरपुंगव के आत्मघोष से वातावरण ने नया मोड़ लिया और राग-द्वेष की ग्रंथियों का विमोचन होने लगा तथा निर्ग्रन्थ संस्कति का विस्तार। चारित्रिक शुद्धता की एक नई लहर चल पड़ी। परन्तु कई भद्रिक लोग उनके लिये यह कहने लगे कि हमारे समाज की एकता बन गई है, इसमें ये नई बात क्यों कर रहे हैं? लेकिन उस विशिष्ट पुरुष ने अपने अन्तःकरण की आवाज को सुनने की कोशिश की और उसके अनुसार ही वे चले। वे जान रहे थे कि ये भद्रिक लोग गहराई से नहीं सोच रहे हैं और आध्यात्मिक जीवन में राग-द्वेष की प्रवृत्तियों के प्रचलन से होने वाले घातक कुप्रभाव का अनुमान नहीं लगा पा रहे हैं। इसीलिये निर्ग्रन्थ संस्कृति से विमुख वनकर भी एकता का राग अलापा जा रहा था। उस महापुरुष ने यथार्थ अनुभव कर लिया था कि एकता मुख्य नहीं है—मुख्य है चारित्रिक शुद्धता, जीवन शुद्धि। चारित्रिक शुद्धि के अनुरूप ही एकता आवश्यक है। अतः जो एकता करनी है, वह चारित्रिक शुद्धता के धरातल पर ही की जानी चाहिये। चारित्रिक दृष्टि से पीछे हटकर जो एकता की जायेगी, उससे दुतरफा हानि होगी। साधु चरित्र भी विकृत बनेगा और विकृत चरित्र पर बनी एकता भी टिक नहीं सकेगी।

इस दृष्टिकोण के साथ उस विशिष्ट पुरुष ने एक सुझाव दिया—एक संशोधन दिया कि एकता हो लेकिन साधु आचार के चारित्रिक धरातल पर सैद्धान्तिक स्थिति के साथ एकता का निर्माण किया जाय। उस एकता में साधु के शुद्ध आचार पर बल रहे और जीवन के शुद्धिकरण का सूत्र अटूट बने। यह न हो कि एकता के आचरण के पीछे आत्मशुद्धि के लक्ष्य को ओझल कर दिया जाय - वीतराग वाणी का हनन कर दें। यदि ऐसा कर देते हैं तो न इधर के रहते हैं और न उधर के। अतः निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की सुरक्षा जरूरी है और उसके लिये आत्म जागृति जरूरी है। ऐसा तुमुल उद्घोष था शांत-क्रांति के जन्मदाता श्री गणेशाचार्य का।

**चारित्रिक एकता और उसके हिमायती :**

स्व. आचार्य श्री गणेशीलाल जी म.सा. ने स्पष्ट कहा कि मैं एकता का पक्षपाती हूं किन्तु उससे भी पहले शुद्ध साधु आचार का पक्षपाती हूं। आचार-शुद्धि के साथ मैंने एकता का

प्रयत्न किया है और करूंगा । भव्यों के लिये एकता के सूत्र के सभी द्वार खुले रखकर यह बात कहना चाहता हूं कि वीतराग देवों के इस पवित्र मार्ग की पवित्रता बनाये रखने में सभी भव्य जन अपना पूरा-पूरा योगदान दें ताकि भव्य आत्माएं अपने कल्याण पथ पर जीवन-शुद्धि के साथ आगे बढ़ सकें । उस दिव्य पुरुष ने साहस करके एक व्यवस्थित एवं सैद्धांतिक धरातल का मार्ग-दर्शन दिया तथा निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की सुरक्षा के लिये शांतक्रांति का कदम उठाया ।

इस क्रांति का चरण जिस दिन उठा, वह भी दूज का ही दिन था । आचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. द्वारा जिनको आप सब जानते हैं उस शांतक्रांति का अंकुर द्वितीया के दिन प्रादुर्भूत हुआ था जो कि निरन्तर प्रगतिशील है । इसका प्रतिफल जब जनमानस की समझ में आया, तब उसके महत्त्व को उसके आलोचक भी समझने लगे । भव्य और मुमुक्षु जन, निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के प्रेमी और वीतराग देवों के उपासक साधकगण उस शांतक्रांति का अनुसरण करने लगे ।

रागद्वेष की विषैली ग्रन्थियां बीज रूप से पनप कर किस प्रकार वृक्ष रूप में फैलती हैं और सारे वातावरण को कलुषित बनाती हैं—इसको भी सामाजिक दृष्टि से सभी लोगों ने देखा । लेकिन उसके बाद लोगों ने इस शान्तक्रान्ति के परिणामों को भी देखा है कि चारित्र्य शुद्धि के साथ में एकता की अवस्था कितनी सुदृढ़ एवं सहकार पूर्ण होती है और चारित्रिक व संयमीय शिथिलता से थोथी एकता की भी क्या अवस्था बनती है । इस परिवर्तन को देखकर आप सबका संकल्प जागना चाहिये कि रागद्वेष के बीज को समझकर उसको पनपने न दें तथा आत्मसिद्धांत के साथ सम्यक् दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र्य का संबल लेकर निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की सुरक्षा के लिये आगे बढ़ें । सम्पूर्ण समाज में ऐसा जनमानस भी बनावें कि श्रमण संस्कृति की सुरक्षा के साथ सुदृढ़ एकता का निर्माण हो । इस प्रकार की पवित्र स्मृति का संयोग आज इस प्रदेश में भी दूज के दिन आया है ।

**संस्कृति रक्षा का सेतु 'रत्नत्रय':**

रागद्वेष की ग्रन्थियों को जीतने के लिये सम्यक् दर्शन,सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र्य की शुद्ध आराधना की आवश्यकता होती है तथा इसी आराधना से निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की सुरक्षा की जा सकती है । जहां रागद्वेष की ग्रन्थियां रहे, वहां निर्ग्रन्थ संस्कृति कैसे सुरक्षित रह सकती है और पनप सकती है ? ग्रन्थियां खुलेंगी तभी तो निर्ग्रन्थ अवस्था आ सकेगी । ग्रंथियां खोलने और निर्ग्रन्थ अवस्था को प्राप्त करने के लिये आत्मबल का विकास करना पड़ेगा और आत्मबल की सहा-यता से समाज में सैद्धांतिक, मानसिक, वाचिक और कायिक चारित्र की एकता स्थापित की जा सकेगी ।

निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की सुरक्षा का मूलाधार इस दृष्टि से सम्यक् दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र की शुद्ध आराधना पर टिका हुआ रहता है । उसको सुरक्षित रखने के लिये स्व. आचार्य श्री ने नौ सूत्रों का एक योजना भी रखी थी । उनके उस कदम को तत्क्षण जनता समझ पाई अथवा नहीं, लेकिन जैसे-जैसे समय बीत रहा है, वैसे-वैसे जनता अनुभव कर रही है कि वस्तुत: उस दिव्य पुरुष में कैसा ज्ञान था आज उस शान्तक्रांति का वह चरण भव्य रूप में समझा जा रहा है ।

यह स्वाभाविक है कि जब कोई शांतक्रान्ति का कदम उठाया जाता है तो प्रारम्भ में जनता उसको कम ही समझ पाती है। जैसे-जैसे चरण आगे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे उनकी प्राभाविकता समझ में आती है। अब अधिकांश लोगों का यह मत बन गया है कि उस समय जो कदम उठाया गया था, वह एकदम सही कदम था और उससे श्रमण संस्कृति की सुरक्षा का संयोग बना। उस समय तो वे इस वस्तु स्थिति को पूर्णरूप से नहीं समझ पाये किन्तु आज उन दिव्य पुरुष की लगाई हुई फुलवाड़ी की सुगन्ध दिन प्रतिदिन महकती जा रही है—जिसे देखकर उसकी उपयोगिता का अनुभव किया जा रहा है।

**रागद्वेष की ग्रन्थियों का संशोधन :**

नौ सूत्री योजना के साथ नौवां तत्त्व मोक्ष जुड़ सकता है लेकिन उसके लिये रागद्वेष की ग्रन्थियां खोलनी पड़ेंगी अर्थात् आत्मा से अलग करनी होगी। इन ग्रन्थियों में जितनी जटिलता होगी, उतने ही अधिक आत्मबल की आवश्यकता पड़ेगी। आज के प्रसंग से इन आंतरिक ग्रन्थियों को खोलने की तथा निर्ग्रन्थ बनने के लिये आगे बढ़ने की प्रेरणा ग्रहण करें। ग्रंथियां खोलने का प्रयास करेंगे तभी शुद्ध श्रावक धर्म का निर्वाह कर सकेंगे और ज्यों-ज्यों ग्रन्थियां खुलती जायेंगी, आपकी गति निर्ग्रन्थ अवस्था प्राप्त करने की दिशा में आगे-से-आगे बढ़ती जायेगी। जीवन की इसी गति के साथ निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की भव्य सुरक्षा हो सकेगी, बल्कि अपने आदर्श उदाहरण से इस संस्कृति का इतर जन जो परिचय प्राप्त करेंगे, वह सीधा प्रचार अधिक से अधिक लोगों को इस संस्कृति की तरफ आकर्षित करेगा। ऐसी आचार शुद्धि तथा सुदृढ़ एकता से इस भव्य संस्कृति की जो प्रभावना हो सकेगी, वह अतुलनीय होगी।

किसी व्यक्ति-पिंड को नहीं लेना है किन्तु विराट जीवन को मस्तिष्क में रखिये। वीतराग देवों ने जाति, व्यक्ति आदि के सभी भेदभावों को दूर करके समग्र जीवन को गुणाधारित बनाने की श्रेष्ठ प्रेरणा दी है, उस प्रेरणा को सदा याद रखें तथा जीवन को तदनुरूप ढालने की चेष्टा करें। निर्ग्रन्थ संस्कृति की उपासना करके ही जीवन की साधना को सफल बना सकते हैं तथा मोक्ष प्राप्ति के चरम विकास को प्राप्त कर सकते हैं।

आन्तरिक ग्रन्थियों को खोलने के सम्बन्ध में यह तो धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र की बात कही गई है, लेकिन सांसारिक जीवन जितना अधिक इन ग्रन्थियों से ग्रस्त रहेगा, तब तक इस धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र का वातावरण भी सर्वांगत: सुन्दर नहीं बन सकेगा क्योंकि आखिर इस क्षेत्र में जो साधक प्रविष्ट होते हैं, ये संसार के क्षेत्र से ही तो आते हैं। इस दृष्टि से मूल बिन्दु के रूप में सोचना यह भी है कि आपके अपने सांसारिक जीवन में राग और द्वेष की ग्रन्थियां कम हों तथा आपके अपने व्यवहार में भी निर्मल अन्तःकरण का वातावरण अधिक बने। रागद्वेष की ये ग्रन्थियां कहीं भी रहे, ये उस व्यक्ति के, उसके जीवन तथा उसके आसपास के वातावरण को कलुषित बनाये बिना नहीं रहती हैं। यही कलुष जब तीव्र रूप धारण करता है तो सारे समाज और राष्ट्र में फैलता जाता है और कई प्रकार से विषम परिस्थितियां उत्पन्न कर देता है। इसलिये रागद्वेष जहां तक बीज रूप में रहते हैं तभी उन्हें शमित करने का प्रयास किया जाय तो रागद्वेष पूर्ण प्रवृत्तियों की बढ़ोतरी रुक जायगी और कलुष का विस्तार नहीं होगा।

इसलिये इन आंतरिक ग्रन्थियों को नये रूप में बनने से रोकें तथा बनी हुई ग्रन्थियों को भी हृदय में सरलता लाकर खोलते रहें। धीरे-धीरे अन्तःकरण ग्रन्थिहीन होकर सरलता के शुद्ध वातावरण में ढल जायगा। आत्मा को ग्रन्थहीन बनाने के लिये निर्ग्रन्थ जीवन एक आदर्श प्रतीक होता है। इस निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की सर्वोत्कृष्ट विशेषता यह है कि राग-द्वेष की ग्रन्थियों को समूल नष्ट करो। इसीलिए यह सर्वोत्कृष्ट संस्कृति है तथा इस सर्वोत्कृष्ट संस्कृति की सुरक्षा के लिये इसके अनुयायियों को किसी प्रकार का समर्पण करने में हिचकना नहीं चाहिये सुरक्षा के प्रयत्नों में कभी ढील नहीं आने देनी चाहिये।

**दृढ़ता से बढ़िये :**

ध्यान रखें कि यह शांत क्रान्तिकारी कदम जो स्व. आचार्य श्री के साहसपूर्ण नेतृत्व में प्रगतिमान हुआ, वह कभी भी पीछे नहीं हटा, बल्कि यह कदम आगे से आगे ही बढ़ता रहा और निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति को देदीप्यमान बनाता रहा। जो भी भाई-बहिन निष्ठापूर्वक इस पवित्र संस्कृति को अक्षुण्ण रखना चाहते हैं, वे इस शांत क्रान्ति में सम्मिलित होकर आत्मशुद्धि एवं संस्कृति रक्षा के मार्ग पर अग्रसर बन सकते हैं। आप श्रावक-श्राविका अपने स्थान पर रहते हुए साधु-साध्वियों को भी अपने शुद्ध मार्ग पर चलने दीजिये—उनको नीचे मत उतारिये। राग-द्वेष की ग्रन्थियों को कहीं पनपने मत दीजिये।

संस्कृति को सुरक्षा के मार्ग पर सबको दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ने दीजिये। किसी प्रकार से भय या आकांक्षा से चलना हुआ तो वीतराग मार्ग पर प्रगति नहीं हो सकेगी। जीवन छोटा है और साधना बहुत बड़ी है, इसलिये न तो बेभान रहिये और न असावधान। त्याग वृत्ति का ऐसा विकास करिये कि संस्कृति की सुरक्षा के लिये सर्वस्व तक के अर्पण की तैयारी रहे।

# अनुक्रमणिका



**णमो आयरियाणं : आचार्य खंड**

## चिन्तन मनन खण्ड



## संघ-दर्शन

जय

गुरु

नाना

# णमो आयरियाणं
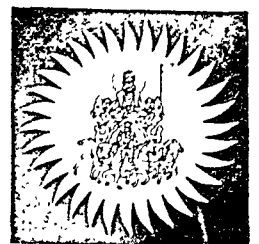
# आचार्य श्री नानालालजी म. सा. विहंगम दृष्टि में

| | |
|---|---|
| जन्म नाम | गोवर्द्धनलाल |
| जन्म स्थान | दांता जिला चित्तौड़गढ़ (राज.) |
| जन्म तिथि | वि. सं. १९७७ ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया |
| पिता | श्री मोड़ीलालजी पोखरना |
| माता | श्रीमती श्रृंगार बाई |
| दीक्षा तिथि | वि. सं. १९९६ पौष शुक्ला अष्टमी |
| दीक्षा स्थान | कपासन (राज.) |
| दीक्षा गुरु | आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. |
| युवाचार्य पद तिथि | वि. सं. २०१९ आश्विन शुक्ला द्वितीया |
| युवाचार्य पद स्थान | उदयपुर (राज.) |
| आचार्य पद तिथि | वि. सं. २०१९ माघ कृष्णा द्वितीया |
| आचार्य पद स्थान | उदयपुर (राज.) |

## आचार्य पद पूर्व चातुर्मास

| क्र. सं. | संवत् | स्थान |
|---|---|---|
| १. | १९९७ | फलौदी |
| २. | १९९८ | बीकानेर |
| ३. | १९९९ | ब्यावर |
| ४. | २००० | बीकानेर |
| ५. | २००१ | सरदारशहर |
| ६. | २००२ | बगड़ी |
| ७. | २००३ | ब्यावर |
| ८. | २००४ | बड़ीसादड़ी |
| ९. | २००५ | रतलाम |
| १०. | २००६ | जयपुर |
| ११. | २००७ | दिल्ली |
| १२. | २००८ | दिल्ली |
| १३. | २००९ | उदयपुर |
| १४. | २०१० | जोधपुर |
| १५. | २०११ | कुचेरा |
| १६. | २०१२ | बीकानेर |
| १७. | २०१३ | गोगोलाव |
| १८. | २०१४ | कानोड़ |
| १९. | २०१५ | उदयपुर |
| २०. | २०१६ | उदयपुर |
| २१. | २०१७ | उदयपुर |
| २२. | २०१८ | उदयपुर |
| २३. | २०१९ | उदयपुर |

# आचार्य पद के पश्चात् चातुर्मास

| क्र. सं. | स्थान | वर्ष | | संत | सतिय |
|---|---|---|---|---|---|
| | | संवत् | सन् | ठाणा | |
| १. | रतलाम | २०२० | १९६३ | ९ | ९ |
| २. | इन्दौर | २०२१ | १९६४ | ९ | ६ |
| ३. | रायपुर (म.प्र.) | २०२२ | १९६५ | ८ | ११ |
| ४. | राजनांदगांव | २०२३ | १९६६ | ७ | ८ |
| ५. | दुर्ग | २०२४ | १९६७ | ११ | ५ |
| ६. | अमरावती | २०२५ | १९६८ | ६ | ५ |
| ७. | मन्दसौर | २०२६ | १९६९ | ६ | १२ |
| ८. | वड़ीसादड़ी | २०२७ | १९७० | ८ | १५ |
| ९. | ब्यावर | २०२८ | १९७१ | ८ | २४ |
| १०. | जयपुर | २०२९ | १९७२ | १० | १० |
| ११. | वीकानेर | २०३० | १९७३ | १२ | १० |
| १२. | सरदारशहर | २०३१ | १९७४ | १२ | १६ |
| १३. | देशनोक | २०३२ | १९७५ | १४ | १८ |
| १४. | नोखा मण्डी | २०३३ | १९७६ | १३ | ७ |
| १५. | भीनासर | २०३४ | १९७७ | १२ | १० |
| १६. | जोधपुर | २०३५ | १९७८ | ९ | ९ |
| १७. | अजमेर | २०३६ | १९७९ | ९ | १६ |
| १८. | राणावास | २०३७ | १९८० | १४ | २० |
| १९. | उदयपुर | २०३८ | १९८१ | १४ | ११ |
| २०. | अहमदावाद | २०३९ | १९८२ | ११ | १८ |
| २१. | भावनगर | २०४० | १९८३ | ११ | ९ |
| २२. | वोरीवली (वम्टई) | २०४१ | १९८४ | १२ | १९ |
| २३. | घाटकोपर (वम्वई) | २०४२ | १९८५ | ९ | १५ |
| २४. | जलगांव | २०४३ | १९८६ | ८ | ९ |
| २५. | इन्दौर | २०४४ | १९८७ | १२ | १७ |

# युगप्रधान युगपति नानेश

□ सुमन्त भद्र

व्यसन-मुक्ति के प्रबल पुरोधा,
मानवता के करुणाधार ।
धर्मजगत के तीर्थ सुनिर्मल,
शुचिता मार्दव के अवतार ।
महाव्रात्य अभिराम तथागत,
पीड़ा के श्रमहारी वन्धु ।
शरणागतवत्सल अभिभावक,
सुष्ठु प्रभावक आगमसिन्धु ।
वैय्यावृत्य-विनय के संगम,
परम अकिञ्चन श्रमण महान् ।
जीवजगत के रवि ज्योतिर्धर,
ऋजुता के शाश्वत दिनमान ।
वशी वरेण्य वसुन्धर अक्षर,
वचनसिद्ध अतिशय अवदात ।
शीलसद्म पावन अभयंकर,
स्वस्ति पुरुष, निष्कलुष सुगात ।
युगाधार युगपुरुष युगंकर,
युगाराध्य युगशीर्ष युगांक ।
दर्शन-ज्ञान चारित्र-समन्वित,
मुक्ति-कौमुदी-सेतु मृगांक ।
प्रज्ञापुरुष प्रवण लोकोत्तम,
लोकोद्योत प्रथित आचार्य ।
योगक्षेमंकर धर्मधुरन्धर,
संघसारथी प्रभु परमार्य ।
स्तवन कोटि अभिवन्दन भगवन्,
युगप्रधान युगपति नानेश ।
पराऽपरा के सिद्ध कल्पतरु,
सारस्वत अभिषेक महेश !

—१२ भगतसिंह मार्ग, नई दिल्ली

कविता

# समता का करे नित जयघोष

□ शिवदत्त पाठक

( १ )

श्रमणोपासक विशेषांक से
मानव का हो निज कल्याण ।
जन-मानस पथ आलोकित कर,
सकल मिटे तिमिर-अज्ञान ।

( २ )

समतामयी जीवन की शिक्षा,
जिसका बने मुख्य आधार ।
माया, ममता, मद, क्रोध पर,
सजग रूप से करे प्रहार ।

( ३ )

जीवन परम नाशवान, नश्वर है,
इसकी मिले मुख्य शिक्षा,
समाज हित मानव सेवा की
जिससे मिले मुख्य दीक्षा ।

( ४ )

गुरु नानालाल की ज्ञान रश्मि
पहुंचाये घर आंगन द्वार,
अहिंसा, समता, सत्य, अचौर्य का,
सही-सही समझाए परिपूर्ण सार ।

( ५ )

ज्ञान सूर्य बन, नष्ट कर—
रूढ़ि, आडम्बर, अन्धविश्वास ।
जनमानस का श्रमहर, तमहर,
हरे कष्टमय प्रभूत निश्वास ।

( ६ )

सादा जीवन, उच्च विचार का
जीवन में, श्रम का हो हामी ।
अहंकार, क्रोध, माया, ममता
मेटे मानव मन की खामी ।

( ७ )

काम, क्रोध, मोह, मद, लोभ से,
मुक्त करे मानव जीवन ।
परहित, परोपकार भावों का,
मन मानस में नित पूजन,

( ८ )

सम्यग् ज्ञान सम्मत क्रिया का,
नित-नियमित करे उद्घोष ।
शांत-क्रांति, धर्म, अहिंसा,
समता का करे नित जय घोष ।

—श्री जैन जवाहिर पुस्तकालय, नोखा (बीकानेर)

## ॐ शुभ-कामना ॐ

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, पत्र श्रमणोपासक व पूज्य आचार्यश्री नानालालजी महाराज साहब के आचार्य पद की रजत जयन्ती इस वर्ष मनाई जा रही है। आचार्य श्री के मैंने दर्शन किये थे। उनके तपःपूत साधु-जीवन और श्रेष्ठतम मुनित्व की अक्षय छाप मेरे मन और मस्तिष्क पर पड़ी। वे जैन धर्म सिद्धांतों और उसकी संस्कृति की साक्षात् मूर्ति हैं। आज जब चारों ओर वातावरण धूमिल और दूषित हो रहा है, ऐसे ही आचार्य-प्रवर समाज और व्यक्ति को मार्ग दर्शन दे रहे हैं। इसी में हम सबका मंगल है। वे निःसंग आत्मजयी आचार्य हैं। शील द्रष्टा और सत्प्रेमी। अहिंसा, तप, संयम और अपरिग्रह के आचरण से वे समस्त समाज को अभिप्रेरित करते हैं। इस सुअवसर पर उन्हें मेरी अशेष वन्दना।

'श्रमणोपासक' जैन समाज और संस्कृति का एक प्रमुख और महत्वपूर्ण पत्र है। इस पत्र ने इस दृष्टि से ऐतिहासिक योगदान दिया है। मेरा विश्वास है कि जिस प्रकार सत्संग जीवन को उच्चतर भूमि पर अग्रसर करता है उसी प्रकार ऐसे पत्र भी, जो हमें स्व-स्वरूपानुसंधान कराते हुए शांत, दांत और इन्द्रियजेता बनने की ओर प्रेरित करते हैं। 'श्रमणोपासक' एक ऐसा ही पत्र है। उसे मेरी मंगल-कामनाएं।

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ से तो मैं सम्बद्ध हूं ही। श्री संघ ने गत पच्चीस वर्षों में धार्मिक चेतना और निःश्रेयस की ओर समग्र समाज को जागरूकता दी है। जैन दर्शन, अध्यात्म और सिद्धांतों के प्रतिपादन के साथ-साथ वृहत्तर सामाजिक कल्याण और नवोत्थान का कार्य किया है, वह सर्व विदित है। मुझे विश्वास है कि यह रजत-जयन्ती वर्ष इन संकल्पों को और अधिक पुष्ट और क्रियाशील करेगा क्योंकि मेरा विश्वास है कि **एद्भ्यो हितं सत्यं,** सत्य वही है जिसमें समाज के सभी वर्गों का सामूहिक कल्याण और हित निहित है। श्री संघ को मेरा सश्रद्ध अभिवादन।

१५-७-८८

—कल्याणमल लोढ़ा, कलकत्ता

☐

यह ज्ञात कर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ अपनी अढ़ाई दशक की मंगलमय यात्रा समाप्त कर रजत-जयन्ती मना रहा है। इस अरसे में संघ ने अपनी वहुआयामी प्रवृत्तियों द्वारा जिनशासन एवं राष्ट्र की प्रशंसनीय सेवाएं की हैं। जैन वर्म के अहिसा/अपरिग्रह के प्रचार में 'श्रमणोपासक' पत्र की सेवाएं प्रशंसनीय हैं। पूज्य आचार्य-प्रवर

श्री नानालालजी महाराज के आचार्य पद के २५ वर्ष पूर्ण हो रहे हैं, यह सोने में सुगंध जैसा संयोग है। उन चारित्र आत्मा ने धर्म प्रचार एवं सर्वविरति चारित्र आत्माओं की वृद्धि का प्रशस्त रिकार्ड स्थापित किया है। संघ का सम्मिलित प्रयत्न देश में बढ़ती हिंसा को बन्द करने में सफलता प्राप्त करे जिससे मूक जीवों के आशीर्वाद से भारत उन्नति के शिखर पर आरूढ़ हो। समाज में पारस्परिक प्रेम एकता की वृद्धि हो। आचार्य महाराज शतायु हों, इसी शुभ-कामना के साथ—

२३-७-८७ —भंवरलाल नाहटा, कलकत्ता

□

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ की रजत-जयन्ती के शुभ अवसर पर हार्दिक अभिनन्दन स्वीकार करें। साधुमार्गी जैन संघ ने पिछले पच्चीस वरसों में समाज और साहित्य की जिस प्रतिबद्ध भाव से सेवा की है, वह आने वाले वर्षों में भी सबको प्रेरित करती रहेगी। यह शुभ और सुखद संयोग है कि श्रद्धेय आचार्य-प्रवर श्री नानालालजी म. सा. के आचार्य-पद का पच्चीसवां वर्ष भी इसी समय पूर्ण होने जा रहा है। वस्तुतः यह रजत-जयन्ती वर्ष हम सबके लिए श्रद्धा, भक्ति, सेवा, सहयोग और समर्पण का वर्ष है। इस मंगलमय अवसर पर मैं अपनी पूर्वरचित कविता की इन पंक्तियों से आचार्य श्री के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित कर कृतार्थ होने की विनम्र भावना प्रकट करता हूं :—

वीतरागता के आराधक,<br>
समता के हो साधक ज्योतित !<br>
महिमा मंडित जिन शासन तव,<br>
ज्ञान-ध्यान, तप-करुणा-पोषित !<br>
विमल यशस्वी, लोकोद्धारक,<br>
आत्म-ज्ञान के साधु प्रचारक,<br>
हे रत्नत्रयी के संघायक,<br>
जन-गण-मन स्वीकार्य नमो !<br>
परमेष्ठि तीसरे आचार्य नमो !<br>
आचार्य नमो ! आचार्य नमो !

३०-७-८७ डॉ. इन्दरराज वैद 'अधीर', पटना

□

आपके भेजे कृपा पत्र से यह जानकर बहुत आनन्द हुआ है कि इसी वर्ष की शरद् ऋतु में, यह अभिनव श्रावक श्राविका संगठन अपने जीवन के २६ वें वर्ष में प्रवेश करेगा और आप श्रमणोपासक पत्रिका का भी विशेषांक निकालने जा रहे हैं। साधुवाद। और आचार्य

प्रवर श्री नानालालजी म. सा. के आचार्य पद को विभूषित करने के २५ वर्ष पूर्ण होने जा रहे हैं—यह सूचना आपके उपक्रम को और भी अधिक आकर्षक बना डालती है।

जैन धर्म का चतुर्विध श्री संघ चिर-तरुण है और हजारों साल पुराना है ! इस कथन में कोई विरोधाभास नहीं। स्वयं भगवान् महावीर की संकल्पना से सुसज्जित हो, श्रावक और श्राविकाएं इस धर्म संगठन में प्राण फूंकते हैं और सम्यक् श्रावक-श्राविका बने रहने के लिये हम सब स्वाध्याय और धर्माचरण के यम-नियमों का निर्वाह कर, इस संगठन को नित-नवीन और चिरयुवा और अन्तत: चिरजीवी बना पाते हैं ! साधुमार्गी जैन श्री संघ को, इसी-लिये, केवल २५ बरसों की आयु का कहना व्यावहारिक रूप से भले ही सही हो परन्तु धार्मिक अर्थों में तो हम हजारों बरस पुराने हैं।

और अभी प्राचीन और फिर भी निरन्तर तरुण रहने का मन्त्र बहुत सरल और अत्यन्त दुष्कर हैं– गतानुगति को तिलांजलि परन्तु प्रामाणिक परम्परा से अनवरत अनुशासित ! साधुमार्गी जैन श्रीसंघ पर यही उत्तरदायित्व है और वह बहुत सौभाग्यशाली है कि उसे इन ढ़ाई दशकों में श्री आचार्य प्रवर से श्रमण-गौरव और श्रमण-शिरोमणि का सान्निध्य और पथ निर्देश मिला है।

यह तो कोई नहीं कहेगा कि २५ बरसों का यह श्रीसंघ का इतिवृत्त सदैव त्रुटिहीन रहा है। हमारी उपलब्धियां जरूर महत्वपूर्ण हैं परन्तु रजत-जयन्ती हमें सही सिंहावलोकन का अवसर देती है जिससे हमारी कमियों और कमजोरियों को आने वाले कालखण्ड में भरा जा सके। मुझे विश्वास है, आपका यह प्रशंसनीय रजत-जयन्ती संयोजन इस बारे में सम्पूर्ण सफल होगा। शुभ-कामनाओं के साथ—

३-८-८७

—जवाहरलाल मूणोत, बम्बई

□

## मेरे-गुरुदेव

पूज्यपाद, समता विभूति, आराध्यदेव, आचार्य प्रवर मेरे महान् उपकारक हैं। मेरे जीवन प्रवाह की संघ की ओर प्रवाहित गति आपके सदुपदेश का ही परिणाम है।

उदयपुर में आपके निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और प्रथम सम्पर्क में ही एक विचार कौंधा कि जिनकी खोज थी, उन्हें पा लिया। समझ एवम् विवेकपूर्ण समकित दिलाने की प्रार्थना की, जिसे स्वीकृत करके मुझे अनाथ से सनाथ बनाया। गुरुदेव के लिये जिस श्रद्धा को हृदय में संजोये हुवे हूं, उसे प्रकट करने की भाषा तो मैं नहीं जानता, मगर यह जानता हूं कि मेरा यह जीवन पूर्ण सार्थकता की सीमा में नहीं है तो निरर्थक भी नहीं है। सच्चे गुरु का साधक ही साधना-पथ पर प्रगतिशील रहता है, चाहे वह गति मन्द क्यों न हो। समर्पित हूं, और समर्पित रहूंगा, यही आकांक्षा है। मेरी श्रद्धा जीवन-पर्यन्त अखण्डित रहे, यही हार्दिक कामना है।

शांत, सौम्य–मुद्रा पाण्डित्यपूर्ण प्रवचन, संयम-निष्ठा का प्रभाव आज भी अमिट है। शास्त्र सम्मत श्रमणचर्या अनुकरणीय है ।

शतशत वन्दन !

—जुगराज सेठिया

□

## "यतो धर्मस्ततो जयः"

अनन्त श्री विभूषित श्रद्धेय आचार्य प्रवर श्री नानालालजी महाराज साहब के आचार्य-पद पर विभूषित, २५ वें वर्ष के उपलक्ष्य में रजत-जयन्ती महोत्सव में समता-साधना का आयोजन, जैन-धर्म और समाज की महान् उपलब्धि है। जिन-धर्म प्राण, जन-उर-प्रेरक आचार्य श्री की दिव्य वाणी और उनके धर्मोपदेश में विद्युत शक्ति का संचार है, जिससे श्रावक-धर्म, उपासना तथा सिद्धांत क्षेत्र में महान् धार्मिक चेतना, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र का सहारा लेकर प्रतिफलित हो रही है, ऐसे सिद्ध तपस्वी आचार्य का आचार्यत्व-पद स्वतः गौरवान्वित है । परम पूज्य आचार्य श्री अपने अनिर्वचनीय प्रवचनों द्वारा जिस प्रकार सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्रीय जीवन में आमूल परिवर्तन लाकर इस संक्रान्ति काल में, जन-जीवन में सर्वांगीण-समुन्नत-संस्कार निष्ठ धार्मिक प्रतिष्ठा की स्थापना करने में निरत हैं, यह धर्म और समाज के लिए महान् वरदान है । प्रातःस्मरणीय आचार्य श्री धर्म और समता दर्शन के प्रचार-प्रसार में जो महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं, यह समय और समाज के लिए परम सौभाग्य का परिचायक है ।

समता विभूति धर्मस्थ "आचार्य-पद" के शुभ जयन्ती वर्ष को समता-साधना वर्ष के रूप में प्रतिपालन करना, मनसा, वाचा-कर्मणा से शिव-संकल्प है । श्रमण-धर्म के प्रकाश और मानव विकास के लिए यह अमोघ सफल प्रयास है ।

आचार्य श्री की क्रांतिकारी, मानव-धर्म के उन्नयन और विकास की अमोघ वाणी को श्रवण एवं हृदयंगम कर गुरड़िया में ८२ गांवों के ७६३ परिवारों के सैकड़ों व्यक्तियों ने व्यसनों और विकारों के त्याग की शपथ ली है । आचार्य श्री ने उन्हें 'धर्मपाल' की संज्ञा से अभिहित कर सामाजिक जीवन में विशेष प्रोत्साहित किया है, यह सांस्कृतिक क्षेत्र का अभिनव प्रयोग है और भारतीय संविधान का सर्वमान्य समतावादी सिद्धांत है । दो दशाब्दियों से भी अधिक समय से निरन्तर संघर्षों से गुजरती हुई यह प्रवृत्ति अक्षय, अक्षीण एवं अबाध गति से प्रगति पथ पर अग्रसर है ।

समीक्षण ध्यान के प्रणेता, धर्म-प्राण, जन-जन के प्रेरणा स्रोत, अनन्त श्री विभूषित म. सा. के पाद-पद्मों में प्रणति, स्तवन-वन्दन-सुमनान्जलि समर्पित है ।

—माणकचन्द रामपुरिया, कलकत्ता

प्रश्नमंच कार्यक्रम :

# ❀ आचार्य श्री नानेश ❀

प्रस्तोता–पं. दिलीपकुमार वया 'अमित'

( प्रश्नोत्तर के माध्यम से आचार्य श्री की जीवन झांकी )

**प्रश्न**—श्री नानालालजी ने ग्यारह वर्ष की उम्र में ही किराना का धन्धा शुरू किया। वाद में लगभग १३ वर्ष की आयु में अपने मित्र एवं चचेरे भाई श्री कन्हैयालालजी के साथ कपड़े का व्यवसाय प्रारंभ किया। व्यवसाय के दौरान कहीं मित्रता में व्यवधान न पड़ जाए, एतदर्थ अपने मित्र से एक प्रतिज्ञा करवा ली, जो आपकी तत्कालीन सूझ-बूझ और बुद्धिमता की परिचायक तो है ही, प्रबल प्रमाणभूत भी है, वह प्रतिज्ञा क्या थी ?

**उत्तर**—"यदि किसी प्रकरण को लेकर मुझे आवेश (क्रोध) आ जाए तो कुछ समय के लिये आप मौन कर लेवें और आपको आ जावे तो मैं वैसा कर लूंगा। आवेश शांत हो जाने पर हम शांत वातावरण में, शांत मस्तिष्क से सन्दर्भित विषय पर विचार–विनियम कर लेंगे, ताकि हमारे व्यवसाय के कारण मित्रता एवं भातृत्व–भावना में कभी स्खलना न होने पावे।"

**प्रश्न**—श्री नानालालजी म. सा. में वह कौनसा गुण विशेष है, जिससे प्रभावित होकर महान् अध्यात्म-साधक स्थविर पद विभूषित खरवा वाले श्री घासी–लालजी म. सा. आप ( नानालालजी म. सा. ) को तो घण्टा–घर की उपमा एवं स्वयं को मन्दिर की झालर की उपमा दिया करते थे ?

**उत्तर**—अल्पभाषिता का गुण। वे कहा करते—"हम तो मन्दिर की झालर के समान विना कारण वार–बार बोलते रहते हैं, हमारी वाणी की कोई कीमत नहीं हैं, किन्तु तुम तो घण्टाघर की घड़ी के समान हो, जो समय पर नियमित–परिमित बोलते हो, तुम्हारी वाणी सुनने के लिये छोटे-वड़े सभी सन्त लालायित रहते हैं।"

**प्रश्न**—एक घटना सुनिये —"उड़ीसा प्रांत में विचरण करते हुए एक बार आचार्य श्री नानेश अक्षय तृतीया के प्रसंग पर खरियार रोड पधारे। अनेक तपस्वी जनों के समान ही बड़ावदा निवासी सेठ श्री सौभागमलजी सांड अपनी धर्मपत्नी श्रीमती सूरजवाई को पारणा करवाने हेतु उपस्थित हुए। पारणे के प्रसंग पर आचार्य श्री जब वहिन सूरजवाई के यहां भिक्षा हेतु पधारे तो आहार दान के समय तपस्विनी वहन एक साथ पांच लड्डू वहराने का आग्रह करने लगी।

आचार्य देव ने निषेध करते हुए अपनी साध्वोचित भाषा में कहा—"बाईजी इतने लड्डू नहीं खपते हैं, आप एक लड्डू वहरा दीजिये।"

तपस्विनी वहन भावपूर्ण शब्दों में कहने लगी—"अन्नदाता, मेरे अपशकुन मत करिए। मैं पूरे पांच लड्डू वहराऊंगी।"

आचार्य श्री ने पूछा—"सन्तों को जितना खपता है, उतना ही तो हम ले सकते हैं। इसमें अपशकुन की कल्पना नहीं करनी चाहिये।"

अव आप वताइये—उस वहिन ने तव क्या उत्तर

दिया ? पांच लड्डू एक साथ बहराने के पीछे उसके क्या भाव थे ?

**उत्तर**—उसने उत्तर दिया - "नहीं अन्नदाता, मेरी भावना दूसरी है । मैं जैसे आज पांच लड्डू एक साथ बहरा रही हूं, वैसे ही मेरी भावना है कि मेरे घर से एक साथ पांच दीक्षाएं हों । इस हेतु मैं अपने बच्चे-बच्चियों में संस्कार भरने का प्रयास कर रही हूं । आप मेरी भावनाओं को साकार होने का आशीर्वाद प्रदान करें ।"

**( और प्रशंसनीय है कि उस माता ने अपनी भावनाओं को केवल भावना तक ही सीमित नहीं रखा वरन् यथार्थ की भूमिका का स्पर्श भी दिया । पांच ही नहीं, पतिदेव, एक पुत्र, तीन पुत्रियां और स्वयं सहित छः-छः व्यक्तियों को संस्कारों से पोषित कर शासन-सेवा में अर्पित कर दिया ) ।**

**प्रश्न**—वैरागी अवस्था में ही नानालालजी ने दृढ़ तपस्या आरम्भ कर दी थी । आप बताइये—"वह तपस्या क्या थी और किसे देखकर उन्होंने इस प्रकार की तपस्या ग्रहण की थी ?"

**उत्तर**—जवाहराचार्य के बारे में जानकर उन्होंने सोचा—"जवाहरलालजी म. सा. यदि केवल दुग्धादि पर रह सकते हैं तो क्या मैं केवल पानी के आधार पर नहीं रह सकता ?" ऐसा संकल्प कर उसी दिन से अपने भोजन की मात्रा घटाना आरम्भ कर दिया। कुछ दिनों तक आप केवल एक रोटी पर रहे । फिर कई दिनों तक आधी रोटी सुबह और पाव रोटी शाम को और दीक्षा से पूर्व अन्तिम कुछ दिनों तक केवल एक चौथाई रोटी खाकर पानी पीकर रहे । इस प्रकार आपने ऊणोदरी तप की आराधना की ।

**प्रश्न**—वह क्या कारण बना कि नानालालजी म. सा. को इन्जेक्शन लगाने एवं सूगर टेस्ट करने की विधि सीखनी पड़ी ? यह बात कब की है ?

**उत्तर**—यह घटना सं. २००९ के बृहत् साधु-सम्मेलन सादड़ी के तुरन्त बाद की है । श्री गणेशाचार्य अस्वस्थ थे । सम्मेलन में बम्बई का एक डॉक्टर आया था । उसके अनुसार आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. को सूगर (मधुमेह) की बीमारी थी । रोग पुराना होने से तत्काल ध्यान देना आवश्यक था अन्यथा अन्य रोग भी उत्पन्न हो सकते थे । छोटे-छोटे गांवों में डॉक्टरों का संयोग नहीं मिलता अतः डॉक्टर सा. के पास से मुनि श्री नानालालजी ने यह विधि सीखली।

**प्रश्न**—'आहारे खलु व्यवहारे स्पष्ट वक्ता सुखी भवेत ।' यह नीति वाक्य आज भी आचार्य श्री के श्रीमुख से यदा-कदा सुनने को मिल जाता है । आप बताइये कि यह नीति-शिक्षा आचार्य श्री को किसने और क्यों दी थी ?

**उत्तर**—(तत्कालीन) युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. ने । हुआ यों कि फलौदी के प्रथम वर्षावास में सेवाभावी मुनिश्री रतनलालजी म. सा. (जो स्वयं तेज प्रकृति के थे) नानालालजी म. सा. की अक्रोध-वृत्ति (क्षमाशीलता) से बहुत प्रभावित हुए एवं गोचरी के वक्त अपने हिस्से की श्रेष्ठ सामग्री नानालालजी के हिस्से में डालने लगे । नानालालजी म. सा. उनका आदर करने की दृष्टि से नहीं भाते हुए भी यह सभी (अधिक) आहार करने लगे । फलस्वरूप उन्हें पेचिश की शिकायत हो गई और दुर्बल शरीर पर मलेरिया ने आक्रमण कर दिया । जब वस्तुस्थिति युवाचार्य श्री को ज्ञात हुई तो उन्होंने उपरोक्त नीति-शिक्षा रूप वाक्य कहा ।

**प्रश्न**—जब नानालालजी म. सा. को आचार्य बने एक वर्ष भी नहीं हुआ था कि उस समय कुछ अति-साम्प्रदायिक तत्वों द्वारा आचार्य श्री पर यह आरोप लगाया जा रहा था कि नानालालजी म. सा. साम्प्रदायिक तत्त्वों को प्रेरित करते हैं, वे अन्य सम्प्रदाय वाले किसी से भी प्रेम सम्बन्ध नहीं रखते, आदि। किन्तु उनकी यह भ्रांति आपके रतलाम के प्रथम चातु

मास के मंगल-प्रवेश के दिन ही किस प्रकार निर्मूल हो गई ?

उत्तर—मंगल-प्रवेश के दिन ही आपको जब ज्ञात हुआ कि नीमचौक के धर्मस्थान में विराजित स्वर्गीय जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म. सा. के शिष्य मुनिश्री चम्पालालजी म. सा. विगत कुछ दिनों से अधिक अस्वस्थ हैं, तो आपश्री उसी समय (मध्याह्न में) संत समुदाय के साथ नीम चौक स्थानक में पधार गए और स्नेह-मिलन के साथ वार्तालाप हुआ। वहीं आपको यह ज्ञात हुआ कि दूसरी मंजिल पर श्री मगनमलजी म. सा. भी अस्वस्थ हैं, तो आपश्री ऊपर पधार कर उनसे भी मिले।

प्रश्न—आज जहां हमारे जैन सन्त-सतियों में भी येन-केन प्रकारेण अपनी शिष्य सम्पदा बढ़ाने की उत्कंठा रहती है, वहां पूज्य युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. की निस्पृह भावना काबिले तारीफ थी। जब श्री नानालाल (वर्तमान आचार्य श्री) वैरागी अवस्था में सर्वप्रथम युवाचार्य श्री के दर्शन करने कोटा गये तो वहां उन्होंने युवाचार्य श्री से निवेदन किया—'मुझे अपनाने की महती कृपा करें। मैं आपश्री के चरणों में संयम-आराधना करता हुआ आत्म-कल्याण करना चाहता हूं।' आप बताइये—ये शब्द सुनकर युवाचार्य श्री ने क्या उत्तर दिया ?

उत्तर—'भाई ! साधु बनना कोई हंसी-खेल नहीं है। साधु बनने से पूर्व साधुता को समझने का प्रयास करो। त्याग एवं वैराग्य को स्थायी एवं सबल बनाते हुए सन्त-जीवन को सूक्ष्मता पूर्वक परखो। चित्त की चंचलता के साथ भावावेश में किसी भी मार्ग पर बढ़ जाना श्रेयस्कर नहीं माना जा सकता है। यदि कल्याण मार्ग का अनुकरण करना है तो गुरु का भी परीक्षण कर लो।'

प्रश्न—इस पंक्ति को सुनिये—'इस प्रकार यह यात्रा अन्धकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर, सुषुप्ति से जागृति की ओर ले जाने वाली एक यात्रा ही नहीं, महायात्रा रही।' यह पंक्ति पं. र. श्री शान्ति मुनिजी ने अपनी पुस्तक 'अन्तर्पथ के यात्री : आचार्य श्री नानेश' में लिखी है। आप यह बताइये कि श्री नानालालजी की वह कौनसी एवं कितनी लम्बी यात्रा थी, जिससे उनके सम्पूर्ण जीवन का मार्ग ही बदल गया ?

उत्तर—भादसोड़ा से भदेसर की यात्रा (लगभग १० मील की), जो उन्होंने घोड़े पर तय की।

[ भादसोड़ा में जैन मुनि का ( छः आरों पर ) व्याख्यान सुनकर अपनी माताजी से मिलने हेतु ननिहाल (भदेसर) पहुंचे। रास्ते में चिन्तन चला और जीवन का मार्ग बदल गया, वे बाह्य पथ को छोड़कर अन्तर्पथ के यात्री बन गये। ]

प्रश्न—एक घटना सुनिये—दि. २२-१-६३ माघ कृष्णा १२ को वैराग्यवती सुश्री सुशीला कुमारी की दीक्षा सम्पन्न होने वाली थी। उसके एक दिन पूर्व एक अनोखी घटना घट गयी। हुआ यह कि एक वैरागी भाई के पिता उस दिन सन्तों की सेवा में बैठे हुए थे। वार्तालाप के दौरान सन्तों ने कहा—'श्रावकजी, आपके लड़के को दीक्षा की आज्ञा क्यों नहीं देते ?'

श्रावकजी बोले—'उसे आज्ञा दूं तो मुझे वन्दना करनी पड़ेगी।'

'तो फिर आप पहले तैयार हो जाइये।' सन्तों ने विनोद भरे स्वर में कहा।

'हां, महाराज श्री मैं भी यही सोच रहा हूं। कल होने वाली दीक्षा के साथ मुनिवेश पहन लूंगा।' गम्भीर स्वर में श्रावकजी बोले।

मुनिश्री ने इसे विनोद समझा और कहने लगे—'जिसे आगे बढ़ना है, वह कल नहीं देखता. लेना है तो आपके लिये आज का मुहूर्त ही अच्छा है।'

'तो ठीक है, मैं अभी जाकर ओघा, पातरा और वस्त्र ले आता हूं।' कहते हुए श्रावकजी उठ गए।

मुनिश्री अभी इसे विनोद ही समझ रहे थे कि ६७ वर्ष के वृद्ध व्यक्ति क्या दीक्षा लेंगे। किन्तु श्रावकजी घर जाकर मुनिवेश पहन रजोहरण आदि लेकर आचार्य श्री के समक्ष उपस्थित हो निवेदन करने लगे— गुरुदेव, मुझे दीक्षा पचक्खाने की कृपा करें।'

गुरुदेव ने बहुत समझाया और साफ मना कर दिया कि बिना आपके पारिवारिक-जनों की आज्ञा के हम दीक्षा नहीं पचक्खा सकते हैं।

श्रावकजी ने गुरुदेव से मंगलपाठ सुना और फिर एक तरफ जाकर 'करेमि भंते' के पाठ से स्वयं ही दीक्षा पचक्ख ली।

बाद में दि. २७-१-६३ को उनकी विधिवत् भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई और आगे चलकर उनके वैरागी पुत्र ने, पुत्रवधू ने तथा पौत्री ने भी संयम पथ स्वीकार किया।

आप बताइये कि उन पिता-पुत्र के नाम क्या थे?

**उत्तर**—श्री वृद्धिचन्दजी पामेचा—पिता
श्री अमर कुमारजी—पुत्र

**प्रश्न**—राजनांदगांव का आचार्य श्री का वर्षावास अन्य विगत वर्षावासों की अपेक्षा कुछ अधिक ही सौरभमय रहा। उसी वर्षावास में आचार्यदेव की चारित्रिक गरिमामय सौरभ से आकृष्ट मद्रास निवासी एक दम्पति, जिन्हें विवाह किये अभी दो-ढ़ाई माह ही हुए थे, मद्रास से राजनांदगांव उपस्थित हुए और दोनों ने अपने दीक्षा लेने की भावना से आचार्य श्री को अवगत कराया एवं वहीं आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ग्रहण की।

बाद में यथासमय रायपुर नगर में उनकी दीक्षा सम्पन्न हुई। वे अपनी मां के इकलौते लाडले थे।

आपको बताना है कि उन व्यक्ति एवं उनकी पत्नी के गृहस्थावस्था के नाम क्या थे?

उत्तर—श्री धर्मप्रकाशजी धोका एवं श्रीमती जयश्री बाई।

**प्रश्न**· गणेशाचार्य श्री को उदयपुर में किडनी (गुर्दा) का ऑपरेशन होने के बाद दैहिक दुर्बलता से एक दिन सहसा प्रातःकाल मूर्च्छा ने आ घेरा तथा कुछ ही समय में वह मूर्च्छा बेहोशी (अचेतनावस्था) में बदल गई। मुनि नानालालजी ने सागारी संथारा करवा दिया। बेहोशी में लगभग तीन दिन निकल गये। डॉक्टर भी उनके जीवन के प्रति संशय युक्त हो गये थे। तत्र स्थित संतों एवं प्रमुख श्रावकों का यह दबाव एवं अत्यन्त आग्रह था कि अब सागारी नहीं, यावज्जीवन-संथारे के प्रत्याख्यान करवा देना चाहिये। लेकिन नानालालजी म.सा. ने श्री गणेशाचार्य जी की नाड़ी की गति देखी, फलतः उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि अभी पूर्ण संथारा पचक्खाने का समय नहीं आया है, और उन्होंने नहीं पचक्खाया। आखिर तीन दिन के बाद उनकी संचेतना पुनः लौट आयी।

अब आप यह बतायेंगे कि इसके बाद गणेशाचार्य कितने समय तक इस भू-मण्डल पर जीवित रहे?

**उत्तर**—तीन वर्ष लगभग।

**प्रश्न** वैराग्योत्पत्ति के कारणों को हम मुख्यतया तीन विभागों में विभक्त कर सकते हैं, कौन-कौन से? आचार्य श्री का वैराग्य उनमें से किस कोटि का था?

**उत्तर**— १. दुःख गर्भित वैराग्य (सांसारिक दुःखों से विरक्ति)
२. मोह गर्भित वैराग्य (प्रियजन के वियोग से उत्पन्न विरक्ति)
३. ज्ञान गर्भित वैराग्य (संसार की असारता का ज्ञान करके उत्पन्न विरक्ति)।

आचार्य श्री का वैराग्य 'ज्ञान गर्भित वैराग्य' की कोटि में आता है।

**प्रश्न**—'शासन प्रभावना एवं आचार्यत्व के प्रभाव को अभी क्या देख रहे हो? महान् तपोमूर्ति श्री हुक्मीचन्दजी म. सा. की इस गौरवमयी पाट-परम्परा

के आठवें पाट को देखना । वह किस प्रकार निर्मल यश का अर्जन करता हुआ शासन की विशेष प्रभावना करेगा ।'

यह भविष्यवाणी किसने, किसके समक्ष और किसके लिये की थी ?

**उत्तर**—आचार्य श्री श्रीलालजी म. सा. ने महासती श्री तेजकंवरजी के समक्ष । आचार्य श्री नानालालजी म. सा. के विषय में ।

**प्रश्न**—'ध्वनिवर्धक यन्त्र में बोलना मुनिधर्म की परम्पराओं में नहीं है । अपवाद में बोलना पड़े तो उसका प्रायश्चित लेना होगा । स्वच्छन्दता से इसका प्रयोग न किया जाय ।' यह प्रस्ताव सं. २०१२ के भीनासर वृहत् साधु-सम्मेलन में कुछ मतों का विरोध होने से सर्वानुमति से पारित न होकर बहुमत के आधार पर पारित किया गया । आपको बताना है कि वे कुल कितने और किन-किन के मत थे, जो प्रस्ताव के विरोध में थे ?

**उत्तर**—कुल तीन मत । पं. मुनिश्री लालचन्दजी म. सा. का एक मत एवं पं. रत्न श्री नानालालजी म. सा. के दो मत (क्योंकि पं. रत्न श्री पन्नालालजी म. सा. का प्रतिनिधित्व भी नानालालजी म. सा. ही कर रहे थे, अतः आपके पास दो मत थे) ।

**प्रश्न**—सं. २०२६ वैशाख शुक्ला ७ को, जिस दिन आचार्य देव की संसारपक्षीया भगिनी श्रीमती छगन कंवरजी की दीक्षा कानोड़ में हुई, उसी दिन ब्यावर में भी एक वीरागंना बहन की दीक्षा सम्पन्न हुई ।

उसकी विशेषता यह थी कि उन्होंने अपनी अष्ट वर्षीया पुत्री कु. मनोरमा को छोड़कर तथा अपने ही हाथों से अपने पतिदेव की दूसरी शादी करके संयम मार्ग पर कदम बढ़ाया था ।

आप रतलाम निवासी उस वीरागंना बहन का नाम बताइये ?

**उत्तर**—श्रीमती चन्द्रकान्ता बाई मेहता ।

**प्रश्न**—'साधु को जो भी वस्तु चाहिये, वह गृहस्थ से याचना करके लाता है और पुनः लौटाने योग्य वस्तु को उपयोग के बाद लौटा देता है ।'

एक बार यों हुआ कि आचार्य श्री अपने सन्तों सहित बदनावर से कानवन की ओर विहार कर दो मील पधार गये थे कि सेवाव्रती तपस्वी मुनिश्री अमरचन्दजी म. सा. को कुछ स्मरण आया और उन्होंने आचार्य श्री से निवेदन किया—'मैं आज सुबह एक गृहस्थ के घर से एक छोटी वस्तु लेकर आया था, लेकिन वह स्थानक में ही रह गयी है, मैं उसे लौटाना भूल गया हूं ।'

आचार्य श्री ने कहा—एक भाई के साथ जाकर तुम स्वयं यथास्थान लौटाकर आओ ।' विहार में साथ आये श्रावकों ने कहा—'इतनी छोटी-सी चीज के लिये मुनिजी को चार मील का चक्कर देना अच्छा नहीं होगा । हम जायेंगे तो ढूंढ़कर यथास्थान लौटा देंगे ।' आचार्य श्री ने कहा—'आपकी भावना प्रशस्त है, लेकिन सन्तों को अपनी मर्यादा के अनुसार चलना ही चाहिये ।'

अमरचन्दजी म. सा. खुद जाकर वह वस्तु लौटाकर आये ।

अब आपको यह बताना है कि वह छोटी-सी वस्तु क्या थी, जिसको लौटाने हेतु चार मील का चक्कर लगाने वाली यह घटना संयम के प्रति सजगता का आदर्श बन गई ?

**उत्तर**—सूई, जो सिलाई हेतु लाई गई थी ।

**प्रश्न**—आचार्य श्री के उपदेशों से प्रवाहित हुई एक महान् सामाजिक क्रान्ति—'मालवा के बलाई जाति के हजारों लोगों का व्यसन मुक्त होकर **धर्मपाल जैन** बन जाना ।'

एक बार आगत धर्मपाल बन्धुओं की विनती

स्वीकार कर आचार्य श्री ने उनके ग्राम की ओर प्रस्थान कर दिया। अन्यान्य क्षेत्रों की तरह वहां भी ७० ग्रामों के प्रतिनिधियों के भावुक हृदयों पर आचार्यदेव के जादू भरे प्रवचन का प्रभाव हुआ और सभी व्यक्तियों ने 'धर्मपाल व्रत' ग्रहण किया एवं अपनी सामान्य बुद्धि के आधार पर एक प्रस्ताव भी पास किया—'इस गांव में उपस्थित होने वाले ७० गांवों के करीब ११०० प्रतिनिधि लोग मांस, मदिरा, शिकार आदि दुर्व्यसनों का परित्याग करते हैं और साथ ही यह भी घोषणा करते हैं कि हमारी इस जाति में जो भी इन अभक्ष्य वस्तुओं का सेवन करेगा, जाति का अपराधी माना जायेगा।'

इस प्रकार इस गांव से सामाजिक बन्धन के रूप में इस हृदय–परिवर्तनकारी उत्क्रान्ति ने नया मोड़ ले लिया।

अब आप बताइये, उस गांव का क्या नाम है ?

**उत्तर**—गुराड़िया (मालवा)।

**प्रश्न** नानालालजी म. सा. ने अपने आराध्यदेव गणेशाचार्य की विद्यमानता के २४ वर्षों में कितने वर्ष उनकी सेवा में ही व्यतीत किये ?

**उत्तर**—लगभग २१ वर्ष।

**प्रश्न**—दीक्षा लेते ही 'आचार्य श्री' ने अपनी साधना के तीन कोण निश्चित किये, कौन–कौन से ?

**उत्तर**—१. ज्ञान आराधना २. संयम साधना ३. सेवा (तपो) भावना।

**प्रश्न**—नानालालजी म. सा: को युवाचार्य की चादर कब ओढ़ाई गयी ?

**उत्तर**—दि. ३०-९-६२, सं. २०१९ आसोज शुक्ला द्वितीया रविवार।

**प्रश्न**—श्री गणेशाचार्य ने यावज्जीवन का संथारा ग्रहण करने के तीन दिन पूर्व ही अपनी आलोचना पूरी कर ली थी। आलोचना किसके समक्ष की थी ?

**उत्तर**—स्थविर पं. मुनिश्री सूरजमलजी म. सा. के समक्ष।

**प्रश्न**—आचार्य तीन प्रकार के होते हैं - शिक्षाचार्य, कलाचार्य व धर्माचार्य।

आचार्य के ये भेद कौनसे सूत्र में बताए गए हैं ?

**उत्तर**—ठाणांग सूत्र में।

**प्रश्न**—आपका जन्म का नाम क्या था तथा 'नाना' नाम कैसे रखा गया ?

**उत्तर**—गोवर्धनलाल। आठ भाई-बहनों में सभी से छोटे होने के कारण प्रेम से 'नाना' नाम रख दिया गया।

**प्रश्न**—आचार्य श्री के वैराग्य उत्पत्ति में मूल निमित्त क्या बना ?

**उत्तर**—भादसोड़ा में मेवाड़ी मुनि श्री चौथमलजी म. सा. का व्याख्यान।

**प्रश्न**—नानालालजी म. सा. की दीक्षा कौनसी तिथि को हुई ?

**उत्तर**—संवत् १९९६ पौष शुक्ला अष्टमी।

**प्रश्न**—आचार्य श्री के अन्तेवासी उन तपस्वी संत का नाम बताओ जिन्होंने मात्र छाछ के आधार पर एक साथ २५१ दिन के तप का प्रत्याख्यान कर एक कीर्तिमान स्थापित किया था ?

**उत्तर**—तपोनिष्ठ श्री कंवरलालजी म.सा. (बड़े)।

**प्रश्न**—नानालालजी म. सा को युवाचार्य चादर प्रदान करने की विधि में नवकार मंत्र के उच्चारण के साथ सर्वप्रथम कौनसे सूत्र का वाचन किया गया था ?

**उत्तर**—नंदी सूत्र।

**प्रश्न**—श्री नानेशाचार्य के प्रथम शिष्य व शिष्या बनने का सौभाग्य किसे प्राप्त हुआ ?

**उत्तर** - श्रीसेवन्तकुमारजी, सुश्री सुशीलाकुमारीजी।

**प्रश्न**—वर्तमान आचार्य श्री के वह शिष्य मुनि कौन हैं, जिन्हें अपनी वैरागी अवस्था में स्वर्गीय गणेशाचार्य के पार्थिव शरीर को दो मील की यात्रा तक कंधा लगाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था ?

**उत्तर**—पं. र. श्री शांतिमुनिजी म. सा.।

**प्रश्न**—पूज्य गणेशाचार्य द्वारा पं. र. श्री नानालालजी म. सा. के युवाचार्य होने की विधिवत् घोषणा कौनसी तिथि या तारीख को की गई थी ?

**उत्तर**—आसोज कृष्णा ६, सं. २०१६ (तारीख—२२ सितम्बर १९६२)।

**प्रश्न**—आचार्य श्री को संस्कृत भाषा एवं साहित्य का ज्ञान कराने में प्रमुख भूमिका निभाने वाले संस्कृत के उद्‌भट् विद्वान् का नाम बताओ ?

**उत्तर**—पं. श्री अम्बिकादत्त ओझा।

**प्रश्न**—'उन्होंने अल्पारम्भ एवं महारम्भ की व्याख्या के विषय में समाज को विलक्षण देन दी है। वे स्वयं एक समृद्ध धार्मिक-राष्ट्रीय विचारधारा के युग-पुरुष हैं। स्थानकवासी समाज में उन्होंने क्रांति के कुछ मौलिक सूत्र प्रस्तुत किये हैं।' ये पंक्तियां अष्टाचार्यों में से किसके लिये कहा जाना उपयुक्त लगता है ?

**उत्तर**—जवाहराचार्य के लिये।

—श्री दक्षिण भारत जैन स्वाध्याय संघ,
३४८, मिन्ट स्ट्रीट, मद्रास-६०००७९

---

यदि हम अपनी आंखें खुली रखें और मस्तिष्क को चिन्तनशील, तो हम पाएंगे कि संसार की हर वस्तु हमें कोई न कोई प्रेरणा देती है। उपनिषदों में तो सूर्य, पेड़, नदी, बगुला आदि से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने वाले साधकों की कथाएं आती ही हैं। ऐसी ही एक प्रेरणादायी गाथा अर्हतर्षि हरिगिरि की है। वे कहते हैं:—

वण्हिं रविं ससंक च, सागरं सरियं तहा।
इदज्झयं अणीयं च, सज्जमेहं च चिंतए ॥

अग्नि, सूर्य, चन्द्र और सागर एवं सरिता इन्द्रध्वज, सेना व नए मेघ का हमें चिंतन करना चाहिए। अग्नि तेजस्वी है, तेज और प्रकाश उसका गुण है। उसे राजमहल में जलाया जाए या गरीब के झोंपड़े में, वह प्रकाश देगी ही। हमें चाहिए यह प्रकाशत्व और तेजस्विता हम अग्नि से ग्रहण करें। सूर्य व चन्द्र से हम क्रमशः तेजस्विता और शीतलता ग्रहण करें। साथ ही साथ कर्तव्य में नियमितता का भी पाठ सीखें। सागर और सरिता से गंभीरता एवं जीवन का कण-कण लुटा देने का स्वभाव ग्रहण करें। इन्द्रध्वज व सेना से हम प्रेरणा व पुरुषार्थ सीखें तथा नए मेघ से आभा व परहित में सम्पत्ति व्यय करने की प्रेरणा प्राप्त करें।

मनुष्य का हृतपिण्ड भी हमें एक प्रेरणा देता है। हम जाग्रत हों या सुप्त, वह निरन्तर कार्यरत रहता है। यह निरलस कर्म की प्रेरणा देता है और यह भी कहता है हमारा भेद-विज्ञान 'मैं आत्मा हूं' यह जाग्रत व सुसुप्त दोनों ही अवस्था में वर्तमान रहे।

---

# समता जोगी : आचार्य नानेश

△ डा. प्रेमसुमन जैन

श्रमण परम्परा का मूल मन्त्र समता है । इसी समता से जैन धर्म एवं दर्शन के विभिन्न सिद्धांतों का विकास हुआ है । समता की साधना के लिए ही जैन धर्म में मुनि धर्म एवं श्रावक धर्म की विभिन्न आचार्य संहिताएं विकसित हुई हैं । श्रमण का सच्चा स्वरूप साम्यभाव की प्राप्ति करना है । राग-द्वेष से ऊपर उठकर इष्ट-अनिष्ट, सुख-दुःख, ऊंच-नीच, सम-विषम परिस्थितियों में मन की स्थिरता को बनाये रखकर आत्म-कल्याण के मार्ग में प्रवृत्त होना सच्चे साधु की सही जीवनचर्या है । मेवाड़ की धरती के सपूत आचार्य श्री नानेश समता के प्रतिपालक होने के कारण सच्चे श्रमण हैं । उन्होंने समता-दर्शन की सैद्धांतिक व्याख्या ही नहीं की है, अपितु उसे व्यवहार के धरातल पर उतारा है । ऐसे समता जोगी आचार्य श्री नानेश को इस वर्ष आचार्य-पद सम्हाले हुए २५ वर्ष पूरे हो रहे हैं । इस अवधि में उन्होंने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समता को प्रतिष्ठित किया है । आचार्यश्री के व्यक्तित्व के नाना आयाम हैं, इसलिए वे नानेश हैं ।

प्राचीन जैन ग्रन्थों में आचार्य के कई गुणों एवं प्रवृत्तियों का बखान किया गया है । संक्षेप में कहा गया है कि जैन आचार्य आगम सूत्रों एवं उनके अर्थ को जानने वाला, लक्षण–युक्त, संघ के लिए केन्द्र-बिंदु, संघ के व्यवस्था भार से निर्लिप्त एवं मधुर अर्थ–युक्त वाणी बोलने वाला होता है—

सुत्तत्थविऊ लक्खणजुत्तो, गच्छस्स मेढिभूओ य ।<br>
गणपत्ति–विप्पमुक्को, अंथवाएओ आयरिओ ।।

आचार्य नानेश के व्यक्तित्व में जैन आचार्य के ये सभी गुण विद्यमान हैं । आचार्यश्री से विगत २० वर्षों में कई बार उनके दर्शन करने एवं चर्चा करने का लाभ प्राप्त हुआ । उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप उनके सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति के मन पर पड़ती है । जब विद्वानों के साथ उनका विचार–विमर्श होता है तो जैन आगमों के कई गूढ़ार्थ आचार्यश्री की वाणी से स्पष्ट हो जाते हैं । आगम-सूत्रों की नये सन्दर्भों में व्याख्या आपके दार्शनिक ज्ञान की विशेषता है । ज्ञान के कार्य के लिए आचार्यश्री की प्रेरणा सतत् प्रवाहित होती है । उदयपुर चातुर्मास में आपकी प्रेरणा एवं आशीष से ही 'आगम अहिंसा–समता एवं प्राकृत संस्थान का शुभारम्भ हो सका है । आपके प्राकृत-प्रेम के कारण संघ में ऐसा वातावरण बना हुआ है कि संघ प्राकृत भाषा एवं साहित्य के अध्ययन, शिक्षण, अनुसन्धान आदि कार्यों के लिए कई संस्थाओं को सह-योग प्रदान करता है । सुखाडिया विश्वविद्यालय में जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग के संचालन में प्रारम्भ से ही संघ का सहयोग प्राप्त है । ज्ञान के प्रचार–प्रसार के कार्यों में आचार्यश्री के प्रभावक उपदेश ने उन्हें सच्चे अर्थों में 'सुत्तत्थविउ' बना दिया है ।

आचार्यश्री के व्यक्तित्व में कथनी और करनी की एकरूपता है । वे समता के उद्घोषक हैं तो उनके जीवन में कहीं विषमता देखने को नहीं मिलती । वे सरलता की प्रतिमूर्ति हैं, तो सहज ढंग से, सादी व्यवस्था में उनके सभी समारोह होते देखे

जा सकते है । वे ऊंच-नीच के भेदभाव को मिटाने की बात करते हैं तो स्वयं म.प्र. की बलाई जाति के सैंकड़ों लोगों के बीच जाकर उन्हें धार्मिक जीवन जीने का वे अधिकारी घोषित करते हैं । उत्तराध्ययन सूत्र में साधु के लिए **जहावाइ तहाकारी** कहा गया है । आचार्य नानेश इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं ।

दशवैकालिक में कहा गया है कि साधु अल्पभाषी एवं वाग्संयमी होता है **अप्पं भासेज्ज संजए** । आचार्य नानेश के सम्पर्क में जो लोग आये हैं वे जानते हैं कि आचार्यश्री थोड़े शब्दों में सार की बात करने में कुशल हैं । सुनने की अपूर्व क्षमता उनमें हैं । वे सबकी सुनेंगे, किन्तु मतलब की बात ग्रहण कर बाकी सब भूल जायेंगे । देशव्यापी इतना बड़ा संघ उनके अधीन है । प्रतिदिन सैंकड़ों समस्याएं व्यवस्था सम्बन्धी होती हैं किन्तु साधुमर्यादा में रहते हुए आचार्यश्री जो समाधान देते हैं, उससे सभी पक्ष संतुष्ट हो जाते हैं । व्याख्यान में भी आचार्यश्री सूत्र शैली का प्रयोग करते हैं । कम शब्दों में कीमती बात कह जाते हैं । उनके भीतर का जोगी बाहर प्रकट हो जाता है ।

समता जोगी होने के नाते आचार्यश्री नानेश ने समता-दर्शन को जन-मानस में विकीर्ण किया है। वे कहते हैं कि बाहर की विषमता कोई भारी समस्या नहीं है । वह तो सूचना है कि जग के भीतर विषमता की जड़ें गहरी होती जा रही हैं । क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह आदि कषायों ने प्राणी के साम्य-भाव को आच्छादित कर रखा है । अतः इन कषायों के आवरण को हटाना होगा । इसके लिए बाहरी जीवन में जितनी सादगी, साधना और सरलता आवश्यक है, आन्तरिक जीवन में उतनी साधना भी जरूरी है । संयमित जीवन हमें इस मार्ग तक ले जा सकता है । सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन में जितनी शुद्धता एवं सरलता रहेगी, उतनी जल्दी ही व्यक्ति आंतरिक जीवन की विषमता को मिटा सकेगा । इस यात्रा की पूरी एक व्यवस्था है । आचार्यश्री ने अपनी पुस्तकों में समता-मार्ग को प्रशस्त किया है । उपदेशों में उसकी व्यावहारिकता को उजागर किया है । समता-दर्शन एवं समीक्षणध्यान आचार्यश्री की जीवन-पद्धति के दो नेत्र हैं, जिनसे लोक-अलोक, बाहर-भीतर, गृहस्थ-मुनि, ज्ञान एवं श्रद्धा के सभी पक्षों के वास्तविक स्वरूप को पहिचाना जा सकता है ।

हमारा यह सौभाग्य है कि हम ऐसे समदर्शी आचार्य के जीवन के प्रत्यक्षदर्शी हैं । आचायश्री ने शास्त्र एवं लोक के अपने व्यापक अनुभव की थाती जो हमें सौंपी है, उसका संरक्षण, प्रचार-प्रसार एवं व्यावहारिक प्रयोग की दिशा में संघ के हर घटक को सक्रिय होना चाहिए । जैन सन्तों की परम्परा में आचार्यश्री ने साधना, संयम, ज्ञान और वैचारिक उदारता के जो मानदण्ड स्थापित किये हैं, उनसे सारा विश्व लाभान्वित हो, यही कामना है । समता जोगी आचार्यश्री नानेश का संयमी जीवन दीर्घायु हो, इस भावना के साथ उन्हें अनन्त प्रणाम । शत-शत वन्दना ।

२९, सुन्दरवास, उदयपुर (राज.)

# महिमावान व्यक्तित्व

☐ डा. कमलचन्द सोगानी

पूज्य आचार्य श्री नानालालजी महाराज साहब के उदयपुर चातुर्मास के अवसर पर श्री फतहलालजी हिंगड़ ने आचार्यश्री से मेरा परिचय करवाया था। मैंने आचार्यश्री के पहली बार ही दर्शन किये थे। चर्चा के दौरान आचार्यश्री के व्यक्तित्व का मेरे ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा और मुझे समणसुत्तं की निम्न गाथाएं याद आई:—

**पंचमहव्वयतुंगा, तक्कालिय—सपरसमय—सुदधारा।**
**णाणागुणगण भरिया, आइरिया मम पसीदंतु ॥६॥**

**ससमय—परसमयविऊ, गंभीरो दित्तिमं सिवो सोमो।**
**गुणसयकलिओ जुत्तो, पवयणसारं परिकहेउं ॥२३॥**

**जह दीवा दीवसयं, पइप्पए सो य दिप्पए दीवो।**
**दीवसमा आयरिया, दिप्पंति परं च दीवेंति ॥१७६॥**

(पांच महाव्रतों से उन्नत, उस समय सम्बन्धी अर्थात् समकालीन स्व-पर सिद्धांत के श्रुत को धारण करने वाले तथा अनेक प्रकार के गुण—समूह से पूर्ण आचार्य मेरे लिए मंगलप्रद हों।

जो स्वसिद्धांत तथा पर सिद्धांत का ज्ञाता है, जो सैंकड़ों गुणों से युक्त हैं, जो गम्भीर आभायुक्त, सौम्य तथा कल्याणकारी है, वह ही अरहंत के द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत के सार को कहने के लिए योग्य होता है।

जैसे एक दीपक से दीपकों की बड़ी संख्या जलती है, और वह दीपक भी जलता है, वैसे ही दीपक के समान आचार्य स्वयं प्रकाशित होते हैं तथा दूसरों को प्रकाशित करते हैं।)

चातुर्मास के अवसर पर कई बार आचार्यश्री से मिलना हुआ। श्री हिंगड़ साहब बार-बार कहते थे कि आचार्यश्री के उदयपुर चातुर्मास की स्मृति स्थायी बनायी जावे और कोई ठोस कार्य किया जावे। काफी विचार—विमर्श चलता रहा। एक योजना की ओर जब ध्यान आकर्षित किया गया, तो आचार्यश्री से इस विषय में बातचीत करने का निश्चय किया गया। जब आचार्यश्री से बात हुई तो मैंने कहा—"आपके श्रावक अनुयायियों ने श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर के माध्यम से प्राकृत के अध्ययन के लिए जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग की सुखाड़िया विश्वविद्यालय में स्थापना करके एक ऐतिहासिक कदम उठाया है। इस कार्य में मेरा भी तुच्छ योगदान रहा है। किन्तु यहां से अध्ययन करके निकले हुए विद्यार्थियों का भविष्य उज्ज्वल नहीं होगा तो प्राकृत व आगम का प्रचार कैसे होगा? अतः उदयपुर में एक संस्थान खोला जाए जिससे विश्वविद्यालय में प्राकृत का अध्ययन किए हुए योग्य विद्यार्थियों का समाज में प्राकृत व आगम का कार्य करने के लिए उपयोग किया जा सके।" आचार्यश्री को यह विचार पसन्द आया और उन्होंने इसकी विस्तृत योजना जाननी चाही। योजना बनाने का कार्य मुझे सौंपा गया। विस्तृत योजना बनाकर पूज्य आचार्यश्री के सामने रक्खी गई। योजना में संस्थान का नाम 'आगम, अहिंसा एवं प्राकृत संस्थान' रक्खा गया था। आचार्यश्री ने नाम में 'समता' शब्द पर बल दिया। तुरन्त संस्थान के नाम में 'समता' शब्द जोड़ दिया गया और

इसका नाम 'आगम अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान' सुझाया गया। आचार्यश्री को यह नाम अच्छा लगा। आगमों के गृहस्थ विद्वान् बनाने की योजना आचार्यश्री ने उचित बताई पर जब तक श्रावक वर्ग इस योजना को न मानले, तब तक धन-राशि आदि की समस्या का हल कैसे हो ? इसी अवसर पर श्री सरदारमल जी कांकरिया आचार्यश्री के दर्शनार्थ उदयपुर पधारे। उनके सामने सारी बात रक्खी गई। उनको भी योजना पसन्द आई। उन्होंने इस योजना को मद्रास में श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ की कार्य-कारिणी की बैठक में रखने का सुझाव दिया। उदय-पुर संघ ने मुझे व श्री हिंगड़ साहब को मद्रास जाने के आदेश दिए। मद्रास में यह योजना जब रक्खी गई तो प्रायः सभी ने इसे पसन्द किया, किन्तु श्री गणपतराजजी बोहरा ने इसमें विशेष रुचि दिखाई। मद्रास में यह निश्चय किया गया कि इस योजना को वार्षिक सम्मेलन के अवसर पर उदयपुर में संघ के समक्ष प्रस्तुत किया जाए। योजना विस्तार से सम-झाई गई पर उदयपुर में इसका कड़ा विरोध हुआ। मैं भी इस योजना को समझाते-समझाते थक चुका था। आचार्यश्री तक सारी बात पहुंची और आचार्य श्री को मैंने निवेदन किया "आपने जो दायित्व मुझे सौंपा था उसे मैंने यथाशक्ति पूरा कर दिया है। अब तो सारी बात समाज पर ही हैं।" आगे क्या हुआ मुझे मालूम नहीं है। किंतु मुझे खुशी हुई कि जिस दिन आचार्यश्री का विहार होने वाला था, उसी दिन संस्थान की योजना को कार्य रूप में परिणत करने की घोषणा कर दी गई। मुझे यह देखने को मिला कि आचार्यश्री पर समाज की अटूट श्रद्धा है। इतने विरोध के बावजूद संस्थान बना, इससे आचार्यश्री के महिमावान व्यक्तित्व की छाप मेरे मन पर हमेशा के लिए अंकित हो गई। समाज को सही राह पर ले जाने वाले इतने गौरवमय व्यक्तित्व को शत्-शत् प्रणाम।

आचार्यश्री के चातुर्मास के कुछ वर्ष पूर्व ही मैंने आचारांग का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था। जैसे-जैसे आचारांग के गहन समुद्र में गोते लगाने लगा, तो मोती हाथ आने लगे। आचारांग का महत्त्व मन में उतरने लगा। **'समियाए धम्मे'** (समता में धर्म होता है) सूत्र ने मुझे बहुत ही प्रभावित किया। जब मुझे आचार्यश्री से मिलाया गया था, तो उनकी समता में आस्था की चर्चा भी की गई थी। मुझे लगा कि आचार्यश्री आचारांग की अहिंसा के साथ समता के विभिन्न आयामों को प्ररूपित कर रहे हैं। 'समता' को हमने भुला दिया था। किंतु यहां एक महान् व्यक्ति है जो 'समता' को भी अहिंसा के समान ग्रहणीय मानता है। मेरे ऊपर आचारांग के परिप्रेक्ष्य में इसका बहुत प्रभाव पड़ा और मैं आचार्यश्री की तरफ आकर्षित होने लगा।

एक बार मैंने उनसे आचारांग के विषय में चर्चा की और कहा कि प्रतिदिन यदि आचारांग के सूत्रों को प्रार्थना में जोड़ लिया जाए और सभी लोग आचारांग के सूत्रों को गा कर बोलें तो महावीर की वाणी जन-जन तक पहुंच सकती है। आचार्यश्री को यह विचार पसन्द आया और उन्होंने मुझे प्रार्थना के लिए आचारांग से सूत्रों का चयन करने के लिए कहा। कुछ ही दिनों में मैं सूत्रों का चयन करके आचार्यश्री के पास ले गया। चयन में प्रत्येक दिन के लिए सात सूत्र थे और सात दिन के लिए अलग-अलग सात सूत्र थे। इस तरह से आचारांग से ४९ सूत्रों का चयन हुआ था। आचार्यश्री ने करीब-करीब सभी सूत्रों को स्वीकृति प्रदान कर दी थी और कुछ साधु-साध्वियों को बुला कर उन्हें गाने के लिए अभ्यास करने को कहा। सूत्र छपा लिए गए और सूत्रों की प्रार्थना शुरू हुई। मै भी कुछ दिन प्रार्थना में सम्मिलित हुआ। छोटे-छोटे बच्चों ने भी सूत्रों को बोलना शुरू कर दिया था।

आचार्यश्री उदयपुर में विराजे तब तक यह क्रम चलता रहा और महावीर की सूत्रमय वाणी

आकाश में गूंजती रही। अब भी मेरी इच्छा रहती है कि हजारों-हजारों लोग वेद मन्त्रों की तरह आचारांग के सूत्रों को बोलें। विशेष सम्मेलनों में यह अवश्य किया जाए, ऐसा मेरा आचार्यश्री से निवेदन है। मेरा विश्वास है कि इस तरह से महावीर हमारे जीवन में आ सकेंगे और हम स्व-पर कल्याण में अग्रसर होने की प्रेरणा ग्रहण कर सकेंगे।

चातुर्मास समाप्त होने के पश्चात् सुखाड़िया विश्वविद्यालय के सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी महाविद्यालय में आचार्यश्री के प्रवचन का आयोजन किया गया। विश्वविद्यालय के अध्यापकों एवं विद्यार्थियों ने आपके प्रवचन को सम्प्रदायातीत बताया और कहा कि भारत जैसे देश का कल्याण ऐसे ऋषियों से ही हो सकेगा। प्रवचन समाप्त होने के पश्चात् सुन्दरवास जाते समय आचार्यश्री ने मेरे निवास को भी पवित्र किया। मैं और मेरी पत्नी श्रीमती कमलादेवी आचार्यश्री के मेरे निवास पर पदार्पण से धन्य हुए।

प्रोफेसर दर्शन-शास्त्र, मोहनलाल सुखाड़िया
विश्वविद्यालय, उदयपुर(राज.)

---

**कंचणस्स जहां धाऊ जोगेणं मुच्चए मलं।**
**अणाईए वि संताणे तवाओ कम्म संकरं॥**

धातु के संयोग से स्वर्ण का मैल दूर होता है इसी भांति अनादि कर्म तप से नष्ट होते हैं।

स्वर्णकार जब सोने को विशुद्ध करता है तो वह उसे आग में तपाने के पूर्व उसमें तेजाब मिलाता है। फलतः तपने के बाद स्वर्ण अधिक दीप्तिमय हो जाता है, मुलायम हो जाता है। इसी प्रकार कर्म मल आत्मा के साथ अनादिकाल से संयुक्त हैं फिर भी तप द्वारा वह कर्म मल दूर हो जाता है और आत्मा विशुद्ध हो जाती है।

प्रश्न आ सकता है कि आत्मा के साथ जिस कर्म का संयोग अनादि है उसका अन्त कैसे हो सकता है? इसके प्रत्युत्तर में अर्हतर्षि महाकाश्यप सोने का रूपक देते हैं। जैसे सोना और उसके मैल का सम्बन्ध अनादि है फिर भी मानव के प्रयत्न से वह सोने से पृथक कर दिया जाता है। इसी प्रकार तपः शक्ति अनादिकाल के मैल को दूर कर सकती है।

ध्यान देने योग्य यह है कि जिस प्रकार सोने को तपाने के पूर्व उसे तेजाब से मुलायम किया जाता है उसी भांति आत्मा को भी तपाने के पूर्व मुलायम करना होता है। मनुष्य को अहं ही कठोर बनाता है। अहंत्याग से ही तप में निखार आता है नहीं तो वह क्रोध में परिवर्तित हो जाता है।

# महान् आचार्य श्री की महान् उपलब्धि

□ समाजसेवी मानव मुनि

भारत देश सदैव से महापुरुषों की जन्मभूमि रहा है, वे किसी जाति सम्प्रदाय के नहीं होते हैं। मानव समाज ही नहीं प्राणि-मात्र के कल्याण की भावना उनके हृदय में होती है। वे उदार एवं करुणा मूर्ति होते हैं। आत्म-कल्याण के साथ पर-कल्याण ही ही जिनका ध्येय होता है, विज्ञान युग के ऐसे महान् तेजस्वी, आत्मचिन्तक, योग साधक, बाल ब्रह्मचारी, समता विभूति, समीक्षण ध्यान योगी, धर्मपाल प्रतिबोधक १००८ पूज्य आचार्य श्री नानालाल जी म. सा. हैं। उनकी उम्र कितनी, कहां जन्म लिया, माता-पिता कौन हैं, दीक्षा गुरु कौन हैं ? इस विवरण में मैं जाना चाहता नहीं क्योंकि यह सभी जानते हैं। पर वास्तविक उम्र मेरे विचार से जब से महापुरुष ने आचार्य पदवी को सुशोभित कर धर्म का, भगवान महावीर के वीतराग सिद्धांतों का मुकुट धारण किया वे, हैं-पच्चीस वर्ष, उसे उम्र कहें या आत्म-साधना के विकास पथ पर बढ़ते हुए कदम कहें, एक ही बात है। उन्होंने राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात प्रांतों में हजारों मीलों की पदयात्रा कर भगवान महावीर की वीतराग वाणी का संदेश जैन समाज को ही नहीं जन-जन को दिया तथा स्थानकवासी जैन समाज में अनुशासन के नये आयाम का शुभारम्भ किया। दो सौ से अधिक मुमुक्षु भाई-बहिनों को दीक्षा देकर भौतिकतावादी युग में उन्हें त्याग, साधना, संयम के मार्ग पर चलने का मंगल आशीर्वाद दिया। उन्होंने सदैव ही सांवत्सरिक महापर्व जैन समाज का एक हो,ये भावनाएं व्यक्त की हैं। ऐसे दूरदृष्टा विरले होते हैं। गांधीयुग के बाद मालवा की पावन भूमि पर हजारों दलित हरिजनों का आपने उद्धार किया, यह एक ऐतिहासिक क्रांति घटित हुई है। मांसाहारी से शाकाहारी बनाया व धर्मपाल नाम की संज्ञा देकर उन्हें सम्मानित किया। मानव के नाते मानव से प्यार करना सिखाया। ऐसे महापुरुष के सम्बन्ध में जितना भी लिखा जाये, कम होगा। जिस प्रकार समुद्र की गहराई का मालूम नहीं होता उसी प्रकार महापुरुष की आध्यात्मिक-साधना की गहराई का हमें ज्ञान नहीं हो पाता। ऐसे महापुरुष के पावन पवित्र चरणों में कोटि-कोटि वंदन अभिवंदन। जिनके आचार्य पद का यह रजत-जयन्ती वर्ष याने आत्म-साधना का वर्ष हम धर्म ध्यान, त्याग, संयम, तप द्वारा मनायें तभी इन महापुरुष के चरणों में सच्ची श्रद्धा के सुमन अर्पित कर सकेंगे।

स्थानकवासी समाज में एक नया संगठन श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ के नाम से स्थापित हुआ। उसको २५ वर्ष हो गये। इस उपलक्ष में संघ का रजत-जयन्ती महोत्सव मनाया जा रहा है। समाज सुधार के, युवापीढ़ी को गतिशील बनाने के रचनात्मक कार्यों के माध्यम से संघ को सुदृढ़ बनाने तथा जन-कल्याण करने के सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत कहिये या संघ के उद्देश्य कहिये, वे नितांत श्रेष्ठ हैं। इस संघ में पद व पदवी के लिये कभी चुनाव नहीं हुए। संघ पदाधिकारी जो भी रहे, वे सदैव सेवा भावना से, समान भाव से कंधे से कंधा मिलाकर, छोटे-बड़ों का

भेद भुला कर संघ की प्रवृत्तियों को गतिशील बनाने में सहयोगी बनते हैं। यही संघ की महान् शक्ति है।

साहित्य एवं श्रमणोपासक प्रकाशन द्वारा युग की विचार धारा से अवगत करवाते हैं पर ग्रामीण आंचलों में पदयात्रा द्वारा जो ग्रामजीवन की अनुभूति प्राप्त होती है, वह महत्त्वपूर्ण है। संघ की प्रमुख प्रवृत्ति धर्मपाल समाज की प्रवृत्ति है जो संघ को भारत में गौरवशाली बनाने में अग्रणी है। संघ प्रवृत्तियों के विकास के पच्चीस वर्ष में जो स्नेह एवं सद्भाव है भविष्य में वह और बढ़ेगा तथा समाज व राष्ट्र को प्रगतिशील बनाने में सार्थक सिद्ध होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

साधु समाज व श्रावक समाज के मध्य समन्वय करने वाली योजना वीर संघ है। गृहस्थ जीवन में रहकर भी साधना की जाये व जहां संत-सतियांजी के चातुर्मास नहीं हों, उस क्षेत्र में स्वाध्यायी जाकर धर्म की प्रभावना करें, यह संघ की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है। रजत-जयन्ती वर्ष आत्म-निरीक्षण का है। आत्म-स्वरूप को पहिचानें, गरीबों की सेवा में अपना कर्त्तव्य एवं धर्म समझें, गोवंश की रक्षा हो, प्राणि-मात्र को अभयदान मिले, यह हमारी प्रबल भावना हो। देश में जो हिंसा बढ़ रही है उस पर श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ अहिंसा का ध्वज फहरावे; यही हमारा भावी ध्येय रहे, यही हार्दिक कामना है।

विसर्जन आश्रम नवलखा, इन्दौर

# समय का मूल्य

संसार में सबसे बहुमूल्य समय होता है। पर अधिकतम उपेक्षा इसकी ही की जाती है। व्यक्ति प्रमाद एवं असावधानी में समय को व्यर्थ ही गवां देता है जो समय के मूल्य को नहीं आंकता, उसका भी कोई मूल्य नहीं आंकता। इसलिए "समयं गोयम ! मा पमायए"—एक क्षण का भी प्रमाद में अपव्यय न करो।

जा जा वच्चई रयणी न सा पड़िनियत्तई।
धम्मं च कुणमाणस्स सफला जन्ति राइओ।

जो रात्रियां व्यतीत हो गईं। वे लौट कर पुनः नहीं आयेंगी। जो साधक साधना शील (धर्म परायण) रहकर उनका उपयोग कर लेगा, वह समय की सार्थकता को प्रमाणित कर लेगा।

समय के मूल्य को आंकने का तात्पर्य है, वर्तमान का जागरूकता के साथ उपयोग करना। वर्तमान में सजग रहने वाला सब क्षेत्रों तथा सब कार्यों में सजग रहता है, अतः वह अपने निर्माण में पूर्ण सफल रहता है। जिसने समय की उपेक्षा कर दी, सारा संसार उसकी उपेक्षा कर देता है। उस प्रकार के निरुपयोगी व्यक्ति का कोई भी सन्मान नहीं करता।

जो व्यक्ति समय का उपयोग नहीं करता, वह अपने निर्माण में ही कोरा रहता है, इतना ही नहीं वल्कि व्यर्थ किये गये उस समय से वह ऐसे दुखद जाल भी बुन लेता है जिनसे उसका निष्क्रमण अत्यंत कठिन हो जाता है। जीवन में प्रगति, विकास तथा निखार चाहने वाले व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह एक क्षण को भी प्रमाद में व्यतीत न करे।

# रजत संकल्प

☐ श्रीमती रत्ना ओस्तवाल

हम सौभाग्यशाली हैं कि हमें महान् समता-समीक्षण साधना के ज्वलन्त आदर्श, प्रशांत चेता, युगदृष्टा आचार्यश्री नानेश के आचार्य के २५वें आचार्य पद को समता-साधना वर्ष के रूप में मनाने का रजत अवसर प्राप्त हुआ है। आचार्य श्री नानेश के २४ वर्षों का इतिहास धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक जन जागृति का अभियान तन-मन-धन से जन-जन में समाया हुआ है। जो हमारे लिए तिन्नाणं तारयाणम् के रूप में है।

इस २५वीं वर्षगांठ ने चतुर्विध संघ को पूर्ण रूप से सचेत कर धर्म एवं समता-साधना में प्रवृत्त कर दिया है।

श्री आचार्य भगवन् का २५वां आचार्य पद, समता-साधना वर्ष और श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ का रजत-जयन्ती वर्ष। कितना सुन्दर मणिकांचन योग है।

'रजत' धातु युग की विशेषता है कि इस शब्द को मूल्यवान बना दिया है। वैज्ञानिकों ने इस 'रजत' Silver को (Ag) "Periodic Table" से महत्त्वपूर्ण प्रथम स्थान दिया। अनेक विशेषताओं के धारक इस रजत को रंग, रूप, गुण सभी तत्वों में श्वेत बना दिया। श्वेत उसी का प्रतीक है, जो शांति प्रिय है। चमक उसी में होती है जो तेजोमय है।

सफेद रंग में सभी रंगों का समावेश है। इसमें किसी के प्रति न राग है न द्वेष।

इस समता के धारक रजत की कई परिभाषा है। कई उपमा हैं। तन, मन, धन तीनों में समाया यह रजत शब्द मानव जीवन का विकसित रूप भी माना जाता है। जहां किशोर शब्द युवा में बदल जाता है। जहां युवा शब्द में मानव जाति के सभी गुण विद्यमान हो जाते हैं। इस उम्र में वह रूपवान, गुणवान, धनवान, ऐश्वर्यवान और अन्ततः भाग्यवान कहलाता है।

आज हमारी होड़ इस भाग्यवान शब्द को पाने के लिए लालायित है। हम भाग्यवान अध्यात्म से बने या व्यवहार में।

भाग्यवान बनना ही जीवनरूपी पूर्ण विराम है। जहां मानव असीम शांति की सांस लेता है, चाहे वह आध्यात्मिक हो या व्यावहारिक। रजत से बने शब्द ही जीवन सुधारक बन गये हैं। हर दो अक्षर का शब्द कितना बोधप्रद है।

**जर में, रत न हो,**
**रज से तर जाओ।**
**तज इस रजत को,**
**शांति तरज हो जाओ॥**

जहां 'जर' निद्रा, आलस्य, प्रमाद का प्रतीक है, तो 'रज' पावन पवित्र चरणों की धूल है, जो भव-सागर से पार कर देती है। तज इस रजत को परिग्रह से दूर जहां समाज में फैली दहेज, विषमता, लोभ मोह, माया का त्याग है और अंत में शांति का सुन्दर व्यावहारिक जीवन है, अपनाकर जीवन धन्य-धन्य बना सकते हैं।

रजत शब्द की धारणा ने हमें आत्म-साधना, धर्म आराधना, सामाजिक उपासना और अपरिग्रह

स्थापना में अवगाहित कर लिया है । अगर हम समता साधना को रजत कह दें या घोषित कर दें तो तनिक संकोच नहीं ।

श्री आचार्य भगवन् जो मेरे परम पिता हैं, भेद-अभेद से दूर हैं, जिनके व्यवहार में सर्वोत्तम समता है, जो सहज ही सिद्धावस्था देते हैं, उन्हीं के शब्दों को दोहराती हूं—

"आप भले मुझे मारवाड़ी साधु समझें या अमुक सम्प्रदाय से आबद्ध समझें पर मैं तो आप सब को अपनी आत्मा समझता हूं ।"

जो स्वयं में सिद्ध, स्वच्छ, श्वेत, धवल, रजत, स्फटिक है, वह सभी में अंतरंग है ।

अंतरंग का अनुभूतिगत ज्ञान साधना की गहराई में प्रवेश पाने पर ही हो सकता है । आज हमारा प्रवेश द्वार समता-साधना वर्ष है, जो हर जन-जन के लिए समता-साधना का अपूर्व सन्देश लिए अवतरित हुआ है ।

कितना अद्‌भुत भाग्य ! आज हम इस चकाचौंध के भौतिक युग में महान् संत का सान्निध्य पाकर समता-साधना वर्ष मना रहे हैं, और चिरस्थाई समता-साधना में रमने का यह रजत संकल्प हैं ।

कामठी लाइन, राजनांदगांव (म.प्र.)

## आनन्द का श्रेष्ठ मार्ग

समान्यतः व्यक्ति निराशा, असफलता व विषाद के क्षणों में उन्मन हो जाता है तथा आशा, सफलता व हर्ष के क्षणों में उछलने लगता है । वह प्रतिकूलता को अभिशाप तथा अनुकूलता को वरदान मानकर चलता है । यह व्यक्ति की अपूर्णता है और वह किसी रिक्तता की ओर संकेत करती है । यथार्थता यह है कि जीवन द्वन्द्वात्मक है । वह नाना विरोधी युगलों को अपने में अटाकर ही अवस्थित रह सकता है । उनका तिरोधान किसी भी स्थिति में शक्य नहीं है । व्यक्ति यह क्यों भूल जाता है कि सारे द्वन्द्व जीवन रूप रस्सी के दो छोर या एक ही सिक्के के दो पार्श्व हैं ।

निराशा, असफलता, विषाद एवं प्रतिकूलता के क्षणों में जो अन्यमनस्क नहीं होता, वह जीवन के रण-क्षेत्र में विजयी होता है । वह फिर सफलता, हर्ष आशा तथा प्रतिकूलता के समय भी समचित्त रहेगा । उसके जीवन में न ऊब तथा घुटन होगी एवं न अतिरिक्तता की अनुभूति होगी । यह प्रकार जितना साधक के लिए उपयोगी है उतना ही सामान्य व्यक्ति के लिए भी । जो इन द्वन्द्वों से अतीत रहेगा, वह सदैव आनन्दमय रहेगा । आनन्दित होने का यही श्रेष्ठ मार्ग है ।

# आचार्यों में विरल

△ गुमानमल चोरड़िया
भूतपूर्व अध्यक्ष, श्री अ. भा. सा. जैन संघ

परम पूज्य चारित्र चूड़ामणि, समता दर्शन प्रणेता, जिनशासन प्रद्योतक, धर्मपाल प्रतिबोधक, समीक्षण ध्यान योगी, जिन नहीं पर जिन सरीखे, प्रातः स्मरणीय, अखण्ड बाल ब्रह्मचारी १००८ आचार्य श्री नानालाल जी म. सा. जैन समाज के विरल आचार्यों में से एक हैं। आचार्य के जो छत्तीस गुण होते हैं, वे आप में परिपूर्ण रूपेण हैं।

आप श्री का जन्म दांता ग्राम में हुआ, यह सभी को मालूम है। बाल्यकाल में आपको धर्म के प्रति कोई विशेष रुचि नजर नहीं आती थी, लेकिन जब से आप संतों के सम्पर्क में आये, तभी से आपकी प्रवृति में काफी परिवर्तन आया एवं आपकी जिज्ञासा चिन्तनशील बनी, तत्वों के प्रति आकर्षित हुई। आप शान्त प्रकृति के एवं गम्भीर हैं, दीक्षा लेने के पश्चात् आप सामान्य संतों की तरह ज्ञानाभ्यास करते हुए भी गम्भीरता एवं सेवा भावना से ओत-प्रोत थे। आपने स्व. आचार्य श्री गणेशीलाल जी म. सा. की जिस समर्पित भाव से सेवा की, उसी का आज यह प्रतिफल है कि आप एक महान् आचार्य के रूप में हमारे समक्ष विद्यमान हैं। सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र का विशुद्ध पालन करना व करवाना आपको गुरु से विरासत में ही मिला है।

आप में विशिष्ट ज्ञान हो, ऐसा प्रतीत होता है। उदयपुर में जब आप स्व. आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. की, जिन्हें केन्सर जैसी भयंकर व्याधि थी, सेवा में थे। डाक्टरों ने यह कहा कि अब आचार्य श्री का समय नजदीक है, आप अपना अवसर देख सकते हैं, तब आपने कहा मुझे कोई ऐसी बात नजर नहीं आती। उसके पश्चात् आचार्य श्री काफी महीने तक विद्यमान रहें। सेवा करते-करते आपको यह ज्ञान हुआ कि आचार्य श्री अधिक समय नहीं निकालने वाले हैं। तब आपने डा. साहब से पूछा कि आपकी क्या राय है? डा. साहब ने एक ही जवाब दिया कि आपके ज्ञान के आगे हमारी डाक्टरी चल नहीं पाती है। आपने समय पहचान कर आचार्य श्री से अर्ज किया एवं तदनुरूप स्व. आचार्य श्री ने सलेखना संथारा किया जो अधिक समय नहीं चला। ऐसा आप में विशिष्ट ज्ञान एवं दृढ़ आत्मविश्वास दृष्टिगोचर होता है।

आप पूर्ण अतिशयधारी हैं। जब आपको आचार्य पद प्रदान किया गया, तब आपके पास अल्पमात्रा में शिष्य समुदाय था, उसमें भी अधिकतर स्थविर ही थे। यदि आपका अतिशय नहीं होता तो शायद इस संघ की जाहोजलाली जो आज दृष्टिगोचर हो रही है, नहीं होती। आपके हाथ से २३३ भागवती दीक्षाएं हो चुकी हैं, जो आपने आप में ही एक विशिष्टता लिए है। आपके पास रतलाम में २५ दीक्षाओं का एक साथ प्रसंग बना, जो इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है। कारण लोंकाशाह के पश्चात् आज तक स्थानकवासी समाज में एक आचार्य के पास इतनी दीक्षाएं सम्पन्न नहीं हुई।

आपकी प्रेरणाएं अप्रत्यक्ष ही होती हैं। जो

आपके प्रवचन सुनते हैं या आपके चारित्र से प्रभावित होते हैं, वे मुमुक्षु आत्माएं आपके पास प्रव्रजित हो जाती हैं। प्रत्यक्ष में आप किसी को विशेष प्रेरणा नहीं देते, लेकिन आपका संयम, आपका जीवन सबके लिए प्रेरणास्पद है। आपने भगवान का एक वाक्य हृदयंगम कर रखा है—"जे सुखानु देवानुप्रिय"—अतः हे देवताओं के प्रिय! जैसा सुख उपजे वैसा ही करो पर धर्म करणी में विलम्ब मत करो।

आपके प्रवचन प्रभावशाली होते हैं, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण धर्मपाल प्रवृति है। स्व. दादागुरु श्री जवाहरलाल जी म. सा. का अछूतोद्धार का काम आपने पूर्ण कर एक कीर्तिमान स्थापित किया। जब आप रतलाम के आस-पास के ग्रामों में विचर रहे थे, तब आपके पास बलाई जाति के लोग आये और उन्होंने अपनी व्यथा व्यक्त की। कहा कि हम धर्म परिवर्तन कर लें, ईसाई बन जायें या मुसलमान बन जावें या आत्म हत्या कर लें। कारण हमें कोई भी गले नहीं लगाता। पशुओं से भी बदतर हमारी हालत है। तब आचार्य प्रवर ने एक बात फरमाई कि आप व्याप्त बुराइयां—मदिरा, मांस का सेवन बन्द कर दें, समाज आपको गले लगा लेगा। मरता क्या नहीं करता, तदनुरूप उन लोगों ने आपकी बात स्वीकार की। बुराइयों का त्याग किया, धर्मपाल बने। आपने आहार पानी के परीषह की परवाह किये बिना उधर के ग्रामों में विचरण किया, जिसका प्रतिफल यह कि आज लाखों लोग व्यसनमुक्त हुए हैं एवं हजारों लोग धर्मपाल बने हैं। यह एक ऐतिहासिक कार्य हुआ है।

साहित्य लेखन के लिए आपसे निवेदन किया कि साहित्य संघ का दर्पण होता है इसके बारे में आप कुछ चिन्तन करें ताकि संघ से हम साहित्य प्रकाशित कर सकें। तदनुरूप आपने बड़ी कृपा करके जो पाण्डुलिपियां संघ को परठीं, संघ द्वारा प्रकाशित हुई हैं। हमें लिखते हुए परम संतोष है कि जो साहित्य प्रकाशित हुआ है एवं होने वाला है अपने आप में विशिष्टता रखने वाला है।

संयम साधना के लिए समता एवं ध्यान दोनों ही आवश्यक हैं, और दोनों ही दिशाओं में आचार्य-प्रवर ने पूर्ण शक्ति लगाकर जो कार्य किया वह अपने आप में एक उपलब्धि प्रतीत होती है। समता के बारे में आपका साहित्य पठन करने से पाठक समता के आनन्द में रस लेने लगता है, आप्लावित हो जाता है। समीक्षण ध्यान के बारे में जो आपने लिखा है है वह भी बहुत ही अनुभव गम्य एवं पांडित्य पूर्ण है।

कषाय समीक्षण के बारे में जो विशद विवेचन आपने किया है, उसमें से क्रोध समीक्षण पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। मान, माया, लोभ समीक्षण पुस्तकें प्रकाशित होने वाली हैं, इन सब में आचार्य प्रवर ने आत्मानुभूत सामग्री प्रदान की है।

आचार्य श्री में निर्लिप्तता का विशेष गुण है जो विरल साधकों में ही देखने को मिलता है। आपके पास कोई दर्शनार्थ जावे तो न तो उन्हें उनके परिवार वालों के विषय में पूछते हैं और न ही अन्य क्रियाकलापों के विषय में। मेरा आपके निकट में रहने का काफी प्रसंग पड़ा, लेकिन आपने कभी साधुमार्गी संघ के विषय में भी पूछा नहीं कि क्या हो रहा है? क्या नीति निर्धारित हुई? आपको कभी कोई बात अर्ज कर दी तो ठीक तटस्थ भाव से सुन ली, वरना कभी पूछने का प्रसंग नहीं। संघ के पदाधिकारियों के चुनाव के बारे में आपका कोई संकेत नहीं। ऐसे निर्लिप्त साधक आज कहां दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे निर्लिप्त साधक को पाकर आज संघ गौरवान्वित हुआ है।

ऐसे आचार्य प्रवर के आचार्य पद के २५ वर्ष पूर्ण हो रहे हैं। ऐसे आचार्य को पाकर आज संघ कृतकृत्य हुआ, निहाल हुआ। वीर-प्रभु से यही प्रार्थना है कि आपके सान्निध्य में चतुर्विध संघ ज्ञान-दर्शन-चारित्र में अभिवृद्धि करता रहे, आपका वरद हस्त हमेशा रहे एवं सान्निध्य प्राप्त होता रहे, आप दीर्घायु हों। ऐसे आचार्य प्रवर को हमारा शत्-शत् वन्दन।

—सोंथलियों का रास्ता, जयपुर

# ये पच्चीस वर्ष : जैन इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ

△ पी. सी. चौपड़ा

भूतपूर्व अध्यक्ष–श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ

न केवल साधुमार्गी जैन संघ के लिए अपितु सकल जैन संघ के लिए यह अत्यन्त गौरव का विषय है कि जिनशासन प्रद्योतक, समता विभूति, समीक्षण ध्यानयोगी, आचार्य-प्रवर श्री नानालालजी म.सा. के संघ-संचालन के पच्चीस वर्ष पूरे होने जा रहे हैं। इन पच्चीस वर्षों में पूज्य आचार्य-प्रवर के नेतृत्व में चतुर्विध संघ की जो जाहो जलाली और प्रभावना हुई है, वह हम सबके लिए अविस्मरणीय एवं गौरव-पूर्ण उपलब्धि है। इस पुनीत प्रसंग पर मैं पूज्य आचार्य प्रवर के चरण कमलों में श्रद्धावनत होकर नमन करता हुआ उनके मंगलमय यशस्वी दीर्घजीवन की कामना करता हूं ताकि उनकी छत्रछाया में चतुर्विध श्री संघ का रथ अविराम गति से विकास के पथ पर निरन्तर आगे बढ़ता रहे।

जहां एक ओर यह रजत-जयन्ती वर्ष हमें अतीत के गौरवशाली इतिहास का स्मरण कराता है वहीं भविष्य के लिए अधिक विकास की प्रेरणा भी प्रदान करता है। अतीत के इतिहास को स्मृति पटल पर रखते हुए और भविष्य की नवीन योजनाओं का लक्ष्य सामने रखकर हमें वर्तमान में क्रियाशील और गतिशील बनना है, तभी इस रजत-जयन्ती वर्ष की सार्थकता है।

पूज्य आचार्य-प्रवर की मंगलमय संयम-साधना, ज्ञान-दर्शन-चारित्र के प्रति दृढ़ आस्था, सयम-पालन के प्रति सतत जागरूकता के कारण ही चतुर्विध संघ का विकास हुआ है, हो रहा है और होता रहेगा। उत्कृष्ट चारित्रिक आराधना ही वह मूलभूत तत्व है जिसने आचार्य-प्रवर के प्रभाव को इतनी विपुल व्यापकता प्रदान की है। आज हजारों श्रद्धालु जन-समुदाय के मानस-पटल पर आचार्य-प्रवर की जो छाप अंकित है, वह अद्वितीय है।

आचार्य-प्रवर के शासनकाल की अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं परन्तु मेरी दृष्टि में सर्वाधिक गौरवपूर्ण उपलब्धि है–उनके द्वारा प्रबुद्ध दीक्षार्थियों का विपुल प्रमाण में संयम-पथ का पथिक बनना। पूज्य प्रवर के द्वारा अब तक २५० दीक्षाएं दी जा चुकी हैं जो आज के युग में आश्चर्य का विषय है। रतलाम नगर में हुई एक साथ पच्चीस दीक्षाओं का भव्य प्रसंग भी अपने आप में एक अद्भुत एवं ऐतिहासिक प्रसंग था जो आचार्य प्रवर के प्रबल पुण्य का परिचायक था।

सामाजिक क्षेत्र में आचार्य-प्रवर द्वारा दिया गया योगदान धर्मपाल समाज के निर्माण के रूप में प्रकाशित हुआ है। इसके माध्यम से हजारों लोगों के जीवन में व्यसन मुक्ति के रूप में क्रान्ति हुई है। ज्ञान के क्षेत्र में, दर्शन के क्षेत्र में एवं चारित्र के क्षेत्र में आचार्य-प्रवर का अत्यन्त दृढ़ता पूर्वक योगदान रहा है जो हमारे चतुर्विध संघ की प्रभावना का मूल आधार है।

इसी प्रसंग पर अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर अपने कार्यकाल के २५ वर्ष सम्पन्न करने जा रहा है इसके लिए हार्दिक बधाई! मैं आशा करता हूं कि संघ भविष्य में भी गतिशील और क्रियाशील बनकर चतुर्विध संघ और जैन शासन की प्रभावना में अपना योगदान देता रहेगा।

—डालू मोदी बाजार, रतलाम (म. प्र.)

# अगणित वन्दन करता हूं

△ सुन्दरलाल ता

शांत क्रांति के जन्मदाता श्रमण-संस्कृति पर अड़िग रहने वाले स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. के उत्तराधिकारी, धर्मपाल प्रतिबोधक, समता विभूति आचार्य श्री १००८ श्री नानालाल जी म.सा. को आचार्य पद प्राप्ति का २५ वां वर्ष चल रहा है। आपके उपदेशों से आत्मबोध प्राप्त करके करीबन २२५ भाई-बहिन इस भौतिकता की चकाचौंध से दूर हटकर श्रमण-संस्कृति के मार्ग पर अग्रसर होकर आत्म उत्थान करने में लगे हुए हैं।

मालवा क्षेत्र में बलाई जाति के भाई जो पुराने संस्कारों से मदिरा आदि का सेवन करते थे, वे भी आपके सद्उपदेशों से प्रभावित होकर मांस-मदिरा का त्याग करके अपने जीवन को ऊंचा उठाने में तत्पर होकर धर्मपाल जैनों के नाम से अपने को संबोधित करने लगे हैं। मदिरा आदि का त्याग करने के बाद आर्थिक परिस्थिति से भी वे सक्षम बने हैं।

श्रद्धेय आचार्य-प्रवर का जीवन समता सिद्धान्त से ओत-प्रोत है। आम सात्विक पुरुषों से मैत्री, गुणी-जनों के प्रति प्रमोद भाव, विपरीत वृति वालों पर मध्यस्थ भाव रखते हैं। आपके जो भी व्यक्ति संपर्क में आया है, वह खुद अनुभव कर सकता है।

श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ आचार्य भगवन् के आचार्य पद प्राप्ति के २५ वें वर्ष के उप में रजत-जयन्ती वर्ष मना रहा हैं।

अब हमें सोचना है कि इन पच्चीस वर्षों म आचार्य श्री जी म. सा. ने आत्मिक उत्थान के लिए उद्‌बोधन दिया, उसको हमने अपने जीवन में कितना ग्रहण किया है ? सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि करने में कितना सहयोग दिया है ? अपने स्वधर्मी बन्धुओं के साथ सहयोग करके उनके जीवन में कितना प्रेम संचार किया है ? समाज में आई हुई कुरीतियों को हटाने में क्या कार्य किया है ? अपने संघ को दृढ़ से दृढ़तर बनाने में हमारा क्या चिन्तन है?

प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में इसका चिंतन करावे। रजत-जयन्ती वर्ष के अन्दर ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि करते हुए सेवा कार्य करे जो सब जन हिताय हो।

श्रद्धेय आचार्य भगवन् को शत्-शत् वन्दन करता हुआ जीवन के अन्दर आई हुई बुराइयों को दूर करने में सक्षम बनूं, इसी भावना के साथ–

ओ श्रुत का सच्चा बोध देने वाले नानेश !<br>
ओ प्राणी की नव सर्जना करने वाले नानेश।<br>
अनगणित वन्दन मैं करता हूं तुमको–<br>
ओ नाना जीवों के अभयंकर नानेश !

—दस्सानियों का चौक, बीकानेर

# श्रद्धा को श्रद्धा से देखें

● जयचन्दलाल सुखानी

कुछ भी कहने से पूर्व यह बतला देना चाहता हूं कि जहां श्रद्धा का विषय होता है, वहां तर्क काम नहीं करता क्योंकि तर्क वह दुधारी तलवार है, जिसका वार दोनों तरफ होता है । तर्क सत्य को असत्य, असत्य को सत्य कर सकता है । अतः मेरी अभि-व्यक्ति आत्मा की अभिव्यक्ति है, उसे श्रद्धा की दृष्टि से ही देखा जाय तो ही उपयुक्त होगा । मैंने जो कुछ सुना, देखा, अनुभव किया वह प्रस्तुत है, श्रद्धालुओं के लिए ।

विश्व के महान् आध्यात्मिक चिकित्सक, विषमता से समता की ओर लाने वाले, आज के मानवों को तनाव से मुक्ति देने वाले, समीक्षण ध्यान-योगी, विद्वद् शिरोमणि, प्रातः स्मरणीय १००८ श्री आचार्य प्रवर श्री नानालालजी म. सा. के संयमीय जीवन में वह चुम्बकीय आकर्षण है कि जो भी अजनबी एक वार उनके दर्शन कर लेता है, वह उनके विराट् व्यक्तित्व से प्रभावित हुए विना नहीं रह सकता । आज से करीव वीस वर्ष पहले जव आचार्य प्रवर का वर्षावास मन्दसौर में था, तव मैंने पहली वार वीकानेर से जाकर दर्शन किये थे । दर्शन करते ही मन में एक अजीव शान्ति की अनुभूति हुई । सोचा कहां भटक गया था मैं इतने वर्षों तक, अव तक ऐसे महापुरुषों का दर्शन नहीं कर सका । खैर……देर से सही, पर सही रास्ता मिल गया । दर्शन-प्रवचन एवं सत्सा-न्निध्य को पाकर मेरी श्रद्धा प्रगाढ वन गई । मंदसौर चातुर्मास के वाद तो मुझे आचार्य प्रवर एवं आपश्री के आज्ञानुवर्ती सन्त-महासतियांजी के निरन्तर दर्शन होते रहे हैं । मैं आचार्य प्रवर के साथ आपश्री के आज्ञानुवर्ती सन्त महापुरुष एवं महासतियांजी के विशुद्ध जीवन से खूव प्रभावित हुआ हूं । उन सभी घटनाओं को लिखने बैठूं, जिन्होंने मेरे जीवन को छुआ है तो लेखन पूरा ही न हो, अतः कुछेक घटनाओं को प्रस्तुत कर रहा हूं ।

( १ )

एक घटना तो स्व. स्थविर पद विभूषित, प्रखर स्मरण शक्ति के धनी श्री धनराजजी म.सा. के जीवन से सम्वन्धित है । मैं वर्षों पूर्व जव वे कपासन विराज-मान थे, तो दर्शनार्थ गया था । मैंने उनके प्रथम बार ही दर्शन किये थे । उन्हें आंखों से दिखाई नहीं देता था । जब मैंने 'मत्थएण वन्दामि' के उच्चारण के साथ उन्हें वन्दना की तो वे तुरन्त बोले तुम बागमलजी सुखानी के पड़पोते हो क्या ? यह सुनते ही मैं आश्चर्य में पड़ गया क्योंकि म. सा. ने यह कैसे जान लिया कि मै उनका पड़पोता हूं । मैंने पूछा उनसे, तो वे वोले भाई तुम्हारी आवाज और तुम्हारे पड़-दादाजी की आवाज करीब एक समान-सी लगी । इस समान स्वर के कारण, मैंने तुम्हें अनुमान से पहचान लिया । मुझे सुखद आश्चर्य हुआ कि म.सा. की स्मरण शक्ति कितनी गजव की है ? किस प्रकार से गहरा स्वर-विज्ञान है इन्हें, जैसा कि आज के वड़े-वड़े स्वर वैज्ञानिक भी नहीं रख पाते हैं । ऐसी घटना मेरे साथ नहीं, अनेक के साथ घटी थी । मैं उनकी तपस्या, साधना एवं स्मरण शक्ति देख कर नतमस्तक हो गया ।

( २ )

जव से मैं आचार्य प्रवर के सम्पर्क में आया हूं करीव तव से ही मेरी मुमुक्षु भाई-वहिन की दीक्षा की दलाली अर्थात् उनके माता-पिता को समझाकर दीक्षा हेतु आज्ञा कराने की प्रवृत्ति रही है, इस कारण मेरा वहुत से परिवारों से अच्छा परिचय रहा है ।

इसी क्रम में मुझे गोगोलाव की दीक्षा का प्रसंग विशेष रूप से याद आ रहा है। गोगोलाव में ब्यावर निवासी श्री मांगीलाल जी मेहता के सुपुत्र ज्ञानचन्द एवं सुपुत्री ललिता एवं उदयपुर निवासी गुलाबचन्द जी चपलोत की सुपुत्री द्वय रंजना-अंजना की दीक्षा होने जा रही थी। जेठ सुदी पंचमी का दिन था, हजारों लोग उस छोटे से गांव में दीक्षा देखने हेतु उपस्थित थे। उस समय प्रकृति का वातावरण ऐसा था कि आकाश में घटाटोप बादल छाए हुए थे। अब वर्षा हो, अब वर्षा हो, ऐसा लग रहा था। सभी के दिल में हल-चल थी कि यदि वर्षा चालू हो गई तो श्रद्धेय आचार्य प्रवर दीक्षा-स्थल पर पहुंच नहीं पायेंगे। ऐसी स्थिति में या तो आज दीक्षा नहीं होगी या फिर मुमुक्षुओं को धर्म स्थान में जाकर दीक्षा लेनी होगी।

इधर तो ऐसी परिस्थिति थी और उधर मुमुक्षुओं का मुण्डन कार्य चल रहा था। बालों का मुण्डन हो जाने के बाद परम्परानुसार माथे पर चन्दन के तेल का विलेपन किया जाता है, तदनुसार उन की माताजी सौरभ बाई ने चन्दन की शीशी निकाली, पर भूल से उसके स्थान पर अमृतधारा की शीशी निकल गई। जल्दी-जल्दी में चन्दन के तेल की जगह मस्तिष्क पर, मुख पर अमृतधारा लगा दी गई सो वह तेजी से जलने लगी। समस्या बड़ी विचित्र बनती जा रही थी। इधर बादल मंडराए हुए थे, कभी भी वर्षा हो सकती थी उधर चन्दन तेल की जगह अमृतधारा.......। इस पर कर्मठ कार्यकर्ता मन्त्री श्री चांदमलजी पामेचा ने कहा कि अच्छा सुगुन हुआ है, अमृतधारा का अमृत बरसा है। उधर विशाल जनमेदिनी बेताबी से इन्तजार कर रही थी। यह तो गुरुदेव की महान् पुण्यवानी ही थी कि दीक्षा के समय तक वर्षा नहीं आई और उधर ज्ञानचन्दजी की वेदना भी शांत हो गई। ठीक समय पर सारा कार्य अच्छी तरह सम्पन्न हो गया, उसके तुरन्त बाद ही मूसलाधार वर्षा हुई थी।

( ३ )

अजमेर की एक बात याद आ रही है जब आचार्य भगवन् के साथ हम लोग भी हॉस्पीटल गये थे। श्रीमान् लोढ़ा साहब को दर्शन देने आचार्य भगवन् पधार रहे थे। रास्ते में लगा किसी देव ने तिक्खुतो के पाठ से उनको वन्दना की। शब्द इतने मधुर एवं स्पष्ट थे कि वैसे शब्द कभी सुनने में नहीं आए। कान को उस समय बड़ा ही आनन्द आ रहा था। आखिर देव जो वन्दना करेगा तो वह आवाज प्यारी ही होगी।

( ४ )

एक बार घोर तपस्वी श्री प्रमोद मुनिजी म.सा. के घबराहट हो रही थी, उस दिन उनके पारणा था। मुनिश्री तपस्या अधिक करते हैं। शाम का समय था मुनिश्री को बिल्कुल चैन नहीं था। पेट फूल गया था। कभी दस्त की शंका होती तो कभी उल्टी की। धायमाता पद विभूषित, कर्मठ सेवाभावी इन्द्रचन्दजी म. सा. उनकी सेवा में लगे हुए थे। शाम होने के कारण डॉ. का भी अवसर नहीं था। आखिर उनको भारी मात्रा में उल्टी हुई और उसमें इतनी गंध थी कि पास में कोई खड़ा नहीं रह सकता था। धन्य हैं ऐसे मुनिराज को जिन्होंने अग्लान भाव से साफ कर सेवा का आदर्श उपस्थित किया। इसको देख कर शास्त्र में वर्णित नंदीषेण अणगार की स्मृति उभर आती है।

मैं क्या-२ लिखूं आचार्य प्रवर के शासन समुद्र के लिए। जिनकी दिव्य मणियों की व्याख्या करना मेरे वश का काम नहीं। आपश्री का जीवन निश्चित रूप से इस युग में अलौकिक एवं दुर्लभ है। आप प्रभु महावीर के सच्चे अनुयायी, उत्तराधिकारी हैं। आपके सान्निध्य में विचरण करने वाले सन्त-सतीवर्ग भी तप-संयम की आराधना करके जीवन को समुज्ज्वल बना रहे हैं।

—पुंजाणी डागों की पिरोल, बीकानेर

# समता–सागर आचार्य श्री

( गुजराती से अनूदित )

△ बृजलाल कपूरचंद गांधी
अध्यक्ष–घाटकोपर संघ

बाल ब्रह्मचारी पूज्य आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. के विनीत प्रशिष्य बाल ब्रह्मचारी पूज्य आचार्य श्री नानालालजी म सा. की प्रशंसा मैंने खूब सुनी थी कि वे हमारी मौलिक स्थानकवासी संस्कृति के दृढ़ समर्थक हैं एवं उनके पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. श्रमण संघ के वरिष्ठ पदाधिकारी (उपाचार्य) होते हुए भी उससे पृथक हो गये। ऐसी बातों से उनके दर्शन एवं श्रवण की तीव्र अभिलाषा के साथ अवसर मिलने पर चातुर्मास कराने की प्रबल इच्छा मेरे हृदय में उत्पन्न हुई।

पूज्य मिश्रीमलजी म. सा. मधुकर को युवाचार्य की चादर समर्पित करने का महोत्सव जोधपुर में था। वहां जाते समय रास्ते में पूज्य आचार्य श्री नानालालजी म. सा. पाली में विराजमान थे। मैं वहां उनके दर्शनार्थ गया। वहां रात्रि में अनेक श्रावकों को पूज्य आचार्य श्री के साथ ज्ञानचर्चा करते मैंने देखा। इस ज्ञान चर्चा की समाप्ति के बाद मैंने पूज्य श्री से वार्तालाप हेतु थोड़ा समय प्रदान करने की विनती की। कुछ समय तक कान्फरेन्स के सम्बन्ध में वार्तालाप करने के बाद मैंने पूज्य श्री को बम्बई पधारने की विनती की एवं निवेदन किया कि साठ वर्ष पूर्व आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. ने घाटकोपर में चातुर्मास किया था। उनके प्रवचनों की संयमीय प्रेरणा से कत्लखाने में जाते हुए पशुओं को बचाकर उनके संरक्षण हेतु पिंजरापोल जैसी महान् पवित्र संस्था की स्थापना की जो आज तक चल रही है।

मेरी विनती अर्थात् घाटकोपर संघ की विनती समझ कर पूज्य गुरुदेव ने बड़ी शांति से सुनी। तत्पश्चात् हमारे सौभाग्य से पूज्य गुरुदेव के संवत् २०३९ में अहमदाबाद चातुर्मासार्थ विराजने पर वहां जाकर हमने पुनः घाटकोपर चातुर्मास हेतु विनती की। पूज्य श्री ने परम्परानुसार अपनी झोली में विनती को सुरक्षित रखने का कहा एवं बताया कि फिलहाल यदि बड़ौदा की तरफ विहार संभावित हुआ तो बम्बई का योग बनने की संभावना है अन्यथा नहीं। पूज्य श्री का भावनगर चातुर्मास हुआ तत्पश्चात् धर्मप्रेमी श्री चुन्नीलालजी मेहता के प्रयत्नों से बम्बई पधारे एवं बोरीवली में चातुर्मास हुआ। तदनन्तर संवत् २०४१ में घाटकोपर निश्चित हुआ।

संवत् २०४१ का घाटकोपर चातुर्मास खूब तप-त्याग एवं ठाठ से सम्पन्न हुआ। घाटकोपर में प्रतिक्रमण माइक पर करना पड़ता था कारण कि लगभग सात-आठ हजार भाई सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करने आते हैं। वे सब शान्तिपूर्वक सुन सकें तदर्थ माइक का उपयोग किया जाता था किन्तु पूज्य श्री के प्रयास से पृथक-पृथक हॉल में पृथक-पृथक वक्ता के साथ एक मुनि श्री जी के रहते प्रतिक्रमण हुआ फलतः अत्यन्त शान्ति पूर्वक प्रतिक्रमण हुआ एवं माइक की व्याधि से मुक्त हो गये। पर्युषण में तीन स्थान पर व्याख्यान आयोजित करने से सभी श्रावक शान्ति से व्याख्यान श्रवण करते थे।

पूज्य श्री के निश्चितरूपेण समता सागर होने के कारण आपके शिष्य भी ज्ञान, ध्यान एवं तप में एक से एक बढ़कर सवाये हैं, अत्यन्त विनयी एवं व्यवहार कुशल हैं।

हमारे यहां पूज्य श्री शरीर के कारण लगभग सात माह बिराजे किन्तु ये माह किस तरह व्यतीत हो गये, यह हमको पता ही नहीं लगा। अब तो यही इच्छा होती है कि पूज्य श्री वापस कब शीघ्र पधारें।

घाटकोपर चातुर्मास के समय एक साथ छः मुमुक्षुओं का दीक्षा महोत्सव तथा श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ का सम्मेलन आयोजित करने का अवसर श्री चुन्नीलाल भाई मेहता ने प्रस्तुत किया एवं एक माह तक दर्शनार्थ आने वाले स्वधर्मी भाइयों के भोजन का लाभ श्री उत्तमचन्द भाई ने लिया। इस प्रकार अत्यन्त आनन्दपूर्वक घाटकोपर संघ का चातुर्मास सम्पन्न हुआ।

समता विभूति पूज्य आचार्य श्री नानालालजी म. सा. ज्ञान-ध्यान में अग्रणी एवं सौम्य स्वभाव के हैं तथा विशिष्ट शिष्य मंडली से आवृत्त हैं। दर्शनार्थ आने वाले श्रावक भी अत्यन्त धर्मप्रेमी हैं। श्रद्धेय आचार्य श्री का पुण्य इतना प्रबल है कि इनका शिष्य समुदाय अत्यन्त ज्ञानवान, विनयी एवं क्रियापालक है। इस युग में इस प्रकार का शिष्य समुदाय भाग्य से किसी के पास है। पूज्य आचार्य श्री पूर्ण स्वस्थ रहते हुए दीर्घायु हों, समाज को खूब लाभ प्रदान करें, यही मेरी हार्दिक शुभ कामना है।

—भारत टेक्सटोरियम, सायन सर्कल बम्बई

—००—

"पुरिसा ! तुमंसि नाम सच्चेव जं हंतव्वंति मन्नसि" पुरुष जिसे तू मारना चाहता है वह तू ही है। वध्य (मरनेवाला) और वधक (मारने वाला) दो नहीं है। जो वधक है, वही वध्य है। जिसे परितप्त करना चाहता है, उपद्रुत करना चाहता है जिसे दास या नौकर बनाना चाहता है, वह भी अन्य कोई नहीं। वस्तुतः वह तू ही है। "सव्वेसिं जीवियं पियं नाइवइज्ज किंचणं" सब को ही जीवन प्रिय है, अतः किसी का भी अनिपात (हिंसा) न करो।

प्राण–वियोजन करना तो हिंसा है ही पर किसी के प्रति दुश्चिन्तन करना भी हिंसा है। अहिंसक का मन सर्वथा पवित्र रहना चाहिये। उसमें उभरने वाले प्रति-क्षण के विचार उदात्त तथा उन्नत होने चाहिये। प्रतिशोध, उत्तेजना, अहं, छद्म, आसक्ति, किसी को हीन समझना, स्वयं को उच्च समझना आदि भी हिंसा के ही सूक्ष्म रूप हैं। किसी के प्रति अनादर व्यक्त करना, असभ्य शब्दों का प्रयोग करना, उपहास करना, निन्दा करना, एक दूसरे के मन में घृणा के भाव उत्पन्न करना, डांटना, विरोधी वातावरण उभारना, किसी जाति, समाज या सम्प्रदाय को अन्य जाति समाज या सम्प्रदाय के विरुद्ध भड़काना आदि वाचिक हिंसा के नाना सूक्ष्म रूप हैं।

चांटा मारना, उदन्डता करना, अभद्र व्यवहार करना, अशिष्टता बरतना, उछल-कूद मचाना आदि कायिक हिंसा के नाना सूक्ष्म रूप हैं। अहिंसक व्यक्ति उपरोक्त सभी प्रकार से स्वयं को मुक्त रखता है। वह मन, वाणी तथा काया से सर्वथा पवित्र रहता है।

# आचार्य श्री नानेश और समीक्षण ध्यान

△ मगनलाल मेहता

**धर्म की प्रारंभिक भूमिका :**

धर्म क्या है, और धर्म का पालन कैसे किया जाता है ? ईश्वर है या नहीं ? यदि ईश्वर है तो वह कहां है और क्या करता है ? आत्मा है या नहीं और उसे कैसे देखा जा सकता है ? ऐसे अनेक प्रश्न हैं जो अध्यात्म और धर्म के प्रति जिज्ञासु मनुष्य के मन में सदैव-से उठते रहे हैं । इन्हीं प्रश्नों और उनके समाधान की दिशा में प्रत्येक धर्म की घुरी घूम रही है।

जैन धर्म ने इन प्रश्नों के बहुत संक्षिप्त उत्तर दिये हैं जैसे "वस्तु का स्वभाव ही धर्म है", "आत्मा ही परमात्मा है", आदि । परन्तु इन प्रश्नों को समझाने के लिये और उनका समुचित समाधान देने के लिये शास्त्रों में बहुत ही विस्तृत व्याख्या उपलब्ध है। प्रमुख रूप से जैन धर्म की धुरी कर्म सिद्धान्त पर आधारित है । जो भी प्राणी जैसे कर्म करेगा, उसे उसी के अनुसार फल की प्राप्ति होगी और जब आत्मा पूर्णरूप से कर्म मुक्त हो जावेगी तो वही आत्मा परमात्मा हो जावेगी । प्रत्येक आत्मा में यह शक्ति विद्यमान है कि वह अपने कर्मों का पूर्ण क्षय कर परमात्मा बन सकती है ।

**कर्म क्या है ?**

संसार का प्रत्येक प्राणी सुख का अभिलाषी है और इसी सुख की प्राप्ति के लिये हमारे जीवन के प्रतिक्षण की दौड़-धूप हो रही है । फिर भी क्या किसी को स्थाई सुख की प्राप्ति हुई है अथवा क्या हमारी ये क्रियाएं हमें सुख प्रदान कर सकती हैं ? गहराई से विचार करेंगे तो इसका एक ही उत्तर होगा कि कदापि नहीं । हमारा प्रत्येक सुख केवल सुखाभास है, जिसके प्राप्त होते ही हमारे मन में दूसरे सुख की अभिलाषा जागृत हो जाती है और उस प्राप्त सुख के प्रति असंतोष हो जाता है । अतृप्ति बढ़ती ही जाती है । इस तरह सुख की प्राप्ति के प्रयासों में हम नित नये कर्मों का बंध करते जाते है और जिस स्थाई सुख को हम प्राप्त करना चाहते हैं उससे दूर होते चले जा रहे हैं ।

आश्चर्य और चिंता इस बात की है कि जिस शरीर की प्राप्ति हमने आत्मा के पोषण और मुक्ति के लिये की है उसी शरीर का उपयोग हम आत्मा को कलुषित और कर्म-मल से आच्छादित करने के लिये कर रहे हैं । वह भी जानते हुए, अनजाने में नहीं । हम धर्म की अनेक क्रियाएं करते हुए भी धर्म से दूर होते चले जा रहे हैं, इसका कारण क्या है ? इस पर हमें गंभीरतापूर्वक विचार करना, होगा । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूपी सद्गुणों को ग्रहण करने और राग द्वेष जनित क्रोध, मान, माया, लोभ रूपी कषायों को दूर करने के लिये हम हमारी सारी धार्मिक क्रियाएं करते हैं । फिर भी न तो सद्गुणों की प्राप्ति होती है और न ही कषाय छूटते हैं । इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि हमने हमारी प्रत्येक धार्मिक क्रिया को रूढ़िग्रस्त बना लिया है।

हमारी क्रियाएं प्रतिदिन माला के मनकों को फेरा लेना, मुख वस्त्रिका बांधकर सामायिक लेकर बैठ जाना, संध्या को प्रतिक्रमण की पाटियां दोहरा लेना अथवा मूर्ति पर जाकर केशर, चंदन, फूल चढ़ा देना. तीर्थयात्रा कर आना, पूजा-प्रतिष्ठा करवा देना

तक ही सीमित रह गई हैं। प्रारंभ में इनमें से प्रत्येक क्रिया के पीछे एक निश्चित उद्देश्य और आदर्श रहा होगा, परन्तु आज हमने केवल जड़ क्रियाओं को पकड़ लिया है, आदर्श को भूल गये हैं। उसके साथ ही हम हमारी इन धार्मिक क्रियाओं को भी किसी न किसी प्रकार के सांसारिक सुख की प्राप्ति का माध्यम बना लेने में लगे हुए हैं और धर्म को भी एक प्रदर्शन की वस्तु बना दिया है। यह धर्म की सबसे बडी विडंबना है।

धार्मिक क्रियाओं को करते समय क्या हमारे मन को एकाग्र कर हम उन वीतराग प्रभु के गुणों को हमारे में उतारने का तनिक भी प्रयास करते हैं? सामायिक तो कर लेते हैं पर मन की एकाग्रता और समभाव की उपलब्धि नहीं हो पाती, प्रतिक्रमण में हम किये गये पापों की आलोचना करके फिर वही पाप किये चले जाते हैं। इसका कारण क्या है ? यही कि हमने इन क्रियाओं की उपयोगिता को समझा नहीं है और केवल मशीन की तरह ये सब कार्य करते रहते हैं।

**कर्मों का बंध और क्षय :**

स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द ये पांच विषय हैं और इनको ग्रहण करने वाली क्रमश: पांच इन्द्रियां हैं। मन इन पांचों विषयों का ग्रहण करने वाला और इनका प्रवर्तक है इसलिये मन सबसे शक्तिशाली इन्द्रिय है। कामनाओं का उत्स है मोह। ज्यों-ज्यों मोह क्षीण होता है, कामनाएं क्षीण होती जाती हैं। विषयों के प्रति मनोज्ञता या अमनोज्ञता, पदार्थों में नहीं, मन की आसक्ति में निहित है। जब तक शरीर है तब तक इन्द्रियों के विषयों को रोका नहीं जा सकता। परन्तु विषयों को ग्रहण कर उन पर आसक्ति अथवा राग द्वेष न लाना यह व्यक्ति की साधना पर निर्भर है। इसलिये साधक विषयों को रोकने का प्रयत्न न करे किन्तु मन को इस तरह साधे कि ग्रहण किये गये विषयों के प्रति राग-द्वेष की भावना आये ही नहीं। अमनोज्ञ विषय द्वेष के बीज हैं और मनोज्ञ विषय राग के। जो दोनों में सम रहता है, वही वीतराग कहलाता है।

धर्मशास्त्रों में मन की विजय को पांचों इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेना माना है। इन्द्र ने जब नमि राजर्षि से कहा, "आप अपने शत्रुओं को जीतकर फिर प्रव्रजित हों"। नमि ने कहा, 'बाह्य शत्रुओं को जीतने से क्या, जो एक मन को जीत लेता है वह पांचों इन्द्रियों को जीत लेता है और जो इन्द्रियों को जीत लेता है वह पूरे विश्व को जीत लेता है।' शंकराचार्य से पूछा गया, "जित जगत केन", संसार को जीतने वाला कौन है ? तो उन्होंने कहा "मनो हि येन" जिसने मन को जीत लिया है उसने सारे संसार को जीत लिया है।

मोह के द्वारा ही क्रोध, मान, माया लोभ रूपी कषायों की उत्पत्ति होती है और इन्हीं कषायों पर विजय प्राप्त करना धर्म का ध्येय है। जो साधक कषायरूपी शत्रुओं के साथ युद्ध करना चाहता है उसके लिये ध्यान ही एकमात्र शस्त्र है। सभी धर्मों में ध्यान की मुक्त कंठ से प्रशंसा की गई है। मन गतिशील है, उसको रोका नहीं जा सकता किन्तु साधना के द्वारा उसकी गति बदली जा सकती है और इसी का नाम है मन पर विजय।

आचार्य श्री नानेश की आज समाज को जो सबसे बड़ी देन है, वह यही है कि इन उपरोक्त वर्णित रूढिग्रस्त धार्मिक क्रियाओं से दूर रह कर साधना और धर्म की आराधना के लिये समीक्षण ध्यान के द्वारा मन की एकाग्रता को प्राप्त कर राग-द्वेष जनित कषायों को दूर हटावें। आत्मा को शुभ कर्म की ओर मोड़ें और क्रमश: कर्म-रहित बन कर सच्चे अर्थों में सुख की प्राप्ति कर आत्मा को परमात्मा बनावें, मुक्ति की ओर अग्रसर करें।

**समीक्षण ध्यान साधना :**

समीक्षण ध्यान क्या है ? यह ध्यान की वह प्रयोगात्मक विधि है जिसके द्वारा हम मन को एकाग्र

कर दृष्टाभाव जागृत करें और प्रारंभिक भूमिका में पहले अपने कर्मों को अशुभ से शुभ की ओर मोड़ें और तत्पश्चात् कर्मरहित होने का प्रयास करें। समीक्षण ध्यान के द्वारा हम आत्मा को निर्मल बनाते हुए कर्मक्षय कैसे कर सकते हैं इसकी सूक्ष्म विवेचना आचार्य श्री द्वारा प्रस्तुत की गई है।

**साधना विधि :**

ध्यान साधना के इच्छुक साधक को सबसे पहले प्रतिदिन का अपना ध्यान का समय निश्चित करना होगा जो कि कम से कम एक घंटा होना चाहिये और प्रातः सूर्योदय से पूर्व अथवा रात्रि को सोने से पूर्व का। साधना में बैठने से पूर्व शौचादि से निवृत्त हो, प्रतिदिन का निश्चित स्थान हो, एक दम शान्त और स्वच्छ वातावरण हो। बैठने के लिये आप कोई भी सुविधायुक्त आसन चुन सकते हैं लेकिन यह अवश्य ध्यान रखें कि ध्यान के समय प्रमाद, आलस्य अथवा निद्रा नहीं आने पावे। नेत्र बंद रखें और यथासंभव रीढ़ की हड्डी सीधी रखें।

सबसे पहले आप अपने मन को एक दम शान्त, विचार मुक्त करने का प्रयास करें। इसके लिये अपने मन को किसी एक स्थान पर केन्द्रित करें। श्वास एक ऐसी क्रिया है जो हमारे शरीर में प्रतिक्षण आ जा रही है अतः मन केन्द्रित करने का सबसे सरल साधन श्वास क्रिया ही है। मन को नासिका के अग्रभाग पर केन्द्रित कर श्वास का आवागमन देखें, भीतर प्रवेश करते श्वास की ठंडी हवा और निकलते श्वास की गर्मी का अनुभव करें।

श्वास के दूसरे प्रयोग में पूरक, रेचक और कुम्भक की क्रिया कर सकते हैं जिसके द्वारा नासिका के एक भाग से श्वास को भीतर लें, कुछ देर भीतर रोकें और दूसरी नासिका से उसे बाहर निकालें। इसी क्रिया को कुछ समय के लिये उलट तरीके से भी कर सकते हैं। श्वास ग्रहण करने को पूरक, बाहर छोड़ने को रेचक और भीतर रोकने को कुम्भक कहते हैं। तीनों का समय करीब-करीब बराबर हो, यह ध्यान रखें। कुछ देर इस क्रिया के साथ मन की एकाग्रता करने के बाद मन की यह धारणा भी प्रारंभ कर सकते हैं कि श्वास की प्रत्येक पूरक क्रिया के साथ बाहरी वायुमंडल में व्याप्त अहिंसा, सत्य अचौर्य. अकाम और अनासक्त आदि के शुभ पुद्गल मेरे शरीर में प्रवेश कर रहे हैं और रेचक की प्रत्येक क्रिया के साथ मेरे शरीर में व्याप्त क्रोध, अहंकार, छलकपट और लोभ तथा राग-द्वेष के अशुभ पुद्गल बाहर निकल रहे हैं।

श्वास की तीसरी क्रिया के रूप में हम गहरी सांस भीतर लें और यह अनुभव करें कि श्वास सीधा मेरे शरीर में स्थित विभिन्न शक्ति-केन्द्रों पर बारी-बारी से जा रहा है। मस्तक के शिखा भाग पर ज्ञान केन्द्र, तलवे के स्थान पर शांति केन्द्र, ललाट के अग्रभाग पर ज्योति केन्द्र, हृदय के मध्य शक्ति केन्द्र स्थित है। यह अनुभव करें कि जिस केन्द्र पर श्वास केन्द्रित है वहां से ज्ञान, शान्ति, ज्योति, शक्ति आदि की किरणें प्रस्फुटित होकर मेरे पूरे शरीर में व्याप्त हो रही हैं। इससे एक नये शक्ति स्रोत का अनुभव हमें होगा।

श्वास की चौथी क्रिया के रूप में हम हमारे कंठ से अर्हम् शब्द का उच्चारण प्रत्येक श्वास के साथ करें और अनुभव करें कि अरिहंत के गुणों का मुझमें समावेश हो रहा है। शब्द उच्चारण का तात्पर्य आवाज करने से बिल्कुल नहीं है केवल मन में ही चिंतन चलता रहे।

श्वास की उपर्युक्त वर्णित क्रियाओं का मूल उद्देश्य केवल यह है कि हम बाहरी वातावरण और यहां तक कि हमारे शरीर से भी हमारे मन को एकदम हटाकर एकाग्रता प्राप्त करें और दृष्टाभाव को जागृत करें। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक क्रिया को हम प्रतिदिन करें। जिस भी क्रिया से हमें ध्यान केन्द्रित करने में सुविधा हो उस एक या दो क्रिया को ही करना पर्याप्त होगा। श्वास की इन क्रियाओं से हमारा मन एकदम शान्त हो जावेगा और बाहरी वातावरण से

बिल्कुल हट जावेगा ।

समयानुसार पन्द्रह मिनट से आधा घंटा उपरोक्त क्रिया करने के पश्चात् जब मन पूर्ण शांत हो जावे तो हम समीक्षण में उतरने का प्रयास करें। समीक्षण से तात्पर्य है हमारे स्वयं के कृत्यों की समीक्षा। हमने पिछले पूरे दिन में क्या-२ कार्य किया, कैसा-कैसा हमारा व्यवहार रहा, इस की समीक्षा हम प्रातः उठने से लेकर रात्रि विश्राम तक की पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के समय को ध्यान में लेते हुए करें। यदि हमारा चित्त एकदम शांत होगा तो दिन भर की पूरी घटनाएं सिनेमा की तस्वीर की तरह हमारे दिमाग में घूम जावेगी। दिन भर में कब-कब मैंने क्रोध किया, बच्चों को अथवा पति-पत्नी को प्रताड़ित किया, कब-कब मेरे मन में अहंकार की भावनाएं पैदा हुईं, कब मैंने किसी दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास किया, किसी दरिद्र, गरीब, अथवा मंद बुद्धि को देखकर मेरे मन में उसके प्रति हीन भावना उत्पन्न हुई। व्यवसाय में मैंने ग्राहकों को ठगने का अथवा छलकपट करने का प्रयास किया, वस्तुओं में भेल-संभेल, हल्की-ऊंची बताने का प्रयास किया। लोभवश ठगने का अथवा झूठ-सच कर अनैतिक पैसा कमाने का प्रयास किया। अत्यन्त मोहवश गाढ़ कर्मों का बंधन किया अथवा द्वेष वश क्रोध एवं घृणा का वातावरण बनाया। इन समस्त घटनाओं को हम दृष्टाभाव से देखेंगे तो हमारे मन में अशरण और अनित्यता की भावना जागृत होगी और धीरे-धीरे हमें अनुभव होने लगेगा कि इस तरह हम अपने जीवन को गहरे गर्त में डाल रहे हैं और गाढ़े कर्मों का बंधन कर रहे हैं। जैसे ही यह अनुभव होगा-हमारी विचारधारा में एकदम परिवर्तन प्रारंभ होने लगेगा और इन कुकृत्यों के प्रति हमारे मन में ग्लानि पैदा होगी और प्रत्येक ऐसा कृत्य करते समय हमारा मन कहेगा कि हमें यह नहीं करना है और साधक का जीवन व्यवहार अपने आप बदलने लगेगा। प्रत्येक कषाय की वृत्ति के साथ उससे उत्पन्न होने वाले दोष हमें दृष्टिगोचर होने लगेंगे। कषाय की वृत्ति के साथ हम हमारे दैनिक जीवन में किये गये सद्कार्यों की भी स्मृति करें। कब-२ हमारे मन में प्रेम, करूणा दया की भावना जागृत हुई, निस्वार्थ भाव से मैंने किसी दीन-दुखी की सेवा की। व्यवहार में सच्चाई और ईमानदारी का कृत्य किया आदि आदि। इन सद्गुणों को हम पुष्ट करने का प्रयास करें।

दैनिक जीवन व्यवहार की समीक्षा के बाद ह अपने आपको बहुत शान्त और हल्का महसू करेंगे और हमें लगेगा कि हमारी आत्मा का शु निर्मल स्वरूप हमारे सामने प्रकट होने लगा है। तरह कुछ देर तक आत्मा के शुद्ध स्वरूप का द करने के बाद हम अपने मन से अरिहंत, सिद्ध, स और धर्म की शरण ग्रहण करें। बहुत ही मंद स्वर

**अरिहंते शरणम् पवज्जामि,**
**सिद्धे शरणम् पवज्जामि,**
**साबु शरणम् पवज्जामि,**

**केवली पणतं धम्मं शरणं पवज्जामि** का बार उच्चारण करें। इस तरह प्रभु और धर्म शरण ग्रहण करने के पश्चात् शान्तभाव से मन संसार के प्रत्येक प्राणी के प्रति मैत्री और करुणा भावना लेकर, जीवन में सत्य, अकाम व अलोभ शुभ भावनाओं को लेते हुए अपने नेत्र धीर-धीरे ख प्रभु और सद्गुरु को नमस्कार करें और ईमानदार अपने दैनिक जीवन व्यवहार में प्रवेश करें।

प्रतिदिन की नियमित साधना के पश्चात् ही दिनों में अनुभव करेंगे कि जीवन व्यवहार बदल गया है।

—चांदनी चौक, रत

# हमारे प्रेरणा श्रोत

□ केशरीचंद सेठिया

भारतवर्ष की वीर भूमि मेवाड़ में जहां महाराणा प्रताप और सांगा जैसे शूरवीर रण बांकुरे वीर रत्न हुए, वहां महायोगी, मनीषी श्री गणेशाचार्य और वर्तमान में युग प्रधान आचार्य श्री नानेश जैसे महान् संत हुए हैं। दांता ग्राम के पोखरना कुल में २० मई सन् १९२० को आपका जन्म हुआ। ग्राम्य जीवन में सीमित साधनों के कारण व्यावहारिक शिक्षा अधिक नहीं मिल सकी। महापुरुष स्कूली किताबों के मोहताज भी नहीं होते।

पूज्य हुक्मीचन्दजी म. सा. की संप्रदाय में श्रीमद्जवाहराचार्य के उत्तराधिकारी युवाचार्य शांत क्रांति के अग्रदूत श्री गणेशीलालजी म. सा. से आप दीक्षित हुए और शास्त्रों का गहन अध्ययन गुरु चरणों में किया। आपकी अद्वितीय प्रतिभा को देखकर मेवाड़ की राजधानी उदयपुर में आश्विन शुक्ला द्वितीया सं २०१९ को चादर प्रदान कर उत्तराधिकारी के रूप में युवाचार्य घोषित किया।

इस संप्रदाय के इतिहास में यह एक स्वर्णिम दिन था। इसी दिन श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ की भी स्थापना हुई।

यह एक संयोग की बात है कि इसी वीरभूमि में सन् १९६३ दि. ११ जनवरी को इस महान् संप्रदाय के आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। आप पर चतुर्विध संघ का गुरुतर दायित्व आ गया। श्रमण भगवान महावीर की वाणी को आपने घर-घर पहुंचाने के साथ-साथ अपनी गुरु परम्परा के अनुरूप शिक्षा-दीक्षा और प्रायश्चित एक ही आचार्य की नेश्राय में होने की घोषणा की। विशाल शिष्य, शिष्याओं को महावीर के शासन में दीक्षित कर स्थानकवासी जैन इतिहास में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। शिष्य, शिष्याओं द्वारा परस्पर अध्ययन-अध्यापन में एक दूसरे के सहयोगी बनाकर शिक्षकों के अभाव की पूर्ति की। मर्यादामय साधु जीवन एवं अनुशासन के प्रति आप जागरुक ही नहीं कठोर भी हैं। आपके शासन में शिथिलाचार और संयमित जीवन के प्रति लापरवाही को स्थान नहीं।

मेरा अहोभाग्य है कि अनेक महापुरुषों के सानिध्य का सुअवसर मुझे प्राप्त होता रहा। वर्तमान आचार्य को आचार्य पद शोभित करने के कई वर्षों पश्चात् देशनोक में दर्शन, श्रवण का अवसर मिला। (बीकानेर और देशनोक के बीच उदयरामसर पड़ता है) जहां चारों ओर रेतीले टीले ही टीले नजर आते हैं। मरुस्थल के इस रेतीले क्षेत्र में जब अंधड़ आता है तो यह पता लगाना मुश्किल है कि कौन टीला कहां था। यही मेरे साथ हुआ—रेतीले धोरे अंधड़ के रूप में स्थानान्तरित होने लगे। बड़ी मुश्किल से देशनोक पहुंच सका। मन में कल्पना उठी कि लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये कठिन से कठिन परीक्षा से तो गुजरना ही पड़ता है। संभवतः यही कारण है कि बड़े-बड़े तीर्थ स्थान पहाड़ों के दुर्गम मार्ग को चीर कर ऊंची-ऊंची चोटी पर बने हैं।

मैं जब पहुंचा तो धर्म सभा चल रही थी। दूर से देखा तो ठगा-सा रह गया। नेत्रों पर विश्वास नहीं हुआ। कहीं मैं पूर्वाचार्य स्वर्गीय श्री गणेशीलाल

जी म. सा. के दर्शन तो नहीं कर रहा। वही रंग-रूप, वही दैहिक संपदा, वही तेजस्वी शांत मूर्ति । गुरु के पद चिन्हों पर चलने वाले तो अनेक शिष्य देखे किन्तु इतना बड़ा एकाकार रूप हो जाना एक अलौकिक चमत्कार-सा लगा ।

इसके बाद तो अनेक बार आपके दर्शन, श्रवण और सान्निध्य से लाभान्वित हुआ । उनके जीवन की खुली किताब को पढ़ा। निर्लिप्त, कीर्ति से परे, अनुशासन एवं सिद्धान्तों पर अडिग, आत्मसात् करने वाली वाणी के साथ-२ एक तेज, एक आभा, एक प्रकाश/ज्योति का वलय आपके मुखमंडल पर सदैव दृष्टिगत होता है जो प्रत्येक को आकर्षित कर लेता है ।

आपने धर्म और अध्यात्म जीवन की विशद व्याख्या की । तनावपूर्ण युग को शांति संदेश के रूप में समता दर्शन का युगान्तरकारी चिन्तन दिया । इस तनाव पूर्ण युग में अगर हम अपने जीवन को समतामय बनालें तो जीवन में सुख और शांति की गंगा बहने लगे । अगर आपने समता को धारण कर लिया तो समझ लीजिये आपने सुखी जीवन जीने की कला सीख ली । भीतर और बाहर चारों तरफ शांति ही शान्ति का आपको अनुभव होगा ।

आपकी वाणी में, प्रवचनों में केवल कोरी विद्वता ही नहीं बल्कि अन्तर मन से निकली भगवान महावीर की दिव्यवाणी है, जो हृदयग्राही है । यही कारण है कि स्थानकवासी जैन समाज में आप पहले आचार्य हैं जिनकी नेश्राय में सैंकड़ों मुमुक्षु आत्माओं ने प्रव्रज्या ग्रहण की ।

मालवा क्षेत्र की पद यात्रा करते आप गुराड़िया गांव पधारे । वहां पर बलाई-जो अछूत जाति के हैं -ने आपका प्रवचन सुना और प्रवचन के बाद उन्हें लगा यह योगी हमारे लिये कोई मसीहा बनकर आया है। करबद्ध निवेदन किया, भगवन् ! आज हमारी जाति के कई लोग ईसाई, मुसलमान तथा अन्य-अन्य धर्मावलम्बी हो रहे हैं क्योंकि हिन्दू हमें अछूत समझते हैं, हमारा तिरस्कार करते हैं । आप हमारा उद्धार कीजिये। आचार्य श्री ने फरमाया-महावीर के शासन में जाति से कोई छोटा-बड़ा नहीं, कोई अछूत नहीं । उच्चकुल में जन्म लेने मात्र से कोई उच्च नहीं हो जाता। अपने-अपने कृत कर्मों के अनुसार ही मनुष्य छोटा-बड़ा होता है और आपने उन्हें धर्मपाल जैन से संबोधित करते हुए कहा-आज से तुम इसी नाम से जाने जाओगे। वे व्यसन मुक्त ही नहीं हुए उन्होंने अपने समाज में पुरखों से चली आ रही कुप्रथाओं को भी त्याग दिया। आज हजारों धर्मपाल जैन सुसंस्कारी नागरिक का जीवन जी रहे हैं ।

मानसिक तनाव-मुक्ति के लिये आपने समीक्षण ध्यान एवं समीक्षण योग का प्रवर्तन किया । आप जैन आगमों और शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान और गूढ़ व्याख्याता होने के साथ-२ प्रबुद्ध विचारक भी हैं। आपने कई शास्त्रों की टीका करके महान् उपकार किया है ।

हम भाग्यशाली हैं कि ऐसी महान् विभूति के आचार्यत्वकाल के स्वर्णिम २५ वें वर्ष को हमें देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ।

१४, तुलसिंघम स्ट्रीट, मद्रास

# लाल चमकता भानु समाना

□ गणपतराज बोहरा
भूतपूर्व अध्यक्ष—श्री अ. भा. सा. जैन संघ

आज संघ के रजत जयन्ती वर्ष और परम श्रद्धेय जिनशासन प्रद्योतक आचार्य श्री नानेश के आचार्य पद ग्रहण के २५ वें वर्ष की पुनीत सन्धि—वेला में जब-२ भी संघ और शासन की गौरवमयी प्रगति का विचार आता है तो संघपति आचार्य श्री नानेश के प्रति श्रद्धा से मेरा हृदय भर जाता है, मस्तक नमन के लिये झुक जाता है। सर्वथा प्रतिकूल दिखाई दे रही परिस्थितियों में, अनुशासन के प्रति उपेक्षा और शुद्ध क्रियापालन—कर्त्ताओं के प्रति उपहास के आज से २५ वर्ष पूर्व के सघ स्थापन और आचार्य पद धारण दिवस के समाज-जीवन की तुलना में आज जब संघ—अधिवेशनों में श्रद्धा-भक्ति से उमड़ते-लहराते हुए जन-समूह को देखता हूं, आचार्य-प्रवर के चरणों में अपनी भक्ति के सुमनों को अर्पित करने की होड़ करने वाले आवाल—वृद्ध को देखता हूं तो हृदय हर्ष से फूल उठता है और माथा गर्व से उन्नत हो जाता है।

हे आचार्य श्री ! आपने अपने शुद्धाचार से जिनशासन की प्रभावना की है, अपने धर्म-प्रतिबोध से धर्मपाल समाज की स्थापना की है, अपने समता दर्शन से असमानता और विषमता से त्रस्त विश्व—मानव को शांति और समानता के पथ का प्रदर्शन किया है और तनावग्रस्त समाज के क्षत-विक्षत मर्म पर समीक्षण ध्यान का मरहम लगा कर शांति, अनाग्रह और परिग्रह, अहिंसा, सत्य और इन्द्रिय संयम के महान् साधनापथ पर बढ़ते चले जाने का दिव्य सन्देश दिया है। आपकी अमृतमयी वाणी ने सदैव शोषित व पीड़ित जनों को स्वाभिमान—सम्मान के अमरपथ का वरण करने की अनथक प्रेरणा दी है।

संघ की स्थापना के बाद इस शिशु—संघ को पाल-पोषकर युवा बनाने और समाज तथा देश की सेवा में जुटा देने के गुरुतर उत्तरदायित्व को निभाने वाले संघनिष्ठ जनों को आपकी मंगलवाणी ने थकान के हर मौके पर नई स्फूर्ति, शक्ति और प्रेरणा दी। आपश्री के आचरण ने जो मौन-मूक सन्देश समाज के व्यक्ति-व्यक्ति के तन—मन में फूंका, उसने देखते-देखते एक असाध्य दिखने वाले कार्य को सहज साध्य बना दिया। त्याग और तप की आग में राग-द्वेष को स्वाहा करते हुए सकल समाज के प्रत्येक घटक के लिये हृदय में आदर और स्नेह का छलछलाता अमृत-कलश लेकर जब संघ—प्रमुख तूफानी प्रवासों पर निकले तो समाज के सभी वर्ग, सब प्रकार के वैर-विरोधों को भुलाकर उन्हें गले लगाने को उमड़ पड़े। संघ-प्रवासों के वे उद्देश्य आज इस मौके पर मुझे याद आ रहे हैं, जब प्रखर विरोधी संघ सभाओं में आकर प्रबल समर्थक बन जाते थे। यह सब आपश्री के अतिशय का ही पुण्य प्रताप है।

आपश्री ने अपने शिष्य-शिष्या वृन्द को आचार के कठोर सांचे में ढाला, कुन्दन-सा तपाया और स्वाध्याय—ज्ञान और तप के उच्च आयामों को अनुभव करने का सुअवसर प्रदान किया। एक ओर दृढ़ अनुशासन तथा दूसरी ओर असीम वात्सल्य से परिपूरित आपश्री के व्यक्तित्व ने विद्या, तप और क्रिया के क्षेत्र में शिष्य-शिष्या वृन्द का एक विशाल और बेजोड़ मंडल खड़ा कर दिया, जो आज देश के कोने-२ में जिन-शासन की प्रभावना का विस्तार कर रहा है।

अपने गरिमा मंडित शान्त–सौम्य व्यक्तित्व और प्राणीमात्र के प्रति करुणा वेष्ठित सद्भाव से आपने लक्ष-लक्ष जनों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित व अनु–प्राणित किया है। राष्ट्रीयता के प्रखर उद्घोषक बन कर आपने समय-समय पर इस देश के नागरिकों को कर्त्तव्य पथ का बोध कराया है। आज आपके तप-तेज से दिशाएं दीप्त हो रही हैं। सूर्य का प्रकाश जैसे घने अंधेरे को चीर कर क्षितिज पर अपनी अरुणिमा फैला देता है, उसी प्रकार शिथिलाचार के तम को विदीर्ण कर आपने शुद्धाचार की लाली से अनन्त नभ को रंग दिया है। हे लाल ! आज आप भानु के समान चमक रहे हैं। हम इस दिव्य आलोक में अहिंसा और समतामय समाज की स्थापना हेतु स्वयं को समर्पित करें, इसी कामना के साथ हमारे श्रद्धापूर्ण अशेष वन्दन–अभिवन्दन।

पीपलिया कलां, मारवाड़ (राज०)
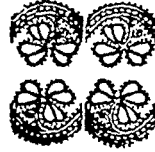
## मनुष्य के हृदय पर खिड़की

"जहा अन्तो तहा बाहि, जहा बाहि तहाअन्तो" साधक जैसा अन्तरंग में होता है वैसा ही बाहिर में रहे। जैसा बाहिर में हो, वैसा ही अन्तरंग में रहे। अन्तर और बाह्य के समरूप रहने वाला साधक शीघ्र सफल होता है। मन, वाणी और कर्म की एकरूपता प्रत्येक दिशा में प्रगति करने के लिये आवश्यक होती है। तीनों का द्वैध किसी भी क्षण व्यक्ति को पछाड़ सकता है।

लोकप्रिय बनने का एक नुस्खा प्रचलित हो गया है कि जो सोचा जा रहा है वह किसी से न कहो। जो कहा जा रहा है, वैसा कभी न करो। करने के लिये सदा ही दूसरों पर भार लादते रहो। पर, इससे मित्रों की संख्या घटती जाती है, समर्थक मूक होने लगते हैं और प्रभावित उदासीन। जब उसकी कलाई खुलती है, तब मित्र, समर्थक तथा प्रभावित, उतने ही अधिक विरोधी देखे जाते हैं। आचार्य यदि उस गुर को काम में लेते हैं तो उनके शिष्यों की श्रद्धा उनसे उचटती जाती है और एक समय ऐसा आता है कि शिष्यों को आचार्य का नग्न गुरुडम दिखाई देने लगता है।

सबसे अधिक दुर्गम्य मनुष्य ही है। उसके हंसने तथा रोने के, बोलने तथा मूक रहने के, इंगित तथा आकार के, चलने तथा बैठने के प्रयोजन भी भिन्न होते हैं। वह स्वयं को ऐसा प्रदर्शित कर देता है कि अन्तर में, उसका एक अंश भी नहीं होता। इसलिए कई बार चिन्तन उभरता है, कितना अच्छा होता, मनुष्य के हृदय पर एक खिड़की हो जाती, जिसे खोलकर जाना जा सकता था कि उसके अन्तरंग में वास्तविकता क्या है ?

# नई दिशा : नया मोड़

△ फ़तेहलाल हिंगर

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ का रजत-जयन्ती वर्ष मनाने का प्रसंग उपस्थित है। इस सघ का गठन जिन विशिष्ट परिस्थितियों में हुआ उनका स्मरण जब होता है तो सहसा सम्बन्धित सभी बिन्दु स्मृति पटल पर उभर कर सामने आ जाते हैं। याद आ जाती है उन ऐतिहासिक क्षणों की, चर्चाओं, घटनाओं की जो इसकी स्थापना में प्रमुख रही और जिनसे निकट का सम्पर्क होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

२५ वर्ष के अपने यशस्वी काल में अपनी रीति नीति और उद्देश्यों के अनुरूप अपनी गतिविधियों को आगे बढ़ाते हुए एकता के सूत्र में समाज को बांधे रखकर आज यह संघ अपनी सुदृढ़ स्थिति में पहुंचा है और अन्य समाज सेवी संस्थाओं के लिये अपने सुसंगठन एवं व्यवस्थित सुप्रशासन हेतु अनुकरणीय बना है। गर्व का अनुभव होता है हमें इस संघ की ऐसी स्थिति पर। जो कुछ भी यह संघ आज है वह श्रद्धेय परम पूज्य श्री जवाहराचार्य, शांत कांति के अग्रदूत श्री गणेशाचार्य एवं समता विभूति बाल ब्रह्मचारी श्री नानेशाचार्य जैसे गुरुओं के मार्गदर्शन एवं शुभाशीर्वाद का ही परिणाम है। उन्हीं की प्रेरणास्वरूप यह संघ अबाध गति से आध्यात्मिक, व्यावहारिक आचार, विचार, शिक्षा और ज्ञान के प्रसार-प्रचार, सुसाहित्य सर्जन आदि विविध आयामों को छूते हुए निरन्तर विकासोन्मुख है। पर संघ के प्रारूप को यदि नवीन मोड़ देना है तो युगानुकूल कार्य संचालन प्रणाली में बुद्धिजीवी वर्ग का पूर्ण सहयोग प्राप्त करते हुए उनके प्रगतिशील विचारों से समन्वय स्थापित करके चलना होगा।

समाज में व्याप्त कुछ ऐसी अव्यावहारिक एवं अनैतिक वृत्तियों की ओर ध्यान देना है जो समाज के आर्थिक ढाचे को बिखेरने में सहायक हो रही है। वर्गीय भेदभाव सहित समाज की सुदृढ़ संरचना हेतु नये प्रयासों पूर्वक योजनाबद्ध कार्य करने की आवश्यकता है ताकि आज का युवक सही दिशा अपना सके और अधिक पथ भ्रमित न हो।

"कि जीवनम्"–जीवन क्या है? इस रहस्य पूर्ण प्रश्न का अत्यन्त ही सरल और हृदयग्राही उत्तर देने वाले, समता दर्शन और समीक्षण ध्यान जैसे नये आयाम प्रस्तुत करनेवाले, शान्त, गम्भीर एवं अनुशासनप्रिय पू. नानेशाचार्य के व्यक्तित्व ने किसको प्रभावित नहीं किया है? संघ का सम्प्रति जो स्वरूप है उसके लिये हम इन महान् आचार्य के प्रति जितनी कृतज्ञता ज्ञापित करें उतनी कम है। इस महान् आचार्य का सान्निध्य प्राप्त कर मैंने अपने जीवन में नवीन आध्यात्मिक चेतना, धर्म के प्रति सत्यनिष्ठा, अटूट श्रद्धा के मूल्यों को प्रतिस्थापित किया है। यूं तो बाल्यकाल में ही पू. दादा-दादीजी, (जिन्होंने अपनी दो पुत्रियों-मेरी भुआजी की बालवय होते हुए भी के साथ भागवती दीक्षा अंगीकार कर कुल को सुशोभित किया) एवं माता-पिता ने सुसंस्कारित जीवन निर्माण की प्रक्रिया के संत समागम, दर्शन और नैतिक धार्मिक शिक्षा का सुयोग प्राप्त कराया। "हुक्म पाट" परम्परा के तीन दिग्गज आचार्यों के अतिरिक्त पंजाब

केशरी आचार्य श्री काशीराम जी म. सा. एवं बाल ब्रह्म. आचार्य श्री हस्तीमल जी म. सा. एवं कई संतों के सान्निध्य ने मेरी आध्यात्मिक चेतना की जागृति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई पर परम श्रद्धेय नानेशाचार्य के विचारों और सदुपदेशों का मेरे जीवन निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान रहा । उनके वाक्य "साहस और धैर्य को धारण करते हुए, कर्त्तव्य निष्ठा से सत्य कर्म में निरन्तर लवलीन रहकर आई विपत्तियों का निडरतापूर्वक सामना करते हुए आगे बढते रहना" से जो मंत्र मिला वह मेरे जीवन निर्माण के प्रति उनकी अनुपम देन सिद्ध हुआ । ऐसे व्यक्तित्व के प्रथम मूक परिचय ने मुझे उस समय प्रभावित किया जब मेरे दादाजी द्वारा उन्हें अपनी वैराग्य अवस्था में भोजनार्थ दिये गये स्नेहिल आमंत्रण को सरलतापूर्वक स्वीकार करते हुए वे हमारे निवास स्थान पर पधारे थे । उस समय किसको यह ज्ञात था कि सरलमना यह वैरागी हमारे समाज का यशस्वी आचार्य बनकर श्रमण संगठन की नवीन सुदृढ़ रचना कर स्वर्णिम इतिहास का निर्माण करेगा ।

उदयपुर में आयोजित युवाचार्य पद महोत्सव का प्रत्यक्ष दर्शी एवं व्यवस्था के सक्रिय कार्य-कर्त्ता के रूप में भाग लेते हुए महाराणा के राजमहल क प्रांगण में विशाल जन मेदिनी के समक्ष प्रस्तुत अपने सार्वजनिक उद्बोधन ने मेरे जीवन को नया मोड़ दे डाला । मुझे आज भी उस क्षण की जीवन्त स्मृति है जब आचार्य पद की प्राप्ति और उदयपुर में २५ वर्ष पूर्व हुई उनके हाथों प्रथम दीक्षा (महासती श्री सुशीलाकंवर जी म.) के बाद अशोकनगर से विहार करते समय मुझ जैसे छोटे कार्यकर्त्ता भक्त की विनंती को ध्यान में लेते हुए विहार का मार्ग ही बिना पूर्व सूचना किये बदल कर मेरे आवास पर हाथ फरसने की कृपा संत समुदाय के साथ की और इस तरह "राम ने शबरी" का आतिथ्य स्वीकार किया । हम गद्-गद् थे और अन्य सभी चकित । ऐसे हैं ये भक्त वत्सल ।

आपका चिन्तन प्रधान जीवन नई ऊंचाइयों को छूने की ओर इंगित करता है । वह यह प्रतिभासित करता है कि आपने अथाह धर्म महोदधि में समता मौक्तिक प्राप्त्यार्थ कितने आध्यात्मिक एवं गहन गोते लगाये हैं ।

सन् १९८१-८२ के उदयपुर वर्षावास की पुनीत स्मृति में आगम अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान की स्थापनार्थ प्रारम्भिक योजना को मूर्तरूप देने के प्रसंग से आचार्य श्री के निकट रहते हुए उनके बहुमूल्य विचारों ने मेरे जीवन को प्रभावित किया । मैं इनको एक आध्यात्मिक योगी एवं युग पुरुष के रूप में देखता हूं ।

संघ को ऐसी महान् विभूति आचार्य के रूप में प्राप्त कर गौरवानुभूति होती है । उनकी आध्यात्म साधना का भी यह रजत-जयन्ती वर्ष है जो समता साधना वर्ष के रूप में सर्वत्र मनाया जा रहा है । हमारी अन्तःकरण से उन्हें कोटिशः वन्दन के साथ, यही कामना है कि इक्कीसवीं सदी में भी ये आध्यात्मिकता की अलख जगाने हेतु जिनशासन की बागडोर संभाले रहें ।

"आशीष-४/३०६ अशोकनगर, उदयपुर (राज.)

□

△ △

卐

□ □
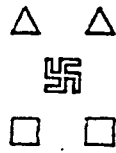
# अनन्य श्रद्धा केन्द्र : आचार्य नानेश

□ दीपचन्द भूरा

भूतपूर्व अध्यक्ष, श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ

मेवाड़ के दांता ग्राम में पिता मोडीलाल जी के घर माता श्रृंगारदेवी जी की कोख से जन्मे इस 'नाना' नाम के देहाती बालक ने आज अपने तप, संयम, स्वाध्याय, ज्ञान और चारित्र से समाज जीवन को दिशा बोध दिया है।

आपश्री ने प्रकृति की मुक्त गोद में, वीरधरा मेवाड़ की पथरीली धरती पर खेलते-कूदते, खुले वातावरण में अपना प्रारम्भिक जीवन बिताया। आप प्रारम्भ से निर्मल, निश्छल हृदय और संकल्पशील साहसी मन के स्वामी रहे। जीवन को परिवर्तन के पथ पर, भौतिकता की चकाचौंध से हटाकर आध्यात्मिकता के मार्ग पर वीतरागता की उपासना में जिस सरलता से आपने मोड़ दिया, समर्पित कर दिया, वह अभिनन्दनीय है। प्रथम सम्पर्क में ही साधुता के मर्म को पहिचान कर उसे आत्मसात् करने की अद्भुत क्षमता के प्रदर्शन से समाज ने पूत के पांव पालने में ही पहिचान लिए। आपने अपने को गुरुदेव के श्रीचरणों में इस प्रकार समर्पित कर दिया कि गुरु-शिष्य एक प्राण दो देह हो गए। गुरुदेव के मानसलोक की विचार तरंगों को अभिव्यक्ति से पूर्व ही समझकर स्वयं को तदनुरूप आचरण हेतु समग्र रूपेण, सर्वभावेन समर्पित कर दिया। स्व. पूज्य श्री गणेशाचार्यजी ने आपको साधना पथ के अडिग साधक और श्रेष्ठ अनुशास्ता के रूप में पहिचाना और अपना सबल उत्तराधिकारी मनोनीत किया। इस गुरुत्तर उत्तरदायित्व को धारण करने पर भी आपकी सरलता और निरभिमानता यथावत् बनी रही। आपके आत्मीय स्नेह से युक्त अमृत वचनों ने अब तक देश के लक्ष-लक्ष जनों को सत्पथ का पथिक बना दिया है।

मेरे पूज्य पिताजी स्व. श्री भीखमचन्द जी भूरा हुकम परम्परा के अनन्य श्रद्धानिष्ठ सुश्रावक थे और मेरी पूज्य मातुश्री भी उत्तम धार्मिक संस्कारों से युक्त सद्गृहिणी थीं। इन दोनों के पवित्र प्रभाव से हमारे पूरे परिवार पर साधुमार्गी परम्परा के श्रेष्ठ संस्कार बने रहे। मैं भी अपने पिताश्री के साथ समय-२ पर गुरु चरणों में उपस्थित होता रहा। पूज्य गुरुदेव श्री नानेशाचार्य की मुझ पर हमेशा अनन्त कृपा बनी रही और आज भी है। पिताजी के प्रोत्साहन से मेरी गुरुभक्ति बढ़ती ही चली गई। परम श्रद्धेय आचार्य श्री जी को देशनोक चातुर्मास से मैंने अत्यन्त निकट से देखा और पाया कि इस विराट व्यक्तित्व में प्राणीमात्र के प्रति अथाह करुणा सागर लहरा रहा है।

प्रतिवर्ष चातुर्मास में आपकी सेवा में उपस्थित होने से मुझे अपने जीवन विकास हेतु अनन्त प्रकाश मिलता रहा। मेरा कार्य व्यवसाय और पारिवारिक जीवन उत्तरोतर प्रगति करता चला गया गया। जीवन

में न जाने कितने ऐसे अनुभव मुझे हुए जब मैंने गुरुदेव के आशीर्वाद को प्रत्यक्ष अनुभव किया । अनेक बार संभावित भीषण दुर्घटनाएं टलीं और मुझे हर बार अहसास हुआ कि पूज्य गुरुदेव का वरदहस्त मेरे साथ है।

गुरुदेव की अनन्त कृपा से संघ ने मुझे अध्यक्ष का महान् गौरवशाली पद सौंपा । मैं सोचा करता था कि इस विशाल देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैले श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ की शाखाओं और सदस्यों को संगठित करने, समाज और देश को उन्नति की ओर बढ़ाने के इस उत्तरदायित्व को कैसे पूरा कर पाऊंगा, किन्तु आज मैं हर्ष तथा गर्व से कह सकता हूं कि पूज्य गुरुदेव की कृपा से मैं बड़ी सहजता से अपना कार्यकाल पूरा कर सका और उस कार्यकाल में पूर्वांचल के स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य प्रवास सम्पन्न हुए और उस कार्यकाल में गुरुदेव की नेश्राय में सैकड़ों वर्षों के स्थानकवासी समाज की यशोगाथा में ढूंढने से भी न मिल सकने वाला २५ भागवती दीक्षाओं का महान् आयोजन रतलाम में सुसम्पन्न हुआ। बोरीवली में दक्षिण भारत के युवा स्पेशल रेल लेकर गुरुदेव के चरणों में उपस्थित हुए, बैंगलोर के संघ में भी अप्रतिम भक्ति दिखाई दी । इस प्रकार दक्षिण भारत में शासन निष्ठा का उभार प्रत्यक्ष हुआ, जिससे उस क्षेत्र में संघ के गौरव वृद्धि की आशा बंधी थी, जो आज फलीभूत हो चुकी है । इन्हीं दिनों में रतलाम महिला उद्योग मन्दिर हेतु भूमि क्रय और भवन निर्माण की भाव भूमि का निर्माण हुआ । 'जिणधम्मो' जैसे ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ । इस प्रकार अनेक कार्यक्रमों की सफलता ने श्री अ भा. साधुमार्गी जैन संघ के गौरव को चार चांद लगाए और यह सब गुरुदेव के अतिशय का पुण्य--प्रताप है । मुझे इस अवधि में अध्यक्ष पद पर आसीन होने का जो सौभाग्य मिला, वह मैं मात्र निमित्त के रूप में गुरुदेव की कृपा का प्रसाद मान कर ही स्वीकार करता हूं ।

आज जब भी हम श्रमणोपासक को उठाकर हाथ में लेते हैं, इसके पन्ने पलटते हैं और समाचारों को पढ़ते हैं तो पृष्ठ-पृष्ठ पर, पंक्ति-पंक्ति में त्याग, तप, स्वाध्याय, शिक्षण, प्रशिक्षण और शिविरों द्वारा संस्कार प्रदान कार्यक्रमों की भरमार दिखाई देती है । संतो-सती, श्रावक-श्राविका और आबाल-वृद्ध में जैसा अद्‌भुत उत्साह देशभर में दिखाई दे रहा है, वह समीक्षण ध्यान योगी. जिनशाशन प्रद्योतक आचार्य-प्रवर के महान् चारित्र का प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

रजत जयन्ती वर्ष और समता साधना वर्ष की इस पुनीत वेला में मैं अपने आराध्य आचार्यश्री नानेश के श्री चरणों में अनन्य श्रद्धापूर्वक वन्दन करता हूं ।

—देशनोक, (बीकानेर)

# "आचार्य श्री नानेश और समता दर्शन"

( विद्वद्वर्य श्री ज्ञानमुनिजी म. सा. द्वारा व्यक्त किये गए विचारों का संकलन)

विषमता का ज्वालामुखी आज सर्वत्र प्रज्ज्वलित हो रहा है। मानव जीवन अशान्त, विक्षिप्त और विश्रृंखल हो विकृति के गर्त की ओर अग्रसर हो रहा है। अमावस्या की रात्रि के घने अंधकार की तरह विषमता व्यक्ति से लेकर परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व तक विस्तृत होकर, मानव हृदय की सुजनता तथा शालीनता का नाश करती हुई, प्रलयंकारी विकराल दृश्य उपस्थित कर रही है।

**विषमता का उद्भव :**

सर्व-विनाशिनी इस विषमता का मूल उद्भव स्थल मानव की मनोवृत्ति है। जिस प्रकार वट वृक्ष का बीज राई के समान सूक्ष्म होता हुआ भी उपयुक्त साधन मिलने पर विशाल रूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार मानव की मनोवृत्ति से समुत्पन्न विषमता का बीज भी हर क्षेत्र में अपनी शाखा-प्रशाखाएं प्रसारित कर देता है, जिससे दलन, शोषण और उत्पीड़न की चोटें सहन करता हुवा प्राणी चैतन्य से जड़त्व सुषुप्ति की ओर बढ़ता जाता है।

धरती की समानता तथा सर्वत्र एक रूप में वर्षा होने पर भी एक ही क्षेत्र में एक ओर सुस्वादु इक्षु व दूसरी ओर मादक अफीम का वपन किया जाय तो इनका प्रस्फुटन ऐसा होगा कि एक जीवन-रक्षण में सहायक है तो दूसरा मृत्यु का कारण। इसी प्रकार दो हृदय एक से होने पर भी यदि एक में समता का और दूसरे में विषमता का बीज वपन किया जाय तो दोनों की अवस्था गन्ने एवं अफीम के सदृश होगी। समता जीवन का सर्जन करती है तो विषमता जीवन की मानसिक, वाचिक, कायिक अवस्था को विषमय करती हुई, उसको विनाश के कगार पर पहुंचा देती है। कहा है :—

अज्ञान कर्दमे मग्नः जीवः संसार–सागरे।
वैषम्येण समायुक्तः, प्राप्तुमर्हति नो सुखम् ॥

अर्थात्–संसार-सागर के अज्ञान रूपी कीचड़ में लीन, विषमता से युक्त जीव कभी भी सुख को प्राप्त नहीं कर सकता है।

अतः मानव समाज में जितने भी दुर्गुण हैं, वे सभी विषमता से ही उत्पन्न हुए हैं और मानव के द्वारा सिंचित होकर विराट रूप धारण कर रहे हैं।

**महावीर का समता सिद्धान्त :**

भगवान् महावीर ने कहा है कि सभी आत्माएं समान हैं। सभी को जीने का अधिकार है। कोई भी किसी की सुख-सुविधा का अपहरण नहीं कर सकता। जिस प्रकार चोरी करने वाला दण्डित किया जाता है, क्योंकि उस वस्तु पर उसका अधिकार नहीं है, वैसे ही किसी अन्य के जीवन, इन्द्रिय, शरीर पर

किसी का कोई अधिकार नहीं है । सभी को समान रूप से जीने का अधिकार है । अतः किसी के प्राणों का व्यपरोपणादि करना अपराध है । एतदर्थ भगवान् का मूल उद्घोष है:—"जीओ और जीने दो।" इस सिद्धान्त को ज्ञान, आचरणपूर्वक अपनाने से अवश्य ही जीवन में समता रस की प्राप्ति हो सकती है।

**आचार्य श्री नानेश द्वारा समता-प्रसार :**

विषमता के इस वातावरण में व्यक्ति और विश्व के जीवन में शान्ति का सौरभमय वा उपस्थित करने के लिये आचार्य श्री नानेश द्वारा समता का प्रचार-प्रसार किया जा रहा है । सम्पूर्ण प्राणियों की, चाहे वे ऋद्धिवान् हों या निर्धन, सेठ हों या किंकर, तिर्यंच हो या मनुष्य देव हों या नारक गुरु हो या शिष्य, आत्मा समान है । कर्मावरण से किसी की आत्मा अधिक आच्छादित है तो किसी अल्प, किन्तु आत्म विषयक विभेद नहीं है, 'स्थानाङ्ग सूत्र' में भगवान् ने स्पष्ट फरमाया है:—'एगे आ आत्मा एक है ।

आत्मा की समानता का ज्ञान सुगमता से करने के लिये एक दीपक का दृष्टान्त उपयुक्त जिस प्रकार दीपक कमरे में रखा हुवा यथाशक्ति प्रकाश फैलाता है, वैसे ही उसे छोटे से छोटे स्थान स्थापित करने पर भी उसके प्रकाश में कोई व्याघात की स्थिति नहीं आती । डिब्बे में स्थित किया तो वह उसी स्थान को प्रकाशित करेगा, बाहर नहीं । वैसे ही आत्मा को अल्पतम पिपीलिका का प्राप्त होगा तो वह उसी शरीर में व्याप्त हो जाएगी, बाहर नहीं । तद्वत् हाथी का शरीर प्राप्त होने दीपक के प्रकाश की भांति वह संपूर्ण गज देह में व्याप्त हो जाएगी । इसी प्रकार पृथ्वी, जल, अग्नि, वनस्पति, विकलेन्द्रिय, पशु—पक्षी, मनुष्यादि में भी जानना चाहिये । एतदर्थ सुख शान्ति की अभिलाषा वाले मानव को चाहिये कि वह सम्पूर्ण जीव—जगत् पर समता का सुभाव रखे । आचार्य श्री नानेश ने के चार सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है:—

१. सिद्धान्त-दर्शन, २. जीवन दर्शन, ३. आत्म-दर्शन एवं ४. परमात्म-दर्शन ।

**१. सिद्धान्त-दर्शन :** समता का सैद्धान्तिक स्वरूप है कि सम-सोचें, समजानें, सम सम देखें, समकरें, । जीवन के प्रत्येक कार्य में समभाव का होना अत्यन्त आवश्यक है । एतद् एकता के लिये भोगविलास से हटकर जीवन में त्याग-वैराग्य संयमित अवस्था की अपेक्षा है । संय तात्पर्य मुण्डित होना ही नहीं, किन्तु मन इन्द्रियों को संयमित-सुरक्षित रखना है । मनोज्ञ-अमनोज्ञ पहुंचने पर राग—द्वेष की भावना उत्पन्न न करना, श्रोतेन्द्रिय को संयमित करना है । इसको वश में न से बहुत अनर्थ होने की संभावना रहती है । महाभारत का युद्ध इसी का परिणाम है । द्रौपदी ने दुर्यो यही कहा था कि 'अंधे के पुत्र अंधे ही होते हैं ।' इस शब्द के तीव्र व्यंग्यबाण का आघात दुर्योधन नहीं कर सका जिससे कि हजारों लाखों निरपराध प्राणियों का संहार हो गया । अतः श्रवणेन्द्रिय वशीभूत रखना आवश्यक है । इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय के आगे किसी भी प्रकार का अच्छा श्लील-अश्लील चित्र आए, नाक में अच्छी वा बुरी गंध आए, जिह्वा द्वारा खट्टा-मीठा कोई भी स्वाद शरीर का स्पर्श कठोर या रूक्ष हो, राग-द्वेष की उत्पति न होना समता का सच्चा स्वरूप एवं सिद्धान्त कहा है:—

गृह्णाति हृदि भद्रेण, त्यागवैराग्य—संयमम् ।
लभते सम-सिद्धान्तं, जीवनोन्नति-कारकम् ।।

अर्थात् त्याग, वैराग्य, संयम आदि सिद्धान्तों को सरलता से मानता है, वह जीवन उन्नतिकारक मता सिद्धान्त को प्राप्त करता है।

२. जीवन दर्शन : विषमता के घने अन्धकार में समता की एक ज्योति ही आशा का संचार रती है। जिस प्रकार एक दीपक अनेक दीपकों को अपनी शक्ति से प्रज्वलित कर देता है, वैसे ही सम्यक् ान सहित आचरण से स्वयं के जीवन को प्रज्वलित करते हुए अनेकों के जीवन का भी नव-निर्माण करते । इसके लिए व्यक्ति में पहले समता भाव होना परमावश्यक है। समता भाव की साधना के लिए व्यसनों का त्याग करते हुए जीवनोपयोगी, आत्म-दर्शन की साक्षात् कराते वाली उपादेय वस्तुओं का आचरण था-शक्ति करना चाहिये। 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' के सिद्धान्त को समक्ष कर जीवन का सर्जन करना समता ा द्वितीय सोपान जीवन-दर्शन है। कहा भी है-

**पलं सुरापणाखेटौ, चौर्यं वेश्यापराङ्गना।**
**सप्तव्यसनसंत्यागः, दर्शनं जीवनस्य तत्॥**

अर्थात्-सप्त कुव्यसनों का आचरण नहीं करना तथा जीवन को सदा सादा, शीलवान, अहिंसक नाये रखना समता-जीवन का दर्शन है।

३. आत्म-दर्शनः—जब जीवन पूर्णरूप से संयमित हो जाता है तब आत्म दर्शन की अवस्था ाप्त होती है। एक मानव शरीर, जिसे हम चैतन्य कहते हैं, उसमें तथा अपर मृत मानव शरीर में क्या न्तर है ? एक क्षण पूर्व जिसकी इन्द्रियां सजग एवं जागरूक थीं, मन चिन्तन में रत था, वचन में शब्द रिस्फुटित हो रहे थे, काया में स्पन्दन हो रहा था, दूसरे ही क्षण हृदय गति रुकी और वह मृत हो गया। ाष्कर्ष यह कि चेतना शक्ति जब तक शरीर के अन्दर रहती है, तब तक देह का संचार चलता रहता है। ोंहि चेतना शक्ति शरीर से बाहर निकल जाती है, तत्क्षण शरीर को मृत कहा जाता है। पौद्गलिकता के ारण शरीर की उत्पत्ति तथा विनाश होता रहता है, जिसे मृत या जीवित की संज्ञा दी जाती है, किन्तु ात्मा का न कभी नाश हुआ है न कभी उत्पत्ति। वह अनादि काल से एक रूप में चली आ रही है। कर्म ी विचित्रता से सूर्य पर मेघपटल की तरह आवरण आता रहता है जिससे चैतन्य प्रकाश आच्छादित हो ाता है। कर्म के क्षयोपशम होने पर पुनः प्रकट सूर्य की तरह चैतन्य प्रकाश प्रकट हो जाता है किन्तु ात्मा सदा तिर्यंच, मनुष्य, नरक, देव और भूत, भविष्य, वर्तमान, में एक समान रहती है। वह अपने र्मों का स्वयं कर्त्ता-भोक्ता है, यह प्रमाणों से सिद्ध है। कहा भी है:—

**प्रमाण सिद्धचैतन्यः, कर्त्ताभोक्ता फलाश्रितः।**
**निज देह प्रमाणे यः स आत्मा जिनशासने॥**

उपर्युक्त लक्षण से युक्त आत्मा की आवाज को जो सुन लेता है और तदनुसार आचरण करता , वह अवश्य ही आत्म-विकास की अवस्था को प्राप्त कर देता है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति आपके ागतार्थ नोटों की गड्डियां गिनता हुआ, उन्हें छोड़कर जलपान की सामग्री के लिए, बाहर चला जाता है, ापके हृदय में जड़ मन और चैतन्य आत्मा का युद्ध होता हैं। मन कहता है कि कुछ नोट उठा लिये ायें, तभी आत्मा की आवाज उठती है कि यह चोरी है, अन्याय, अपराध है। जिसकी आत्मा जागृत हो ठती है सो वह जड़त्व भावना को परास्त कर आत्म-दर्शन में लीन हो जाता है। कहा है-

**अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकिञ्चनं ।**
**यश्चपालयते नित्यं, समाप्नोत्यात्मदर्शनं।।**

अर्थात्—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह को जो सर्व रूप से संयमित हो पालन करता है, वह आत्म-दर्शन को प्राप्त करता है ।

**४. परमात्म-दर्शन** :–जब आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है तब त्वरित रूप से परमात्म अवस्था की भी प्राप्ति हो जाती है । जैन-दर्शन परमात्मा को कोई अलग से नहीं मानता । उसकी तो यही मान्यता है कि आत्मा ही संसार से विरक्त होकर सर्वांगीण रूप से कर्मजाल को हटाकर, गुणस्थानों की अन्तिम श्रेणी अयोगी केवली की अवस्था की प्राप्ति हो जाने पर पांच ह्रस्व अक्षर के उच्चारण मात्र में जितना समय लगता है, उतने ही समय में, नीरोग, निरूपम, स्वाभाविक, अबाधित, निरंजन, निराकार, अर्हन्त से सिद्ध की प्राप्ति कर लेती है । विश्व का कोई भी प्राणी क्यों न हो, इस सिद्धान्त से प्राणियों में स्वाभि- मान जागृत होता है और वे अपने पुरुषार्थ से जीवन को अनादिकालीन संसार से हटाने में प्रयत्नशील होते हैं । यही आत्मा से परमात्मा पद का साक्षात्कार करना है । कहा है:—

**कर्मणश्च विनाशेन, संप्राप्यायोगिजीवनं ।**
**संसारे लभते प्राणी, परमात्मपदं फलम् ।।**

इस प्रकार विश्व की विषमता को दूर करने के लिए युगप्रवर्तक, जिन शासन प्रद्योतक, धर्मपाल प्रतिबोधक, समता दर्शन के पथ प्रदर्शक आचार्य श्री नानेश के सिद्धान्तों व सूत्रों का जो कोई भी व्यक्ति जीवन में आचरण करेगा, वह अवश्यमेव शान्ति, सुख और आनन्द की अनुभूति कर सकेगा ।

जीवन को समतामय बनाने के लिए आचरण के २१ सूत्र एवं समतावादी, समताधारी और समतादर्शी के रूप में तीन सूत्र भी आचार्य प्रवर ने बतलाए हैं । आचार्य प्रवर का यह कथन कि "विश्व में कभी भी शांति का प्रसार होगा तो वह समता दर्शन से ही होगा," सर्वथा सत्य है ।

समता की उपयोगिता एवं महात्म्य को ध्यान में रखकर ही यह वर्ष भी अन्तराष्ट्रीय स्तर पर "समता वर्ष" के रूप समुद्घोषित किया है । विश्व में शांति के प्रचार-प्रसार के लिए आवश्यकता है— आचार्य प्रवर द्वारा प्रवर्तित समता दर्शन के सम्यक् प्रसार की ।

संकलनकर्त्ता— **चम्पालाल डागा**
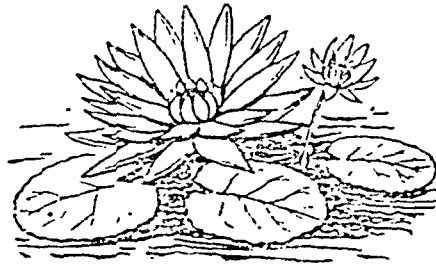
# आचार्य श्री नानेश और समीक्षण ध्यान

(विद्वद्वर्य श्री ज्ञानमुनिजी म. सा. द्वारा व्यक्त किये गए विचारों का संकलन)

आधुनिक युग का प्रत्येक मानव शारीरिक टेन्सन के साथ ही मेन्टल–टेन्सन से ग्रस्त परिलक्षित हो रहा है। जबकि मानव ने तनाव-मुक्ति की अथक क्रियान्विति में कोई कमी नहीं रखी है। जीवन का हर क्षण, हर पल, हर क्रिया तनावमुक्ति एवं सुख की खोज में ही लगी हुई है। भौतिक विज्ञान की अकल्पित उन्नति में भी मूलभूत सुख की आकांक्षा ही रही हुई है। जिस अभीप्सा-इच्छा के पीछे मानव ने गगनाङ्गन की परिक्रमा की, भूगर्भ में पैठ की, जीवन के हर मोड़ पर सुख की खोज की तथापि सफलता के आसार नजर नहीं आए।

हां, यह अवश्य हुआ, फुटपाथ पर रहने वाला मानव गगन-चुम्बी महलों में चला गया। फर्श पर सोने वाला इन्सान मखमली कालीनों, डनलप के गद्दों पर सोने लगा। फल फूल खाकर जीवन निर्वाह करने वाला आदमी छप्पन भोग खाने लगा। वल्कल भी जहां नसीब नहीं थे, वहां आज आधुनिक परिधान में सज गया। भौतिकता की इस घुड़-दौड़ ने उसे निश्चित ही बाह्य रूप से सजाया और संवारा किन्तु इस सजावट के पीछे उसे बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा है, बहुत बड़ी क्षति सहन करनी पड़ी, जो वर्तमान दुःख से कहीं अधिक जन-जीवन को संत्रस्त बना रहा है।

बाह्य सजावट ने उसके अन्तरंग को क्षत-विक्षत कर डाला है। जिस चैन की सांस, भौतिकी सजावट के बिना, वह आदिम युग में लेता था। गहरी निद्रा अंग-अंग में ताजगी भर देती थी। जहां अरण्य निवास एवं भू-शयन भी सुख की अनुभूति कराने वाला था, वहां आज भौतिक-प्रधान जीवन ने उससे सब कुछ छीन लिया है। गगन चुम्बी महलों में करोड़ों की संपति के मालिकों को मखमली कालीन पर भी नींद नहीं आती। काम्पोज की टेबलेट एवं मर्फिया के इंजेक्शन लेकर भी वे उचट पड़ते हैं। वैचारिक तनाव ने उनके अन्तरंग जीवन को क्षत–विक्षत कर डाला है। लगता है जिस कगार पर खड़ा इन्सान आर्त्तनाद कर रहा था, शांति के लिए, सुख के लिए, उसी से आज वह अशांति के महागर्त्त में कूद पड़ा है। कगार पर तो आर्त्तनाद की अभिव्यक्ति थी, किन्तु अब दुःखों का भयानक ज्वाला-मुखी ही फूट पड़ा है। जिसमें उसने अपनी भीतरी शांति, क्षमा, मानवता, सौजन्य के गुणों को जलाकर राख कर डाला है, आज वह अशांति की जिस गहराई में उतर गया है, जिस कदर ओत-प्रोत हो गया है, जिस पंकिल में फंस गया है, उससे उभरना, शांति की सांस पाना, असंभव तो नहीं, दुःसाध्य अवश्य है।

ऐसे भयानक गर्त से निकलने के लिए उतना ही सशक्त अवलम्बन चाहिये। कच्चे तारों के सहारे उबरपाना कभी संभव नहीं है। आश्चर्य कि इस विकट स्थिति में भी अधिकांश मानवों के विचार यथार्थता की ओर उन्मुख नहीं हो पा रहे हैं। अंधेरे में निशाना साधने की तरह ही उसकी गति निरर्थक हो रही है। जब तक गति में मोड़ नहीं आएगा, विचारों में संशोधन नहीं होगा, सशक्त अवलम्बन नहीं

मिलेगा। तब तक अनंत जन्मों एवं अगणित शताब्दियां व्यतीत होने पर भी वह उसी स्थान पर खड़ा मिलेगा, जिस पर आज है, बल्कि उससे गिरावट संभवित है, उन्नति तो कदापि संभवित नहीं।

अन्तरंग की क्षत-विक्षत अवस्था को सुसज्जित करने के लिए शक्ति के प्रवाह को अन्तः में सम्यक् प्रकार से प्रवाहित करना होगा। अन्तरंग का भूगर्भबहुत विशाल और व्यापक है। अगणित गुफाएं-प्रति गुफाएं है। यदि गति क्रिया लक्ष्यानुरूप नहीं होगी तो गुफा-प्रति-गुफा में प्रवेश संभावित है, जिनसे उबरना एवं पुनः लक्ष्यारूढ होना अतीव दुर्लभ है। लक्ष्यानुरूप अन्तः गति के लिए समर्थ निर्देश और सशक्त अवलम्बनः यदि इस भौतिकता की चका-चौंध में कुछ है तो प्रभु महावीर का शासन एवं उनमें विचरण करने वाले समता–विभूति आचार्य श्री नानेश की आगमिक सिद्धान्तों पर प्रतिपादित समीक्षण ध्यान साधना की मौलिक पद्धति।

जैसे अनन्त आकाश का सीमा बन्धन नहीं किया जा सकता वैसे पौद्गलिक अनन्तता की वाचिक अभिव्यक्ति संभवित नहीं। लोकोत्तर की उपलब्धि अहर्निश दौड़ से भी संभव नहीं। ठीक इसी प्रकार अन्तरंग की अभिव्यक्ति, भौतिकता की दौड़ से लेश मात्र भी संभावित नहीं है। किन्तु अन्तःजागरण पर उसका ज्ञाता एवं दृष्टा भाव संभवित हैं। एक ही स्थान से आत्मा से अनंतता का ज्ञान एवं दर्शन किया जा सकता है। जीवन की गहराइयों में उतरकर अनंत ज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख और अनंतशक्ति को शाश्वत रूप से अभिव्यक्त किया जा सकता है। अनन्तशक्ति का स्रोत बाहर नहीं, भीतर ही है। अनंतता तक गति नहीं, पर विज्ञप्ति संभवित है। इस विज्ञप्ति के लिए समीक्षण-ध्यान साधना पद्धति को समझना होगा। स्वयं प्रभु महावीर की साधना, समीक्षण से अनुरंजित थी, प्रभु की समीक्षण प्रज्ञा ने आत्मा की अनतता को अभिव्यक्ति दी थी। जिस अभिव्यक्ति ने लोका-लोक की विज्ञप्ति दी, वह उन्हीं के मुख से निम्न शब्दों में स्फुरित हुई। प्रभु ने फरमाया—

**उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु,**
**तसाय जे थावर जे य पाणा।**
**से निच्च निच्चेहिं समिक्खपन्ने,**
**दीवे व धम्मं समियं उदाहु॥**

(सूत्रकृताङ्ग सूत्र १/६/४)

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी, प्रज्ञापुरुष प्रभु महावीर ने उर्ध्वलोक अधःलोक, तिर्यक्लोक में स्थित त्रस एवं स्थावर जीवों की नित्यता-अनित्यता का **समीक्षण कर** दीपक के समान धर्म का कथन किया।

इस कथन से प्रभु द्वारा किया गया त्रिकाल-त्रिलोक का ज्ञान, समीक्षण पर आधारित है। यह बात स्पष्ट प्रमाणित होती है। यही नहीं प्रभु ने धर्माचरण के लिए भी स्पष्ट रूप से कहा है—

**पन्ना–समिक्खए धम्मं,**
**तत्तं तत्तं विणिच्छियं।**

उत्तराध्ययन सूत्र २३/२५

आत्म-धर्म का समीक्षण एवं सत् तत्त्व का विनिश्चय प्रज्ञा द्वारा होता है।

इस प्रकार का कथन, आगमों में स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है। जो इस बात को प्रमाणित करता है कि तनावमुक्ति एवं आत्मशांति के लिए प्रज्ञा में समीक्षण का होना आवश्यक है। जिसकी प्रज्ञा, पूर्ण रूप से समीक्षण से अनुरंजित हो जाती है, वह शाश्वत शांति को प्राप्त कर लेता है।

समीक्षण है क्या ? प्रजा को समीक्षण से अनुरंजित कैसे बनाया जाय ? इसके विधि-विधान क्या है ?

इन सब का प्रस्तुतीकरण प्रज्ञानिधि, समीक्षणयोगी, गुरुदेव आचार्य श्री नानेश की अनुभूति पुरस्सर वाणी से उद्भासित हुआ है । इसीलिए "समीक्षण ध्यान साधना पद्धति" सोना में सुहागा की लोकोक्ति को चरितार्थ करती है । क्योंकि "समीक्षण-ध्यान" बीज रूप से सर्वत्र विद्यमान तथा विशाल वृक्ष के रूप में आगम सम्मत प्रस्तुतीकरण महायोगी आचार्य प्रवर द्वारा होने से यह सच्चे ध्यान जिज्ञासुओं के लिए नितान्त उपादेय है ।

आचार्य प्रवर ने "समीक्षण" की परिभाषा इस प्रकार की है—सम+ईक्षण (सम का अर्थ है समता अथवा सम्यक् और ईक्षण का अर्थ देखना है—(समीक्षण ध्यान प्रयोग विधि से) समता मूलक पैनी बुद्धि से किसी भी वस्तु को देखना, समीक्षण कहलाता है । यह एक ऐसी तटस्थ दृष्टि है कि जिससे जिस किसी वस्तु को देखने का अवसर प्राप्त हो, उस समय यह समीक्षण दृष्टि किसी भी दिवार में अटके नहीं; किन्तु राग द्वेष की सशक्त दिवारों के मध्य से अछूती गुजरती हुई भीतर में प्रवेश कर जाय (मान समीक्षण से) । तभी आत्म-शांति उपलब्ध हो सकेगी ।

"समीक्षण प्रज्ञा" द्वारा सर्व-प्रथम स्वयं वृत्तियों का समीक्षण आवश्यक है । क्योंकि अध्यात्म-साधना में चित्तवृत्तियों के नियंत्रण-संशोधन का प्रावधान प्रमुख है । चित्त-वृत्तियों के संशोधन की विवेचना में आचार्य प्रवर ने "योग" की अत्यन्त सुन्दर परिभाषा दी है—"योगश्चित्तवृति संशोध:" चित्त-वृत्तियों का संशोधन योग है । यह संशोधन भी सहज-साध्य नहीं । अनन्तकाल से धावमान चित्त को सहज ही संशोधित एवं नियंत्रित कैसे किया जा सकता है । इसे नियंत्रित करने के लिए अनेक साधकों ने विभिन्न प्रयोग किये भी, उससे सामयिक समाधान जरूर मिला, पर शाश्वत नहीं । शाश्वत समाधान तो सर्वज्ञ निर्देशित शाश्वत-ध्यान ही दे सकता है । और वह है समीक्षण ध्यान साधना ।

आचार्य प्रवर ने इसके विधि-विधान की भी विस्तृत चर्चा की है । जिनमें कुछ तो प्रारंभिक ध्यान साधकों के लिए "समीक्षण-ध्यान-प्रयोग विधि" के रूप में उभर कर आई है । प्रस्तुत में विधि-विधान की सुविस्तृत चर्चा संभव नहीं, अत: संक्षिप्त में ही कुछ निदर्शन कराया जा रहा है—

१. समीक्षण-ध्यान में प्रवेश करने वाला साधक स्थान एवं वातावरण की विशुद्धि का सर्व प्रथम ध्यान रखे । जो भी स्थान हो, वह प्रतिदिन के लिए निश्चित हो, साथ ही वातावरण भी विषमता एवं विषय-कषाय जनित न हो । क्योंकि साधक पर इसका गहरा प्रभाव होता है । खराब वातावरण चित्त वृत्तियों को उद्वेलित कर सकता है । अत: साधना के लिए सर्वोपयोगी स्थान एकान्त, नीरव एवं सभी प्रकार के इन्द्रियाकर्षणों से रहित होना चाहिये ।

२. ध्यान साधक अपना वेश भी सात्विक एवं सादा रखे । क्योंकि रहन-सहन में भी जितनी सात्विकता होगी, चित्त उतना ही शीघ्र साधना के प्रति समर्पित होगा । "सादा जीवन उच्च विचार" की उक्ति उसका अभिन्न अंग बन जाए ।

३. ध्यान का समय निश्चित हो । जो भी समय हो, प्रतिदिन उसी समय ध्यान के लिए बैठा जाए । क्योंकि मन के साथ समय का भी बड़ा तादात्म्य है । व्यवहार में देखा जाता है जो समय प्रतिदिन

किसी के चाय पीने का है उस समय उसमें चाय की इच्छा पैदा हो ही जाएगी। इसी प्रकार ध्यान की अन्तरंग जिज्ञासा के लिए समय का निश्चय आवश्यक है।

४. साधना का समय अपर रात्रि निर्धारित किया हो तो साधना में प्रवेश के समय से करीब ३० मिनिट पूर्व निद्रा–भंग एवं शयनासन परित्याग आवश्यक है और उस समय आवश्यक हो तो शारीरिक चिन्ता दूर करने में वह स्वतंत्र है। ठीक समय पर वह सामायिक/संवर की साधना के साथ, प्रमाद निवारण के लिए पूर्वाभिमुख हो ग्यारह बार पचांग नमाकर (तिक्खुतों के पाठ से) वन्दन करे। वन्दन से लाघव गुण भी प्रकट होगा।

५. पद्मासन या सुखासन में बैठकर मेरूदण्ड सीधा रखा जाय, जिससे प्राण संचार में व्यवधान न हो।

६. अटल संकल्प पूर्वक संसार के समस्त मोह–जालों को उस समय के लिए परित्या कर दे। क्योंकि दृढ़ संकल्प का प्रभाव मानस पर जोरदार होता है।

संकल्प की दृढ़ता, परिवेश की शुद्धता, वातावरण की पवित्रता तथा विनय–विवेक के साथ त्याग भावना की ओजस्विता के द्वारा साधना के लिए उपयोगी भूमिका का निर्माण होता है।

७. कुछ समय तक दीर्घश्वास-निःश्वास तदनन्तर पूरक-रेचक-कुंभक करके भीतरी गंदगी को निकालकर मन को शान्त-प्रशान्त बनाया जाय। भ्रामरी गुंजार के द्वारा भीतर की मंदशक्तियों को सक्रिय किया जाय।

८. अतीन के चौबीस घण्टों का चिन्तन कर विपरीत–वृत्तियों को दूर करने का संकल्प लिया जाय। भविष्य के चौबीस घण्टों के कार्य–काल का सामान्य निर्धारण कर लिया जाय जो कि समीक्षण से अनुरंजित हो।

९. चार-शरणों के प्रति अपने आपको सर्वतोभावेन समर्पित कर दिया जाय। समर्पण का य रूप अपने अस्तित्व को जगाने वाला होता है। जिस प्रकार पानी, दूध में मिलकर दूध का मूल्य पा लेत है।

१०. अपनी वे कुआदतें जो छूट नहीं रही हों तो उन को छोड़ चुके महापुरुषों के आदर्श जीवन का चिन्तन किया जाय।

११. आत्मा से परमात्मा तक की यात्रा के क्रम का चिन्तन आत्मसात् होकर किया जाय।

१२. कुछ समय के लिए स्वयं संकल्प पूर्वक 'शांत रहने की कोशिश करें। उस बीच उठ रहे विचारों के लिए "जाने दो–जान दो" का संकल्प करे। जिससे मन-शिथिल हो, शांत एवं सतेज हो जाय।

१३. प्रतिदिन मन को वश में करने के लिए, किसी न किसी प्रकार का नियम ग्रहण करें।

उपर्युक्त समीक्षण-साधना का पद्धति क्रम अति-संक्षिप्त में रखा गया है। सुविस्तृत जानकारी के लिए आचार्य प्रवर के समीक्षण संवन्धित साहित्य के मनन पूर्वक पठन की आवश्यकता है एवं प्रयोग के लिए उनके पावन सान्निध्य की।

"समीक्षण ध्यान" की स्थिति निश्चित समय तक तो की ही जाती है, पर उसकी गूंज पूरे चौबीस घण्टे तक मानस पर कायम रहनी चाहिये। जिस प्रकार घड़ी में दी गई चावी से वह चौबीस घण्टे

तक चलती है। जब तक ध्यान व्यक्ति के चौबीस घण्टों को प्रभावित नहीं करता है, तब-तक ध्यान की पूर्ण उपादेयता ज्ञात नहीं हो पाती। ध्यान, जब व्यावहारिक जीवन के साथ जुड़ता है, तब वह उस जीवन में सुख का अमिय रस घोल देता है। क्योंकि जब हमारी दृष्टि सम्यक् है तो विषम भाव पैदा ही नहीं हो सकता और विषमभाव के बिना अशांति पनप नहीं सकती। भगवान् महावीर की दृष्टि-समीक्षण से अनुरंजित होने के कारण ही इतने परिषह एवं उपसर्गों की स्थिति बनने पर भी उनमें अशांति उत्पन्न नहीं हुई।

"समीक्षण" स्व के निरीक्षण का अवसर प्रदान करता है और जो व्यक्ति स्व का निरीक्षण कर लेता है, वह व्यक्ति उत्तमोत्तम सोपान पर आरोहण करता जाता है। स्व का निरीक्षण का एक व्यावहारिक उदाहरण है—एक बार एक व्यक्ति, रात्रि में कोई लेखन कार्य कर रहे थे। लिखते-लिखते उनकी स्याही समाप्त हो जाती हैं। तब उन्होंने नौकर को स्याही लाने को कहा। यथास्थित स्याही की दवात को उठा लाया और उनके हाथ में देने लगा। पर कुछ ऐसा ही संयोग बना की दवात नीचे गिर गई और फूट गई। स्याही फैल गई, नीचे बिछा कालीन भी खराब हो गया।

यह देखकर नौकर घबरा गया और कांपने लगा। सोचा आज तो निश्चित डांट पड़नी है। पर यह क्या वह व्यक्ति बोला भाई! घबराने की कोई बात नहीं है, तुम्हारी कोई गल्ती नहीं है, गल्ती तो मेरे से हुई कि मैंने दवात को सही ढंग से नहीं पकड़ा वह गिर गई।

मालिक के इन शब्दों ने नौकर को भी अन्तः समीक्षण का मौका दिया और वह भी फट से बोल उठा—नहीं मालिक। भूल मुझ से हुई है क्योंकि मैंने आपको दवात सही ढंग से नहीं पकड़ाई थी।

कहां तो संघर्ष होने वाला था। मालिक कहता तुमने नहीं पकड़ाई और नौकर कहता आपने नहीं पकड़ी—इसलिए गिरी। और कहां दृष्टि के सम्यक् मोड़ ने दोनों में परस्पर प्रेम एवं स्नेह का संचार कर दिया।

यह था समीक्षण दृष्टि का प्रभाव। ध्यानाभ्यासी मानव, अपने जीवन के प्रत्येक कार्य को समीक्षण दृष्टि से देखने की कोशिश करे। समीक्षण दृष्टि से अनुरंजित किया गया प्रत्येक कार्य उसके अन्तरंग की शक्तियों को उद्घाटित करने वाला होगा। वातावरण में शांति का संचार करने वाला होगा। क्योंकि ध्यान का असर तत्क्षण होना है। बशर्ते कि ध्यान की विधि को सम्यक् प्रकार से अपनाई जाय।

आचार्य प्रवर ने क्रोध-मान-माया-लोभ जैसे आत्म-गुण के घातक दुर्गुणों को निकालने के लिए स्वतंत्र रूप से उन पर विवेचन प्रस्तुत किया है। जो क्रोध-समीक्षण, मान समीक्षण माया-समीक्षण, लोभ-समीक्षण के नाम से ध्यान-जिज्ञासुओं के सामने आया है।

समीक्षण-ध्यान, मानसिक तनावों को ही नहीं शारीरिक-तनावों को समाप्त करने एवं आत्मा का पूर्ण जागरण करने में सक्षम है।

समीक्षण ध्यान साधना की उपलब्धियां, किसी भी प्रकार की सीमा से आबद्ध नहीं है। जिस प्रकार गोता-खोर समुद्र की गहराइयों में जितना अधिक पैठता जाएगा, वह उतनी ही अधिक मात्रा में बहुमूल्य रत्नों को प्राप्त करेगा। उसी प्रकार समीक्षण की गहराइयों में जो जितना अधिक उतरता जाएगा, वह साधक उतनी ही अधिक मात्रा में आनन्द की अनुभूति करता रहेगा।

अन्तः में युगीन समस्याओं को देखते हुए यह आवश्यक नहीं अति-आवश्यक है कि आचार्य-प्रवर द्वारा प्रवर्तित समीक्षण ध्यान को जीवन में स्थान दिया जाय । कमजोर आंख पर जब प्रमाणोपेत ग्लास लगाए जाते हैं, तब उसे मालूम पड़ता है कि जो धुंधला अब तक मुझे दिखाई दे रहा था, वह यथार्थ में धुंधला नहीं, अपितु स्पष्ट है । यही हॉल समीक्षण का है । जब व्यक्ति की आंख समीक्षण से अनुरंजित होती है, तब उसे सच्चा परिज्ञान होता है ।

ध्यान की अनुभूति, विवेचन या समझाने का विषय नहीं, अपितु अनुभूति का विषम है। अनुभूति के लिये प्रयोग आवश्यक है । सम्यक् प्रयोग करने पर ही ध्यान की उपयोगिता अनुभूत हो सकेगी।

**संकलनकर्त्ता—चम्पालाल डागा**

क्रोध के दो रूप हैं एक प्रकट, दूसरा अप्रकट । पहला प्रज्वलित आग है दूसरा राख में दबी आग । क्रोध का प्रथम रूप अपनी ज्वालाएं बिखेरता दिखायी देता है दूसरे रूप में ज्जालाएं बाहर फूट कर नहीं निकलतीं किन्तु अनबुझे कोयले की तरह भीतर ही भीतर सुलगती रहती हैं । उदाहरणतः दो व्यक्तियों में झगड़ा हो जाने पर परस्पर बोल-चाल बन्द हो जाती पर क्रोध की ज्वाला समाप्त नहीं होती । हुआ इतना ही कि बाहर की ज्वाला भीतर पहुंच गयी । भीतर की यह आग बाहरी आग से भी अधिक खतरनाक है । कारण यह भीतरी आग कब विस्फोट करेगी कहा नहीं जा सकता । जिस भांति ऊष्ण युद्ध से शीत युद्ध भयावह होता है क्योंकि शीतयुद्ध की पृष्ठभूमि पर ही उष्ण युद्ध की विभीषिका खड़ी हो जाती है ।

इसीलिए अर्हतर्षि नारायण का कहना है क्रोध जब आग है तो इसे जितनी जल्दी हो सके उपशमन करन चाहिए ।

क्रोध के प्रारम्भ में मूर्खता है और अन्त में पश्चात्ताप ।

# अष्टाचार्य जीवन झलक

(विद्वद्वर्य श्री ज्ञानमुनिजी म. सा. द्वारा लिखित "अष्टाचार्य एक झलक" से संकलित —सं.)

साधुमार्ग की परम्परा अनादिकाल से अविच्छिन्न रूप में चली आ रही है। जिस परम्परा को विशुद्ध रूप से अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए बड़े-बड़े महापुरुषों के सतत प्रयास रहे हैं। जिन्होंने उतार-चढ़ाव के बावजूद भी इस परम्परा को अविरल रूप से प्रवाहित रखा है। उन सभी महापुरुषों का जीवन वृत्त आलेखित करना सम्भव नहीं है। अतः अनादि-अतीत की चर्चा न करके प्रस्तुत में निकट अतीत की चर्चा की गई है। इस परम्परा की विशुद्धता बनाए रखने वाले आठ आचार्यों का नाम आज गौरव के साथ लिया जाता है।

हु शि उ चौ श्री ज ग नाना।<br>
लाल चमकता भानु समाना॥

के रूप में उनकी जय-जयकार की जाती है।

## आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म. सा.

प्राकृतिक सुषमा से युक्त 'टोडा रायसिंह' ग्राम में पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म.सा. ने जन्म धारण किया तथा स्वाभाविक विरक्ति के आलोक में रमण करते हुए बूंदी नगर में पूज्य श्री लालचन्दजी म. सा. के सान्निध्य में भागवती दीक्षा अंगीकार की। निर्ग्रन्थ संस्कृति की अक्षुण्णता को बनाये रखने के लिये आपने संयमी जीवन का कठोरता से पालन करते हुए क्रांतिकारी कदम आगे बढ़ाया। जिससे पूज्यश्री क्षणिक समय के लिए असंतुष्ट भी हुए, किन्तु जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि मुनि श्री हुक्मीचन्दजी अज्ञानतमिस्रा का नाश करने वाली ज्योतिर्मय मशाल हैं, वीर लोंकाशाह की भांति जनता में धर्मक्रांति का शंखनाद फूंककर नव जागृति उत्पन्न कर रहे हैं, तब पूज्यश्री बहुत प्रसन्न हुए और जनता के समक्ष कहा कि मुनिश्री हुक्मीचन्दजी तो चौथे आरे की बानगी हैं। इनमें गौतम स्वामी जैसा विनय है तो नंदिषेण जैसी सेवा भावना है, आदि।

आपके जीवन की निम्न कतिपय प्रमुख विशेषताएं थीं-

(१) २१ वर्ष तक निरन्तर बेले बेले का तप करना।

(२) १३ द्रव्यों से अधिक द्रव्य काम में नहीं लेना।

(३) मिष्टान्न एवं तली चीजों का परित्याग कर शरीर रक्षा के लिए मात्र रूक्ष-शुष्क आहार करना।

(४) शीत-उष्ण सभी ऋतुओं में एक चादर से अधिक नहीं रखना।

(५) प्रतिदिन २००० शक्रस्तव (णमोत्थुणं) एवं २००० आगमगाथाओं का स्वाध्याय करना तथा

(६) गुरु के प्रति पूर्ण रूप से विनयावनत रहना।

जब आप बीकानेर पधारे तब आपके मार्मिक ओजस्वी प्रवचनों से प्रभावित होकर नगर के प्रमुख पांच श्रेष्ठियों ने आपश्री के चरणों में भागवती दीक्षा अंगीकार की। शिष्य बनाने का परित्याग होने से आप उन्हें दीक्षित कर अपने गुरु भ्राता की नेश्राय में कर देते।

ग्राम-ग्राम में, नगर-नगर में विचरण कर आपने प्रभु महावीर द्वारा उपदिष्ट धर्म का यथातथ्य स्वरूप जनता के समक्ष रखा। जिससे आपकी यशःपताका सर्वदिशाओं में फहराने लगी। नीतिकारों ने सत्य ही कहा है--

यदि सन्ति गुणाः पुंसां, विकसन्त्येव ते स्वयम्।<br>
नहि कस्तूरिकाऽऽमोदः, शपथेन विभाव्यते॥

यदि पुरुष में गुण हैं तो वे स्वयं ही विकसित

हो जाते हैं। कस्तूरिका की सुगन्ध को प्रमाणित करने के लिए शपथ खाने की आवश्यकता नहीं होती।

पूज्यश्री के द्वारा की गई धर्मक्रांति(क्रियोद्धार) भी इन्हीं के अष्टम पट्टधर समताविभूति आचार्य श्री नानेश के सान्निध्य में पल्लवित-पुष्पित-फलित हो रही है।

## आचार्य श्री शिवलालजी म. सा.

पूज्य श्री शिवलालजी म. सा. का जन्म मध्य-प्रदेश के धामनिया ग्राम में हुआ। संसार की असारता एवं मुक्ति के अक्षय सुख के स्वरूप को समझ कर मुनिपुंगव श्री दयालजी म. की निश्राय में भागवती दीक्षा अंगीकार की तथापि आप प्राय: पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म.सा. के समीप ही निवास करते थे। उनके सान्निध्य के प्रभाव से आपकी प्रतिभा में निखार आया, फलस्वरूप आप दिग्गज विद्वान् के रूप में जनता के समक्ष आये। पूज्यश्री की तरह ही आप भी स्वाध्यायप्रेमी, आचार-विचार में महान् निष्ठावान् एवं परम श्रद्धावान थे।

पूज्यश्री के पास कोई भी जिज्ञासु भाई-वहिन आते तो उन के स्वाध्याय, मौन, तपाराधना में तल्लीन रहने के कारण उन जिज्ञासुओं की जिज्ञासाओं का समाधान आप ही करते। जिज्ञासु सटीक समाधान को प्राप्त कर प्रसन्न हो जाते थे।

आपश्री की कवित्वशक्ति अनूठी थी। भक्ति-रस से परिपूर्ण जीवनस्पर्शी और उपदेशात्मक आदि सभी प्रकार से आप भजन रचना करते थे जिनकी मधुर स्वरलहरियां कर्णगह्वरों में पहुंचते ही जनमानस को वशीकरण मंत्र की भांति आकर्षित कर लेती थी।

आपके जीवन में ज्ञान और क्रिया का अनुपम संयोग हुआ था। प्रखर विद्वत्ता के साथ ही कर्म-कलिमल को नाश करने के लिए आपने आत्मा को तप-अग्नि में निखारा था। अर्थात् आपश्री ने ३५ वर्ष पर्यन्त(लगभग) एकान्तर तप किया था।

इस प्रकार आचार-विचार में आपश्री की परिपूर्ण योग्यता जानकर पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म.सा. ने थली के प्रमुख नगर बीकानेर में चतुर्विध संघ के समक्ष यह उद्घोषित किया—

'भव्य प्राणियो! मुनिश्री शिवलालजी ही मेरे बाद आप सबके नायक हैं। आप सभी इनकी आज्ञा के अनुसार कार्य करें।' पूज्यश्री की घोषणा को श्रवण कर संघ के सभी सदस्यों ने सहर्ष स्वीकार किया। कई जगह ऐसा भी मिलता है कि पूज्यश्री ने उत्तराधिकारी की घोषणा न कर उनका नाम लिखकर स्वर्गस्थ हो गए थे।

इस प्रकार पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. के पट्ट पर विराजकर आचार्यश्री शिवलालजी म.सा. ने चतुर्विध संघ की अत्यधिक प्रभावना की।

## आचार्य श्री उदयसागरजी म. सा.

आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म.सा. के तृतीय पट्टधर पूज्य श्री उदयसागरजी म.सा. हुए। आपश्री का जन्म मारवाड़ के प्रमुख नगर जोधपुर में हुआ था।

जब आपने किशोरावस्था को पारकर युवावस्था में प्रवेश किया तब आपके जीवन में एक विशेष घटना घटित हुई जिसके अमिट प्रभाव से आपका मन संसार से उद्विग्न हो उठा और आपने संसार परित्याग कर सर्वसुख–प्रदायिनी भवभयहारिणी जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार कर ली।

वह विशेष घटना यह है–एकदा माता–पिता ने अपने लाड़ले पुत्र के शरीर पर यौवन के चिह्नों को परिस्फुटित होते हुए देखकर संसार की मोहजनित परम्परा के अनुसार ही पुत्र को वैवाहिक वन्धनों में बांधने का निश्चय किया। तदनुरूप सर्वगुणसम्पन्न कन्या के साथ विवाह निर्णीत कर दिया।

निश्चित तिथि को विवाह करने के लिए धूमधाम के साथ बरात यथास्थान पहुंची। वैवाहिक कार्यक्रम प्रारम्भ होने लगा। जब चंवरी में फेरे के लिए पहुंचे तब आपका साफा चंवरी के पात्रों में

अटक जाने से मस्तक से नीचे गिर गया। महिलाएं हास्य-विनोद करने लगीं। भाई लोग साफा मस्तक पर रखने की शीघ्रता करने लगे। परन्तु साफा क्या गिरा मानो अनादिकालीन कामविकार जनित मोह-दशा ही हटकर दूर गिर पड़ी। उसी समय आपका विचार ऊर्ध्वगामी बना। जो साफा एक बार सिर से नीचे गिर चुका है उसे दूसरी बार क्या धारण किया जाए! आप बिना विवाह किये ही विवाह-मण्डप से लौट गए।

ममत्व से समत्व की ओर, राग से विराग की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर अग्रसर हो गए। आचार्य श्री शिवलालजी म. के शिष्य श्री हर्षचन्दजी म.सा. के पास दीक्षा अंगीकार कर 'विणओ धम्मस्स मूलं' के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए अत्यन्त विनम्रता के साथ आपने ज्ञानार्जन किया। आचार्यश्री की प्रखर-मनीषा ने आपके जीवन को परख लिया और आपको संघ के समक्ष युवाचार्य पद पर सुशोभित कर दिया।

आपकी उपदेश-शैली अत्युत्तम थी, जिसे श्रवण करने के लिए जैनेतर जनता भी बड़ी संख्या में उपस्थित होती थी। आपके शासन काल में जैन-समाज का बहुमुखी विकास हुआ। हालांकि आप एक सम्प्रदाय के आचार्य थे तथापि समग्र स्थानकवासी समाज आपको अपना नेता मानता था।

रामपुरा ग्राम में शास्त्रवेत्ता केदारजी गांग रहते थे। उन्होंने आपकी ज्ञानार्जन की असाधारण जिज्ञासा एवं विनीतता देखकर आपको ३२ शास्त्रों का अर्थ सहित गम्भीर अध्ययन कराया।

संघ के आचार्य होते हुए भी आपके जीवन में अद्भुत सरलता थी। एक बार आप सोजत में पधारे तो वहां एक साधु थे। उनके विषय में आपने पूछा तो लोगों ने कहा—अजी वह शिथिलाचारी है। तब आचार्यश्री ने फरमाया कि—'ऐसा मत कहो।' वे मेरे उपकारी हैं, मैं वहां जाऊंगा और आप वहां पहुंच भी गये। इस घटना का उन साधु के जीवन पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा।

आप ही नहीं आपके सान्निध्य में रहने वाले संत भी विविध विरल विशेषताओं से युक्त थे। कोई विनयवान् था, तो कोई क्षमासागर, तो कोई विद्वान्।

एक उदाहरण लीजिए—एक बार पूज्य श्री के पास एक प्रोफेसर आये। कहने लगे कि—'आपका सर्वोत्तम विनयवान् शिष्य कौन है? जरा मैं उन विनयमूर्ति के दर्शन कर लूं।' तब पूज्यश्री ने कुछ भी न कहते हुए संत को बुलाया। वह विनय भाव से उपस्थित हुआ। पूज्यश्री ने उसे बिना कुछ कहे ही वापस भेज दिया। इसी प्रकार उन्हें एक बार, दो बार ही नहीं, अनेक बार बुलाया। फिर भी बिना किसी हिचकिचाहट के वह संत आते रहे। तब प्रोफेसर ने कहा भगवन्! बस बस, मैं समझ गया। मैं जान गया कि इनमें कितना विनयभाव है। अब आप इन्हें बार बार बुलाकर कष्ट न दें।

प्रोफेसर साहब विनयमूर्ति की विनीतता तथा गुरु के प्रति शिष्य की अगाध श्रद्धा का प्रत्यक्ष दर्शन कर आश्चर्यान्वित हुए।

इसी प्रकार पूज्य श्री के एक शिष्य थे जिनका नाम श्री चतुर्भुजजी म. सा. था, जो क्षमासागर के नाम से प्रसिद्ध थे, उन्हें क्रोध करना तो आता ही नहीं था। वे यह अच्छी तरह से जानते थे कि क्रोध रूपी अग्नि आत्मा के स्फटिक के समान स्वच्छ गुणों को भस्म कर देती है।

एक बार किसी साधु के हाथ से सहसा पात्र (लकड़ी का भाजन) छूट जाने से उसके टुकड़े हो गये। उस समय आचार्यश्री जो शौच-निवारण करने के लिये बाहर पधारे हुए थे। जब आचार्य श्री जी वापस पधारे, संयोगवश वे साधुजी किसी कार्यवश बाहर गये हुए थे। स्थानक में क्षमासागर श्री चतुर्भुजजी म. विद्यमान थे। आचार्य श्री जी ने पात्र को विखंडित देखा, तब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि

(संभव है) इन्हीं के हाथ से पात्र फूटा हो। अतः आपने उन्हें कर्तव्यदृष्टि से उपालंभ दिया। क्षमासागर मुनिराज इसे मौन-भाव से श्रवण करते रहे। पूज्य श्री द्वारा दिये गये उपालंभ को समभाव से सहन करते हुए अपना अहोभाग्य मानने लगे कि अहो! मुझे आज पूज्य श्री जी के मुख से शिक्षा श्रवण करने को मिल रही है। इतने में ही जिनके हाथ से पात्र खंडित हुआ था वे मुनिराज आये। जब पूज्य श्री को उपालंभ देते हुए देखा तो वे कहने लगे—'भगवन्! पात्र तो मेरे द्वारा खंडित हुआ है, अपराधी मैं हूं। ये नहीं!'

तब पूज्यश्री ने क्षमासागरजी म. सा. से कहा-अरे! मैंने तुम्हें इतना उपालंभ दिया और तुमने तनिक भी प्रतिवाद नहीं किया, स्पष्टीकरण न किया। इतना तो कह देते कि मेरे द्वारा पात्र खंडित नहीं हुआ। तब क्षमासागर मुनिराज बोले—प्रभो! वैसे तो आपसे कभी ऐसे उपालंभमय शब्द सुनने को नहीं मिलते, किन्तु मौन के द्वारा आपका उपालंभ रूपी प्रसाद मिला। दुर्लभ शिक्षा प्राप्त हुई। इससे मुझे तो बहुत लाभ ही हुआ है। ऐसी क्षमाशीलता से ही आप (चतुर्भुजजी म. सा.) क्षमासागर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

पूज्यश्री के सान्निध्य में क्रियोद्धारक महान् क्रान्तिकारी पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म. द्वारा की गई क्रान्ति प्रगतिशील हुई।

## आचार्य श्री चौथमलजी म. सा.

आचार्य श्री चौथमलजी महाराज हुक्मगच्छ के चतुर्थ आचार्य हुए। आपका जन्म कांठा प्रान्त के प्रमुख नगर पाली में हुआ था।

संसार से उद्विग्न होकर सच्चे शाश्वत सुख की पिपासा को शान्त करने के लिए सर्व संतापहारिणी जैनेश्वरी दीक्षा बूंदी शहर में सं. १९०९ में चैत्र शुक्ला द्वादशी को अंगीकार की।

आपने मलीमस बनी हुई आत्मा को निर्मल-निराकार बनाने के लिए "पढमं नाणं तओ दया" के सिद्धान्तानुसार ज्ञान-पूर्वक संयम का बड़ी ही सतर्कता के साथ तन, मन और वचन से पालन किया।

आपका मन जितना सरल सहज था, उतना ही संयम के प्रति सतर्क था। संयम की शिथिलता के लिए वे "वज्रादपि कठोराणि" (वज्र से भी कठोर) थे तो संयम-साधना में "मृदुनि कुसुमादपि (फूल से भी कोमल) थे।

जिनकी ज्ञान-पूर्ण क्रियाराधना आज भी साधु-साध्वियों के लिए जाज्वल्यमान प्रकाश—स्तम्भ बनी हुई है। उनकी उत्कृष्ट क्रियाराधना का एक उदाहरण इस प्रकार है—

आपकी वृद्धावस्था के कारण आपका मरणधर्मा शरीर जब जराजीर्ण हो गया था, तब भी आप साधुत्व की नित्यचर्या में पूर्णतया सावधान रहते थे। एक बार जब सन्ध्या का प्रतिक्रमण अस्वस्थ होने से लकड़ी के सहारे खड़े होकर कर रहे थे उस समय एक श्रावक ने आपको बड़ी ही विनम्रता के साथ कहा—'भगवन्! आपका आत्मबल अपरिमित है, किन्तु उसका आधार शरीर शीर्ण होता हुआ चला जा रहा है, अतः आप खड़े खड़े प्रतिक्रमण न करके विराजकर कर लें तो क्या हानि है?'

तब आचार्य श्री ने फरमाया—श्रावकजी! अगर मैं बैठा-बैठा प्रतिक्रमण करूंगा तो संत सोये-सोये करेंगे।' ऐसी थी संयम के प्रति सजगता-सतर्कता। इससे पता चलता है कि आचार्य में कितनी दीर्घदृष्टि होनी चाहिए और किस प्रकार अपने आचार द्वारा शिष्यों के समक्ष आदर्श उपस्थित करना चाहिए।

कठोर साधना के धनी आपने बहुत ही कम, लगभग ३ वर्ष तक आचार्य पद पर रहकर चतुर्विध संघ में धर्मक्रांति का बिगुल बजाया।

अन्त में १९५७ की कार्तिक शुक्ला अष्टमी को रतलाम में भौतिक शरीर का परित्याग कर आपने चिर सुख की ओर प्रयाण किया।

## आचार्य श्री श्रीलालजी म. सा.

देवेन्द्रों और दानवेन्द्रों के लिए भी जो अजेय है, उस काम (मदन) को जीतने वाले आचार्य श्री श्रीलालजी म. सा. हुक्मगच्छ के पांचवें पाट पर सुशोभित हुए।

बचपन से ही आपश्री ने प्राकृतिक सुषमा की अनुपम रमणीयता में रमण करते हुए संयम के उन्मुक्त क्षेत्र में विचरण करने की शक्ति प्रादुर्भूत की थी, तथा भौतिक शक्तियों की उपेक्षा करते हुए आध्यात्मिक भाव में रमण करने लगे। छः वर्ष की अल्पवय में ही माता से सुनकर सामायिक-प्रतिक्रमण कंठस्थ कर लिए। आपकी निरन्तर बढ़ती विरक्त भावना को देखकर माता-पिता ने सांसारिक बन्धन-शृंखला में बांधने के लिए आपका विवाह कर दिया। यह प्रबल विघ्न भी आपको अपने विचारों से विचलित नहीं कर सका।

एक बार जब आप मकान के ऊपर वाले कमरे में अध्ययन कर रहे थे, तब आपकी धर्मपत्नी ने आकर कमरे का दरवाजा बन्द करके आपसे वार्तालाप करना चाहा। आपने सोचा—अहो! एकान्त स्थान में स्त्री का मिलना ब्रह्मचारी व्यक्ति के लिए योग्य नहीं है। आप वहां से भागने की कोशिश करने लगे किन्तु दरवाजा बन्द था। अतः आप ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए खिड़की से ही नीचे वाली मंजिल पर कूद पड़े। यह थी आपकी दुर्जय साधना।

वैराग्य का वेग तीव्रतर होता गया। जब किसी भी उपाय से दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा प्राप्त न हो सकी तो अन्त में बिना आज्ञा ही स्वयमेव दीक्षित हो गये। मोह की प्रबलता के कारण पारिवारिक जनों ने पुनः गृहस्थ बनाने का प्रयास किया किन्तु उनका प्रयत्न मिट्टी में से तेल निकालने के समान विफल हुआ। 'सूरदास की कारी कंबरिया चढ़े न दूजो रंग' इस कहावत को आपने चरितार्थ किया।

आपकी संयम के प्रति अटिगता देखकर परिवार वालों ने आज्ञा दे दी तब विधिवत् आप संयमी बने। तदनन्तर आचार्य श्री चौथमलजी म. सा. के अन्तेवासी होकर रहने लगे।

आपने संयम का पूर्णतया पालन करते हुए शास्त्रों का गहनतम अध्ययन किया। आचार्य श्री ने परिपूर्ण योग्यता देखकर आपको अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया।

३२ वर्ष तक संयम-जीवन का पालन कर २० वर्ष आचार्य पद पर रहते हुए जनता को आपने अमृतमय वाणी का पान कराया। आपके उपदेश से बड़े बड़े राजा-महाराजा प्रतिबोधित हुए।

उदयपुर में "इन्फ्लुएंजा" रोग से ग्रसित होने के कारण भावी शासन को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए आपने मुनि श्री जवाहरलालजी म. सा. को युवाचार्य पद प्रदान किया।

जब पूज्य श्री जैतारण पधारे तब शास्त्रप्रवचन करते समय अचानक नेत्रज्योति क्षीण हो गई। मस्तिष्क में भयानक पीड़ा उठी। तब आपने फरमाया कि यह चिह्न अंतिम समय के जान पड़ते हैं, अतः मुझे संथारा करा दो किन्तु संतों ने परिस्थिति को देखते हुए संथारा नहीं कराया। आषाढ शुक्ला द्वितीया को इतनी तीव्र वेदना में भी "घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं' द्वारा उपदेश दिया तथा सागारी संथारा ग्रहण किया और रात्रि में यावज्जीवन का संथारा लिया। चतुर्विध संघ से क्षमायाचना की। रात्रि के चतुर्थ प्रहर में औदारिक शरीर को त्याग कर समाधिपूर्वक महाप्रयाण कर दिया। जैनशासन रूप गगनाङ्गन से एक जाज्वल्यमान सूर्य अस्त हो गया।

## आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा.

विन्ध्याचल की पर्वतीय श्रेणियों से आच्छादित मालव प्रान्त की पुण्यधरा थांदला ग्राम से हुक्मगच्छ के षष्ठ पट्टधर ज्योतिर्धर महान् क्रान्तिकारी जवाहराचार्य का उद्भव हुआ।

(संभव है) इन्हीं के हाथ से पात्र फूटा हो। अतः आपने उन्हें कर्तव्यदृष्टि से उपालंभ दिया। क्षमासागर मुनिराज इसे मौन-भाव से श्रवण करते रहे। पूज्य श्री द्वारा दिये गये उपालंभ को समभाव से सहन करते हुए अपना अहोभाग्य मानने लगे कि अहो! मुझे आज पूज्य श्री जी के मुख से शिक्षा श्रवण करने को मिल रही है। इतने में ही जिनके हाथ से पात्र खंडित हुआ था वे मुनिराज आये। जब पूज्य श्री को उपालंभ देते हुए देखा तो वे कहने लगे—'भगवन्! पात्र तो मेरे द्वारा खंडित हुआ है, अपराधी मैं हूं। ये नहीं!'

तब पूज्यश्री ने क्षमासागरजी म. सा. से कहा-अरे! मैंने तुम्हें इतना उपालंभ दिया और तुमने तनिक भी प्रतिवाद नहीं किया, स्पष्टीकरण न किया। इतना तो कह देते कि मेरे द्वारा पात्र खंडित नहीं हुआ। तब क्षमासागर मुनिराज बोले—प्रभो! वैसे तो आपसे कभी ऐसे उपालंभमय शब्द सुनने को नहीं मिलते, किन्तु मौन के द्वारा आपका उपालंभ रूपी प्रसाद मिला। दुर्लभ शिक्षा प्राप्त हुई। इससे मुझे तो बहुत लाभ ही हुआ है। ऐसी क्षमाशीलता से ही आप (चतुर्भुजजी म. सा.) क्षमासागर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

पूज्यश्री के सान्निध्य में क्रियोद्धारक महान् क्रान्तिकारी पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म. द्वारा की गई क्रान्ति प्रगतिशील हुई।

## आचार्य श्री चौथमलजी म. सा.

आचार्य श्री चौथमलजी महाराज हुक्मगच्छ के चतुर्थ आचार्य हुए। आपका जन्म कांठा प्रान्त के प्रमुख नगर पाली में हुआ था।

संसार से उद्विग्न होकर सच्चे शाश्वत सुख की पिपासा को शान्त करने के लिए सर्व संतापहारिणी जैनेश्वरी दीक्षा बूंदी शहर में सं. १९०९ में चैत्र शुक्ला द्वादशी को अंगीकार की।

आपने मलीमस बनी हुई आत्मा को निर्मल-निराकार बनाने के लिए "पढमं नाणं तओ दया" के सिद्धान्तानुसार ज्ञान-पूर्वक संयम का बड़ी ही सतर्कता के साथ तन, मन और वचन से पालन किया।

आपका मन जितना सरल सहज था, उतना ही संयम के प्रति सतर्क था। संयम की शिथिलता के लिए वे "वज्रादपि कठोराणि" (वज्र से भी कठोर) थे तो संयम-साधना में "मृदुनि कुसुमादपि (फूल से भी कोमल) थे।

जिनकी ज्ञान-पूर्ण क्रियाराधना आज भी साधु-साध्वियों के लिए जाज्वल्यमान प्रकाश—स्तम्भ बनी हुई है। उनकी उत्कृष्ट क्रियाराधना का एक उदाहरण इस प्रकार है—

आपकी वृद्धावस्था के कारण आपका मरणधर्मा शरीर जब जराजीर्ण हो गया था, तब भी आप साधुत्व की नित्यचर्या में पूर्णतया सावधान रहते थे। एक बार जब सन्ध्या का प्रतिक्रमण अस्वस्थ होने से लकड़ी के सहारे खड़े होकर कर रहे थे उस समय एक श्रावक ने आपको बड़ी ही विनम्रता के साथ कहा—'भगवन्! आपका आत्मबल अपरिमित है, किन्तु उसका आधार शरीर शीर्ण होता हुआ चला जा रहा है, अतः आप खड़े खड़े प्रतिक्रमण न करके विराजकर कर लें तो क्या हानि है?'

तब आचार्य श्री ने फरमाया—श्रावकजी अगर मैं बैठा-बैठा प्रतिक्रमण करूंगा तो संत सोये सोये करेंगे।' ऐसी थी संयम के प्रति सजगता-सतर्कता इससे पता चलता है कि आचार्य में कितनी दीर्घदृष्टि होनी चाहिए और किस प्रकार अपने आचार द्वारा शिष्यों के समक्ष आदर्श उपस्थित करना चाहिए।

कठोर साधना के धनी आपने बहुत ही कम लगभग ३ वर्ष तक आचार्य पद पर रहकर चतुर्विध संघ में धर्मक्रांति का बिगुल बजाया।

अन्त में १९५७ की कार्तिक शुक्ला अष्टमी को रतलाम में भौतिक शरीर का परित्याग कर आपने चिर सुख की ओर प्रयाण किया।

## आचार्य श्री श्रीलालजी म, सा.

देवेन्द्रों और दानवेन्द्रों के लिए भी जो अजेय है, उस काम (मदन) को जीतने वाले आचार्य श्री श्रीलालजी म. सा. हुक्मगच्छ के पांचवें पाट पर सुशोभित हुए।

बचपन से ही आपश्री ने प्राकृतिक सुषमा की अनुपम रमणीयता में रमण करते हुए संयम के उन्मुक्त क्षेत्र में विचरण करने की शक्ति प्रादुर्भूत कीथी, तथा भौतिक शक्तियों की उपेक्षा करते हुए आध्यात्मिक भाव में रमण करने लगे। छः वर्ष की अल्पवय में ही माता से सुनकर सामायिक-प्रतिक्रमण कंठस्थ कर लिए। आपकी निरन्तर बढ़ती विरक्त भावना को देखकर माता-पिता ने सांसारिक बन्धन-शृंखला में बांधने के लिए आपका विवाह कर दिया। यह प्रबल विघ्न भी आपको अपने विचारों से विचलित नहीं कर सका।

एक बार जब आप मकान के ऊपर वाले कमरे में अध्ययन कर रहे थे, तब आपकी धर्मपत्नी ने आकर कमरे का दरवाजा बन्द करके आपसे वार्तालाप करना चाहा। आपने सोचा-अहो ! एकान्त स्थान में स्त्री का मिलना ब्रह्मचारी व्यक्ति के लिए योग्य नहीं है। आप वहां से भागने की कोशिश करने लगे किन्तु दरवाजा बन्द था। अतः आप ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए खिड़की से ही नीचे वाली मंजिल पर कूद पड़े। यह थी आपकी दुर्जय साधना।

वैराग्य का वेग तीव्रतर होता गया। जब किसी भी उपाय से दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा प्राप्त न हो सकी तो अन्त में बिना आज्ञा ही स्वयमेव दीक्षित हो गये। मोह की प्रबलता के कारण पारिवारिक जनों ने पुनः गृहस्थ बनाने का प्रयास किया किन्तु उनका प्रयत्न मिट्टी में से तेल निकालने के समान विफल हुआ। 'सूरदास की कारी कंवरिया चढ़े न दूजो रंग' इस कहावत को आपने चरितार्थ किया।

आपकी संयम के प्रति अडिगता देखकर परिवार वालों ने आज्ञा दे दी तब विधिवत् आप संयमी बने। तदनन्तर आचार्य श्री चौथमलजी म. सा. के अन्तेवासी होकर रहने लगे।

आपने संयम का पूर्णतया पालन करते हुए शास्त्रों का गहनतम अध्ययन किया। आचार्य श्री ने परिपूर्ण योग्यता देखकर आपको अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया।

३२ वर्ष तक संयम-जीवन का पालन कर २० वर्ष आचार्य पद पर रहते हुए जनता को आपने अमृत-मय वाणी का पान कराया। आपके उपदेश से बड़े बड़े राजा-महाराजा प्रतिबोधित हुए।

उदयपुर में "इन्फ्लुएंजा" रोग से ग्रसित होने के कारण भावी शासन को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए आपने मुनि श्री जवाहरलालजी म. सा. को युवाचार्य पद प्रदान किया।

जब पूज्य श्री जैतारण पधारे तब शास्त्रप्रवचन करते समय अचानक नेत्रज्योति क्षीण हो गई। मस्तिष्क में भयानक पीड़ा उठी। तब आपने फरमाया कि यह चिह्न अंतिम समय के जान पड़ते हैं, अतः मुझे संथारा करा दो किन्तु संतों ने परिस्थिति को देखते हुए संथारा नहीं कराया। आषाढ शुक्ला द्वितीया को इतनी तीव्र वेदना में भी "घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं' द्वारा उपदेश दिया तथा सागारी संथारा ग्रहण किया और रात्रि में यावज्जीवन का संथारा लिया। चतुर्विध संघ से क्षमायाचना की। रात्रि के चतुर्थ प्रहर में औदारिक शरीर को त्याग कर समाधिपूर्वक महाप्रयाण कर दिया। जैनशासन रूप गगनाङ्गन से एक जाज्वल्यमान सूर्य अस्त हो गया।

## आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा.

विन्ध्याचल की पर्वतीय श्रेणियों से आच्छादित मालव प्रान्त की पुण्यधरा थांदला ग्राम से हुक्मगच्छ के षष्ठ पट्टधर ज्योतिर्धर महान् क्रान्तिकारी जवाहराचार्य का उद्भव हुआ।

इतिहास साक्षी है कि महापुरुषों के जीवनकाल में अनेक प्रकार की बाधाएं व कठिनाइयां आती हैं किन्तु वे पर्वत की भांति अचल धैर्य के साथ उन्हें जीत लेते हैं। वे बाधाएं और कठिनाइयां उनके जीवन को विकास के उच्चतम शिखर पर प्रतिष्ठित करने में सोपानों का काम करती हैं।

श्री जवाहरलालजी का जीवन बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक अनेक प्रकार के संघर्षों एवं बाधाओं के बीच से गुजरा किन्तु ज्योतिर्धर जवाहर इन संघर्ष की दुर्लंघ्य घाटियों को दृढतापूर्वक पार करते चले गये। ज्यों-ज्यों संघर्ष आए त्यों-त्यों आपके जीवन में अधिकाधिक निखार आता गया।

आपश्री की प्रवचन-पटुता, प्रखर प्रतिभा, आगम-मर्मज्ञता और गौरवशाली शरीर सम्पत्ति को देखकर पूज्य श्री श्रीलालजी म. सा. ने आपको विधिवत् अपना उत्तराधिकारी घोषित किया।

प्रखर प्रतिभा से ही आपश्री ने आगमों के गंभीर रहस्यों का आलोडन-विलोडन करके जनता में फैली भ्रान्त धारणाओं का निराकरण कर दया-दान रूप सत्य-तथ्य धर्म के स्वरूप को उद्भासित किया।

सन्त मुनिराजों के ज्ञान-चक्षु को विकसित करने के लिये अपने शिष्यों को पंडितों से अध्ययन कराकर ज्ञानवर्द्धन की दिशा में एक नवीन आयाम स्थापित किया, जिसका तत्काल तो कुछ विरोध सामने आया किन्तु आचार्य श्री जवाहर की दूरदर्शिता के कारण वर्त्तमान में उसका व्यापक प्रचार-प्रसार होने से पूरा स्थानकवासी समाज उससे लाभान्वित हुआ, फलस्वरूप श्रमण-श्रमणी वर्ग में संस्कृत-प्राकृत, न्याय, व्याकरण, आगम आदि के धुरंधर विद्वान् सामने आए।

हालांकि पूज्यश्री एक संप्रदाय के आचार्य थे तथापि अखिल जैन-समाज में ही नहीं, अपितु जैनेतर समाज में भी, साथ ही राष्ट्रीय स्तर पर भी आपके व्यक्तित्व का एक अनूठा प्रभाव था।

आपश्री के आगमिक सिद्धान्तों से युक्त प्रवचन सर्वजनहिताय और सर्वजनसुखाय तो थे ही साथ ही साथ भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को एक नवीन दिशा-निर्देश देने वाले भी थे।

वह युग भारत की परतंत्रता का था और आप स्वतन्त्रता के सजग प्रहरी थे। तब भला आपको भारतीय परतन्त्रता की दयनीय स्थिति कब सहन होती? आपश्री ने भी संजीवनी स्वतन्त्रता पाने के लिये अपनी श्रमणमर्यादा का निराबाध-निर्वहन करते हुए विशाल पैमाने पर धार्मिक आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। बाह्य तेज से दमकते-चमकते आपश्री के मुख-मण्डल से स्फुरित वचन स्वतन्त्रता पाने के लिये जन-जन में भव्य क्रान्ति का शंखनाद करने लगे।

आपके प्रवचनों का आश्चर्यजनक प्रभाव हुआ। सहस्रों मानवों ने पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा के निमित्त-भूत चर्बीमय विदेशी वस्त्रों का परित्याग कर अल्पारंभी खादी के वस्त्र धारण कर लिये। खान-पान, रहन सहन आदि में अनेक मानवों ने भारतीय सभ्यता-संस्कृति को जीवन में स्थान दिया। जिसके नमूने आज भी इतस्ततः देखने को मिल रहे हैं।

अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी को जब आपश्री की दिव्य प्रतिभा का पता चला तो वे स्वयं आपके पास पहुंचे तथा आपके स्वतन्त्रता के रंग से सने मार्मिक ओजपूर्ण प्रवचनों को सुनकर आनन्द प्रकट किया। उच्चस्तर के राजनीतिविदों एवं पत्रकारों में यह प्रसिद्धि हो गई कि भारत में एक नहीं दो जवा-हर हैं। राजनीति के क्षेत्र में पंडित जवाहरलाल नेहरु हैं तो धर्मनीति के क्षेत्र में आचार्य श्री जवा-हरलालजी महाराज।

साहित्यजगत् में भी आपकी सेवा कुछ कम उल्लेखनीय नहीं है। स्थानांग सूत्र में निर्दिष्ट दस धर्मों के स्वरूप पर आपने अनुपम व्याख्या प्रस्तुत की है। धर्म के साथ राष्ट्र और राष्ट्र के साथ धर्म की संगति का प्रस्तुतीकरण कर आपने जैन धर्म का

विराट स्वरूप जनता के समक्ष रखा है । सत्धर्म के प्रचार में आपकी अमर कृति है-"**सद्धर्ममण्डन**" जो आज भी सद्धर्म की रक्षा करने के लिये अभेद दुर्ग के रूप में परिलक्षित हो रही है ।

आपश्री की आत्मानुभूति के भास्कर से उद्भासित ज्ञान रूपी रश्मियां वर्तमान में भी "जवाहर किरणावली' सीरीज के माध्यम से दिग् दिगन्त तक आपके यशस्वी जीवन की, तलस्पर्शी विद्वत्ता की, सूक्ष्म विचारक्षमता की, अद्‌भुत विवेचना कौशल की और आगमों के रहस्य को हृदयंगम कर लेने की घोषणा कर रही है ।

आपश्री की क्रान्ति मात्र विचारों तक ही सीमित नहीं थी, अपितु आप संयमाचार के पालन करने व करवाने में भी पूर्ण सजग एवं सतर्क रहते थे । उदाहरण के रूप में सं. १९९० के वर्ष में अजमेर नगर में वृहत् साधु-सम्मेलन हुआ था । वहां आपश्री प्रतिनिधि के रूप में न रहकर दर्शक के रूप में उपस्थित थे । सम्मेलन में आपके द्वारा दिये गये विचार व परामर्श की सभी ने सराहना व प्रशंसा की थी ।

लगभग ३५ हजार जनता के मध्य में जब आपके समक्ष विद्युत् से संचालित लाउडस्पीकर में बोलने का प्रसंग आया तब जनता के बहुत आग्रह करने पर भी आप नहीं बोले और बिना बोले ही हजारों की जनमेदिनी में से वीरता के साथ निकल कर अपूर्व साहस व दृढ़ता का परिचय दिया था ।

आपश्री इन विचारों के धनी थे कि शुद्धाचार-युक्त वैचारिक क्रांति ही सच्ची शांति का प्रतीक होती है ।

पूज्यश्री ने भारत के बहुभूभाग-मारवाड़ मेवाड़, मालवा, गुजरात, पंजाब, महाराष्ट्र, काठियावाड़ आदि के सुदूर प्रदेशों में विचरण करके अढ़ाई हजार वर्ष से चले आ रहे प्रभु महावीर द्वारा प्रविवेचित धर्म के विशुद्ध स्वरूप को जनता के समक्ष रखकर गरिमामय कीर्तिस्तम्भ स्थापित किया ।

जीवन की संध्या का समय आपने थली प्रांत की पुण्यधरा भीनासर में व्यतीत किया था । उस समय कर्म-रिपु ने अपना पुर-जोर प्रभाव बताया । घुटने में दर्द, पक्षाघात, जहरी फोड़ा आदि अनेकानेक भयंकर बीमारियों ने आ घेरा, किन्तु उस वीर पुरुष के समक्ष उन कर्म-रिपुओं को भी परास्त होना पड़ा । वे आध्यात्मिक पुरुष, आत्मा और शरीर के भेद को जानने वाले, ज्ञान-क्रिया से संयुक्त, अहर्निश साधना में प्रगतिशील थे । उन वेदनाओं को भी अत्यन्त समभाव से सहन करते हुए कर्म-शत्रुओं से बराबर युद्ध करते रहे ।

भयंकर वेदना में भी पूज्यश्री के चमकते-दमकते गौर मुख-मण्डल की दिव्य सुषमा से जनमानस मुग्ध हो उठता था । अनायास लोगों के मुख से निकल पड़ता-अहो ! क्या साधना है इस युग-पुरुष की ! कैसी वीरता है कर्म शत्रुओं को परास्त करने में इस लौह-पुरुष की !

## आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा.

अरावली की उपत्यकाओं में बसे हुए मेवाड़ के प्रमुख नगर उदयपुर में गणेशाचार्य का आविर्भाव हुआ ।

नवयौवन काल में ही पूज्यश्री पर एक वज्रपात सा हुआ । माता, पिता और पत्नी स्वर्ग सिधार गए । ऐसे वज्राघात को भी आपने समभाव से सहन कर संसार के स्वरूप का यथार्थ चिन्तन किया । आप विरक्ति के आलोक में विचरण करने लगे । ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहर के उदयपुर चातुर्मास में संसार की असारता का बोध पाकर राग से विराग के पथ (संयम) को अंगीकार कर लिया ।

पूज्य श्री श्रीलालजी म. ने अपने दीर्घ अनुभव एवं पैनी मति के आधार पर आपश्री के पिताजी को पूर्व में अर्थात् जब आप शैशवावस्था में थे तब ही फरमा दिया था कि-"यदि आप अपने बालक को

संयम दिला दें तो इससे धर्म की बहुत उन्नति होगी। वह बालक बहुत होनहार है ।"

पूज्यश्री की गुरु-आराधना बेजोड़ थी। आपश्री ने निरन्तर आचार्य श्री जवाहरलालजी म. की सेवामें रहकर ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करते हुए गुरु–भक्ति की तन्मयता का एक महान् आदर्श उपस्थित किया ।

प्रवचन शैली के साथ ही साथ आपश्री की गायनशैली भी अति मनमोहक थी । जब आपके मुख से मधुर स्वर-तंत्रियां झंकृत होने लगतीं तब जन-जन का मानस स्वर-लहरियों के आनन्द से आन्दोलित हो उठता था ।

आपश्री की क्षमा, सहिष्णुता एवं विनम्रता इस सीमा तक पहुंच चुकी थी कि प्रकाण्ड विद्वान् तथा आगमज्ञ होते हुए भी यदा-कदा पूज्य श्री व्याख्यान में जनसमूह के समक्ष भी आपको टोक देते तो आप उसी समय असावधानी के लिये क्षमायाचना करते और कृतज्ञता-पूर्वक उनकी सूचना अंगीकार करते ।

**'गणेश' शब्द की यथार्थता–**

व्याकरण के अनुसार 'गणेश' शब्द की तीन व्युत्पत्तियां होती हैं ।

१. गणस्य+ईशः—गणेशः ।
२. गणयोः+ईशः—गणेशः ।
३. गणानां+ईशः— गणेशः ।

कितना अद्भुत संयोग है–गणेशाचार्य के नाम में, उनके जीवन में यह तीनों व्युत्पत्तियां घटित होती हुई "यथानाम तथागुणः" की उक्ति को पूर्णरूप से चरितार्थ करती हैं । पहली व्युत्पत्ति है—

१. गणस्य+ईशः = गणेशः जो एक गण का स्वामी हो, वह गणेश है । पूज्यश्री के ज्ञानयुक्त दृढतम संयम-साधना आदि योग्यतम गुणों को देखकर ज्योतिर्धर जवाहराचार्य ने जलगांव में अपने शरीर की अस्वस्थता को जानकर आपश्री को अपने गण (संप्रदाय) का भविष्य में उत्तराधिकारी (युवाचार्य) नियुक्त किया था ।

२. गणयोः+ईशः = गणेशः जो दो गणों का ईश हो, वह गणेश है । महान् क्रियावान् परम प्रतापी पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की संप्रदाय के पंचम पट्टधर पूज्य श्रीश्रीलालजी म. के समय से कतिपय कारणों को लेकर सम्प्रदाय के दो विभाग हो चुके थे। उनका पुनः एकीकरण करने के लिये स्थानकवासी समाज के गणमान्य मध्यस्थ मुनिवरों को पंच के रूप में नियुक्त किया गया था । उन्होंने संवत् १९९० की वैशाख कृष्णा अष्टमी को अपना निर्णय दिया कि पूज्य श्री जवाहरलालजी म. के एवं पूज्य श्री मुन्नालाल जी म. सा. के गणों के भविष्य में उत्तराधिकारी पूज्य श्री गणेशीलालजी म. होंगे । उनके शब्द हैं- "मुनि श्री गणेशोलालजी म. को युवाचार्य नियुक्त करें ।" इस निर्णय में दोनों पक्षों ने अपनी सम्मति दे दी । इस प्रकार दो गणों का युवाचार्य पद प्राप्त होने से "गणयोः+ईशः' की व्युत्पत्ति आपके जीवन में सार्थक होती है ।

३. गणानां+ईशः—गणेशः ।

दो से अधिक गणों के जो ईश हों, वे गणेश हैं । सं. २००९ की वैशाख शुक्ला १३ बुधवार को लगभग ३५ हजार के विशाल जनसमूह के बीच में प्रायः स्थानकवासी समाज के मूर्धन्य श्रमणसमूह के साथ समग्र चतुर्विध संघ ने एकमत होकर आपश्री को अपना (सर्वसत्ता–संपन्न) उपाचार्य स्वीकृत किया और इस पद की विधि सुसम्पन्न की । इस प्रकार अनेक गणों के आचार्य बन जाने से 'गणानां+ईशः' की व्युत्पत्ति आपश्री के जीवन में घटित होती है ।

कुछ-एक कारणों से❀श्रमण संघ अपने मूल

---

❀ उन कारणों का विशद वर्णन श्री अ. भा. सा. जैन संघ द्वारा प्रकाशित "श्रमण संघीय समस्याओं पर विश्लेषणात्मक निवेदन" नामक पुस्तक में जिज्ञासु देखें ।

स्वरूप में स्थायी नहीं रह सका। तब आपश्री ने अपनी शर्त के अनुसार त्याग-पत्र दे दिया और अपनी पूर्व अवस्था में विचरण करने लगे।

जीवन की संध्या में आपश्री के मन में एक विचार स्फुरित हुआ। वह यह था-श्रमणसंघ का जो उद्देश्य है उस उद्देश्य को मैं कम से कम उस उद्देश्य के पोषक संघ में तो पूर्णतया अमली रूप दे दूं। तदनुसार आपश्री ने साधु-साध्वियों में उस उद्देश्य को साकार रूप दे दिया। जिसके फलस्वरूप वर्त्तमान में आपश्री का संघ समताविभूति विद्वत्-शिरोमणि आचार्य श्री नानेश के योग्यतम अनुशासन को पाकर निराबाधरूप से चलता हुआ सर्वतोभावेन विकास की ओर प्रगतिशील है।

आपश्री की निर्भयता भी मन को विस्मयाभिभूत करने वाली थी। जब आपश्री विचरण-काल में एक बार सतपुड़ा पर्वत पार कर रहे थे, उस समय आपके साथ श्रीमलजी म. तथा जेठमलजी म. थे। अचानक आपकी दृष्टि दो खूंखार शेरों पर पड़ी। चालीस-पचास कदम का ही फासला था किन्तु आप बिलकुल निर्भय रहे। कहीं संत डर न जाएं, अतः आपश्री ने उन्हें अपनी ओट में रखते हुए-वनराजों की तरफ इंगित किया। कितना सौजन्य था अपने गुरुभ्राताओं के प्रति!

पूज्यश्री से वनराजों का दृष्टिमिलन हुआ। किन्तु जो जगत् का राजा है, संसार के चराचर, प्राणियों को अभय देने वाला है, उसके सामने दो शेर तो क्या सहस्रों भी आ जाएं। तथापि उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। वनराजों की शक्ति आपश्री के सामने हतप्रभ हो गई। जगत्सम्राट आचार्यश्री गणेश के चरणों में द्रुतः श्रद्धान्वित होते हुए दोनों वनराज जंगल में विलीन हो गए।

जब आपकी दिव्य आत्मा चरम लक्ष्य की साधना में तन्मय थी तब आपश्री का तेजपूर्ण अलौकिक आभा-मण्डल जनता में एक विचित्र प्रकार की शान्ति प्रसारित कर रहा था।

धन्य है ऐसी महान् पवित्र आत्मा!

# आचार्य श्री नानालालजी म. सा.

उन्नत ललाट, प्रलम्ब बाहु, प्रदीप्त गात्र, ब्रह्म तेज से चमकता मुखमण्डल, निर्विकार सुलोचन, विशाल वक्षस्थल आदि शारीरिक श्री से समृद्ध प्रखर प्रतिभा-सम्पन्न महायोगी को देखकर जन-जन के मानस में अपूर्व आन्तरिक शांति का संचार हो जाता है।

जिस महायोगी की योग-मुद्रा से निर्झरित शीतल शांति रूप नीर में आप्लावित होकर एक नहीं अनेक आत्माओं ने परम शांति का अनुभव किया और कर रहे हैं। वे महायोगी हैं—आचार्य श्री नानेश।

वीरभूमि मेवाड़ के दांता ग्राम में प्रादुर्भूत होकर कर्मरूपी शत्रुओं का दमन करने के लिये शांत-क्रांति के जन्मदाता श्री गणेशाचार्य के सान्निध्य में दीक्षित—संयमित हुए और अहर्निश साधना की सीढियों पर आरोहण करने लगे।

आगम के गंभीर रहस्यों का तलस्पर्शी ज्ञान तो प्राप्त किया ही, साथ ही अन्य धर्मों के ग्रन्थों का भी आपने अध्ययन किया। न्याय, व्याकरण, साहित्य आदि विषयों के अनेक ग्रन्थों के गहन अध्ययन के साथ संस्कृत-प्राकृत भाषाओं पर भी पूर्ण अधिकार प्राप्त किया। ऐसी प्रगतिशील भव्य साधना को देखकर श्री गणेशाचार्य ने महायोगी को उदयपुर नगर में, राजमहल के विशाल प्राङ्गण में धवल वस्त्र प्रदान कर अपना उत्तराधिकारी (युवाचार्य) घोषित किया।

इनका साधनामय जीवन जन-जन के मानस को धर्म का दिव्य प्रकाश प्रदान करेगा। मानो इस तथ्य की सूचना देने के लिये मेघाच्छादित सूर्य भी धवल-वस्त्र प्रदान करते समय बादलों से अनावृत होकर पूर्णतया जाज्वल्यमान हो उठा। वर्तमान में भी अनेक घटाटोप मेघों के पटल भी महायोगी की साधनारूपी सूर्य की प्रचण्डता के समक्ष बिखरते जा रहे हैं।

आज से लगभग सात वर्ष पूर्व मालव प्रान्त में लाखों दलित वर्ग, जो गोरक्षक से गोभक्षक बन रहे थे, जिनका मानवीय स्तर अधःपतन के गर्त में गिर

रहा था, के बीच में पहुंच कर इस महायोगी ने अपना प्रभावशाली उपदेश उन्हें दिया। सप्त कुव्यसनों का परित्याग करवाकर उनको मानवता की उच्च भूमिका पर ला, जीवन की दिशा परिवर्तित की। बलाई आदि नामों से उपेक्षित समाज को 'धर्मपाल' नाम से परिष्कृत किया। तब समाज ने इस महायोगी को "धर्मपाल-प्रतिबोधक" की सार्थक उपाधि से सम्बोधित किया।

प्रवचन शैली इतनी मनमोहक है इस महायोगी की कि जनता वशीकरण मंत्र की तरह खींची हुई चली आती है। क्योंकि आपका प्रवचन आधुनिक युग के सन्दर्भ में आगमिक सिद्धान्तों के धरातल पर वैज्ञानिक तरीके से होता है। हजारों युवक उन प्रवचनों से प्रभावित होकर समाज में फैली हुई दहेज प्रथा आदि कुरूढियों का उन्मूलन करने के लिए कटिबद्ध हुए हैं। लगभग पांच हजार व्यक्तियों ने तो "नोखामण्डी" में प्रतिज्ञा अंगीकार की थी। इस प्रकार स्थान-स्थान पर अनेक व्यक्ति प्रतिज्ञाएं धारण करते हैं। महायोगी का "समता-सिद्धान्त" व्यक्ति से लेकर अन्तरराष्ट्रीय स्तर तक की विषाक्त विषमता को उन्मूलित करने में समर्थ है। आवश्यकता है उन सिद्धान्तों को अपनाने की।

जयपुर-चातुर्मास के समय एक अध्यापक ने पूछा—"कि जीवनम् ?" समाधान दिया उस महायोगी ने—"सम्यक् निर्णायकं समतामयञ्च यत् तज्जीवनम्" इस एक ही सूत्र पर चातुर्मास पर्यंत अभिनव विवेचन जनता को दिया जिसका संकलन **"पावस प्रवचन"** के अनेक भागों में संकलित है। ऐसी है इनकी प्रतिभा।

विश्व के रंग-मंच पर प्रायः मानवों की गति भौतिक वस्तुओं के लुभावने दृश्यों की ओर होती है। ऐसे भौतिक वातावरण में भी इस महायोगी की सौम्य मुख-मुद्रा का दर्शन एवं समता के सिद्धान्तों को श्रव[ण] कर उनके सान्निध्य में एक नहीं अनेकों स्त्री-पुरु[ष] (लगभग २३३) संसार की समस्त मोह माया का परित्या[ग] कर सर्वतोभावेन समर्पित हो चुके हैं। अर्थात् विषमता से समता की ओर, राग से विराग की ओर, भोग से योग की ओर उन्मुख होकर भागवती दीक्षा अंगीकार कर चुके है। अभी ४ वर्ष पूर्व रतलाम में एक सा[थ] २५ दीक्षा देकर आचार्य प्रवर ने गत ५०० वर्ष का इतिहास दोहराया है।

आपके सतत सान्निध्य को पाकर चतुर्विध सं[घ] बहुमुखी विकास कर रहा है। शिक्षा-दीक्षा प्रायश्चित्त चातुर्मास आदि साधु-साध्वी वर्ग के सभी कार्यों में इस महायोगी की आज्ञा ही सर्वोपरि होती है, जि[से] साधु-साध्वी वर्ग सहर्ष स्वीकार कर तदनुरूप आचरण में संलग्न हैं। इसीलिये अल्प समय में ही संघ में कई श्रमण-श्रमणी वर्ग आगमज्ञ-गवेषक-चिन्तक हो ग[ए] हैं, कई दर्शनशास्त्र के ज्ञाता हैं तो कई संस्कृत-प्राकृ[त] व्याकरण-साहित्य आदि विषयों पर अपना अधिका[र] रखते हैं। आपके शिष्यवर्ग भारत के विभिन्न प्रान्तों मेवाड़, मालवा, मारवाड़, महाराष्ट्र, गुजरात, आसाम उड़ीसा आदि में विचरण कर जन-मानस की सुषु[प्त] चेतना को जागृत करने के लिये आपश्री द्वारा प्रति[-] पादित समता-सिद्धान्त का शंखनाद कर रहे हैं।

अभी आचार्य प्रवर अपने आचार्य पद के पच्चीसवें वर्ष में प्रवेश कर चुके हैं। इन्दौर में करीब ३० मास खमण हो गये हैं। यह सब आपश्री की महान् साधना का ही परिणाम है।

धन्य है ऐसे महायोगी को, इनका सतत सान्निध्य हमें निरन्तर प्राप्त होता रहे, यही मंगलमय शुभ कामना है।

卐

णमो आयरियाणं

# लालों का यह लाल हठीला, कभी नहीं डिग पायेगा

समरथमल डागरिया

गगन झुकेगा, पवन रूकेगा, बहता पानी जब थम जायेगा ।
प्रलय मचेगा उस दिन, जब मेरा पंच महाव्रती डिग जायेगा ।।
तू जोर लगाले अरे जमाने, आखिर मुंह की खायेगा ।
लालों का यह लाल हठीला, कभी नहीं डिग पायेगा ।।

संकल्पों की ज्वाला ने, जिसको नई रवानी दी ।
पूज्य गणेशी से गुरुवर ने, वीतराग की वाणी दी है ।।
दशवैकालिक सूतर ने, जिसको नई दिशा दी है ।
भारत मां के परम लाडले ने, जीवन की कुर्बानी दी है ।।

इसको कोई क्या समझेगा, एक दिन वह भी आयेगा ।
लालों का यह लाल हठीला, कभी नहीं डिग पायेगा ।।

भक्तामर की गाथाओं को अन्तस्तल से चूमा है ।
विनयचन्द की चौवीसी पर ललक लाड़ला झूमा है ।।
आगम और अनगार ने जिसका मानस विकसित कर डाला ।
महावीर की इन सन्तानों ने, णमो आयरियाणं कह डाला ।।

सागर वर गंभीरा जो है, उसको कोई क्या झुठलायेगा ।
पूज्य गणेशी का पटधर मेरा कभी नहीं डिग पायेगा ।।
चाहे बादल फट फट जाये और अगणित बरसायें अंगारे ।
हिले हिमालय डिगे दिशाएं, रह रह कर यूं चित कारे ।।

सत्य अहिंसा का पालक मेरा, कभी नहीं विचलित हो जायेगा ।
गुरु जवाहर की क्रान्ति पताका, अहर्निश यह फहरायेगा ।।
एक नजारा समरथ तेरा गुरुवर, अग जग को यह दिख लायेगा ।
सुधर्मा स्वामी का पटधर, यह कभी नहीं डिग पाएगा ।।

जिन शासन के गौरव तेरा,
अभिनन्दन करती मां भारती ।
शस्य श्यामला वसुन्धरा यह,
तेरे जीवन की उतारे आरती ।।
तू पंच महाव्रत धारी है,
जप तप संयम तेरी साधना ।
कोटि कोटि स्वीकार करो गुरु,
चरण कमल में मेरी वन्दना ।।

# रथ बढ़ रहा है, पथ भी प्रशस्त हो रहा है

मर्यादा ही उत्तम आचरण का सुरक्षा-कवच है । प्रभु महावीर का सन्देश है कि आचरण की धारा सम्यक् ज्ञान के चट्टानी तटवन्धों में ही मर्यादित रहनी चाहिये ।

आचार्य गुरुदेव श्री गणेशीलालजी म. सा. ने श्रमण संस्कृति की सुस्थिति एवं उन्नयन के लिए 'शान्त क्रान्ति' का अभियान चलाया । इस अभियान को ओजस् प्रदान करना साधु-वर्ग का दायित्व है । इसकेलिए साधु-वर्ग को जहां साधना के पथ पर अविचल रूप से आरूढ़ रहना है वहीं अपनी साधनागत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति द्वारा सामान्य जन के लिए सुदृढ़ साधना-सेतु का निर्माण भी करते चलना है । 'शान्त क्रान्ति' आत्म-साधना से ही परात्म-साधना के उदय का अभियान है जो आत्म-पक्ष, परात्म–पक्ष एवं परात्म–पक्ष तीनों को उजागर करने में सक्षम है । साधु एवं साध्वी समाज ने विगत पच्चीस वर्षों में सम्यक् ज्ञानार्जन की दिशा में अच्छी दूरी तय की है । रथ बढ़ रहा है, पथ भी प्रशस्त हो रहा है ।

—आचार्य श्री नानेश
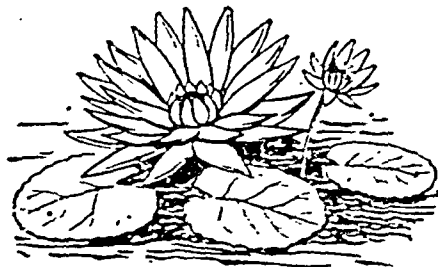
## आचार्य प्रवर की नेश्राय में विचरण करने वाले एवं उनसे दीक्षित संत सतियांजी म. सा. की तालिका:-

| सं. | नाम | ग्राम | दीक्षा तिथि | दीक्षा स्थान |
|---|---|---|---|---|
| १. | श्री ईश्वरचन्दजी म. सा., | देशनोक | सं. १९९९ मिगसर कृष्णा ४ | भीनासर |
| २. | श्री इन्द्रचन्दजी म. सा., | माडपुरा | सं. २००२ वैशाख शुक्ला ६ | गोगोलाव |
| ३. | श्री सेवन्तमुनिजी म. सा., | कन्नोज | सं. २०१९ कार्तिक शुक्ला ३ | उदयपुर |
| ४. | श्री अमरचन्दजी म. सा., | पीपलिया | सं. २०२० वैशाख शुक्ला ३ | पीपलिया |
| ५. | श्री शान्तिमुनिजी म. सा., | भदेसर | सं. २०१९ कार्तिक शुक्ला १ | भदेसर |
| ६. | श्री कंवरचन्दजी म. सा., | निकुम्भ | सं. २०१९ फाल्गुन शुक्ला ५ | बड़ीसादड़ी |
| ७. | श्री प्रेममुनिजी म. सा., | भोपाल | सं. २०२३ आश्विन शुक्ला ४ | राजनांदगांव |
| ८. | श्री पारसमुनिजी म. सा., | दलोदा | सं. २०२३ आश्विन शुक्ला ४ | राजनांदगांव |
| ९. | श्री सम्पतमुनिजी म. सा., | रायपुर | सं. २०२३ आश्विन शुक्ला ४ | राजनांदगांव |
| १०. | श्री रतनमुनिजी म. सा., | भाड़ेगांव | | सोनार |
| ११. | श्री धर्मेशमुनिजी म. सा., | मद्रास | सं. २०२३ फाल्गुन कृष्णा ९ | रायपुर |
| १२ | श्री रणजीतमुनिजी म. सा., | कंजार्ड़ा | सं. २०२७ कार्तिक कृष्णा ८ | बड़ीसादड़ी |
| १३. | श्री महेन्द्रमुनिजी म. सा., | गोगुन्दा | सं. २०२७ कार्तिक कृष्णा ८ | बड़ीसादड़ी |
| १४. | श्री सौभागमलजी म. सा., | बड़ावदा | सं. २०२८ कार्तिक शुक्ला १३ | व्यावर |
| १५. | श्री रमेशमुनिजी म. सा., | उदयपुर | सं. २०२८ कार्तिक शुक्ला १३ | व्यावर |
| १६. | श्री रवीन्द्रमुनिजी म. सा., | कानवन | सं. २०२९ भादवा कृष्णा १२ | जयपुर |
| १७. | श्री भूपेन्द्रमुनिजी म. सा., | निकुम्भ | सं. २०२९ आश्विन शुक्ला ३ | " |
| १८. | श्री वीरेन्द्रमुनिजी म. सा., | आष्टा | सं. २०२९ माघ शुक्ला २ | देशनोक |
| १९. | श्री हुलासमलजी म. सा., | गंगाशहर | सं. २०२९ माघ शुक्ला १३ | भीनासर |
| २०. | श्री जितेन्द्रमुनिजी म. सा., | बीकानेर | " " " " " | " |
| २१. | श्री विजयमुनिजी म. सा., | बीकानेर | " " " " " | " |
| २२. | श्री नरेन्द्रमुनिजी म. सा., | बम्बोरा | सं. २०३० माघ शुक्ला ५ | सरदारशहर |
| २३. | श्री ज्ञानेन्द्रमुनिजी म. सा., | व्यावर | सं. २०३१ जेठ शुक्ला ५ | गोगोलाव |
| २४. | श्री बलभद्रमुनिजी म. सा., | पीपलिया | सं. २०३१ आश्विन शुक्ला ३ | सरदारशहर |
| २५. | श्री पुष्पमुनिजी म. सा., | मंडी डब्बावाली | सं. २०३१ आश्विन शुक्ला ३ | " |
| २६. | श्री मोतीलालजी म. सा., | गंगाशहर | " " माघ " १२ | देशनोक |
| २७. | श्री रामलालजी म. सा., | देशनोक | " " " " " | " |
| २८. | श्री प्रकाशचन्दजी म. सा., | देशनोक | सं. २०३२ आश्विन शुक्ला ५ | देशनोक |
| २९. | श्री गौतममुनिजी म. सा., | बीकानेर | सं. २०३२ मिगसर शुक्ला १३ | बीकानेर |

| क्र. सं. | नाम | ग्राम | दीक्षा तिथि | दीक्षा स्थान |
|---|---|---|---|---|
| ३०. | श्री प्रमोदमुनिजी म. सा., | हांसी | सं. २०३३ माघ कृष्णा १ | भीनसर |
| ३१. | श्री प्रशममुनिजी म. सा., | गंगाशहर | सं. २०३४ वैशाख कृष्णा ७ | भीनासर |
| ३२. | श्री अशोककुमारजी म. सा., | जावरा | सं. २०३४ आश्विन शुक्ला २ | भीनासर |
| ३३. | श्री मूलचन्दजी म. सा., | नोखामण्डी | सं. २०३४ मिगसर शुक्ला ५ | नोखामण्डी |
| ३४. | श्री ऋषभमुनिजी म. सा., | बम्बोरा | सं. २०३४ माघ शुक्ला १० | जोधपुर |
| ३५. | श्री अजितमुनिजी म. सा., | रतलाम | सं, २०३५ आश्विन शुक्ला २ | जोधपुर |
| ३६. | श्री जितेशमुनिजी म. सा., | पूना | सं. २०३६ चैत्र शुक्ला १५ | ब्यावर |
| ३७. | श्री पद्मकुमारजी म. सा., | नीमगांवखेड़ी | " " " " " | " |
| ३८. | श्री विनयमुनिजी म. सा., | ब्यावर | " " " " " | " |
| ३९. | श्री गोविन्दमुनिजी म. सा., | ब्यावर | सं. २०३७ पौष शुक्ला १३ | जगदलपुर |
| ४०. | श्री सुमतिमुनिजी म. सा., | नोखामंडी | सं. ३०३७ पौष शुक्ला ३ | भीम |
| ४१. | श्री चन्द्रेशमुनिजी म. सा., | फलोदी | सं. २०३८ वैशाख शुक्ला ३ | गंगापुर |
| ४२. | श्री पंकजमुनिजी म. सा., | राजनांदगांव | सं. २०३९ चैत्र शुक्ला ३ | अहमदाबाद |
| ४३. | श्री धर्मेन्द्रकुमारजी म. सा., | सांकरा | " " " " " | " |
| ४४. | श्री धीरजकुमारजी म. सा., | जावद | सं. २०४१ फाल्गुन शुक्ला २ | रतलाम |
| ४५. | श्री कांतिकुमारजी म. सा., | नीमगांवखेड़ी | " " " " " | " |

## महासतियांजी म. सा. की तालिका

| क्र. सं. | नाम | ग्राम | दीक्षा तिथि | दीक्षा स्थान |
|---|---|---|---|---|
| १. | श्री सिरेकंवरजी म. सा., | सोजत | सं. १९८४ | सोजत |
| २. | श्री वल्लभकंवरजी (प्रथम) म. सा. | जावरा | सं. १९८७ पौष शुक्ला २ | निसलपुर |
| ३. | श्री पानकंवरजी (प्रथम) म.सा. | उदयपुर | सं. १९९१ चैत्र शुक्ला १३ | भीण्डर |
| ४. | श्री सम्पतकंवरजी (प्रथम) म. सा. | रतलाम | सं. १९९२ चैत्र शुक्ला १ | रतलाम |
| ५. | श्री गुलाबकंवरजी (प्रथम) म.सा. | खाचरौद | सं. १९९२ | खाचरौद |
| ६, | श्री प्यारकंवरजी म. सा. | गोगोलाव | सं. १९९५ वैशाख शुक्ला ३ | गोगोलाव |
| ७. | श्री केसरकंवरजी म. सा., | बीकानेर | सं. १९९५ ज्येष्ठ शुक्ला ४ | बीकानेर |
| ८. | श्री गुलाबकंवरजी (द्वितीय) म.सा. | जावरा | सं. १९९७ | खाचरौद |
| ९. | श्री धापूकंवरजी (प्रथम) म. सा. | भीनासर | सं. १९९८ भादवा कृ. ११ | भीनासर |
| १०. | श्री कुंकुकंवरजी म. सा., | देवगढ़ | सं, १९९८ वैशाख शु. ६ | देवगढ़ |
| ११. | श्री पेपकंवरजी म. सा., | बीकानेर | सं. १९९९ ज्येष्ठ कृ. ७ | बीकानेर |
| १२. | श्री नानूकंवरजी म. सा. | देशनोक | सं. १९९९ आश्विन शु. ३ | देशनोक |
| १३. | श्री लाडकंवरजी म. सा., | बीकानेर | सं. २००० चैत्र कृ. १० | बीकानेर |
| १४. | श्री धापूकंवरजी (द्वितीय) म.सा., | चिकारड़ा | सं. २००१ चैत्र शु. १३ | भीलवाड़ा |
| १५. | श्री कंचनकंवरजी म. सा., | सवाईमाधोपुर | सं. २००१ वैशाख कृ. २ | ब्यावर |
| १६. | श्री सूरजकंवरजी म. सा., | विरमावल | सं. २००२ माघ शु. १३ | रतलाम |
| १७, | श्री फूलकंवरजी म. सा. | कुम्तला | सं. २००३ चैत्र शु. ९ | सवाईमाधोपुर |

| क्र. सं. | नाम | ग्राम | दीक्षा तिथि | दीक्षा स्थान |
|---|---|---|---|---|
| १८. | श्री भंवरकंवरजी (प्रथम) म सा. | बीकानेर | सं. २००३ वैशाख कृ. १० | बीकानेर |
| १९. | श्री सम्पतकंवरजी म. सा. | जावरा | सं. २००३ आश्विन कृ. १० | ब्यावर पुरानी |
| २०. | श्री सायरकंवरजी (प्रथम) म. सा. | केशरसिंहजी का गुड़ा | सं. २००४ चै. शु. २ | राणावास |
| २१. | श्री गुलाबकंवरजी (द्वि.) म. सा., | उदयपुर | सं. २००६ मा. शु. १ | उदयपुर |
| २२. | श्री कस्तूरकंवरजी (प्र.) म.सा. | नारायणगढ़ | सं. २००७ पौ. शु. ४ | खाचरौद |
| २३. | श्री सायरकंवरजी (द्वि.) म. सा. | ब्यावर | सं २००७ ज्ये. शु. ५ | ब्यावर |
| २४. | श्री चान्दकंवरजी म. सा. | बीकानेर | सं २००८ फा. कृ. ८ | बीकानेर |
| २५. | श्री पानकंवरजी (द्वि) म. सा., | बीकानेर | सं. २००९ ज्ये. कृ. ६ | बीकानेर |
| २६. | श्री इन्द्रकंवरजी म. सा., | बीकानेर | सं. २००९ ज्ये. कृ. ५ | बीकानेर |
| २७. | श्री बदामकंवरजी म. सा., | मेड़ता | सं. २०१० ज्ये. कृ. ३ | बीकानेर |
| २८. | श्री सुमतिकंवरजी म. सा., | झुञ्झू | सं. २०११ वै शु. ५ | भीनासर |
| २९. | श्री इचरजकंवरजी म. सा., | बीकानेर | सं. २०१३ आ. शु. १० | गोगोलाव |
| ३०. | श्री चन्द्राकंवरजी म. सा., | कुकड़ेश्वर | सं. २०१४ फा. शु. ३ | कुकड़ेश्वर |
| ३१. | श्री सरदारकंवरजी म. सा., | अजमेर | सं. २०१५ आ. शु. १३ | उदयपुर |
| ३२. | श्री शांताकंवरजी (प्रथम) म. सा. | उदयपुर | सं. २०१६ ज्ये. शु. ११ | उदयपुर |
| ३३. | श्री रोशनकंवरजी (प्र.) म. सा., | उदयपुर | सं. २०१६ आ. शु. १५ | बड़ीसादड़ी |
| ३४. | श्री अनोखाकंवरजी म. सा., | उदयपुर | सं. २०१६ का. कृ. ८ | उदयपुर |
| ३५. | श्री कमलाकंवरजी (प्र.) म. सा., | कानोड़ | सं. २०१६ का. शु. १३ | प्रतापगढ़ |
| ३६. | श्री झमकूकंवरजी म. सा., | भदेसर | सं. २०१७ मि. कृ. ५ | उदयपुर |
| ३७. | श्री नन्दकंवरजी म. सा., | बड़ीसादड़ी | सं. २०१७ फा. वदी १० | छोटीसादड़ी |
| ३८. | श्री रोशनकंवरजी (द्वि.) म. सा., | बड़ीसादड़ी | सं. २०१८ वै. शु. ८ | बड़ीसादड़ी |
| ३९. | श्री सूर्यकान्ताजी म. सा., | उदयपुर | सं. २०१९ वै. शु. ७ | उदयपुर |
| ४०. | श्री सुशीलाकंवरजी (प्र.) म. सा., | उदयपुर | सं. २०१९ वै. शु. १२ | उदयपुर |
| ४१. | श्री शान्ताकंवरजी (द्वि.) म.सा., | गंगाशहर | सं. २०१८ फा. कृ १२ | गंगाशहर |
| ४२. | श्री लीलावतीजी म. सा., | निकुम्भ | सं. २०२० फा. शु. २ | निकुम्भ |
| ४३. | श्री कस्तूरकंवरजी म.सा. (द्वि) | पीपल्यामंडी | सं. २०२० वै. शु. ३ | पीपल्यामंडी |
| ४४. | श्री हुलासकंवरजी म. सा., | चिकारड़ा | सं. २०२१ वै. शु. १० | चिकारड़ा |
| ४५. | श्री ज्ञानकंवरजी (द्वि.) म.सा., | मालदामाड़ी | सं. २०२१ आ. शु. ८ | पीपलियाकलां |
| ४६. | श्री विरदीकंवरजी म. सा., | बीकानेर | सं. २०२३ वै. शु. ८ | बीकानेर |
| ४७. | श्री ज्ञानकंवरजी (द्वि.) म.सा., | राणावास | सं. २०२३ आ. शु ४ | राजनांदगांव |
| ४८. | श्री प्रेमलताजी (प्र.) म. सा., | सुरेन्द्रनगर | " " " " | " |
| ४९. | श्री इन्दुबालाजी म. सा., | राजनांदगांव | " " " " | " |
| ५०. | श्री गंगापतीजी म. सा., | डोंगरगांव | सं. २०२३ मि. शु. १३ | डोंगरगांव |

| क्र.सं. | नाम | ग्राम | दीक्षा तिथि | दीक्षा स्थान |
|---|---|---|---|---|
| ५१. | श्री पारसकंवरजी म. सा., | कलंगपुर | सं. २०२३ मि. शु. १३ | डोंगरगांव |
| ५२ | श्री चन्दनबालाजी म. सा., | पीपल्या | सं. २०२३ मा. शु. १० | पीपल्यामंडी |
| ५३. | श्री जयश्रीजी म. सा., | मद्रास | सं. २०२३ फा. कृ. ६ | रायपुर |
| ५४. | श्री सुशीलाकंवरजी (द्वि.) म. सा. | मालदामाड़ी | सं. २०२४ आ. शु. २ | जावरा |
| ५५. | श्री मंगलाकंवरजी म. सा., | बड़ावदा | सं. २०२४ आ. शु. १ | दुर्ग |
| ५६. | श्री शकुन्तलाजी म. सा., | बीजा | सं. २०२४ मि. कृ. ६ | दुर्ग |
| ५७. | श्री चमेलीकंवरजी म. सा., | बीकानेर | सं. २०२५ फा. शु. ५ | बीकानेर |
| ५८. | श्री सुशीलाकंवरजी (तृ.) म.सा. | बीकानेर | सं. २०२५ फा. शु. ५ | बीकानेर |
| ५९. | श्री चन्द्राकंवरजी म. सा., | रतलाम | सं. २०२६ वै. शु. ७ | ब्यावर |
| ६०. | श्री कुसुमलताजी म. सा., | मंदसौर | सं. २०२६ आ. शु. ४ | मंदसौर |
| ६१. | श्री प्रेमलताजी म. सा., | मंदसौर | सं. २०२६ आ. शु. ४ | मंदसौर |
| ६२. | श्री विमलाकंवरजी म. सा.. | पीपल्या | सं. २०२७ का. कृ. ८ | बड़ीसादड़ी |
| ६३. | श्री कमलाकंवरजी म. सा., | जेठाणा | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| ६४. | श्री पुष्पलताजी म. सा., | बड़ीसादड़ी | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| ६५. | श्री सुमतिकंवरजी म. सा., | बड़ीसादड़ी | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| ६६. | श्री विमलाकंवरजी म. सा., | मोडी | सं. २०२७ फा. शु. १२ | जावद |
| ६७. | श्री सूरजकंवरजी म. सा., | बड़ावदा | सं. २०२८ का. शु. १२ | ब्यावर |
| ६८. | श्री ताराकंवरजी (प्र.) म. सा. | रतलाम | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| ६९. | श्री कल्याणकंवरजी म. सा., | बीकानेर | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| ७०. | श्री कान्ताकंवरजी म. सा., | बड़ावदा | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| ७१. | श्री कुसुमलताजी (द्वि.) म. सा. | रावटी | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| ७२. | श्री चन्दनाजी (द्वि.) म. सा., | बड़ावदा | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| ७३. | श्री ताराजी (द्वि.) म. सा., | रतलाम | सं. २०२९ चै. शु, २ | जयपुर |
| ७४. | श्री चेतनाश्रीजी म. सा., | कानोड़ | सं. २०२९ चै. शु. १३ | टोंक |
| ७५. | श्री तेजप्रभाजी म. सा., | गोगोलाव | सं. २०२९ मा. शु. १३ | भीनासर |
| ७६. | श्री भंवरकंवरजी (द्वि.) म. सा., | बीकानेर | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| ७७. | श्री कुसुमकान्ताजी म. सा., | जावरा | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| ७८. | श्री वसुमतीजी म. सा., | बीकानेर | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| ७९. | श्री पुष्पाजी म. सा., | देशनोक | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| ८०. | श्रीराजमतीजी म. सा., | दलोदा | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| ८१. | श्री मंजुवालाजी म. सा., | वीकानेर | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| ८२. | श्री प्रभावतीजी म. सा., | वीकानेर | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| ८३. | श्री ललिताजी (प्रथम) म. सा., | वीकानेर | सं. २०२९ फा. शु. ११ | वीकानेर |

| क्र.सं. | नाम | ग्राम | दीक्षा तिथि | दीक्षा स्थान |
|---|---|---|---|---|
| ८४. | श्री सुशीलाजी (द्वि.) म. सा., | मोड़ी | सं. २०३० वै. शु. ६ | नोखामंडी |
| ८५. | श्री समताकंवरजी म. सा., | अजमेर | " " " " " | " |
| ८६. | श्री निरंजनाश्रीजी म. सा., | बड़ीसादड़ी | सं. २०३० का. शु. १३ | बीकानेर |
| ८७. | श्री पारसकंवरजी म. सा., | बांगेड़ा | सं. २०३० मि. शु. ६ | भीनासर |
| ८८. | श्री सुमनलताजी म. सा., | बांगेड़ा | " " " " " | " |
| ८९. | श्री विजयलक्ष्मीजी म. सा., | उदयपुर | सं. २०३० मा. शु. ५ | सरदारशहर |
| ९०. | श्री स्नेहलताजी म. सा., | सदरदारशहर | " " " " " | " |
| ९१. | श्री रंजनाश्रीजी म. सा.. | उदयपुर | सं. २०३१ ज्ये. शु. ५ | गोगोलाव |
| ९२. | श्री अंजनाश्रीजी म. सा., | उदयपुर | " " " " " | " |
| ९३. | श्री ललिताजी म. सा., | ब्यावर | " " " " " | " |
| ९४. | श्री विचक्षणाजी म. सा., | पीपलिया | सं. २०३१ आ. शु. ३ | सरदारशहर |
| ९५. | श्री सुलक्षणाजी म. सा., | पीपलिया | " " " " " | " |
| ९६. | श्री प्रियलक्षणाजी म. सा., | पीपलिया | " " " " " | " |
| ९७. | श्री प्रीतिसुधाजी म. सा., | निकुम्भ | सं. २०३१ मा. शु. १२ | देशनोक |
| ९८. | श्री सुमनप्रभाजी म. सा. | देवगढ़ | " " " " " | " |
| ९९. | श्री सोमलताजी म. सा., | रावटी | " " " " " | " |
| १००. | श्री किरणप्रभाजी म. सा. | बीकानेर | " " " " " | " |
| १०१. | श्री मंजुलाश्रीजी म. सा., | देशनोक | सं. २०३२ वै. कृ. १३ | भीनासर |
| १०२. | श्री सुलोचनाजी म. सा., | कानोड़ | " " " " " | " |
| १०३. | श्री प्रतिभाजी म. सा., | बीकानेर | " " " " " | " |
| १०४. | श्री वनिताश्रीजो म. सा. | बीकानेर | " " " " " | " |
| १०५. | श्री सुप्रभाजी म. सा., | गोगोलाव | " " " " " | " |
| १०६. | श्री जयन्तश्रीजी म. सा., | बीकानेर | सं. २०३२ आ. शु. ५ | देशनोक |
| १०७. | श्री हर्षकंवरजी म. सा., | अमरावती | सं. २०३२ मि. शु. ८. | जावरा |
| १०८. | श्री सुदर्शनाजी म. सा., | नोखामंडी | सं. २०३३ आ. शु. ५ | नोखामंडी |
| १०९. | श्री निरुपमाजी म. सा., | रायपुर | " " " " १५ | " |
| ११०. | श्री चन्द्रप्रभाजी म. सा., | मेड़ता | " " मि. " १३ | " |
| १११. | श्री आदर्शप्रभाजी म. सा., | उदासर | सं. २०३४ वै. कृ. ७ | भीनासर |
| ११२. | श्री कीर्तिश्रीजी म. सा., | भीनासर | " " " " " | " |
| ११३. | श्री हर्षिलाश्रीजी म. सा., | गंगाशहर | " " " " " | " |
| ११४. | श्री साधनाश्रीजी म. सा. | गंगाशहर | " " " " " | " |
| ११५. | श्री अर्चनाश्रीजी म. सा., | गंगाशहर | " " " शु. १५ | " |
| ११६. | श्री सरोजकंवरजी म. सा., | धमतरी | सं. २०३४ भा. कृ. ११ | दुर्ग |
| ११७. | श्री मनोरमाजी म. सा., | रतलाम | " " " " " | " |
| ११८. | श्री चंचलकंवरजी म. सा., | कांकेर | " " " " " | " |

| क्र.सं. | नाम | ग्राम | दीक्षा तिथि | दीक्षा स्थान |
|---|---|---|---|---|
| ११९. | श्री कुसुमकंवरजी म. सा., | निवारी | सं. २०३४ भा. कृ. ११ | दुर्ग |
| १२०. | सुप्रतिभाजी म. सा., | उदयपुर | सं. २०३४ आ. शु. २ | भीनासर |
| १२१. | श्री शांताप्रभाजी म. सा., | बीकानेर | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| १२२. | श्री मुक्तिप्रभाजी म. सा., | मोडी | सं. २०३४ मि. कृ. ५ | बीकानेर |
| १२३. | श्री गुणसुन्दरीजी म. सा., | उदासर | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| १२४. | श्री मधुप्रभाजी म. सा., | छोटीसादड़ी | सं. २०३४ मि. कृ. ५ | बीकानेर |
| १२५. | श्री राजश्रीजी म. सा., | उदयपुर | ,, ,, मा. शु. १० | जोधपुर |
| १२६. | श्री शशिकांताजी म. सा., | उदयपुर | ,, ,, ,, ,, १० | जोधपुर |
| १२७. | श्री कनकश्रीजी म. सा., | रतलाम | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| १२८. | श्री सुलभाश्रीजी म. सा., | नोखामण्डी | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| १२९. | श्री निर्मलाश्रीजी म. सा., | देशनोक | सं. २०३५ आ. शु. २ | जोधपुर |
| १३०. | श्री चेलनाश्रीजी म. सा., | कानोड़ | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| १३१. | श्री कुमुदश्रीजी म. सा., | गंगाशहर | ,, ,, ,, ,, , | ,, |
| १३२. | श्री कमलश्रीजी म. सा., | उदयपुर | सं. २०३६ चै. शु. १५ | ब्यावर |
| १३३. | श्री पदमश्रीजी म. सा., | महिन्दरपुर | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| १३४. | श्री अरुणाश्रीजी म. सा., | पीपल्या | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| १३५. | श्री कल्पनाश्रीजी म. सा., | देशनोक | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| १३६. | श्री ज्योत्स्नाश्रीजी म. सा., | गंगाशहर | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| १३७. | श्री पंकजश्रीजी म. सा., | बीकानेर | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| १३८. | श्री मधुश्रीजी म. सा., | इन्दौर | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| १३९. | श्री पूर्णिमाश्रीजी म. सा., | बड़ीसादड़ी | ,, , ,, ,, ,, | ,, |
| १४०. | श्री प्रवीणाश्रीजी म. सा., | मंदसौर | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| १४१. | श्री दर्शनाश्रीजी म. सा., | देशनोक | ,, ,, ,, ,, , | ,, |
| १४२. | श्री वन्दनाश्रीजी म. सा., | गंगाशहर | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| १४३. | श्री प्रमोदश्रीजी म. सा., | ब्यावर | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| १४४. | श्री उर्मिलाश्रीजी म. सा., | रायपुर | सं. २०३७ ज्ये. शु. ३ | बुसी |
| १४५. | श्री सुभद्राश्रीजी म. सा., | बीकानेर | सं. २०३७ आ. शु. ११ | राणावास |
| १४६. | श्री हेमप्रभाजी म. सा., | केसींगा | सं. २०३७ आ. शु. ३ | राणावास |
| १४७. | श्री ललितप्रभाजी म. सा., | विनोता | सं. २०३८ वै. शु. ३ | गंगापुर |
| १४८. | श्री वसुमतीजी म. सा., | अलाय | सं. २०३८ आ. शु. ८ | अलाय |
| १४९. | श्री इन्द्रप्रभाश्रीजी म. सा., | बीकानेर | सं. २०३८ का. शु. १२ | उदयपुर |
| १५०. | श्री ज्योतिप्रभाश्रीजी म. सा., | गंगाशहर | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| १५१. | श्री रचनाश्रीजी म. सा., | उदयपुर | ,, , ,, ,, ,, | ,, |
| १५२. | श्री रेखाश्रीजी म. सा., | जोधपुर | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |
| १५३. | श्री चित्राश्रीजी म. सा., | लोहावट | ,, ,, ,, ,, ,, | ,, |

| क्र.सं. | नाम | ग्राम | दीक्षा तिथि | दीक्षा स्थान |
|---|---|---|---|---|
| १५४. | श्री लघिमाश्रीजी म. सा. | गंगाशहर | सं. २०३८ का. शु. १२ | उदयपुर |
| १५५. | श्री विद्यावतीजी म. सा., | सवाईमाधोपुर | सं. २०३८ मि. शु. ६ | हिरणमंगरी |
| १५६ | श्री विख्याताश्रीजी म. सा., | विनोता | सं. २०३८ मा. कृ. ३ | बम्बोरा |
| १५७. | श्री जिनप्रभाश्रीजी म. सा., | राजनांदगांव | सं. २०३९ चै. कृ. ३ | अहमदाबाद |
| १५८. | श्री अमिताश्रीजी म. सा., | रतलाम | " " " " " | " |
| १५९ | श्री विनयश्रीजी म. सा., | दुरखखान | " " " " " | " |
| १६०. | श्री श्वेताश्रीजी म. सा., | केशकाल | " " " " " | " |
| १६१. | श्री सुचिताश्रीजी म. सा., | रतलाम | सं. २०३९ चै. कृ. ३ | अहमदाबाद |
| १६२. | श्री मणिप्रभाजी म. सा., | गंगाशहर | " " " " " | " |
| १६३. | श्री सिद्धप्रभाजी म. सा., | नागौर | " " " " " | " |
| १६४. | श्री नम्रताश्रीजी म. सा., | जगदलपुर | " " " " " | " |
| १६५. | श्री सुप्रतिभाश्रीजी म. सा., | राजनांदगांव | " " " " " | " |
| १६६. | श्री मुक्ताश्रीजी म. सा., | कपासन | " " " " " | " |
| १६७. | श्री विशालप्रभाजी म. सा., | गंगाशहर | " " " " " | " |
| १६८. | श्री कनकप्रभाजी म. सा., | बीकानेर | " " " " " | " |
| १६९. | श्री सत्यप्रभाजी म. सा., | बीकानेर | " " " " " | " |
| १७०. | श्री रक्षिताश्रीजी म. सा., | पाली | सं. २०४० आ. शु. २ | भावनगर |
| १७१. | श्री महिमाश्रीजी म. सा., | अहमदाबाद | " " " " " | " |
| १७२. | श्री मृदुलाश्रीजी म. सा., | वैशालीनगर | " " " " " | " |
| १७३. | श्री वीणाश्रीजी म. सा., | वैशालीनगर | " " " " " | " |
| १७४. | श्री प्रेरणाश्रीजी म. सा., | बीकानेर | सं. २०४० फा. शु. २ | रतलाम |
| १७५. | श्री गुणरंजनाश्रीजी म. सा., | उदयपुर | " " " " " | " |
| १७६. | श्री सूर्यमणिजी म. सा., | मंदसौर | " " " " " | " |
| १७७. | श्री सरिताश्रीजी म. सा., | कलकत्ता | " " " " " | " |
| १७८. | श्री सुवर्णाश्रीजी म. सा. | रतलाम | " " " " " | " |
| १७९. | श्री निरूपणाश्रीजी म. सा., | उदयपुर | " " " " " | " |
| १८०. | श्री शिरोमणिश्रीजी म. सा., | डोंडीलोहारा | " " " " " | " |
| १८१. | श्री विकासप्रभाजी म. सा., | बीकानेर | " " " " " | " |
| १८२. | श्री तरुलताजी म. सा., | चित्तौड़ | " " " " " | " |
| १८३. | श्री करुणाश्रीजी म. सा., | मोड़ी | " " " " " | " |
| १८४. | श्री प्रभावनाश्रीजी म. सा., | बड़ाखेड़ा | " " " " " | " |
| १८५. | श्री सुयशमणिजी म. सा., | गंगाशहर | " " " " " | " |
| १८६. | श्री चित्तरंजनाजी म. सा., | रतलाम | " " " " " | " |
| १८७. | श्री मुक्ताश्रीजी म. सा., | बीकानेर | " " " " " | " |
| १८८. | श्री सिद्धमणिजी म. सा., | देशनू | " " " " " | " |

| क्र.सं. | नाम | ग्राम | दीक्षा तिथि | दीक्षा स्थान |
|---|---|---|---|---|
| १८९. | श्री रजमणिश्रीजी म. सा., | वंगुमुण्डा | सं. २०४० फा. शु. २ | रतलाम |
| १९०. | श्री अर्पणाश्रीजी म. सा., | कानोड़ | " " " " " | " |
| १९१. | श्री मंजुलाश्रीजी म. सा., | भीनासर | " " " " " | " |
| १९२. | श्री गरिमाश्रीजी म. सा., | चौथ का बरवाड़ा | " " " " " | " |
| १९३. | श्री हेमश्रीजी म. सा., | नोखामण्डी | " " " " " | " |
| १९४. | श्री कल्पमणिजी म. सा., | पीपल्या | " " " " " | " |
| १९५. | श्री रविप्रभाजी म. सा., | जावरा | " " " " " | " |
| १९६. | श्री मयंकमणिजी म. सा., | पीपलियामंडी | " " " " " | " |

महावीर से एक बार गौतम ने पूछा—"प्रभो, आपके अनुग्रह से मुझे चौदह पूर्व और चार ज्ञान प्राप्त है। केवल-ज्ञान तक पहुंचने में अब कितना अवशेष है?"

महावीर ने कहा—गौतम, असंख्य योजन विस्तृत स्वयंभू रमणसमुद्र में से एक चिड़िया चोंच में पानी ले और सोचे कि अब सागर में कितना जल शेष है तेरा सोचना भी वैसा ही है। चिड़िया की चोंच में जितना जल समाता है उतना ही तेरा चौदह पूर्व और चार ज्ञान है।"

कहने का तात्पर्य है कि ज्ञान तो स्वयंभूरमण समुद्र की तरह असीमित है। जो अपने ज्ञान का गर्व करते हैं, मैं आगम ज्ञानी हूं या उत्कट विद्वान हूं उन्हें महावीर के इस कथन से शिक्षा लेनी चाहिए। जब चार ज्ञान के धारी चौदह पूर्व के ज्ञाता महा मेधावी गौतम को यह प्रत्युत्तर मिला तो हमारा ज्ञान तो राई के समान भी नहीं है। फिर उसका गर्व कैसा?

महा मनीषी न्यूटन से किसी के प्रश्न करने पर उन्होंने अपने ज्ञान की तुच्छता बतलाने के लिए कहा—मैं तो ज्ञान समुद्र के किनारे पड़े पत्थर ही बटोर रहा हूं। ज्ञान समुद्र में डुबकी लगाना तो बहुत दूर की बात है।

सच्चे ज्ञानी का यही लक्षण है:—

लाभंसि जे ण सुमणो अलाभे णे व दुम्मणो।
से हु सेट्ठे मणुस्साणं देवाणं सयंक्कऊ ॥

यम नामक अर्हतर्षि कहते हैं—

जो लाभ में प्रसन्न नहीं होता, जो अलाभ में अप्रसन्न, वही मनुष्यों में श्रेष्ठ है, ठीक उसी तरह जैसे देवों में इन्द्र।

गीता में जिसे समत्व योग कहा है, जैन दर्शन में उसे ही सम्यक्त्व या सामायिक कहा है। सुख-दुःख, लाभ-अलाभ, जीवन-मृत्यु, सभी अवस्था में सब समय जो समभाव रखता है वही सम्यक्त्वी है वही सामायिक करता है। करेमि भंते सामाइयं अर्थात् मैं समभाव में स्थित होता हूं। और उस सामायिक के लिए स्वयं को "वोसिरामि" उत्सर्गित करता हूं। एतदर्थ जो सामायिक करता है। उसकी मुस्कान कोई छीन नहीं सकता। वह मानव होते हुए भी महामानवता को प्राप्त करता है।
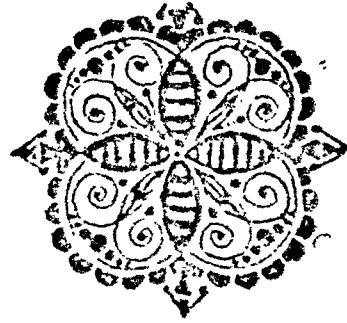
# समाज, साधना और सेवा : जैन धर्म के परिप्रेक्ष्य में

□ डा. सागरमल जैन

△

> अहिंसा और सेवा एक-दूसरे से अभिन्न हैं । अहिंसक होने का अर्थ है—सेवा के क्षेत्र में सक्रिय होना । जब हमारी धर्म साधना में सेवा का तत्व जुड़ेगा तब ही हमारी साधना में पूर्णता आयेगी । हमें अपनी अहिंसा का हृदय शून्य नहीं बनने देना है अपितु उसे मैत्री और करुणा से युक्त बनाना है । जब अहिंसा में मैत्री और करुणा के भाव जुड़ेंगे तो सेवा का प्रकटन सहज होगा और धर्म साधना का क्षेत्र सेवा क्षेत्र बन जायेगा ।

वैक्तियकता और सामाजिकता दोनों ही मानवीय जीवन के अनिवार्य अंग हैं । पाश्चात्य विचा- ग्रेडले का कथन है कि 'मनुष्य मनुष्य नहीं है यदि वह सामाजिक नहीं है ।' मनुष्य समाज में ही उत्पन्न ा है, समाज में ही जीता है और समाज में ही अपना विकास करता है । वह कभी भी सामाजिक वन से अलग नहीं हो सकता है । तत्वार्थ सूत्र में जीवन की विशिष्टता को स्पष्ट करते हुए कहा गया है पारस्परिक साधना ही जीवन का मूलभूत लक्षण है (परस्परोपग्रहोजीवानाम् ५/२१) । व्यक्ति में राग के, । के तत्व अनिवार्य रूप से उपस्थित हैं किन्तु जब द्वेष का क्षेत्र संकुचित होकर राग का क्षेत्र विस्तृत होता तब व्यक्ति में सामाजिक चेतना का विकास होता है और यह सामाजिक चेतना वीतरागता की उपलब्धि के न पूर्णता को प्राप्त करती है, क्योंकि वीतरागता की भूमिका पर स्थित होकर ही निष्काम की भावना र कर्त्तव्य बुद्धि से लोक-मंगल किया जा सकता है । अतः जैन धर्म का, वीतरागता और मोक्ष का आदर्श माजिकता का विरोधी नहीं है ।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । उसके व्यक्तित्व का निर्माण समाज-जीवन पर आधारित है । क्ति जो कुछ बनता है वह अपने सामाजिक परिवेश के द्वारा ही बनता है । समाज ही उसके व्यक्तित्व और जीवन-शैली का निर्माता है । यद्यपि जैन-धर्म सामान्यतया व्यक्तिनिष्ठ और निवृति प्रधान है और उसका क्ष्य आत्म-साक्षात्कार है, किन्तु इस आधार पर यह मान लेना कि जैन धर्म असामाजिक है या उसमें सामा- जिक सन्दर्भ का अभाव है, नितांत भ्रमपूर्ण होगा । जैन साधना यद्यपि व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास की बात करती है किंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह सामाजिक कल्याण की उपेक्षा करती है ।

यदि हम मनुष्य को सामाजिक प्राणी मानते हैं और धर्म को 'धर्मो धारयते प्रजा' के अर्थ में लेते हैं तो उस स्थिति में धर्म का अर्थ होगा—जो हमारी समाज व्यवस्था को बनाये रखता है, वही धर्म है । वे सब बातें जो समाज जीवन में बाधा उपस्थित करती हैं और हमारे स्वार्थों को पोषण देकर हमारी सामाजिकता को खण्डित करती हैं, समाज-जीवन में अव्यवस्था और अशांति की कारणभूत होती हैं, अधर्म हैं । इसलिए घृणा, विद्वेष, हिंसा, शोषण, स्वार्थपरता आदि को अधर्म और परोपकार, करुणा, दया, सेवा आदि को धर्म कहा गया है । क्योंकि जो मूल्य हमारी सामाजिकता की स्वाभाविक वृत्ति का रक्षण करते हैं वे

धर्म हैं और जो उसे खंडित करते हैं वे अधर्म हैं। यद्यपि यह धर्म की व्याख्या दूसरों से हमारे सम्बन्धों के सन्दर्भ में है और इसीलिए इसे हम सामाजिक-धर्म भी कह सकते हैं।

जैन धर्म सदैव यह मानता रहा है कि साधना से प्राप्त सिद्धि का उपयोग सामाजिक कल्याण की दिशा में होना चाहिए। स्वयं भगवान महावीर का जीवन इस बात का साक्षी है कि वे वीतरागता और कैवल्य की प्राप्ति के पश्चात् जीवन पर्यन्त लोकमंगल के लिए कार्य करते रहे हैं। प्रश्न व्याकरण सूत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि तीर्थंकरों का यह सुकथित प्रवचन संसार के सभी प्राणियों की करुणा के लिए ही है।[1] जैन धर्म में जो सामाजिक जीवन या संघ जीवन के सन्दर्भ उपस्थित हैं, वे यद्यपि बाहर से देखने पर निषेधात्मक लगते हैं इसी आधार पर कभी-कभी यह मान लिया जाता है कि जैन धर्म एक सामाजिक निरपेक्ष धर्म है। जैनों ने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की व्याख्या मुख्य रूप से निषेधात्मक दृष्टि के आधार पर की हैं, किन्तु उनको निषेधात्मक और समाज-निरपेक्ष समझ लेना भ्रांति पूर्ण ही है। प्रश्न व्याकरण सूत्र में ही स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि ये पांच महाव्रत सर्वथा लोकहित के लिए ही हैं। जैन धर्म में जो व्रत व्यवस्था है वह सामाजिक सम्बन्धों की शुद्धि का प्रयास है। हिंसा, असत्य वचन, चौर्यकर्म, व्यभिचार और संग्रह (परिग्रह) हमारे सामाजिक जीवन को दूषित बनाने वाले तत्व हैं। हिंसा सामाजिक अनस्तित्व की द्योतक है, तो असत्य पारस्परिक विश्वास को भंग करता है। चोरी का तात्पर्य तो दूसरों के हितों और आवश्यकताओं का अपहरण और शोषण ही है। व्यभिचार जहां एक ओर पारिवारिक जीवन को भंग करता है, वहीं दूसरी ओर वह दूसरे को अपनी वासनापूर्ति का साधन मानता है और इस प्रकार से वह भी एक प्रकार का शोषण ही है। इसी प्रकार परिग्रह भी दूसरों को उनके जीवन की आवश्यकताओं और उपयोगों से वंचित करता है, समाज में वर्ग ... और सामाजिक शांति को भंग करता है। ... आधार पर जहां एक वर्ग सुख, सुविधा और ... की गोद में पलता है वहीं दूसरा जीवन की ... आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी तरसता है। ... सामाजिक जीवन में वर्ग-विद्वेष और आक्रोश ... होते हैं और इस प्रकार सामाजिक शांति और ... समत्व भंग हो जाते हैं। सूत्रकृतांग में कहा ... कि यह संग्रह की वृत्ति ही हिंसा, असत्य, चोरी और व्यभिचार को जन्म देती है और इस ... वह सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को विषाक्त बना... यदि हम इस सन्दर्भ में सोचें तो यह स्पष्ट ... कि जैन धर्म में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य ... अपरिग्रह की जो अवधारणायें हैं, वे मूलतः ... जीवन के लिए ही हैं।

जैन साधना पद्धति को मैत्री, प्रमोद, ... और मध्यस्थ की भावनाओं के आधार पर भी ... सामाजिक सन्दर्भ को स्पष्ट किया जा सकता ... आचार्य अमितगति कहते हैं—

> **सत्वेषु मैत्री, गुणीषु प्रमोदं,**
> **क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा-परत्वं**
> **माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तो—**
> **सदा ममात्मा विदधातु देव।**

"हे प्रभु ! हमारे जीवन में प्राणियों ... मित्रता, गुणीजनों के प्रति प्रमोद, दुखियों ... करुणा तथा दुष्ट जनों के प्रति मध्यस्थ भाव ... रहे।" इस प्रकार इन चारों भावनाओं के ... से समाज के विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों से ... सम्बन्ध किस प्रकार के हों इसे स्पष्ट किया गया ... समाज में दूसरे लोगों के साथ हम किस प्रकार ... जियें, यह हमारी सामाजिकता के लिये अति... श्यक है। उसने संघीय जीवन पर बल दिया ... संघीय या सामूहिक साधना को श्रेष्ठ माना है ...

[1] सव्वजगजीव-रक्खण दयट्ठाए पावमणं भगवया सुकहियं-प्रश्न व्याकरण २/१/२१

संघ में विघटन करता है उसे हत्यारे और व्यभिचारी से भी अधिक पापी माना गया है और इसके लिये छेद सूत्रों में कठोरतम दण्ड की व्यवस्था की गई है। स्थानांग सूत्र में कुल धर्म, ग्राम धर्म, नगर धर्म, राष्ट्रीय धर्म, गणधर्म आदि का निर्देश किया गया है, जो उसकी सामाजिक दृष्टि को स्पष्ट करते हैं।[1] जैन धर्म ने सदैव ही व्यक्ति को समाज से जोड़ने का ही प्रयास किया है। जैन धर्म सामाजिक सर्वोदय रिक्त नहीं है। तीर्थंकर की वाणी का उदय ही लोक की करुणा के लिए हुआ है। आ. समन्तभद्र लिखते हैं—"सर्वापदामन्तकरं, निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदम् तवैव" हे प्रभु! आपका तीर्थ (अनुशासन) सभी दुखों का अन्त करने वाला और सभी का कल्याण सर्वोदय करने वाला है। उसमें प्रेम और करुणा की अजस्र धारा वह रही है। स्थानांग में प्रस्तुत कुल धर्म, ग्राम धर्म, नगर धर्म एवं राष्ट्र धर्म भी जैन धर्म की समाज-सापेक्षता को स्पष्ट कर देते हैं।

पारिवारिक और सामाजिक जीवन में हमारे पारस्परिक सम्बन्धों को मृदुमधुर एवं समायोजन पूर्ण बनाने तथा सामाजिक टकराव के कारणों का विश्लेषण कर उन्हें दूर करने के लिए जैनधर्म का योगदान महत्वपूर्ण है। वस्तुतः जैन धर्म ने आचार शुद्धि पर बल देकर व्यक्ति सुधार के माध्यम से समाज सुधार का मार्ग प्रशस्त किया। उसने व्यक्ति को समाज की इकाई माना और इसलिए प्रथमतः व्यक्ति चरित्र के निर्माण पर बल दिया। वस्तुतः महावीर के युगों में समाज रचना का कार्य ऋषभ के द्वारा पूरा हो चुका था, अतः महावीर ने मुख्य रूप से सामाजिक जीवन की बुराइयों को समाप्त करने का प्रयास किया और पारस्परिक सम्बन्धों की शुद्धि पर बल दिया।

सामाजिकता मनुष्य का एक विशिष्ट गुण है। यद्यपि समूह-जीवन पशुओं में भी पाया जाता है, किन्तु मनुष्य की यह समूह जीवन-शैली उसमें कुछ विशिष्ट है। पशुओं में पारस्परिक सम्बन्ध तो होते हैं किन्तु सम्बन्धों की चेतना नहीं होती है। मनुष्य जीवन की विशेषता यह है कि उसे उन पारस्परिक सम्बन्धों की चेतना होती है और उसी चेतना के कारण उसमें एक दूसरे के प्रति दायित्व-बोध और कर्त्तव्य बोध होता है। पशुओं में भी पारस्परिक हित साधन की प्रवृति होती है किन्तु वह एक अन्धमूल प्रवृति है। पशु विवश होता है, उस अन्ध प्रवृति के अनुसार ही आचरण करने में। उसके सामने यह विकल्प नहीं होता है कि वह कैसा आचरण करे या नहीं करे। किन्तु इस सम्बन्ध में मानवीय चेतना स्वतन्त्र होती है उसमें अपने दायित्व बोध की चेतना होती है। किसी उर्दू शायर ने कहा भी है—

**वह आदमी ही क्या है, जो दर्द आशना न हो।**
**पत्थर से कम है, दिल शरर गर निहा नहीं॥**

जैसा कि हम पूर्व में ही संकेत कर चुके है कि जैनाचार्य उमास्वाति ने भी न केवल मनुष्य का अपितु समस्त जीवन का लक्षण 'पारस्परिक हित साधन' को माना है। दूसरे प्राणियों का हित साधन व्यक्ति का धर्म है। धार्मिक होने का एक अर्थ यह है कि हम एक दूसरे के कितने सहयोगी बने हैं, दूसरे के दुख और पीड़ा को अपनी पीड़ा समझें और उसके निराकरण का प्रयत्न करें, यही धर्म है। धर्म की लोक कल्याणकारी चेतना का प्रस्फुटन लोक की पीड़ा निवारण के लिए ही हुआ है और यही धर्म का सार तत्व है। कहा भी है—

**यही है इबादत, यही है दीनों ईमां**
**कि काम आये दुनिया में, इंसां के इंसा।**

दूसरों की पीड़ा को समझकर उसके निवारण का प्रयत्न करना, यही धर्म की मूल आत्मा हो सकती है। सन्त तुलसीदास ने भी कहा है—

परहित सरिस धरम नहिं भाई,
परपीड़ा सम नहीं अधमाई।

अहिंसा, जिसे जैन परम्परा में धर्म सर्वस्व कहा गया है कि चेतना का विकास सभी सम्भव है

1. स्थानांग सूत्र, १०/७६०

जब मनुष्य' आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना का विकास होगा। जब हम दूसरों के दर्द और पीड़ा को अपना दर्द समझेंगे तभी हम लोक-मंगल की दिशा में अथवा पर पीड़ा के निवारण की दिशा में आगे बढ़ सकेंगे। पर पीड़ा की तरह आत्मानुभूति भी वस्तुनिष्ठ न होकर आत्मनिष्ठ होनी चाहिये। हम दूसरों की पीड़ा के मूक दर्शक न रहें। ऐसा धर्म और ऐसी अहिंसा जो दूसरों की पीड़ा की मूक-दर्शक बनी रहती है वस्तुतः न धर्म है और न अहिंसा। अहिंसा केवल दूसरों को पीड़ा न देने तक सीमित नहीं है, उसमें लोक-मंगल और कल्याण का अजस्र स्रोत भी प्रवाहित है। जब लोक-पीड़ा अपनी पीड़ा बन जाती है तभी धार्मिकता का स्रोत अन्दर से बाहर प्रवाहित होता है। तीर्थंकरों, अर्हतों और बुद्धों ने जब लोक पीड़ा की यह अनुभूति आत्मनिष्ठ रूप में की तो वे लोककल्याण के लिए सक्रिय बन गये। जब दूसरों की पीड़ा और वेदना हमें अपनी लगती है, तब लोक कल्याण भी दूसरों के लिए न होकर अपने ही लिए हो जाता है। उर्दू शायर अमीर ने कहा है—

**खंजर चले किसी पे, तड़फते हैं हम अमीर,**
**सारे जहां का दर्द, हमारे जिगर में है।**

जब सारे जहां का दर्द किसी के हृदय में समा जाता हैं तो वह लोक कल्याण के मंगलमय मार्ग पर चल पड़ता है और तीर्थंकर बन जाता है। उसका यह चलना मात्र बाहरी नहीं होता है। उसके सारे व्यवहार में अन्तश्चेतना काम करती है और यही अन्तश्चेतना धार्मिकता का मूल उत्स है। इसे ही दायित्वबोध की सामाजिक चेतना कहा जाता है। जब यह जागृत होती है तो मनुष्य में धार्मिकता प्रकट होती है। आपको यह ज्ञात होना चाहिए कि तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन वहीं साधक करता है जो धर्म संघ की सेवा में अपने को समर्पित कर देता है। तीर्थंकर नामकर्म उपार्जित करने के लिए जिन बीस बोलों की साधना करनी होती है, उनके विश्लेषण से यह लक्ष्य स्पष्ट हो जाता है।

दूसरों के प्रति आत्मीयता के भाव का
होना ही धार्मिक बनने का सबसे पहला उपक्रम
यदि हमारे जीवन में दूसरों की पीड़ा, दूसरों क
अपना नहीं बना है तो हमें यह निश्चित ही
लेना चाहिये कि हमारे धर्म का अवतरण नहीं
है। दूसरों की पीड़ा आत्मनिष्ठ अनुभूति से
दायित्व बोध की अन्तश्चेतना के बिना सारे
क्रियाकाण्ड पाखण्ड या ढोंग हैं। उनका धार्मिक
दूर का रिश्ता नहीं है। जैन धर्म में सम्यक्
(जो कि धार्मिकता की आधार-भूमि है) के जो पां
माने गये हैं, उनमें समभाव और अनुकम्पा
अधिक महत्वपूर्ण हैं। सामाजिक दृष्टि से समभ
अर्थ है, दूसरों को अपने समान समझना।
अहिंसा एव लोककल्याण की अन्तश्चेतना का
इसी आधार पर होता है। आचारांग सूत्र में
गया है कि जिस प्रकार मैं जीना चाहता हूं,
नहीं चाहता हूं, उसी प्रकार संसार के सभी
जीवन के इच्छुक हैं और मृत्यु से भयभीत हैं
प्रकार मैं सुख की प्राप्ति का इच्छुक हूं औ
से बचना चाहता हूं उसी प्रकार संसार के
प्राणी सुख के इच्छुक हैं, और दुःख से दूर
चाहते हैं। यही वह दृष्टि है जिस पर अहिंस
धर्म का और नैतिकता का विकास होता है।

जब तक दूसरों के प्रति हमारे मन में
अर्थात् समानता का भाव जागृत नहीं होता,
नहीं आती अर्थात् उनकी पीड़ा हमारी पी
बनती तब तक सम्यक्दर्शन का उदय भी नहीं
जीवन में धर्म का अवतरण नहीं होता। अस
नवी का यह निम्न शेर इस सम्बन्ध में कितना मौ

**इमां गलत उशूल गलत, इद्दुआ गलत**
**इंसा की दिलदिही, अगर इंसा न कर सके।**

जब दूसरों की पीड़ा अपनी बन जाती
सेवा की भावना का उदय होता है। यह से
तो प्रदर्शन के लिए होती है और न स्वार्थबु
होती है, यह हमारे स्वभाव का ही सहज प्रकटन
है। तब हम जिस भाव से हम अपने शरीर

पीड़ाओं का निवारण करते हैं उसी भाव से दूसरों की पीड़ाओं का निवारण करते हैं, क्योंकि जो आत्म-बुद्धि अपने शरीर के प्रति होती है वही आत्मबुद्धि समाज के सदस्यों के प्रति भी हो जाती है। क्योंकि सम्यक्दर्शन के पश्चात् आत्मवत् दृष्टि का उदय हो जाता है। जहां आत्मवत् दृष्टि का उदय होता है वहां हिंसक बुद्धि समाप्त ही जाती है और सेवा स्वाभाविक रूप से साधना का अंग बन जाती है। जैन धर्म में ऐसी सेवा को निर्जरा या तप का रूप माना गया है। इसे 'वैयावच्च' के रूप में माना जाता है। मुनि नन्दिसेन की सेवा का उदाहरण तोजैन परम्परा में सर्वविश्रुत है। आवश्यक चूर्णि में सेवा के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि एक व्यक्ति भगवान का नाम स्मरण करता है, भक्ति करता है, किन्तु दूसरा वृद्ध और रोगी की सेवा करता है, उन दोनों में सेवा करने वाले को ही श्रेष्ठ माना गया है क्योंकि वह सही अर्थों में भगवान की आज्ञा का पालन करता है, दूसरेशब्दों में धर्ममय जीवन जीता है।

जैन समाज का यह दुर्भाग्य है कि निवृति-मार्ग या संन्यास पर अधिक बल देते हुए उसमें सेवा की भावना गौण होती चली गई—उसकी अहिंसा मात्र 'मत मारो' का निषेधक उद्घोष बन गई। किन्तु यह एक भ्रांति ही है। बिना 'सेवा' के अहिंसा अधूरी है और संन्यास निष्क्रिय है। जब संन्यास और अहिंसा में सेवा का तत्व जुड़ेगा तभी वे पूर्ण बनेंगे।

**संन्यास और समाज :**

सामान्यतया भारतीय दर्शन में संन्यास के प्रत्यय को समाज-निरपेक्ष माना जाता है किन्तु क्या संन्यास की धारणा समाज-निरपेक्ष है? निश्चय ही संन्यासी पारिवारिक जीवन का त्याग करता है किन्तु इससे क्या वह असामाजिक हो जाता है? संन्यास के संकल्प में वह कहता है कि "वित्तैषणा पुत्रैषणा लोकैषणा मया परित्यक्ता" अर्थात् मैं अर्थकामना, सन्तान कामना और यशःकामना का परित्याग करता हूं। जैन परम्परा के अनुसार वह सावद्ययोग या पापकर्मों का त्याग करता है। किन्तु क्या धनसम्पदा, सन्तान तथा यश कीर्ति की कामना का या पाप कर्म का परित्याग समाज का परित्याग है? वस्तुतः समस्त एषणाओं का त्याग या पाप कर्मों का त्याग स्वार्थ का त्याग है, वासनामय जीवन का त्याग है। संन्यास का यह संकल्प उसे समाज-विमुख नहीं बनाता है, अपितु समाज कल्याण की उच्चतर भूमिका पर अधिष्ठित करता है क्योंकि सच्चा लोकहित निस्वार्थता एवं विराग की भूमि पर स्थित होकर ही किया जा सकता है।

भारतीय चिन्तन संन्यास को समाज-निरपेक्ष नहीं मानता। भगवान् बुद्ध का यह आदेश "चरत्थ भिक्खवे चारिकं बहुजन-हिताय बहुजन-सुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय देव मनुस्सानं" (विनय पिटक महावग्ग)। इस बात का प्रमाण है कि संन्यास लोकमंगल के लिए होता है। सच्चा संन्यासी वह है जो समाज से अल्पतम लेकर उसे अधिकतम देता है। वस्तुतः वह कुटुम्ब, परिवार आदि का त्याग इसलिए करता है कि समष्टि होकर रहे, क्योंकि जो किसी का है, वह सबका नहीं हो सकता, जो सबका है वह किसी का नहीं है। संन्यासी निःस्वार्थ और निष्काम रूप से लोकमंगल का साधक होता है। संन्यास शब्द सम पूर्वक न्यास शब्द से बना है। न्यास शब्द का अर्थ देखरेख करना भी है। संन्यासी वह व्यक्ति है जो सम्यक् रूप से एक न्यासी ( ट्रस्टी ) की भूमिका अदा करता है और न्यासी वह है जो ममत्व भाव और स्वामित्व का त्याग करके किसी ट्रस्ट (सम्पदा) का रक्षण एवं विकास करता है। संन्यासी सच्चे अर्थों में एक ट्रस्टी है। जो ट्रस्टी या ट्रस्ट का उपयोग अपने हित में करता है, अपने को उसका स्वामी समझता है तो वह सम्यक् ट्रस्टी नहीं हो सकता है। इसी प्रकार वह यदि ट्रस्ट के रक्षण एवं विकास का प्रयत्न न करे तो भी सच्चे अर्थ में ट्रस्टी नहीं है। इसी प्रकार यदि संन्यासी लोकैषणा से मुक्त,

ममत्व-बुद्धि या स्वार्थ-बुद्धि से काम करता है वह संन्यासी नहीं है और यदि लोक की उपेक्षा ता है, लोक मंगल के लिए प्रयास नही करता है भी वह संन्यासी नहीं है। उसके जीवन का मिशन "सर्वभूतहिते रतः का" है।

संन्यास में राग से ऊपर उठना आवश्यक है। न्तु इसका तात्पर्य समाज की उपेक्षा नहीं है। न्यास की भूमिका में स्वत्व एवं ममत्व के लिए श्चय ही कोई स्थान नहीं है। फिर भी वह पलायन हीं, समर्पण है। ममत्व का परित्याग कर्तव्य की पेक्षा नहीं है, अपितु कर्तव्य का सही बोध है। न्सासी उस भूमिका पर खड़ा होता है, जहां व्यक्ति पने में समष्टि को और समष्टि में अपने को देखता । उसकी चेतना अपने और पराये के भेष से ऊपर ठ जाती है। यह अपने और पराये के विचार से ऊपर हो जाना समाज विमुखता नहीं है, अपितु यह ी उसके हृदय की व्यापकता है महानता है। सीलिए भारतीयचिन्तकों ने कहा हैं—

**अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।**
**उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥**

संन्यास की भूमिका न तो आसक्ति की भूमिका है और न उपेक्षा की। उसकी वास्तविक स्थिति 'धाय' (नर्स) के समान ममत्वरहित कर्तव्य भाव की होती है। जैन धर्म में कहा भी गया है—

**सम दृष्टि जीवड़ा करे कुटुम्ब प्रतिपाल।**
**अन्तर सूं न्यारा रहे जूं धाय खिलावे वाल।**

वस्तुतः निर्ममत्व एवं निस्वार्थ भाव से तथा वैयक्तिकता और स्वार्थ से ऊपर उठकर कर्तव्य का पालन ही संन्यास की सच्ची भूमिका है। संन्यासी वह व्यक्ति है जो लोकमंगल के लिए अपने व्यक्तित्व एवं शरीर को समर्पित कर देता है। वह जो कुछ भी त्याग करता है वह समाज के लिए एक आदर्श बनता है। समाज में नैतिक चेतना को जागृत करना तथा सामाजिक जीवन में आनेवाली दुःप्रवृतियों से व्यक्ति को बचाकर लोक मंगल के लिए उसे दिशा-निर्देश देना—संन्यासी का सर्वोपरि कर्तव्य माना जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि भारतीय दर्शन में संन्यास की जो भूमिका प्रस्तुत की गई है वह सामाजिकता की विरोधी नहीं है। संन्यासी क्षुद्र स्वार्थ से ऊपर उठकर खड़ा हुआ व्यक्ति होता है, जो आदर्श समाज रचना के लिए प्रयत्नशील रहता है।

अतः संन्यासी को न तो निष्क्रिय होना चाहिए और न ही समाज विमुख। वस्तुतः निष्काम भाव से संघ की या समाज की सेवा को ही उसे अपनी साधना का अंग बनाना चाहिए।

**गृहस्थ धर्म और सेवा :**

न केवल संन्यासी अपितु गृहस्थ की साधना में भी सेवा को अनिवार्य रूप से जुड़ना चाहिए। दान और सेवा गृहस्थ के आवश्यक कर्तव्य हैं। उसका अतिथि संविभागव्रत सेवा सम्बन्धी उसके दायित्व को स्पष्ट करता है। इसमें भी दान के स्थान पर 'संविभाग' शब्द का प्रयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है, वह यह बताता है कि दूसरे के लिए हम जो कुछ करते हैं, वह हमारा उसके प्रति एहसान नहीं है, अपितु उसका ही अधिकार है, जो हम उसे देते हैं। समाज से जो हमें मिला है, वही हम सेवा के माध्यम से उसे लौटाते हैं। व्यक्ति को शरीर, सम्पत्ति, ज्ञान और संस्कार जो भी मिले हैं, वे सब समाज और सामाजिक व्यवस्था के परिणाम स्वरूप मिले हैं। अतः समाज की सेवा उसका कर्तव्य है। धर्म साधना का अर्थ है निष्काम भाव से कर्तव्यों का निर्वाह करना। इस प्रकार साधना और सेवा न तो विरोधी हैं और न भिन्न ही। वस्तुतः सेवा ही साधना है।

**अहिंसा का हृदय रिक्त नहीं है :**

कुछ लोग अहिंसा को मात्र निषेधात्मक आदेश मान लेते हैं। उनके लिए अहिंसा का अर्थ होता है 'किसी को नहीं मारना' किन्तु अहिंसा चाहे शाब्दिक रूप में निषेधात्मक हो किन्तु उसकी आत्मा निषेधमूलक

नहीं है, उसका हृदय रिक्त नहीं है। उसमें करुणा और मैत्री की सहस्रधारा प्रवाहित हो रही है। वह व्यक्ति जो दूसरों की पीड़ा का मूक दर्शक बना रहता है वह सच्चे अर्थ में अहिंसक है ही नहीं। जब हृदय में मैत्री और करुणा के भाव उमड़ रहे हों, जब संसार के सभी प्राणियों के प्रति आत्मवत् भाव उत्पन्न हो गया है, तब यह सम्भव नहीं है कि व्यक्ति दूसरों की पीड़ाओं का मूक दर्शक रहे। क्योंकि उसके लिए कोई पराया रह ही नहीं गया है। यह एक आनुभाविक सत्य है कि व्यक्ति जिसे अपना मान लेता है, उसके दुःख और कष्टों का मूक दर्शक नहीं रह सकता है। अतः अहिंसा और सेवा एक दूसरे से अभिन्न हैं। अहिंसक होने का अर्थ है—सेवा के क्षेत्र में सक्रिय होना। जब हमारी धर्म साधना में सेवा का तत्व जुड़ेगा तब ही हमारी साधना में पूर्णता आयेगी। हमें अपनी अहिंसा का हृदय शून्य नहीं बनने देना है अपितु उसे मैत्री और करुणा से युक्त बनाना है। जब अहिंसा में मैत्री और करुणा के भाव जुड़ेंगे तो सेवा का प्रकटन सहज होगा और धर्म साधना का क्षेत्र सेवा का क्षेत्र बन जायेगा।

जैन धर्म के उपासक सदैव ही प्राणी-सेवा के प्रति समर्पित रहे हैं। आज भी देश भर में उनके द्वारा संचालित पशु सेवा सदन (पिंजरापोल, चिकित्सालय) शिक्षा संस्थाएं और अतिथि शालाएं उनकी सेवा-भावना का सबसे बड़ा प्रमाण है। श्रमण-वर्ग भी इनका प्रेरक तो रहा है किन्तु यदि वह भी सक्रिय रूप से इन कार्यों से जुड़ सके तो भविष्य में जैन समाज मानव सेवा के क्षेत्र में एक मानदण्ड स्थापित कर सकेगा।

—निदेशक, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी

## मानवता का तकाजा

□ कमल सौगानी

एकमेल के युद्ध के बाद नेपोलियन आस्ट्रिया की राजधानी वियना के पास पहुंचा। उसने संधि का झंडा लेकर एक दूत नगर में भेजा, किन्तु नगर के लोगों ने इस दूत को मार डाला। इस खबर से नेपोलियन क्रुद्ध हो उठा। उसकी अपार सेना ने चारों ओर से नगर को घेर लिया। फ्रांसीसी तोपें आग उगलने लगीं। नगर के भवन ध्वस्त होने लगे। सहसा नगर का द्वार खुला और एक दूत संधि का झंडा लिये हुए निकला। उस दूत ने कहा—"आपकी तोपें नगर के बीच जहां गोले गिरा रही हैं, वहां समीप ही राजमहल में हमारे सम्राट् की पुत्री बीमार पड़ी है। कुछ और गोलाबारी हुई तो सम्राट् अपनी बीमार पुत्री को छोड़कर अन्यत्र जाने को विवश होंगे। नेपोलियन के सेनानायकों ने कहा—'हम शीघ्र विजयी होने वाले हैं, नगर के बीच तोपों के गोलों का गिरना युद्ध-नीति की दृष्टि से इस समय आवश्यक है।'

नेपोलियन ने कहा—"युद्ध नीति की बात तो ठीक है। किन्तु मानवता का तकाजा है कि एक रुग्ण राजकुमारी पर दया कीजाय।"

अपनी 'निश्चित' विजय को "संदिग्ध" बनाने का खतरा उठाकर भी नेपोलियन ने तोपों को वहां से तुरन्त हटाने की आज्ञा दे दी।

—स्टेशन रोड, भवानी मंडी-३२६५०२

# अपरिग्रह : एक बुनियादी सामाजिक मूल्य

□ सिद्धराज ढड्ढ़ा

इस प्रकार, व्यक्तिगत, सामाजिक, वैज्ञानिक या आध्यात्मिक—किसी भी दृष्टि से देखें, अपरिग्रह मानव जीवन के परम मूल्यों में से है। आज के युग में, जबकि आर्थिक शोषण की प्रवृत्ति अत्यधिक बढ़ गई है और खासकर पिछले दो-तीन सौ वर्षों में विज्ञान और यांत्रिकी इन दोनों के विकास ने इस प्रकार के शोषण तथा आर्थिक केन्द्रीकरण के अवसर बढ़ा दिये हैं, तब अपरिग्रह एक बुनियादी सामाजिक मूल्य बन गया है। आध्यात्मिक दृष्टि से तो वह हमेशा ही जीवन के प्रमुख यमों में माना गया है, आज साधनों की सीमितता को देखते हुए विज्ञान के लिये भी वह मान्य हो गया है।

लगभग सभी धर्मों और संस्कृतियों में मनुष्य के लिए जो यम-नियम बताये गये हैं उनमें 'अपरिग्रह' का स्थान काफी ऊंचा हैं। मैं स्वयं, सत्य, अहिंसा आदि सनातन और सार्वभौम सिद्धान्तों के अलावा अन्य 'यमों' में अपरिग्रह को सबसे महत्त्वपूर्ण मानता हूं। पंच महाव्रतों में अपरिग्रह का स्थान तो है ही, गांधीजी ने भी जिन ग्यारह व्रतों पर जोर दिया था और जिन्हें अपने आश्रम की दैनिक प्रार्थना में दाखिल किया था, उनमें भी पहले पांच—सत्य, अहिंसा आदि—जो 'महाव्रत' हैं उन्हीं में अपरिग्रह का स्थान है।

अपरिग्रह केवल व्यक्तिगत साधना या गुण-विकास के लिए ही आवश्यक नहीं है बल्कि उसमें एक बहुत बड़ा सामाजिक मूल्य अन्तर्निहित है। वैसे तो व्यक्तिगत जीवन के मूल्यों में और सामाजिक जीवन के मूल्यों में अन्तर करना उचित नहीं है, क्योंकि व्यक्ति और समाज के जीवन को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता, न देखना चाहिए, फिर भी आजकल आम लोगों में ऐसी धारणा है कि धर्म अलग वस्तु है और समाज-जीवन अलग ! धर्म को वे केवल व्यक्तिगत साधना का या मान्यता का विषय मानते हैं। वास्तव में जीवन को इस प्रकार टुकड़ों में बांटना गलत है। पर समझने की सुविधा के लिये धर्म और समाज-जीवन को अलग मानें तो भी अपरिग्रह इन दोनों को जोड़नेवाली कड़ी है। अपरिग्रह का जितना महत्त्व व्यक्तिगत गुण-विकास और साधना के लिए है उतना ही महत्त्व उसका समाजगत है।

आज पश्चिम से आयी हुई जिस भौतिकवादी सभ्यता का दौर चल रहा है उसमें जीवन की आवश्यकताओं को (जिसे Standard of living कहा जाता है) बढ़ाते जाना, प्रगति का या विकास का सूत्र बन गया है। आवश्यकताएं ज्यादा होंगी तो आस-पास सामान भी ज्यादा होगा, अर्थात् परिग्रह बढ़ेगा। जिसके घर में जितना अधिक सामान हो वह ज्यादा सभ्य या सुसंस्कृत माना जाता है। लेकिन दूसरी दृष्टि से सोचें तो बात इससे बिल्कुल उल्टी है। आवश्यक सामान का संग्रह असामाजिक तो है ही, वह कुसंस्कारिता की भी निशानी है। जीवन जितना सादा होगा, उतना ही वह सुसंस्कृत माना जायगा।

आवश्यकताओं को बढ़ाते जाना और उनकी पूर्ति के लिये सामान बटोरते जाना आज बहुतों के जीवन का लक्ष्य बन गया है। पर इन लोगों के ध्यान में नहीं आता कि आवश्यकताओं का, वासनाओं का

इच्छाओं का कोई अन्त नहीं है । भोग को जितना
ाया जाय, उतनी ही अतृप्ति की भावना भी बढ़ती
ती है यह अनुभव सामान्य है । भोग का कहीं
त नहीं होता, बल्कि हमारा ही अंत हो जाता है—
ोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता" (भर्तृहरि) । केवल
वादी दृष्टि से देखें तो भी एक हद के आगे
हीत वस्तुओं का उपभोग की दृष्टि से कोई मूल्य
हीं रहता, उनसे केवल विकृत मानसिकता की तुष्टि
े ही हो ।

एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायगा । हाल
में फिलीपीन्स में जन-विद्रोह हुआ और पिछले
स वर्ष से वहां राष्ट्रपति पद पर बने हुए मारकोस
ौर उनकी पत्नी इमेल्दा को देश छोड़कर भाग जाना
ड़ा । अपने बीस बरस के शासनकाल में मारकोस
जिस तरह अपने देश को और देशवासियों को लूट
र अरबों रुपयों की निजी सम्पत्ति और जायदाद
गह-जगह दुनियां में खड़ी करली और करोड़ों
हीरे-जवाहरात अन्य कीमती सामान तीन सौ
सों में भरकर वे लोग जाते समय साथ ले गये,
ह तो अपने आप में शायद एक बेमिशाल चीज है
, पर मारकोस और इमेल्दा के भाग जाने के बाद
गों ने देखा कि जो सामान वे साथ नहीं ले जा
ो उसमें इमेल्दा की सैन्ट आदि सुगन्धियों की अन-
गत कीमती शीशियां और भांड, सैकड़ों 'लेडिज पर्स'
नमें से अधिकाश के पैकिंग भी नहीं खोले गये थे
ा तीन हजार से ऊपर तरह-तरह की, रंग-विरंगी
ते-जोड़ियां थीं । स्पष्ट है कि अगर इमेल्दा सवेरे-
ाम भी नई-नई जूते-जोड़ियां बदलतीं तो बरसों में
ी एक का नम्बर नहीं आता । इसी तरह की कुछ
ो इजिप्ट (मिश्र) के बादशाह फारुक की कुछ
रस पहले सामने आई थीं । उनकी आलमारियों
(वार्डरोब) में उनके पहनने के तीन सौ से ऊपर
ूट थे । स्पष्ट है कि इस प्रकार की चीजों के
ग्रह या उपयोग 'भोग' के लिए तो नहीं होता
हीं ।

वस्तुएं जिस कच्चे माल में बनती हैं, वह
कच्चा माल आखिरकार सीमित है । पृथ्वी में या पृथ्वी
पर जो संचित साधन हैं जैसे तेल, कोयला, सोना,
चांदी, पाषाण आदि वे तो सीमित हैं ही, (वैज्ञानिकों
का अनुमान है कि इनमें से बहुत सी चीजें तो, अगर
उनकी खपत आज की तरह ही होती रही, कुछेक
वर्षों में ही समाप्त हो जायेंगी) लेकिन इनके अलावा
पेड़, पौधे, वनस्पति, अन्न आदि जो चीजें "पैदा होती
हैं" उनकी उत्पत्ति भी जिन पंच-तत्त्वों पर आधारित
है वे भी सीमित हैं । आज का विज्ञान भी यहां तक
तो पहुंच ही गया है कि पृथ्वी पर जो वायुमण्डल,
तापमान आदि तत्त्व हैं, जिनसे चीजें बनती हैं या
उनके बनाने में जिनसे मदद मिलती है, वे सब सीमित
हैं या मनुष्य के लिये उनकी उपलब्धि की सीमा है ।
करीब एक दशक पहले रोम में दुनियां के कुछ बड़े-
बड़े वैज्ञानिक और समाजशास्त्री इकट्ठे हुए थे ।
उनकी चर्चाओं के निष्कर्ष के रूप में जो रिपोर्ट प्रका-
शित हुई उसका शीर्षक ही है—"लिमिट्स टू ग्रोथ"-
विकास या वृद्धि की सीमाएं । जब साधन या कच्चा
माल सीमित है तब उनसे बनने वाली वस्तुएं भी
सीमित ही रहेंगी । वे असीमित कैसे हो सकती हैं ?
और जब उत्पादन की सीमा है तो उपभोग भी
असीमित या अमर्यादित कैसे हो सकता है ? इसलिए
आवश्यकताओं को और परिग्रह को बिना किसी
मर्यादा के बढ़ाते जाने की बात अवैज्ञानिक है,
नासमझी है ।

परिग्रह अवैज्ञानिक तो है ही, वह असामाजिक
भी है । क्योंकि, जब सामग्री सीमित है तब अगर मैं
अपने उपभोग को बिना किसी मर्यादा के बढ़ाता जाऊं
तो साधारण बुद्धि कहती है कि मैं निश्चित ही किसी
दूसरे के उपभोग को सीमित करूंगा । मनुष्य समझ-
ता है कि यह सारी सृष्टि 'मेरे लिए' बनी है ।
मैं इसका मालिक हूं, जितनी मेरी क्षमता और योग्यता
हो उतना उपभोग मैं कर सकता हूं—

**इदम् अद्य मया लब्धम् इमम् प्राप्स्ये मनोरथम् ।**
**इदम् अस्ति इदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ।।**
**असौ मया हतः शत्रु हनिष्ये चापरान् अपि ।**
**ईश्वरोहम् अहम् भोगी सिद्धोऽहम् बलवान् सुखी ।**
(भगवद् गीता-अध्याय १६, श्लोक १३-१४)

यह सारी सृष्टि मेरे लिये बनी है, मैं जितना और जिस प्रकार चाहूं उसके उपभोग का मेरा अधिकार है, यह गलत धारणा ही आज की सारी समस्याओं की जड़ में है । द्वेष, कलह, संघर्ष, युद्ध–सब इसी में से पैदा होते हैं । वास्तव में सृष्टि मनुष्य के लिए नहीं है, मनुष्य सृष्टि के लिए है । कुल मिलाकर सारी सृष्टि एक है और परस्पर संबंधित है । मनुष्य उसका एक अंग है मालिक नहीं । जैसा 'ईशावास्योपनिषद्' के पहले ही मंत्र में कहा है—

**ईशावास्यम् इदम् सर्वम् यत् किंच जगत्याम् जगत ।**
**तेन त्यक्तेन भुन्जीथाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।।**

चारों ओर फैली हुई यह प्रकृति अनन्त मालूम होती है, पर हमने देखा कि वह सीमित है । इतना ही नहीं, वह केवल मेरे लिए नहीं है । वह वास्तव में किसी **'के लिए'** नहीं है । सब मिलकर सबके लिये हैं । सब मिलकर 'एक' हैं ! किसी एक लिए सब नहीं । इसलिए मनुष्य को प्रकृति से उतना ही लेना चाहिए जितना उसके पोषण आदि के लिए आवश्यक है । और जो लिया जाय वह भी 'यज्ञ' करके, अर्थात् प्रकृति की सेवा करके, कुछ न कुछ दे करके, कुछ न कुछ उत्पादन करके, कुछ न कुछ श्रम करके ! "तेन त्यक्तेन भुन्जीथाः—त्याग करके भोग करो ।" जो बिना बदला चुकाये खाता है उसके लिये **'गीता'** ने तो 'चोर' जैसा कड़ा शब्द इस्तेमाल किया है—"तैन दत्तानप्रदायेभ्यो, यौभुङ्क्ते स्तेन एवं सः" । त्याग और भोग की चर्चा करते हुए त्याग पर जोर देने के लिए संत विनोबा अक्सर कहा करते थे कि जैसे दो हिस्सा हाइड्रोजन और एक हिस्सा ऑक्सीजन मिलकर पानी बनता है उसी तरह दो हिस्सा त्याग और एक हिस्सा भोग मिलकर [illegible] बनता है ।

जाहिर है कि जब त्याग करके ही भोग [illegible] है, मेहनत करके ही खाना है, तब भोग की [illegible] अपने आप आ जाती है । तब भोग अमर्यादित [illegible] हो सकता । तब फिर प्रश्न उठता है कि वह [illegible] क्या हो ? मर्यादा को कैसे जाना जाय ? [illegible] सहज उत्तर वही है जो ऊपर आ चुका है [illegible] प्रकृति से उतना ही लेने के हकदार हैं, जितना [illegible] जीवन-निर्वाह के लिए जरूरी हो । इस प्रसंग [illegible] गांधीजी की अंग्रेज शिष्या, एडमिरल स्लेड की [illegible] कुमारी स्लेड जो गांधीजी के साथ रहने के [illegible] उनके आश्रम में आ गई थी, और जिन्हें [illegible] ने "मीरा" बहन नाम दिया था, उनकी कही हुई [illegible] रोचक भी है और विषय को स्पष्ट करने वाली [illegible] सन् १९२८-२९ की बात है, मोतीलाल नेहरू [illegible] थे अतः कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक इलाहा[illegible] उनके निवास 'आनन्द-भवन' में हो रही [illegible] गांधीजी वहीं ठहरे हुए थे ।

सवेरे वे मुंह धोने, दांतून करने बैठे, [illegible] बहन ने रोज की तरह पानी का एक लोटा [illegible] गांधीजी के पास रखा था और गांधीजी मुंह [illegible] थे । इतने में जवाहरलाल नेहरू गांधीजी से कु[illegible] करने आ गये । गांधीजी मुंह धोते-धोते उनसे [illegible] करते जाते थे । इतने में गांधीजी को ध्यान [illegible] कि लोटे का पानी तो खतम हो गया । लेकि[illegible] धोना पूरा नहीं हुआ । मीरा बहन पास में [illegible] थीं, वे लोटा फिर से भरकर ले आईं । गांधी[illegible] मुंह धोने की क्रिया तो पूरी करली, पर बात [illegible] करते एकाएक चुप और गंभीर हो गये । जवाह[illegible] ने पूछा—"क्या बात है बापू, आप इतने [illegible] कैसे हो गये ?" गांधीजी ने कहा, "मेरे [illegible] गलती हो गई । रोज मेरा मुंह एक लोटे [illegible] धुल जाता था आज बात करते-करते मुझे ध्यान [illegible]

और मुझे दूसरा लोटा पानी लेना पड़ा।" हरलाल ने हंसकर कहा—"इसमें परेशानी की बात है, यहां तो गंगा-जमुना दोनों बहती हैं, पानी की कमी नहीं है। आप रेगिस्तान में ही हैं!" गांधीजी ने उत्तर दिया—"गंगा-ना केवल मेरे लिए नहीं बहती है। मुझे तो ना ही पानी लेने का अधिकार है जितना मेरे आवश्यक है!" रोज एक लोटा पानी काफी ा था, उस दिन दो लोटे काम में लेना पड़ा तो धीजी सोच में पड़ गये। आजादी की लड़ाई के ापति के रूप में अंग्रेजी साम्राज्य के प्रतिनिधि से त-चीत में कहीं असावधानी हुई होती उससे कम ीर बात गांधीजी के लिये यह आवश्यकता से धिक पानी खर्च कर डालने की नहीं थी।

प्रकृति को केवल उपभोग्य वस्तु न मानकर, े माता के रूप में देखते हुए उसके साथ सहयोग के अपनी आवश्यकता जितनी ही वस्तु उससे लेकर गर हम अपनी जीवन-यात्रा का निर्वाह करें तो कोई ारण नहीं है कि पृथ्वी पर किसी को भी अभाव या रीबी का सामना करना पड़े। इस वसुंधरा को रत्नगर्भा' कहा जाता है। 'रत्नगर्भा' का मतलब वल यह नहीं है कि पृथ्वी के गर्भ में हीरे, माणक ादि रत्न पड़े हैं। वास्तव में तो वह रत्नगर्भा इस-लिए कहलाती है कि हर साल, हर फसल पर वह में अटूट सामग्री देती रहती है पृथ्वी पर जो भी दा होता है—मनुष्य या अन्य प्राणी—उन सब के र्यादित निर्वाह की व्यवस्था या सामग्री प्रकृति उपलब्ध करती है। यह सारा संसार 'नियम से' चलता है, यह आज का विज्ञान भी मानता है। अतः जो पैदा हुआ है उसके लिये निर्वाह का इन्तजाम न हो यह उस नियम के और विज्ञान के प्रतिकूल बात है। हम रोज देखते ही हैं कि मनुष्य हो या अन्य प्राणी, बच्चा पैदा होते ही माता के स्तन में उसके लिए दूध [illegible] निकलने लगता है; बच्चा नहीं हुआ था तब तक नहीं निकलता था, बच्चा होते ही बच्चे का और मां के स्तन दोनों के मुंह खुल जाते हैं।

आज जो गरीबी हम देख रहे हैं उसका मुख्य कारण यह नहीं है कि दुनियां में चीजों का या साधनों का अभाव है, बल्कि यह है कि उन साधनों या उन वस्तुओं के बहुत बड़े हिस्से पर थोड़े से लोगों ने अपना गलत आधिपत्य जमा रखा है। उनके उप-भोग की कोई सीमा नहीं है। तथा इसीलिये दूसरी ओर करोड़ों लोगों को अभाव और गरीबी में जिन्दगी बितानी पड़ती है। आजकल एक दलील अक्सर दी जाती है कि गरीबी और अभाव का मुख्य कारण जनसंख्या की वृद्धि है। लेकिन यह प्रतिपादन अवैज्ञा-निक और असत्य है। विशेषज्ञ लोगों की राय के अनुसार पृथ्वी के मौजूदा साधन भी आज की अपेक्षा दुगुनी-तिगुनी आबादी तक के लिए पर्याप्त हैं, पर दुनियां के करीब तीन-चौथाई साधनों पर दो-चार प्रतिशत लोगों का कब्जा है। अमेरिका और यूरोप के 'विकसित' कहे जाने वाले देशों में अन्न के, दूध के, मक्खन के, पनीर के, मांस-मछली के इतने विपुल भण्डार भरे पड़े हैं कि समय-समय पर उन्हें नष्ट करना पड़ता है, जबकि दूसरी ओर अविकसित कहे जाने वाले अफ्रीका, एशिया व दक्षिण अमेरिका आदि के मुल्कों में करोड़ों लोग ऐसे हैं जिनको आधा पेट रहना पड़ता है या भूखों मरना पड़ता है। पर वे उस खाद्य सामग्री को खा नहीं सकते क्योंकि खरीद नहीं सकते। वास्तव में गरीबी और अभाव का संबंध जनसंख्या से नहीं है, इस बात से है कि प्रकृति में उपलब्ध या प्रकृति द्वारा दिये जाने वाले साधनों को चंद लोगों ने हथिया लिया है या उनका अमर्याद उपभोग कर रहे हैं। सीधे शब्दों में कहें तो वे दूसरों का हिस्सा भी खा जाते हैं। गरीबी और अभाव वास्तव में शोषण के परिणाम हैं। जनसंख्या वाली दलील तो उस शोषण को छिपाने के लिए है ताकि लोग भुलावे में आकर असली जड़ को न पक-

चान सके और शोषण करने वाले इस दलील की आड़ में अपना शोषण चालू रख सकें।

आज साधनों की उपलब्धि में कितनी विषमता है इसका एक उदाहरण अभी कुछ समय पहले नई दिल्ली और मद्रास के दो शहरों के तुलनात्मक अध्ययन से सामने आया था। नई दिल्ली और मद्रास की आबादी में फर्क नहीं है लेकिन नई दिल्ली में मद्रास की अपेक्षा दस गुना ज्यादा पानी उपलब्ध है, वहां की सड़कें तीन गुना चौड़ी हैं और सड़कों पर प्रकाश की व्यवस्था मद्रास की अपेक्षा छः गुनी है, जबकि नई दिल्ली के नागरिक बिजली–पानी आदि की सेवाओं के लिए मद्रास के नागरिकों की अपेक्षा कम मुआवजा देते हैं। नागरिक सुविधाओं पर मद्रास की अपेक्षा दिल्ली में १५ से २० गुना खर्च होता है। यह तो दो बड़े शहरों और राजधानियों के बीच की विषमता की बात हुई, पर इस देश के गांवों से तथा अन्य छोटे शहरों से दिल्ली की तुलना की जाय तो कोई हिसाब ही नहीं बैठेगा। अतः अपरिग्रह अर्थात् आवश्यकता से अधिक उपभोग या खर्च न करना, केवल व्यक्तिगत साधना का विषय नहीं है सामाजिक दृष्टि से भी वह बहुत महत्त्व की चीज है, खासकर दुनिया की आज की परिस्थिति में। समाज से और समाज की समस्याओं से अपरिग्रहवृत्ति का गहरा संबंध है। सामाजिक दृष्टि से देखें तो परिग्रह वास्तव में एक अपराध है।

अपरिग्रह के बारे में एक और गलत धारणा लोगों में है कि अपरिग्रही जीवन का मतलब है गरीबी और अभाव का जीवन। वास्तव में बात इससे उल्टी है। हमने ऊपर देखा कि अगर अपरिग्रह का मूल्य समाज में व्यापक रूप से स्वीकृत हो जाय तो आज जो आज गरीबी और अभाव है वह बहुत हद तक समाप्त हो सकते हैं। व्यक्तिगत साधना की दृष्टि से अपरिग्रह की बात अलग है, लेकिन सामान्य तौर पर अपरिग्रह का मतलब यह नहीं है कि जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं में कमी की जाय अपरि[illegible] अपने-आप में एक नकारात्मक शब्द है। अपरि[illegible] अर्थात् परिग्रह का न होना, और परिग्रह का मत[illegible] सामान्य तौर पर है—आवश्यकता से अधिक वस्[illegible] का संग्रह। अपरिग्रह संग्रह या संग्रह की वृत्ति के अ[illegible] का नाम है, जीवन की आवश्यकताओं में कटौती [illegible] नहीं। इसलिए अपरिग्रह का संबंध न गरीबी से [illegible] न अभाव से।

अब व्यक्तिगत दृष्टि से अपरिग्रह की थो[illegible] चर्चा करेंगे। व्यक्तिगत जीवन के विकास में अपरि[illegible] का महत्त्व व्यापक रूप से मान्य है जो लोग के[illegible] भौतिकवादी दृष्टि से सोचते हैं, उनकी बात अ[illegible] है, वरना चाहे पश्चिम हो या पूर्व, भारत हो [illegible] चीन या योरोप, सब जगह यह मान्यता समान [illegible] है कि भौतिक वस्तुओं का अनावश्यक संग्रह मनुष्य [illegible] चारित्रिक और बौद्धिक विकास में बाधा डालता [illegible] आध्यात्मिक विकास में होने वाली बाधा तो स्पष्[illegible] ही। अंग्रेजी की कहावत प्रसिद्ध है—Plain Li[illegible] High Thinking"। भौतिक दृष्टि से जीवन जि[illegible] सादा और सरल होगा उतनी ही अधिक बौ[illegible] और आध्यात्मिक विकास के लिए अनुकूलता हो[illegible] अन्यथा मनुष्य की सारी शक्ति पहले तो संग्रह [illegible] फिर उसकी सार–संभाल में ही खर्च हो जायेग[illegible] जैसा लेख के शुरू में कहा गया है, संग्रह और प[illegible] का एक परिणाम यह होता है कि ज्यों–ज्यों [illegible] बढ़ता जाता है त्यों–त्यों उसकी लालसा और [illegible] जाती है। फिर मनुष्य के पास अपने चारि[illegible] विकास या आध्यात्मिक साधना के लिए कोई अव[illegible] नहीं बचता। कबीर ने तो यहां तक चेतावनी [illegible] थी कि घर में अगर संपत्ति बढ़ती है तो जिस [illegible] नाव में बढ़ा हुआ पानी नाव को ले डूबता है [illegible] तरह वह उस घर को ले डूबेगा:—

पानी बाढ़ा नाव में, घर में बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥

मुस्लिम संस्कृति में भी असंग्रह और अपरिग्रह का विचार इस हद तक रहा है कि रोज कुछ न कुछ खैरात करते रहने के अलावा वर्ष के अंत में हर मुसलमान कुटुम्ब को अपनी सारी संग्रहीत सम्पत्ति बांट देनी चाहिए ऐसा विधान उस संस्कृति में रहा है। इस्लाम में व्याज लेना भी पाप माना जाता है, यह सब जानते हैं।

विनोबा ने तो एक सूत्र ही बनाया था— "घर में हो सादगी और समाज में हो समृद्धि!" घर में अधिक सामान इकट्ठा करना जहां ईर्ष्या, द्वेष, कलह और संघर्ष का कारण बनता है वहां समाज की समृद्धि सबके लिये हितकर है बशर्ते कि वह पूरे समाज के उपयोग के लिये उपलब्ध हो। रोजमर्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति तो हर कुटुम्ब अपनी करता ही है, पर इसके अलावा कभी-कभी मनुष्य को अधिक वस्तुओं या अधिक व्यय की आवश्यकता होती है जैसे—बीमारी, शादी, उत्सव, प्रवास, यात्रा आदि के प्रसंग। ऐसे प्रसंगों पर सब की आवश्यकता पूर्ति के लिए आज से कुछ वर्ष पहले तक समाज में सामूहिक व्यवस्था रही है। गांव-गांव में धर्मशालाएं, शादी-व्याह और उत्सवों में काम आने वाले सार्वजनिक स्थान, ऐसे प्रसंगों के लिये आवश्यक वस्तुओं आदि का संग्रह यह सामान्य बात थी। इस 'सामाजिक समृद्धि' और परस्पर सहयोग के आधार पर सामान्य से सामान्य परिवारों को भी ऐसे प्रसंगों पर कोई दिक्कत या अनावश्यक खर्च की आवश्यकता नहीं होती थी। आज धर्मशालाओं या सरायों का स्थान होटलों ने लिया है और शादी-व्याह का इन्तजाम भी किराये से होने लगा है। इसके कारण सामान्य कुटुम्बों की परेशानी कितनी बढ़ गई है इसका अनुभव सबको होगा।

लेकिन परिग्रह भी सिर्फ भौतिक वस्तुओं का ही नहीं होता। महावीर स्वामी ने परिग्रह की व्याख्या यह की है कि केवल भौतिक वस्तु पर ही नहीं, किसी भी पदार्थ पर ममत्व रखना परिग्रह है। 'सब प्रकार की मूर्छा' परिग्रह है। मूर्छा अर्थात् लगाव, मोह या आशक्ति। वह आशक्ति वस्तुओं से ही नहीं अमूर्त चीजों से भी हो सकती है। 'भगवद् गीता' का तो सारा उपदेश ही आशक्ति-त्याग के चारों ओर गुंथा हुआ है।

इस प्रकार, व्यक्तिगत, सामाजिक, वैज्ञानिक या आध्यात्मिक—किसी भी दृष्टि से देखें, अपरिग्रह मानव जीवन के परम मूल्यों में से है। आज के युग में, जबकि आर्थिक शोषण की प्रवृत्ति अत्यधिक बढ़ गई है और खासकर पिछले दो-तीन सौ वर्षों में विज्ञान और यांत्रिकी इन दोनों के विकास ने इस प्रकार के शोषण तथा आर्थिक केन्द्रीयकरण के अवसर बढ़ा दिये हैं, तब अपरिग्रह एक बुनियादी सामाजिक मूल्य बन गया है। आध्यात्मिक दृष्टि से तो वह हमेशा ही जीवन के प्रमुख धर्मों में माना गया है। आज साधनों की सीमितता को देखते हुए विज्ञान के लिये भी वह मान्य हो गया है। □

—लाल भवन के पीछे, चौड़ा रास्ता,
जयपुर (राजस्थान)

डॉ. दौलतसिंह कोठारी

# भीतर का अंधेरा मिटेगा विज्ञान और अहिंसा के मेल से

△

इसी बात को अगर जीवन में उतार लें तो सारे भेद मिट जाएं। देश अलग हो, जाति अलग हो, भाषा और वेष-भूषा अलग हो, रंग-रूप और खान-पान भिन्न हो, सम्प्रदाय भिन्न हो-तो भी मानव एक-दूसरे का पूरक है। वह भिन्न होते हुए भी अभिन्न है। अपनें आस-पास की तमाम चीजों को, घटनाओं को आप इसी कसौटी पर परखिए और आपके मन में बसी तमाम घृणा, द्वेष, गुस्सा और झुंझलाहट यानी हिंसा पल भर में काफूर हो जायेगी।

हमारे सामने कोई भी समस्या हो और हम उसका हल निकालना चाहें तो आजकल उसमें विज्ञान और टेक्नोलॉजी की परम आवश्यकता होती है। भारत के इतिहास में पहली बार ऐसा युग आया है, जिसका आधार विज्ञान और टेक्नोलॉजी है। चाहे आर्थिक समस्या हो, खेती की कठिनाइयां हों, या सुरक्षा का सवाल हो—सबका हल खोजने के लिए और प्रगति एवं विकास के लिए हमें विज्ञान और टेक्नोलॉजी को सहारा लेना पड़ता है। लेकिन एक बात गहरी चिंता जगाती है। एक ओर तो मानव–इतिहास में पहले कभी न तो इतना विज्ञान था, न टेक्नोलॉजी थी; दूसरी ओर मानव-मानव के बीच जितना अविश्वास, जितनी घृणा और जितनी हिंसा आज दिखाई देती है उतनी पहले कभी नहीं थी। और यह हिंसा बहुत ही व्यापक है। भाई-भाई का गला काटने को तैयार है। ऐसा लगता है जैसे पूरे समाज में पूरे देश में हिंसा के खूनी दाग लगते ही जा रहे है–हर रोज।

इसका कारण क्या है? कारण यही है कि विज्ञान और जनता के बीच खाई है, जो बड़ी तेजी से बढ़ती जा रही है। इसलिए कि विज्ञान भयंकर रफ्तार से बढ़ रहा है; हर दस साल में उसका परिणाम पहले से दुगना हो जाता है। इस तरह आदमी तो पिछड़ रहा है और विज्ञान बढ़ रहा है। आम आदमी की जिंदगी में विज्ञान को जिस तरह से रच-बस जाना था, वह नहीं हुआ। चन्द सुविधाओं का मिल जाना विज्ञान नहीं है। विज्ञान का असली लाभ तो तब है, जब वह हमारी जिंदगी में उतर जाए उसका हिस्सा बन जाए।

यह तभी सम्भव है, जब हम विज्ञान को जनता के निकट ले जाएं और उसे अहिंसा और गांधी के साथ जोड़कर ले जाएं और यह प्रयास केवल राष्ट्रीय विज्ञान–दिवस पर ही नहीं, हर दिन होना चाहिए निरन्तर। तभी विज्ञान और जनता के बीच की खाई कम हो सकती खास तौर से बच्चों को अपने देश के महान वैज्ञानिकों के जीवन और कार्य से परिचित कराना जरूरी है। २८ फरवरी के दिन सन १९२८ में हमारे एक महान वैज्ञानिक डॉ. सी.वी. रामन् ने अपनी महान खोज 'रामन् इफेक्ट' की घोषणा की थी। और भी बहुत से महान वैज्ञानिक हुए हैं इस देश में–प्रफुल्लचन्द राय, जगदीशचन्द्र बोस, मेघनाथ साहा-इन सबके बारे में बच्चों को और आम जनता को बताना चाहिए। आजादी मिले चालीस साल हो गये; अब भी नहीं

बतायेंगे तो कब बतायेंगे ?

इन महान वैज्ञानिकों के बारे में बताने की सबसे बड़ी बात यह है कि विज्ञान एक साधना है । इन वैज्ञानिकों के जीवन से हमें सबसे बड़ा पाठ यही मिलता है कि जीवन में संयम बरतना बहुत जरूरी है, विज्ञान के प्रति ही नहीं मानव में भी अटूट श्रद्धा रखना अत्यावश्यक है, और हमें घोर परिश्रम करना चाहिए । संयम, श्रद्धा और परिश्रम या तप के बिना आप न तो जीवन को अच्छी तरह जी सकते हैं, न जीवन से कुछ पा सकते हैं और न कहीं पहुंच सकते हैं । हमें नवयुवकों तक यह संदेश पहुंचाना होगा कि विज्ञान एक तरह की तपस्या है, साधना है ।

एक और बात जो इन वैज्ञानिकों के जीवन और कार्य से सीखनी है, वह यह है कि जो समस्याएं हमें बेहद जटिल और डरावनी लगती हैं, असल में उनकी जड़ बड़ी मामूली होती है । हमें वे मुश्किल इसलिए लगती हैं कि ठीक से नजर नहीं आ रही हैं । उनकी तह तक पहुंचने के लिए हमें विज्ञान का तरीका अपनाना होगा । विज्ञान का तरीका यही है–खोज-बीन, जांच-पड़ताल और सोच-विचार ।

उदाहरण के लिए 'रामन् इफेक्ट' या 'रामन् प्रभाव' की ही खोज को लें । उसकी जड़ है इस सवाल में कि आसमान का रंग आसमानी है तो सही, पर यह रंग आसमान में आया कहां से ? हर बच्चे के मन में यह सवाल उठता है । रामन् ने इसी पर सोचा,चिंतन किया । उनसे पहले भी लोग इस ऊहा-पोह में लगे थे कि आसमान को उसका रंग कहां से मिला । तो एक जवाब मिला कि हवा से मिला । पर हवा में तो कोई रंग नहीं होता । सो, चिंतन जारी रहा । तब इस प्रश्न की एक और गुत्थी सुलझी कि सूरज की किरणें जब हवा के परमाणुओं से टकराती हैं तो उनमें से जो नीले रंग की किरणें हैं वे ज्यादा बिखर जाती हैं और लाल रंग की किरणें कम बिखरती हैं इसीलिए उगता और डूबता सूरज लाल दिखता है और बाकी आसमान नीला । ऐसी ही बातों पर चिंतन करते-करते रामन् अपनी महान खोज तक पहुंचे ।

रामन् की खोज की महानता इस बात में है कि वह बुनियादी वैज्ञानिक संकल्पनाओं से भी जुड़ी है और व्यावहारिक उपयोगों से भी । विज्ञान के इस समय के सबसे महान् सिद्धांत से भी उसका सीधा तालमेल बैठता है । वह मूल सिद्धांत यह है कि कोई भी परमाणु हो वह लहर भी है, तरंग भी है और कण भी है । यानि एक ही तत्व, एक ही साथ एक ही समय में दो रूपों में विद्यमान है—तरंग भी, कण भी । अब तरंग तो यहां भी तरंग हैं और आगे भी तरंग रहेगी—यानी उसमें अभिन्नता है । परन्तु दूसरी ओर, कण एक यहां है तो दूसरा वहां है । यानी कणों में भिन्नता है । इस भिन्नता और अभिन्नता का समन्वय विज्ञान का सबसे बड़ा मूल सिद्धांत है । इसी को अंगरेजी में कहते हैं—"कॉम्प्लिमेंटैरिटी ऑफ आइडेन्टिटी एण्ड नॉन आइडेन्टिटी ।" यानी परस्पर विरोधी होते हुए भी एक दूसरे का पूरक होना ।

अब इसी बात को अगर जीवन में उतार लें तो सारे भेद मिट जाएं । देश अलग हो, जाति अलग हो, भाषा और वेश-भूषा अलग हो, रंग-रूप और खान-पान भिन्न हो, सम्प्रदाय भिन्न हो—तो भी मानव एक दूसरे का पूरक है । वह भिन्न होते हुए भी अभिन्न है । अपने आस-पास की तमाम चीजों को घटनाओं को आप इसी कसौटी पर परखिए और आपके मन में बसी तमाम घृणा, द्वेष, गुस्सा और झुंझलाहट यानी हिंसा पल भर में काफूर हो जायेगी ।

विज्ञान के इसी मूल सिद्धांत को भारतीय दर्शन ने भी अनुभव के आधार पर अपनी तरह से प्रस्तुत किया था । जैसे कि आप और हम हैं । शरीर की दृष्टि से हम भिन्न हैं । लेकिन आत्मा की दृष्टि से हम अभिन्न हैं, यहीं से उदय होता है प्रेम का । मानव ही नहीं, जीव मात्र के प्रति प्रेम ।

यहीं से पनपती है यह भावना कि जियो और जीने दो। परमाणु के अन्दर प्रोटान के चारों ओर चक्कर लगाते इलेक्ट्रान भला कहां जानते हैं कि वे अभिन्न हैं! बस, उनके कार्यों से उनकी अभिन्नता प्रकट होती है। इसी आधार पर कुछ टिका हुआ है—इलेक्ट्रान से बने, परमाणु, परमाणुओं से बने तत्व, तत्वों से बने यौगिक, योगिकों से बने पदार्थ जीव–जन्तु, पेड़–पौधे, हम सब और यह धरती, ग्रह, तारे और यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड! दूसरी ओर, हम मानव जानता तो हैं कि आत्मा की दृष्टि से हम अभिन्न हैं; पर अपने जीवन में, आचार में हम इस बात को उतारते नहीं है। इसी कारण सारी समस्याएं हैं।

तो विज्ञान की यह बात हमें आज भारत के जन-जन तक पहुंचानी है। बल्कि भारत में ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व में फैलानी है। भारत की इसमें एक बड़ी निश्चित देन हो सकती है कि विज्ञान के इस युग को "विज्ञान और अहिंसा" का युग बनाया जाए।

यहां मुझे महान् वैज्ञानिक आइन्स्टाइन की याद आ रही है। प्रिस्टन में उनका जो अनुसंधान संस्थान था, उसमें अपने कमरे में उन्होंने केवल दो चित्र लगा रखे थे। इनमें से एक उनके जर्मनी के मित्र संगीतकार का था। दूसरा चित्र न तो न्यूटन का था और न किसी और वैज्ञानिक का, बल्कि ऐसे व्यक्ति का था जिससे आइन्स्टाइन स्वयं कभी मिले नहीं थे। वह महात्मा गांधी का चित्र था। जब कोई उनसे मिलने जाता तो वे गांधी के चित्र की ओर इशारा करके कहते, "द ग्रेटेस्ट मैन ऑफ द एज" [ इस युग का सबसे बड़ा महापुरुष ] युग के सबसे महान् वैज्ञानिक का यह कथन ही मानो उस भविष्य का संकेत दे रहा है, जो विज्ञान और अहिंसा का युग होगा।

सन् १९५१ में मैंने आइन्स्टाइन को एक पत्र लिखा था कि दिल्ली विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग के रजत-जयन्ती समारोह के लिए कृपया एक सन्देश भेजिए। उन्होंने छोटा, पर कितना सारगर्भित सन्देश भेज! उन्होंने लिखा।

"भाईचारा रखो और लगन से, बिना किसी पूर्वाग्रह के काम में जुटे रहो। तुम्हें अपने कार्य में आनन्द भी आयेगा और सफलता भी मिलेगी।"

यही चीज हमें देश को सिखानी है। ☐

## बुझी लालटेन

☐ श्री नरेन्द्र सिंघवी

कोई अंधा आदमी रात को अपने मित्र के यहां से घर लौटने लगा तो मित्र ने जलती लालटेन को उसके हाथ में थमा दी। अंधा हंसा और बोला—"यह मेरे किस काम आयेगी?" मित्र ने कहा—"लालटेन देखकर लोग तुम्हारे लिए रास्ता छोड़ देंगे, इसलिए इसे ले जाओ।"

अंधा लालटेन लेकर चल पड़ा और रास्ते में जब एक आदमी उससे टकरा गया तो वह अन्धा 'झल्लाया—आंख मूंद कर चल रहे हो क्या? दिखती नहीं, मेरे हाथ में लालटेन?"

इस पर उस आदमी ने उत्तर दिया—पर भाई लालटेन तो बुझी हुई है।

सच है लालटेन जल रही है या नहीं, इसे देखने के लिये भी आंखें चाहिये।

—ओरियन्टल ट्रांसपोर्ट के पास,
जवाहरलाल किशनलाल ८७ मकान,
भवानी मण्डी

# आत्म साधना : प्रतीकों के माध्यम से

△ डॉ. प्रेमसुमन जैन

△

> प्राकृत कथा साहित्य में प्राचीनकाल से ही प्रतीकों का प्रयोग होता रहा है। कथाकार अपनी कथा में भावों को व्यंजित करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग करता है। जैसे घूंघट से झांकता हुआ नारी का सुन्दर मुख दर्शक को अधिक कौतूहल एवं आनन्द प्रदान करता है, वैसे ही प्रतीकों का प्रयोग कथा को अधिक मनोरंजक एवं सार्थक बना देता है।

आचार्य हरिभद्र सूरि भारतीय साहित्य में कथा-सम्राट के रूप में विख्यात हैं। समराइच्चकहा एवं धूर्ताख्यान जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त उन्होंने सैकड़ों लघु कथाएं भी लिखी हैं। डॉ नेमिचन्द शास्त्री ने हरिभद्र के कथा-साहित्य का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है।[1] हरिभद्र द्वारा प्रस्तुत विभिन्न प्रकार की कथाओं में से उनकी कतिपय प्रतीक कथाओं के वैशिष्ट्य को यहां प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

प्राकृत कथा साहित्य में प्राचीनकाल से ही प्रतीकों का प्रयोग होता रहा है। कथाकार अपनी कथा में भावों को व्यंजित करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग करता है। जैसे घूंघट से झांकता हुआ नारी का सुन्दर मुख दर्शक को अधिक कौतूहल एवं आनन्द प्रदान करता है, वैसे ही प्रतीकों का प्रयोग कथा को अधिक मनोरंजक एवं सार्थक बना देता है। प्रतीकों के प्रयोग से प्रतिपाद्य विषय का सरलता से स्पष्टीकरण हो जाता है। सीधी-सादी कथा प्रतीकों से अलंकृत हो उठती है। जैसे प्राकृत कथाओं में नायक द्वारा समुद्र यात्रा की जाती है। किन्तु प्रायः अधिकांश कथाओं में समुद्र के बीच में जहाज तूफान से भग्न हो जाता है और किसी लकड़ी के पटिये के सहारे नायक समुद्र के तट पर जा लगता है। यह घटना इस बात का प्रतीक है कि संसार एक समुद्र की भांति है, जहां कर्मों के तूफान उठते रहते हैं और शरीर रूपी नौका भग्न होती रहती है। किन्तु पुरुषार्थी जीव रूपी नायक अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।[2]

आचार्य हरिभद्र ने अपनी कथाओं में इस प्रकार के कई प्रतीकों का प्रयोग किया है। शब्द प्रतीकों के अन्तर्गत कथा के पात्रों के विशेष नाम रखे गये हैं। समराइच्चकहा का नायक समरादित्य का नाम स्वयं एक प्रतीक है। समर का अर्थ है—युद्ध, संघर्ष। नायक नौ भवों तक अपने प्रतिद्वन्द्वियों से जूझता रहता है। आदित्य का अर्थ है—सूर्य। सूर्य अस्त होने के बाद भी अपनी प्रखर आभा के साथ उदित होता रहता है। इसी प्रकार नायक भी अपने कर्तव्यों का पालन करता हुआ अन्ततः निर्वाण प्राप्त करता है। कुछ प्रतीक

---

१. शास्त्री, नेमिचन्द, हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, वैशाली, १९६५

२. द्रष्टव्यः जैन, प्रेम सुमन, 'पालि-प्राकृत कथाओं में प्रयुक्त अभिप्राय' नामक लेख, राजस्थान भारती, बीकानेर १९६८

यहीं से पनपती है यह भावना कि जियो और जीने दो। परमाणु के अन्दर प्रोटान के चारों ओर चक्कर लगाते इलेक्ट्रान भला कहां जानते हैं कि वे अभिन्न हैं! बस, उनके कार्यों से उनकी अभिन्नता प्रकट होती है। इसी आधार पर कुछ टिका हुआ है—इलेक्ट्रान से बने, परमाणु, परमाणुओं से बने तत्व, तत्वों से बने यौगिक, योगिकों से बने पदार्थ जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, हम सब और यह धरती, ग्रह, तारे और यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड! दूसरी ओर, हम मानव जानता तो हैं कि आत्मा की दृष्टि से हम अभिन्न हैं; पर अपने जीवन में, आचार में हम इस बात को उतारते नहीं है। इसी कारण सारी समस्याएं हैं।

तो विज्ञान की यह बात हमें आज भारत के जन-जन तक पहुंचानी है। बल्कि भारत में ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व में फैलानी है। भारत की इसमें एक बड़ी निश्चित देन हो सकती है कि विज्ञान के इस युग को "विज्ञान और अहिंसा" का युग बनाया जाए।

यहां मुझे महान् वैज्ञानिक आइन्स्टाइन की याद आ रही है। प्रिंस्टन में उनका जो अनुसंधान संस्थान था, उसमें अपने कमरे में उन्होंने केवल दो चित्र लगा रखे थे। इनमें से एक उनके जर्मनी के मित्र संगीतकार का था। दूसरा चित्र न तो न्यूटन का था और न किसी और वैज्ञानिक का, बल्कि ऐसे व्यक्ति का था जिससे आइन्स्टाइन स्वयं कभी मिले नहीं थे। वह महात्मा गांधी का चित्र था। जब कोई उनसे मिलने जाता तो वे गांधी के चित्र की ओर इशारा करके कहते, "द ग्रेटेस्ट मैन ऑफ द एज" [ इस युग का सबसे बड़ा महापुरुष ] युग के सबसे महान् वैज्ञानिक का यह कथन ही मानो उस भविष्य का संकेत दे रहा है, जो विज्ञान और अहिंसा का युग होगा।

सन् १९५१ में मैंने आइन्स्टाइन को एक पत्र लिखा था कि दिल्ली विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग के रजत-जयन्ती समारोह के लिए कृपया एक सन्देश भेजिए। उन्होंने छोटा, पर कितना सारगर्भित सन्देश भेज! उन्होंने लिखा।

"भाईचारा रखो और लगन से, विना किसी पूर्वाग्रह के काम में जुटे रहो। तुम्हें अपने कार्य में आनन्द भी आयेगा और सफलता भी मिलेगी।"

यही चीज हमें देश को सिखानी है। □

## बुझी लालटेन

□ श्री नरेन्द्र सिंघवी

कोई अंधा आदमी रात को अपने मित्र के यहां से घर लौटने लगा तो मित्र ने जलती लालटेन को उसके हाथ में थमा दी। अंधा हंसा और बोला—"यह मेरे किस काम आयेगी?" मित्र ने कहा—"लालटेन देखकर लोग तुम्हारे लिए रास्ता छोड़ देंगे, इसलिए इसे ले जाओ।"

अंधा लालटेन लेकर चल पड़ा और रास्ते में जब एक आदमी उससे टकरा गया तो वह अन्धा 'झल्लाया—आंख मूंद कर चल रहे हो क्या? दिखती नहीं, मेरे हाथ में लालटेन?"

इस पर उस आदमी ने उत्तर दिया—पर भाई लालटेन तो बुझी हुई है।

सच है लालटेन जल रही है या नहीं, इसे देखने के लिये भी आंखें चाहिये।

—ओरियन्टल ट्रांसपोर्ट के पास,
जवाहरलाल किशनलाल ८७ मकान,
भवानी मण्डी

# आत्म साधना : प्रतीकों के माध्यम से

△ डॉ. प्रेमसुमन जैन

△

> प्राकृत कथा साहित्य में प्राचीनकाल से ही प्रतीकों का प्रयोग होता रहा है। कथाकार अपनी कथा में भावों को व्यंजित करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग करता है। जैसे घूंघट से झांकता हुआ नारी का सुन्दर मुख दर्शक को अधिक कौतूहल एवं आनन्द प्रदान करता है, वैसे ही प्रतीकों का प्रयोग कथा को अधिक मनोरंजक एवं सार्थक बना देता है।

आचार्य हरिभद्र सूरि भारतीय साहित्य में कथा-सम्राट के रूप में विख्यात हैं। समराइच्चकहा एवं धूर्ताख्यान जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त उन्होंने सैकड़ों लघु कथाएं भी लिखी हैं। डॉ नेमिचन्द शास्त्री ने हरिभद्र के कथा-साहित्य का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है।[1] हरिभद्र द्वारा प्रस्तुत विभिन्न प्रकार की कथाओं में से उनकी कतिपय प्रतीक कथाओं के वैशिष्ट्य को यहां प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

प्राकृत कथा साहित्य में प्राचीनकाल से ही प्रतीकों का प्रयोग होता रहा है। कथाकार अपनी कथा में भावों को व्यंजित करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग करता है। जैसे घूंघट से झांकता हुआ नारी का सुन्दर मुख दर्शक को अधिक कौतूहल एवं आनन्द प्रदान करता है, वैसे ही प्रतीकों का प्रयोग कथा को अधिक मनोरंजक एवं सार्थक बना देता है। प्रतीकों के प्रयोग से प्रतिपाद्य विषय का सरलता से स्पष्टीकरण हो जाता है। सीधी-सादी कथा प्रतीकों से अलंकृत हो उठती है। जैसे प्राकृत कथाओं में नायक द्वारा समुद्र यात्रा की जाती है। किन्तु प्रायः अधिकांश कथाओं में समुद्र के बीच में जहाज तूफान से भग्न हो जाता है और किसी लकड़ी के पटिये के सहारे नायक समुद्र के तट पर जा लगता है। यह घटना इस बात का प्रतीक है कि संसार एक समुद्र की भांति है, जहां कर्मों के तूफान उठते रहते हैं और शरीर रूपी नौका भग्न होती रहती है। किन्तु पुरुषार्थी जीव रूपी नायक अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।[2]

आचार्य हरिभद्र ने अपनी कथाओं में इस प्रकार के कई प्रतीकों का प्रयोग किया है। शब्द प्रतीकों के अन्तर्गत कथा के पात्रों के विशेष नाम रखे गये हैं। समराइच्चकहा का नायक समरादित्य का नाम स्वयं एक प्रतीक है। समर का अर्थ है—युद्ध, संघर्ष। नायक नौ भवों तक अपने प्रतिद्वन्द्वियों से जूझता रहता है। आदित्य का अर्थ है—सूर्य। सूर्य अस्त होने के बाद भी अपनी प्रखर आभा के साथ उदित होता रहता है। इसी प्रकार नायक भी अपने कर्तव्यों का पालन करता हुआ अन्ततः निर्वाण प्राप्त करता है। कुछ प्रतीक

---

१. शास्त्री, नेमिचन्द, हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, वैशाली, १९६५

२. द्रष्टव्य: जैन, प्रेम सुमन, 'पालि-प्राकृत कथाओं में प्रयुक्त अभिप्राय' नामक लेख, राजस्थान भारती, बीकानेर १९६८

यहीं से पनपती है यह भावना कि जियो और जीने दो। परमाणु के अन्दर प्रोटान के चारों ओर चक्कर लगाते इलेक्ट्रान भला कहां जानते हैं कि वे अभिन्न हैं! बस, उनके कार्यों से उनकी अभिन्नता प्रकट होती है। इसी आधार पर कुछ टिका हुआ है— इलेक्ट्रान से बने, परमाणु, परमाणुओं से बने तत्व, तत्वों से बने यौगिक, योगिकों से बने पदार्थ जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, हम सब और यह धरती, ग्रह, तारे और यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड! दूसरी ओर, हम मानव जानता तो हैं कि आत्मा की दृष्टि से हम अभिन्न हैं; पर अपने जीवन में, आचार में हम इस बात को उतारते नहीं है। इसी कारण सारी समस्याएं हैं।

तो विज्ञान की यह बात हमें आज भारत के जन-जन तक पहुंचानी है। बल्कि भारत में ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व में फैलानी है। भारत की इसमें एक बड़ी निश्चित देन हो सकती है कि विज्ञान के इस युग को "विज्ञान और अहिंसा" का युग बनाया जाए।

यहां मुझे महान् वैज्ञानिक आइन्स्टाइन की याद आ रही है। प्रिंस्टन में उनका जो अनुसंधान संस्थान था, उसमें अपने कमरे में उन्होंने केवल दो चित्र लगा रखे थे। इनमें से एक उनके जर्मनी के मित्र संगीतकार का था। दूसरा चित्र न तो न्यूटन का था और न किसी और वैज्ञानिक का, बल्कि ऐसे व्यक्ति का था जिससे आइन्स्टाइन स्वयं कभी मिले नहीं थे। वह महात्मा गांधी का चित्र था। जब कोई उनसे मिलने जाता तो वे गांधी के चित्र की ओर इशारा करके कहते, "द ग्रेटेस्ट मैन ऑफ द एज" [ इस युग का सबसे बड़ा महापुरुष ] युग के सबसे महान् वैज्ञानिक का यह कथन ही मानो उस भविष्य का संकेत दे रहा है, जो विज्ञान और अहिंसा का युग होगा।

सन् १९५१ में मैंने आइन्स्टाइन को एक पत्र लिखा था कि दिल्ली विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग के रजत-जयन्ती समारोह के लिए कृपया एक सन्देश भेजिए। उन्होंने छोटा, पर कितना सारगर्भित सन्देश भेज! उन्होंने लिखा।

"भाईचारा रखो और लगन से, बिना किसी पूर्वाग्रह के काम में जुटे रहो। तुम्हें अपने कार्य में आनन्द भी आयेगा और सफलता भी मिलेगी।"

यही चीज हमें देश को सिखानी है। ☐

## बुझी लालटेन

☐ श्री नरेन्द्र सिंघवी

कोई अंधा आदमी रात को अपने मित्र के यहां से घर लौटने लगा तो मित्र ने जलती लालटेन को उसके हाथ में थमा दी। अंधा हंसा और बोला—"यह मेरे किस काम आयेगी?" मित्र ने कहा—"लालटेन देखकर लोग तुम्हारे लिए रास्ता छोड़ देंगे, इसलिए इसे ले जाओ।"

अंधा लालटेन लेकर चल पड़ा और रास्ते में जब एक आदमी उससे टकरा गया तो वह अन्धा 'झल्लाया—आंख मूंद कर चल रहे हो क्या? दिखती नहीं, मेरे हाथ में लालटेन?"

इस पर उस आदमी ने उत्तर दिया—पर भाई लालटेन तो बुझी हुई है।

सच है लालटेन जल रही है या नहीं, इसे देखने के लिये भी आंखें चाहिये।

—ओरियन्टल ट्रांसपोर्ट के पास,
जवाहरलाल किशनलाल ८७ मकान,
भवानी मण्डी

# आत्म साधना : प्रतीकों के माध्यम से

△ डॉ. प्रेमसुमन जैन

प्राकृत कथा साहित्य में प्राचीनकाल से ही प्रतीकों का प्रयोग होता रहा है। कथाकार अपनी कथा में भावों को व्यंजित करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग करता है। जैसे घूंघट से झांकता हुआ नारी का सुन्दर मुख दर्शक को अधिक कौतूहल एवं आनन्द प्रदान करता है, वैसे ही प्रतीकों का प्रयोग कथा को अधिक मनोरंजक एवं सार्थक बना देता है।

आचार्य हरिभद्र सूरि भारतीय साहित्य में कथा-सम्राट के रूप में विख्यात हैं। समराइच्चकहा एवं धूर्ताख्यान जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त उन्होंने सैकड़ों लघु कथाएं भी लिखी हैं। डॉ नेमिचन्द शास्त्री ने हरिभद्र के कथा-साहित्य का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है।[1] हरिभद्र द्वारा प्रस्तुत विभिन्न प्रकार की कथाओं में से उनकी कतिपय प्रतीक कथाओं के वैशिष्ट्य को यहां प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

प्राकृत कथा साहित्य में प्राचीनकाल से ही प्रतीकों का प्रयोग होता रहा है। कथाकार अपनी कथा में भावों को व्यंजित करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग करता है। जैसे घूंघट से झांकता हुआ नारी का सुन्दर मुख दर्शक को अधिक कौतूहल एवं आनन्द प्रदान करता है, वैसे ही प्रतीकों का प्रयोग कथा को अधिक मनोरंजक एवं सार्थक बना देता है। प्रतीकों के प्रयोग से प्रतिपाद्य विषय का सरलता से स्पष्टीकरण हो जाता है। सीधी-सादी कथा प्रतीकों से अलंकृत हो उठती है। जैसे प्राकृत कथाओं में नायक द्वारा समुद्र यात्रा की जाती है। किन्तु प्रायः अधिकांश कथाओं में समुद्र के बीच में जहाज तूफान से भग्न हो जाता है और किसी लकड़ी के पटिये के सहारे नायक समुद्र के तट पर जा लगता है। यह घटना इस बात का प्रतीक है कि संसार एक समुद्र की भांति है, जहां कर्मों के तूफान उठते रहते हैं और शरीर रूपी नौका भग्न होती रहती है। किन्तु पुरुषार्थी जीव रूपी नायक अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।[2]

आचार्य हरिभद्र ने अपनी कथाओं में इस प्रकार के कई प्रतीकों का प्रयोग किया है। शब्द प्रतीकों के अन्तर्गत कथा के पात्रों के विशेष नाम रखे गये हैं। समराइच्चकहा का नायक समरादित्य का नाम स्वयं एक प्रतीक है। समर का अर्थ है—युद्ध, संघर्ष। नायक नौ भवों तक अपने प्रतिद्वन्द्वियों से जूझता रहता है। आदित्य का अर्थ है—सूर्य। सूर्य अस्त होने के बाद भी अपनी प्रखर आभा के साथ उदित होता रहता है। इसी प्रकार नायक भी अपने कर्तव्यों का पालन करता हुआ अन्ततः निर्वाण प्राप्त करता है। कुछ प्रतीक

---

1. शास्त्री, नेमिचन्द, हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, वैशाली, १९६५
2. द्रष्टव्यः जैन, प्रेम सुमन, 'पालि-प्राकृत कथाओं में प्रमुख अभिप्राय' नामक लेख, राजस्थान भारती, बीकानेर १९६८

विशेष अर्थ को व्यंजित करने वाले होते हैं। जैसे–अधिक घमण्ड करने वाला कोई पात्र मरकर हाथी होता है। यहां मान का प्रतीक नाक है। पात्र ने अधिक मान किया इसलिए उसको लम्बी नाक (सूंड वाला) हाथी का जन्म मिला। जब किसी दीपक या सूर्य के उदाहरण द्वारा केवलज्ञान का परिचय दिया जाता है तो वह भावप्रतीक का प्रतिनिधित्व करता है। प्राकृत कथाओं में ऐसे कई उदाहरण प्राप्त होते हैं। कुछ ऐसे दृश्य एवं बिम्ब भी प्राप्त होते हैं जो अमूर्त भावों को व्यक्त करते हैं। जैसे कीचड़ से आच्छादित लौकी भारी हो जाने से जल में डूब जाती है और कीचड़ की परत गल जाने पर हल्की होकर वह पानी के ऊपर आ जाती है, यह कथा-बिम्बघटना-प्रतीक के रूप में है। यहां लौकी जीवात्मा और कीचड़ कर्मों का प्रतीक हैं।[1] आगम साहित्य में ऐसी कई प्रतीक कथाएं प्राप्त हैं। आचार्य हरिभद्र ने समराइच्चकहा में ऐसे प्रतीकों का प्रयोग किया है। दूसरे भव की कथा के गर्भ में नायिक को सांप का स्वप्न आता है, जो इस बात का प्रतीक है[2] कि होने वाला बालक माता–पिता का विघातक होगा।

ऐसी प्रतीक कथाओं का विकास आगमिक कथाओं से हुआ है। आचारांग सूत्र में एक कच्छप की प्रतीक कथा है। उस कछुए को शैवाल (काई) के बीच में रहने वाले एक छिद्र से चांदनी का सौन्दर्य दिखायी देता है। उस मनोहर दृश्य को दिखाने के लिए जब वह कछुआ अपने साथियों को बुलाकर लाया तो उसे वह छिद्र ही नहीं मिला, जिसमें से चांद[नी] दिख रही थी। यह प्रतीक आत्मज्ञान के निजी अनु[भव] भव के लिए प्रयुक्त हुआ है।[3] भारतीय कथाओं मे[ं] कच्छप-प्रतीक प्रचलित रहा है।[4] इसी प्रका[र] सूत्रकृतांगसूत्र में पुण्डरीक की प्रीतक कथा है। ए[क] सरोवर जल और कीचड़ से भरा हुआ है। उसके बीच में कई कमल खिले हुए हैं। उनके बीच मे[ं] एक सफेद कमल है। चारों दिशाओं से आने वाले मोहित पुरुष उस सफेद कमल को प्राप्त करने के प्रयास में कीचड़ में फंसकर रह जाते हैं। किन्[तु] वीतरागी पुरुष सरोवर के किनारे खड़ा रहकर ही सफेद कमल को अपने पास बुला लेता है।[5] इ[स] प्रतीक कथा में सरोवर संसार का प्रतीक है, ज[ल] कर्मराशि का। कीचड़ विषय-भोगों का प्रतीक है[,] साधारण कमल जनपद के प्रतीक हैं एवं श्वेत कम[ल] राजा का। चार मोहित पुरुष मतवादियों के प्रती[क] हैं एवं वीतरागी पुरुष श्रमण धर्म का। ज्ञाताध[र्म] कथा में कई प्रतीक कथाएं प्राप्त हैं। मयूरी के अं[डों] के प्रतीकों द्वारा श्रद्धा और संशय के फल को प्र[कट] किया गया है। दो कछुओं की प्रतीककथा द्वारा संय[मी] एवं असंयमी साधकों के परिणामों को उपस्थित कि[या] गया है। धन्ना सार्थवाह एवं विजय चोर की क[था] आत्मा एवं शरीर के सम्बन्ध को स्पष्ट करती है[।] रोहिणी कथा पांच व्रतों की रक्षा एवं वृद्धि को प्रती[कों] द्वारा स्पष्ट करती है। उदकजात नामक कथा अ[ने]कान्त के सिद्धान्त की प्रतीकों से समझाती है।

---

१. ज्ञाताधर्मकथासूत्र, छठा अध्ययन।
२. समराइच्चकहा, सम्पा-जैकोबी, प्र० एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, कलकत्ता, १९२६, भव-२ पृ. ११[...] द्रष्टव्य परिशिष्ट (क)
३. आचारांगसूत्र, अ. ६. उ. १
४. मज्झिमनिकाय, भाग ३, बालपण्डितसुत्त, पृ. २३९-४०
५. सूत्रकृतांगसूत्र, द्वितीयश्रुत., प्र. अ., सूत्र ६३८-४४।
६. द्रष्टव्य, जैन, प्रेम सुमन, "आगम कथा-साहित्य मीमांसा" नामक धर्मकथानुयोग भाग २ क[ी] भूमिका, पृ. १४

ाध्ययन सूत्र एवं उसके व्याख्या–साहित्य में कई क कथाएं उपलब्ध हैं । प्रतीक कथाओं की इस भूमि में आचार्य हरिभद्र की प्रतीक कथाएं ानित हुई हैं ।

आचार्य हरिभद्रसूरि की रचनाओं में समराइ-कहा का प्रमुख स्थान है । इस कथा-ग्रन्थ में कई ाक कथाएं अन्तर्निहित हैं । ग्रन्थ के दूसरे भव की । सिंह कुमार, कुसुमावली और आनन्द के जीवन सम्बन्धित है । प्रसंगवश संसार-स्वरूप का विवेचन ने के लिए इसमें मधु-बिन्दु दृष्टान्त की कथा ावशाली ढंग से प्रस्तुत की गयी है ।[1] यह हरि- की प्रतिनिधि प्रतीक कथा है । यद्यपि इस कथा प्रचार भारतीय कथा साहित्य में प्राचीन काल से । है ।[2] मधु-बिन्दु की संक्षिप्त प्रतीक-कथा इस ार है—

"अनेक देशों एवं बन्दरगाहों में विचरण करने ा कोई एक पुरुष अपने सार्थ के साथ एक सघन ल में प्रविष्ट हुआ । किन्तु चोरों द्वारा लूट लिये ने पर वह अकेला जंगल में भटकने लगा तभी एक ली हाथी उसके पीछे पड़ गया । उससे बचने के ए वह पुरुष दौड़ कर एक पुराने कुए में वटवृक्ष प्रारोह (जटाओ) को पकड़कर लटक गया । कुंए बीच में लटके हुए उस व्यक्ति ने देखा कि नीचे ह फाड़े हुए एक अजगर उसको लीलने के लिए ार है । कुंए की दीवालों पर चारों ओर सर्प र रहे हैं । जिस जटा को वह पकड़े हुए है उसके पर बैठे हुए दो काले एवं सफेद चूहे उस जड़ को काट रहे हैं । वह जंगली हाथी भी अपनी सूंड से उस वटवृक्ष को उखाड़ने के प्रयत्न में उसे हिला रहा है । इससे वटवृक्ष पर स्थित मधु-मक्खियों का एक झुण्ड उड़कर उस व्यक्ति के शरीर को काटने लग गया है किन्तु मधु-मक्खी के छत्ते से मधु की एक-दो बूंदें उस व्यक्ति के मुख में पड़ जाती हैं जिनको चाटकर वह रसास्वादन करने लगता है ।"

इस प्रतीक कथा को स्पष्ट करते हुए आचार्य कहते हैं कि घना जंगल संसार का प्रतीक है वह भटका हुआ पुरुष जीव का । जंगली हाथी मृत्यु का प्रतीक है । वह कुंआ मनुष्य एवं देवगति का प्रतीक है । अजगर नरक एवं तिर्यंच गति का प्रतिनिधित्व करता है । चारों ओर के सांप क्रोध, मान, माया, एवं लोभ कषायों के प्रतीक हैं । वटवृक्ष का प्रारोह (जड़) मनुष्य की आयु है । दोनों काले एवं सफेद चूहे कृष्ण और शुक्ल पक्ष रूपी रात-दिन हैं, जो आयु को क्षीण करने में लगे हैं । मधु-मक्खियां शरीर को लगने वाली व्याधियां हैं और जो मधु की एक.दो बूंद मुंह में आती है वह संसार के क्षणिक सुख का प्रतीक है ।[3]

मधु बिन्दु दृष्टान्त की यह प्रतीक कथा साहित्य कला एवं दर्शन के क्षेत्र में बहुत प्रचलित हुई ।[4] आचार्य हरिभद्र ने इस प्राचीन कथा को जन-मानस तक पहुंचाने में विशेष योग किया है ।

समराइच्चकहा के तीसरे भव की कथा में जालिनी और शिखिन् का वृतान्त वर्णित है । अग्नि-शर्मा एवं गुणसेन के जीव पुत्र एवं माता के रूप में यहां जन्म लेते हैं । पुत्र के प्रति माता के मन में

---

१. समराइच्चकहा (जेकोबी) भव २, पृ. ११०–११४

२. वसुदेवहिण्डी, प्रथम खण्ड, पृ. ८

३. जहा सो पुरिसो तहा संसारी जीवो, जहा वण-हत्थी तहा मच्चू..........जहा महुयरा तहा आगंतुगा सरीरसगमा वाहीओ । द्रष्टव्य परिशिष्ट (क)

४. द्रष्टव्य. डॉ. प्रेम सुमन, 'मधुबिन्दु-दृष्टान्त–एक मूल्यांकन' नामक लेख, [illegible], विशेषांक, १९६८

पूर्वजन्म के निदान के कारण वैर उत्पन्न हो जाता हैं। अतः वह पुत्र को गर्भ के समय से ही दुश्मन समझने लगती है। इस भावना को विकसित करने में हरिभद्र ने कई प्रतीकों का सहारा लिया है। माता जालिनी को गर्भ-धारण करने के उपरान्त एक स्वप्न आता है कि उसने जो स्वर्ण-घट देखा है वह टूट जाता है।[1] स्वर्णघट टूटने की यह घटना एक सार्थक प्रतीक से जुड़ी हुई है। घट, उदर का प्रतीक है, कथा के रहस्य का प्रतीक है एवं स्वर्ण गर्भ में स्थित जीव का। किन्तु स्वर्णघट का टूटना इस बात का प्रतीक है कि माता जालिनी स्वयं अपने गर्भ को नष्ट करने का प्रयत्न करेगी। अतः यह प्रतीक भविष्य की सूचना देने के लिए प्रयुक्त हुआ है।

नवें भव की कथा में समरादित्य एवं गिरिषेण के प्रतिद्वन्द्वी चरित्रों को प्रस्तुत किया गया है। इसके लिए कई सार्थक प्रतीकों का प्रयोग कथाकार ने किया है। इस कथा में गर्भवती माता को स्वप्न में सूर्य दिखायी पड़ता है।[2] सूर्य-दर्शन की यह घटना कथा के निम्न कार्यों को सूचित करती है—

१. गर्भस्थ बालक की तेजस्विता
२. संसार के प्रति समरादित्य की अलिप्तता
३. केवलज्ञान प्राप्ति का संकेत एवं
४. प्रकाश की तरह धर्मोपदेश का वितरण आदि।

इसी प्रकार समरादित्य का जन्म होते समय उसकी माता को कोई प्रसूतिजन्म क्लेश नहीं होता। यह इस बात का प्रतीक है कि उत्पन्न होने वाला शिशु जब अपनी मां को कष्ट नहीं देना चाहता तब वह दया, ममता, उदारता आदि गुणों का पुंज होगा।

आचार्य हरिभद्रसूरि का दूसरा महत्वपूर्ण कथा ग्रन्थ धूर्ताख्यान है। भारतीय साहित्य में यह अपने ढंग की अनूठी रचना है। इसमें पांच धूर्तों की कथा है।[3] चार पुरुष एवं एक नारी पुराणों, काव्यों एवं प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त असम्भव लगने वाली, अवैज्ञानिक एवं काल्पनिक कथाओं को कहकर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहते हैं। व्यंग के माध्यम से वे जनमानस को यथार्थ पुरुषार्थी जीवन की शिक्षा देना चाहते हैं। इस कथा में नारी धूर्ता खण्डपाना अपनी बुद्धि और चातुर्य से चारों धूर्तों पर विजय पा लेती है। हरिभद्र की यह पूरी ही कथा इस बात की प्रतीक है कि नारी किसी भी क्षेत्र में पुरुष से कम नहीं है। विजयी हो जाने पर भी नारी का अन्नपूर्णा का रूप धूमिल नहीं होता।[3] नारी द्वारा अन्धविश्वासों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ने का कार्य कराकर हरिभद्र ने यह सिद्ध कर दिया है कि मध्ययुग के प्रारम्भ में ही नारी आधुनिकता की ओर अग्रसित हो चुकी थी।

आगम ग्रन्थों की व्याख्या के क्षेत्र में आचार्य हरिभद्र की विशेष भूमिका है। उन्होंने दशवैकालिक टीका में ३० महत्वपूर्ण प्राकृत कथाएं प्रस्तुत की हैं।[4] उपदेशपद[5] नामक ग्रन्थ में लगभग ७० कथाएं उन्होंने लिखी हैं। आवश्यक वृत्ति के टिप्पण[6] में संस्कृत में कुछ कथाएं दी गयी हैं। हरिभद्र की लघु कथाएं कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। इन कथाओं में भी प्रतीकों का प्रयोग हरिभद्र ने किया है। प्रतीकों द्वारा भावों की अभिव्यंजना में कथाकार को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। लघु कथाओं में प्र... कुछ प्रतीक कथाओं को यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

१. समराइच्चकहा सम्पा. जैकोबी, भव-३, पृ. १३४
२. वही भव ६, पृ ७०३
३. जैन, जगदीशचन्द्र, प्राकृत साहित्य का इतिहास (द्वितीय संस्करण), १९८५, पृ. ३५८
४. धूर्ताख्यान—सं.—डॉ. ए. एन. उपाध्ये, बम्बई, १९४४, ५ वां आख्यान
५. दशवैकालिक सूत्र हरिभद्रवृत्ति, मनसुखलाल महावीर प्रेस, बम्बई पिण्डवाड़ा से वि. सं. २०३७ पुनः प्रकाशित
६. उपदेशपद, शाह लालचन्द नन्दलाल, बड़ौदा
७. आवश्यकवृत्ति टिप्पण, देवचन्द लालभाई, अहमदाबाद

दशवैकालिक हारिभद्रीय वृत्ति में एक वणिक् की कथा है। एक दरिद्र वणिक् रत्न द्वीप को गया। वहां व्यापार करके उसने कीमती रत्न प्राप्त किये। उन्हें लेकर जब वह वापिस लौटने लगा तो चोरों से बचने के लिए उसने असली रत्न भीतर छिपा लिये और हाथ में सामान्य पत्थर लेकर वह चल पड़ा। वह पागलों की भांति चिल्लाता हुआ कि रत्नवणिक् जा रहा है रास्ता पार करता रहा। रास्ते में उसने कीचड़ युक्त स्वादरहित जल को पीकर भी अपने रत्नों की रक्षा की और वापिस अपने घर लौट आया।[1]

हरिभद्र की इस कथा में रत्नद्वीप मनुष्यभव का प्रतीक है और वणिक् पुत्र जीव का। रत्नत्रय (सम्यक् दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र) के प्रतीक हैं। चोरों का भय, विषय-वासना का भय है, जिनसे रत्नत्रय को सुरक्षित रखना आवश्यक है। वणिकपुत्र ने मार्ग में जो स्वाद रहित जलपीकर एवं अनेक कष्टों को झेलकर रत्नों की रक्षा की थी, वह इस बात का प्रतीक है कि रत्नत्रय की रक्षा भी इन्द्रिय-निग्रह एवं प्रासुक जल व भोजन करने से ही हो सकती है।

हरिभद्रसूरि के इसी ग्रन्थ में 'घड़े का छिद्र' नामक एक अन्य कथा प्राप्त होती है।[2] पानी भरकर एक पनहारिन मार्ग से जा रही थी। किसी चंचल राजकुमार ने कंकड़ मारकर पनहारिन के घड़े में छेद कर दिया, जिससे पानी झरने लगा। किन्तु पनहारिन ने गीली मिट्टी द्वारा उस छिद्र को बन्द कर दिया और भरा हुआ घट वह अपने घर ले आयी। इस कथा में घड़ा साधक का प्रतीक है और पनहारिन शुभ भावों की। कंकड़ मारने वाला राजकुमार अशुभ भावों का प्रतीक है। छिद्र हो जाना योग की चंचलता एवं आस्रव का प्रतीक है। छिद्र को मिट्टी से बन्द कर देना गुप्ति अथवा संवर का प्रतीक है।[3] इस प्रकार यह कथा दार्शनिक प्रतीकों की कथा है।

आचार्य हरिभद्रसूरि का उपदेशपद नामक ग्रन्थ कथा साहित्य की दृष्टि से विशेष महत्त्व का है। इसमें जीवन के विभिन्न पक्षों को उजागर करने वाली कथाएं हैं। प्रतीक कथा के रूप में 'धन्य की पुत्र वधुए'' नामक कथा ध्यान आकर्षित करती है।[4] यद्यपि यह कथा मूल रूप में ज्ञाता धर्मकथा में प्राप्त है,[5] किन्तु हरिभद्र ने इस में सुन्दर संवादों का प्रयोग करके इसे मनोहारी बना दिया है। संक्षेप में कथा इस प्रकार है:—

धन्य सेठ अपनी चार बहुओं की श्रेष्ठता की परीक्षा करने के लिए उन्हें धान के पांच दाने यह कहकर देता है कि जब मैं मांगू तब उन्हें वापिस कर देना। बड़ी बहू ने उन दानों की उपेक्षा कर उन्हें बाहर फेंक दिया। मझली बहू ने ससुर का प्रसाद समझकर उन्हें छील कर खा लिया। संझली बहू ने उन दानों को कपड़े में बांधकर पेटिका में सुरक्षित रख दिया। किन्तु छोटी बहू ने उन धान के दानों को अपने पीहर में भेजकर उनकी खेती करवा दी। फसल आने पर जितने दाने पैदा हुए उन्हें फिर जमीन में बो दिया इस प्रकार पांच वर्ष तक खेती करने पर वे पांच दाने कई गाड़ियों में भरने लायक हो गये।

---

१. दशवैकालिक हा. वृ., प्रकाशक, भारतीय प्राच्यतत्व प्रकाशन, पिंडवाड़ा गाथा ३७ की वृत्ति, पृ. १३
२. वही, गाथा १७७ की वृत्ति गा. ४, पृ. ९३
३. इसी प्रकार नाव एवं छिद्र का प्रतीक जैन दर्शन के अन्य ग्रन्थों में भी प्राप्त है।
४. उपदेशपद, गाथा १७२-१७८, पृ. १४४
५. ज्ञाताधर्मकथा, सातवां अध्ययन, रोहिणी—कथा

धन्य सेठ ने जब पांच वर्ष बाद अपनी बहुओं से उन पांच धान के दानों को मांगा तो उसे सब वृतान्त का पता चला। उसने छोटी बहू को घर की मालकिन बनाकर बड़ी को झाड़ू लगाने का काम, मझली को रसोई का काम, एवं संझली बहू को भण्डार का काम सौंप दिया।

कथाकार इस कथा के प्रतीकों को स्पष्ट करते हुए कहता है कि धन्य सेठ गुरु का प्रतीक है एवं चारों बहुएं चार प्रकार के साधकों की प्रतीक। पांच धान के दानें पांच व्रतों के समान हैं। जो इन व्रतों की रक्षा कर उन्हें उत्तरोत्तर बढ़ाता है वही श्रेष्ठ पद प्राप्त करता है।[1]

हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य प्रयुक्त प्रतीकों एवं प्रतीक कथाओं का यहां मात्र दिग्दर्शन हुआ है। यदि उनके पूरे साहित्य में से प्रतीकों को एकत्र किया जाय तथा उनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाय तो भारतीय कथा साहित्य के कई पक्ष उजागर हो सकते हैं। धर्म और दर्शन को समझने की एक नई दृष्टि जागृत हो सकती है।

—सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

१. एवामेव समणाउसो ! जाव पंच महव्वया संवड्ढिया भवंति, से णं इह भवे चेव बहूणं समणाणं क्षाव वीईवइस्सइ जहा व सा रोहिणीया—ज्ञाता, ७

## अपरिग्रह

▱ ललित शर्मा

संत अफरयत का जीवन अत्यन्त सरल था, वे बड़ी पवित्रता से रहते थे। अपनी जन्म-भूमि फारस का परित्याग कर वे सीरिया चले आये थे। वे सदा एक छोटी-सी गुफा में निवास कर भगवान् का चिन्तन किया करते तथा सूर्यास्त के पूर्व एक रोटी खा लिया करते थे। एक दिन वे अपनी गुफा के बाहर बैठे हुये थे कि अन्थेमियस उनसे मिलने आया। वह फारस में राजदूत था। संत को भेंट देने के लिये वह अपने साथ फारस से सुन्दर वस्त्र लाया था। "यह आपके देश की बनी हुई वस्तु है। इसे सहर्ष ग्रहण कीजिये।" अन्थेमियस ने निवेदन किया। "क्या आप इसे ठीक समझते हैं कि एक पुराने स्वामी भक्त सेवक को इसलिये निकाल दिया जाय कि दूसरा नया आदमी अपने देश आ गया है ?" संत ने अपने प्रश्न से अन्थेमियस को आश्चर्यचकित कर दिया।

"नहीं, ऐसा कदापि उचित नहीं है।" राजदूत ने गम्भीरता पूर्वक उत्तर दिया। "तो फिर अपना वस्त्र वापस लीजिये। मैंने जिस वस्त्र को सोलह सालों से अनवरत धारण किया है। उसके रहते दूसरा धारण नहीं कर सकता। मेरी आवश्यकता इसी से पूर्ण हो जायेगी।" संत की पवित्र अपरिग्रह-वृत्ति मुखरित हो उठी। वे अपनी गुफा के अन्दर चले गये।

—शर्मा-सदन ७-मंगलपुरा स्ट्रीट झालावाड़-३२६००१

□ गणेश ललवानी

# भारतीय धर्म व इतिहास में सेवा
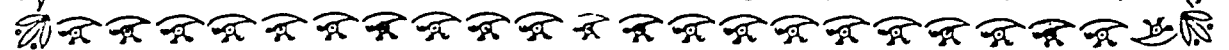
ईसाई धर्म का प्रेम तो मानव तक सीमित है किन्तु भारतीय धर्म चाहे वह बौद्ध धर्म या ब्राह्मण धर्म या जैन धर्म इससे बहुत-बहुत आगे बढ़ गया है-वे तो कहते हैं मानव ही नहीं संसार के सभी प्राणी पशु-पक्षी, कीट-पतंग, स्थावर जीव तक सभी पर प्रेम रखो कारण सब समान हैं। सब ब्रह्म रूप हैं 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'। मिति मे सव्व भूएसु।' सर्व भूत के प्रति मेरी मित्रता है।

लोग कहते हैं इसाई धर्म में सेवा का जो महत्व बताया गया है वह भारतीय धर्मों में नहीं है किन्तु ऐसा कहना हमारी अज्ञानता का ही द्योतक है। सच तो यह है कि भारतीय धर्मों में सेवा का जो सद्रूप है वह किसी भी धर्म से कम नहीं है। वैदिक धर्म में 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव' की जो बात आती है वह माता-पिता की सेवा के लिए। श्रवणकुमार आदि मातृ-पितृ भक्तों की सेवा की कहानियों से हमारा सारा पौराणिक साहित्य भरा पड़ा है जो कि हमें सतत माता-पिता की सेवा के लिए प्रेरित करता रहता है। गौड़ीय वैष्णवों ने भगवद् भक्ति के लिए जो दास्य, सख्य, वात्सल्य व मधुर भाव बताया है उसमें दास्य भाव में भगवान से सेव्य-सेवक भाव रहता है। भक्त सोचता है वे प्रभु हैं मैं सेवक हूं—उनकी सेवा करना ही मेरा धर्म है। कीर्तन, भजन-पूजन ये सब सेवा के ही अंग हैं। फिर सेव्य-सेवक भाव केवल दास्य में ही रहता है, ऐसा नहीं है। क्रमशः सख्य, वात्सल्य व मधुर भाव में भी रहता है। गुरु सेवा तो भारतीय धर्म में सर्वोपरि रही है। गुरु की सेवा बिना ज्ञान प्राप्त किया ही नहीं जा सकता। कारण गुरु-सेवा से अहं छूटता जाता है—जितना छूटता है उतना ही हम आत्मा के समीप होते जाते हैं। उपनिषदों में आरुणि, उद्दालक आदि की जो कथाएं आती हैं उनसे यह प्रतीत होता है कि उन्होंने केवल सेवा के बल पर ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। भगवत गीता में तो ज्ञान प्राप्ति का साधन बताते हुए कहते हैं 'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।' प्रणिपात अर्थात् झुकना नमनीय होना सदाशील होना। ज्ञान प्राप्ति का यह पहला साधन है प्रणिपात या श्रद्धा सम्यक् दर्शन। इसके बाद आता है परिप्रश्न-जिज्ञासा जानने की इच्छा। गुरु गौतम की जिज्ञासा कितनी अद्भुत थी, यह तो हम एक भगवती सूत्र को देखकर ही जान सकते हैं। जिज्ञासा, [illegible] नहीं। श्रद्धा में अवगत, श्रद्धा में ज्ञान किन्तु [illegible] अर्थात् ज्ञान प्राप्त कर उनकी सेवा करें। आज जब हम यह कहते हैं कि [illegible] (बाद) में [illegible] ज्ञान-प्राप्त [illegible] है। [illegible]

इसके फलस्वसूप यंग बंगाल के रे. कृष्ण मोहन बन्धोपाध्नाय, माइकेल मधसूदन दत्त जैसे प्रतिभावान युवकगण ईसाई धर्म में दीक्षित होने लगे। साथ-साथ वे असम, संथाल परगना, छोटा नागपुर एवं मध्य भारत के आदिवासी व उपजातियों के निवास–स्थल पर चिकित्सालय, अस्पताल, मेटरनिटी होम आदि प्रतिष्ठित करने लगे ताकि यहां के अशिक्षित और अविकसित आदिवासियों को ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट कर सके। परिणाम वैसा ही हुआ जैसा वे लोग चाहते थे। भारत में ईसाईयों का एक बहुत बड़ा भाग इन आदिवासी उपजातियों का ही है।

इनकी शिक्षा और सेवा के माध्यम से जब शिक्षित और अशिक्षित सभी ईसाई बनने लगे तब इस प्रवाह को रोकने के लिए बंगाल में ब्रह्म समाज, पंजाब में आर्य–समाज स्थापित हुए। क्रिश्चियन मिशनरियों के आदर्श पर कई मठ-मिशन भी प्रतिष्ठित हुए जिन्होंने शिक्षा व सेवा का 'मोटो' अपना लिया। रामकृष्ण मिशन, भारत सेवा श्रम संघ, हिन्दू मिशन ने जिस क्षेत्र में क्रिश्चियन मिशनरी काम करते थे उसी क्षेत्र में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया।

संघ वद्ध रूप में शिक्षा और सेवा का यह कार्यक्रम आज मिशनरियों के आदर्श पर करने पर भी मैं यह कहना चाहूंगा कि हमारे देश में यह आदर्श कोई नवीन वस्तु नहीं है। हमारे देश में भी संघबद्ध सेवा के दृष्टांत प्रचुर परिमाण में उपलब्ध हैं। यह कोई जरूरी नहीं कि सेवा का कार्य साधु ही करे—यह तो राष्ट्र एवं समाज का कर्त्तव्य है साधु का नहीं। इस कार्य के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करता हूं।

यूरोप में प्रथम अस्पताल प्रतिष्ठित हुआ सम्राट कान्स्टेन्टाइन के समय (३२६-३३७ इस्वी) में। पर भारत में तो इसके भी छः सौ वर्ष पूर्व मनुष्य एवं पशुओं के लिए अस्पतालें थीं जिसका उल्लेख हम अशोक के शिलालेख में पाते हैं। ईसा की ४थी सदी में गुप्त साम्राज्य की राजधानी पाटलीपुत्र में सामन्तों एवं भूम्यधिकारियों द्वारा संचालित अस्पताल था जिसका उल्लेख हम फाहियान के भारत विवरण में पाते हैं—वे लिखते हैं—वहां रोगियों की पीड़ितों की निःशुल्क सेवा की जाती थी। हमारे देश में परिषद (Academic) थे जो कि साहित्य व शिल्पकला का सर्वेक्षण करते थे। दक्षिण भारत का संगम [illegible] तो सर्वविदित ही है। शिक्षा भी निःशुल्क दी जाती थी। नालन्दा विश्व विद्यालय को कौन नहीं जानता जिसे नरसिंह गुप्त, वालादित्य ने (ई. ४६९-४७३) स्थापित किया था और जो सात सदियों तक शि[illegible]

टिप्पण—

१. मैं खेद के साथ यह भी कहना चाहूंगा कि हम में कितने आदमी जानते हैं कि १९२६ में स्वर्गीय फूलचन्द चौधरी ने दरिद्र व स्वजनहीन महिलाओं तथा अनाथ शिशुओं के आहार व आवास के लिये कलकत्ते के निकटस्थ लिलुआ में निर्मल हृदय की तरह अबला आश्रम की प्रतिष्ठा की थी [illegible] १९५६ में पश्चिम वंग सरकार ने इस काम के गुरुत्व के कारण राष्ट्रायत्त कर ली है। ऐसे एक फूलचन्द चौधरी नहीं कितने फूलचन्द चौधरी ने भारत के विभिन्न प्रांतों में अपनी सेवाएं दी और दे रहे हैं पर वे सब हमारी दृष्टि से ओझल हैं कारण विश्व के खीस्टान प्रचारक संस्थाओं [illegible] उनकी प्रशंसा जो नहीं की।

२. प्रसंगतः यह कहना चाहूंगा कि क्रुशविद्ध करने का उदाहरण संघदासगणि की वसुदेव हिण्डी में आया है। देखें चारूदत्त कथा। जहां एक विधाधर दूसरे विधाधर को क्रुशविद्ध करता है और चारुदत्त उसे बचाता है। क्या यह यीशु का क्रुशविद्ध करना व उनके रिसरेक्शन का स्मारक है।

एवं ज्ञान-विज्ञान का प्रसार करता रहा। चीनी परिव्राजक ईत सिंग ने दस साल तक यहां पर न्याय एवं वैद्यक का अध्ययन किया था, ६७५-६८५ ई. नालन्दा के छात्रों की संख्या ३००० से ५००० तक थी। इसके परिचालन के लिए राष्ट्र की ओर से २०० गावों का अनुदान मिला था। इसमें शिक्षार्थियों के लिए ३०० कक्ष थे व ८ सभागार। काहिरा के अल-अजहर (El-Ajhar) की भांति नालन्दा विश्वविद्यालय भी स्वतन्त्र (Autonomous) थी। चीनी यात्री ह्वेनसांग तो इसे देखकर मुग्ध हो गए थे। जापान के नारा के निकट होरीयूजी में आगे जाकर जो मठ-विद्यालय स्थापित हुआ था, वह इस नालन्दा विश्वविद्यालय से ही अनुप्राणित होकर। इस विश्वविद्यालय को जो अनुदान मिलता था वह अनुदान यूरोप के बोलोग्ना, प्यारी या आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय को भी नहीं मिलता था। अतः यह कहना सर्वथा अनुचित है कि भारतीय धर्म में सेवा का कोई महत्व नहीं है या हम सघ बद्ध रूप में सेवा का कार्य नहीं करते या किया नहीं।

—पी. २५, जैन भवन, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता

# एक नया रास्ता

☐ मोतीलाल सुराना, इन्दौर

वसन्त आने में देरी थी। फिर भी सर्दी कुछ कम हो गई थी। हमेशा की तरह आज भी वह सुबह ५ बजे उठा और चादर ओढ़कर घूमने निकल पड़ा। थोड़ी ही दूर चला था कि सड़क के किनारे एक आदमी पड़ा दिखा। पास गया तो देखा—उसके पास कपड़े भी पूरे न थे। सोचा—शायद ठण्ड से बेहोश हो गया है। उसके दुबले-पतले शरीर से तथा खाली पेट से लगता था, शायद एक दो दिन से बेचारे ने कुछ खाया भी न होगा।

उसने कुरते की जेब में हाथ डाला—पर उसमें एक पैसा भी न था। सवेरे स्नान कर कपड़े बदलने की धुन में रात को उसने कुरते की जेब से सब सामान निकाल लिया था। यहां तक कि रूमाल भी जेब में न था।

वह उस बेहोश आदमी के पास गया और उसके हाथ-पांव, सिर पर अपना हाथ फेरते हुए बोला—भाई, धीरज रखना, मैं घर जाकर वापस अभी आता हूं। तुम्हारे लिये कुछ लेकर। अभी मेरे पास कुछ भी नहीं है।

उसके हाथ फेरने से उसे कुछ होश आया, बोला—आपके हाथों की गरमी मुझे मिली—यह क्या कम है। आपने गरमी तो दी, इससे मुझे थोड़ी सी राहत मिली है। थोड़ी देर में सूरज की गरमी से मैं थोड़ा और अच्छा हो जाऊंगा। उसके इस जवाब से घूमने निकले उस व्यक्ति को प्रकाश की एक नई किरण मिली। एक नया रास्ता।

जो है, उसका सन्तोष और धैर्य से सामना करना चाहिये।

इसके फलस्वरूप यंग बंगाल के रे. कृष्ण मोहन बन्धोपाध्नाय, माइकेल मधसूदन दत्त जैसे प्रतिभावान युवकगण ईसाई धर्म में दीक्षित होने लगे। साथ-साथ वे असम, संथाल परगना, छोटा नागपुर एवं मध्य भारत के आदिवासी व उपजातियों के निवास–स्थल पर चिकित्सालय, अस्पताल, मेटरनिटी होम आदि प्रतिष्ठित करने लगे ताकि यहां के अशिक्षित और अविकसित आदिवासियों को ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट कर सके। परिणाम वैसा ही हुआ जैसा वे लोग चाहते थे। भारत में ईसाईयों का एक बहुत बड़ा भाग इन आदिवासी उपजातियों का ही है।

इनकी शिक्षा और सेवा के माध्यम से जब शिक्षित और अशिक्षित सभी ईसाई बनने लगे तब इस प्रवाह को रोकने के लिए बंगाल में ब्रह्म समाज, पंजाब में आर्य–समाज स्थापित हुए। क्रिश्चियन मिशनरियों के आदर्श पर कई मठ-मिशन भी प्रतिष्ठित हुए जिन्होंने शिक्षा व सेवा का 'मोटो' अपना लिया। रामकृष्ण मिशन, भारत सेवा श्रम संघ, हिन्दू मिशन ने जिस क्षेत्र में क्रिश्चियन मिशनरी काम करते थे उसी क्षेत्र में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया।

संघ बद्ध रूप में शिक्षा और सेवा का यह कार्यक्रम आज मिशनरियों के आदर्श पर करने पर भी मैं यह कहना चाहूंगा कि हमारे देश में यह आदर्श कोई नवीन वस्तु नहीं है। हमारे देश में भी संघ बद्ध सेवा के दृष्टांत प्रचुर परिमाण में उपलब्ध हैं। यह कोई जरूरी नहीं कि सेवा का कार्य साधु ही करे—यह तो राष्ट्र एवं समाज का कर्त्तव्य है साधु का नहीं। इस कार्य के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करता हूं।

यूरोप में प्रथम अस्पताल प्रतिष्ठित हुआ सम्राट कान्स्टेन्टाइन के समय (३२६-३३७ इस्वी) में। पर भारत में तो इसके भी छः सौ वर्ष पूर्व मनुष्य एवं पशुओं के लिए अस्पतालें थीं जिसका उल्लेख हम अशोक के शिलालेख में पाते हैं। ईसा की ४थी सदी में गुप्त साम्राज्य की राजधानी पाटलीपुत्र में सामन्तों एवं भूम्यधिकारियों द्वारा संचालित अस्पताल था जिसका उल्लेख हम फाहियान के भारत विवरण में पाते हैं—वे लिखते हैं—वहां रोगियों की पीड़ितों की निःशुल्क सेवा की जाती थी। हमारे देश में परिषद (Academic) थे जो कि साहित्य व शिल्पकला का सर्वेक्षण करते थे। दक्षिण भारत का संगम नाम तो सर्वविदित ही है। शिक्षा भी निःशुल्क दी जाती थी। नालन्दा विश्व विद्यालय को कौन नहीं जानता। जिसे नरसिंह गुप्त, वालादित्य ने (ई. ४६९-४७३ में) स्थापित किया था और जो सात सदियों तक शिक्षा

टिप्पण—

१. मैं खेद के साथ यह भी कहना चाहूंगा कि हम में कितने आदमी जानते हैं कि १९२६ में स्वर्गीय फूलचन्द चौधरी ने दरिद्र व स्वजनहीन महिलाओं तथा अनाथ शिशुओं के आहार व आवास के लिये कलकत्ते के निकटस्थ लिलुआ में निर्मल हृदय की तरह अवला आश्रम की प्रतिष्ठा की थी जो १९५६ में पश्चिम वंग सरकार ने इस काम के गुरुत्व के कारण राष्ट्रायत्त कर ली है। ऐसे एक फूलचन्द चौधरी नहीं कितने फूलचन्द चौधरी ने भारत के विभिन्न प्रांतों में अपनी सेवाएं दी हैं और दे रहे हैं पर वे सब हमारी दृष्टि से ओझल हैं कारण विश्व के खीस्टान प्रचारक संस्थाओं ने उनकी प्रशंसा जो नहीं की।

२. प्रसंगतः यह कहना चाहूंगा कि क्रुशविद्ध करने का उदाहरण संघदासगणि की वसुदेव हिण्डी में आया है। देखे चारुदत्त कथा। जहां एक विधाधर दूसरे विधाधर को क्रुशविद्ध करता है और चारुदत्त उसे बचाता है। क्या यह यीशु का क्रुशविद्ध करना व उनके रिसरेक्शन का स्मारक है।

एवं ज्ञान-विज्ञान का प्रसार करता रहा। चीनी पारि-व्राजक ईत सिंग ने दस साल तक यहां पर न्याय एवं वैद्यक का अध्ययन किया था, ६७५-६८५ ई. नालन्दा के छात्रों की संख्या ३००० से ५००० तक थी। इसके परिचालन के लिए राष्ट्र की ओर से २०० गावों का अनुदान मिला था। इसमें शिक्षार्थियों के लिए ३०० कक्ष थे व ८ सभागार। काहिरा के अल-अजहर (El-Ajhar) की भांति नालन्दा विश्व-विद्यालय भी स्वतन्त्र (Autonomous) थी। चीनी यात्री ह्वेनसांग तो इसे देखकर मुग्ध हो गए थे। जापान के नारा के निकट होरीयूजी में आगे जाकर जो मठ-विद्यालय स्थापित हुआ था, वह इस नालन्दा विश्वविद्यालय से ही अनुप्राणित होकर। इस विश्व-विद्यालय को जो अनुदान मिलता था वह अनुदान यूरोप के वोलोग्ना, प्यारी या आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय को भी नहीं मिलता था। अतः यह कहना सर्वथा अनुचित है कि भारतीय धर्म में सेवा का कोई महत्व नहीं है या हम सघ वद्ध रूप में सेवा का कार्य नहीं करते या किया नहीं।

—पी. २५, जैन भवन, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता

# एक नया रास्ता

▱ मोतीलाल सुराना, इन्दौर

बसन्त आने में देरी थी। फिर भी सर्दी कुछ कम हो गई थी। हमेशा की तरह आज भी वह सुबह ५ बजे उठा और चादर ओढ़कर घूमने निकल पड़ा। थोड़ी ही दूर चला था कि सड़क के किनारे एक आदमी पड़ा दिखा। पास गया तो देखा—उसके पास कपड़े भी पूरे न थे। सोचा—शायद ठण्ड से बेहोश हो गया है। उसके दुबले-पतले शरीर से तथा खाली पेट से लगता था, शायद एक दो दिन से बेचारे ने कुछ खाया भी न होगा।

उसने कुरते की जेब में हाथ डाला—पर उसमें एक पैसा भी न था। सवेरे स्नान कर कपड़े बदलने की धुन में रात को उसने कुरते की जेव से सव सामान निकाल लिया था। यहां तक कि रूमाल भी जेब में न था।

वह उस बेहोश आदमी के पास गया और उसके हाथ-पांव, सिर पर अपना हाथ फेरते हुए बोला—भाई, धीरज रखना, मैं घर जाकर वापस अभी आता हूं। तुम्हारे लिये कुछ लेकर। अभी मेरे पास कुछ भी नहीं है।

इसके हाथ फेरने से उसे कुछ होश आया, बोला—आपके हाथों की गरमी मुझे मिली—यह क्या कम है। आपने गरमी तो दी, इससे मुझे थोड़ी तो राहत मिली है। थोड़ी देर में सूरज की गरमी से मैं थोड़ा और अच्छा हो जाऊंगा। उसके इस जवाव से घूमने निकले उस व्यक्ति को प्रकाश की एक नई किरण मिली। एक नया रास्ता।

जो है उसको सन्तोष और धैर्य से सामना करना चाहिये।

# सुख-दुःख का कारण अन्य नहीं

❀ कन्हैयालाल लोढ़ा

△

वस्तुतः दुःख का कारण है सुख का भोग, सुख की दासता। सुख की दासता अन्य किसी की देन नहीं है स्वयं अपनी ही उपज है। यह नियम है कि यदि जिसे अनुकूलता में सुख की प्रतीति होती उसे ही प्रतिकूलता में दुःख होता है। दुःख का कारण प्राणी की स्वयं की सुख-भोग की इच्छा है। अतः दुःख से मुक्ति पाने का उपाय है सुख-भोग का त्याग। सुख-भोग का त्याग करने पर व्यक्ति का दुःख-सुख से अतीत के जगत में सदा के लिए प्रवेश हो जाता है जहां अक्षय अव्याबाध, अनन्त रस का सागर सदैव लहराता रहता है।

जैनागम 'उत्तराध्ययन' सूत्र के २० वें अध्ययन की गाथा ३७ में कहा है:—

**अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।**
**अप्पा मितममितं च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ॥**

अर्थात् आत्मा (स्वयं) ही दुःखों व सुखों का कर्त्ता और अकर्त्ता है और आत्मा (स्वयं) सदाचरण व दुराचरण में स्थित अपना मित्र–अमित्र (दुश्मन) होता है।

परन्तु जब व्यक्ति अपने सुख–दुख का कारण अपने को नहीं मानकर किसी अन्य को पर को अर्थात् वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति तथा अवस्था को मान लेता है तो उसका सुख–दुख 'पर' पर आश्रित हो जाता है, वह पराश्रित हो जाता है। पराश्रित होना पराधीन होना है। पराधीनता अपने आप में सबसे बड़ा दुःख है। इसलिए पराधीनता किसी भी प्राणी को किसी भी काल में अभीष्ट नहीं है। पराधीनता के दुःख से बचना है तो दुख–सुख का कारण अन्य को मानना त्यागना ही होगा।

जब प्राणी अपने दुःख का कारण दूसरों को मान लेता है तो उसका भयंकर परिणाम यह होता है कि जिस दुःख को स्वयं सदा के लिए मिटा सकता है उसे मिटाने में अपने को पराधीन मान लेता है। पराधीन होने पर दुःख दूर हो जाना तो दूर रहा, उत्तरोत्तर दुःख बढ़ता ही जाता है।

यह मानना कि अपने सुख–दुख का कारण अन्य है अर्थात् वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, अवस्था आदि हैं, युक्तियुक्त नहीं है। इसे कुछ उदाहरणों से समझें:—

एक व्यक्ति तुम गधे हो, यह गाली देता है जिसे वहां पर खड़े सैकड़ों व्यक्ति सुनते हैं परन्तु उन सैकड़ों व्यक्तियों को गाली सुनने से दुःख नहीं होगा। दुःख केवल उसी व्यक्ति को होगा जो गाली को सुनकर उसकी प्रतिक्रिया करेगा। जो यह मानेगा कि इसने 'गधा' कहकर मेरा अपमान किया, उसे दुःख होगा। जिसने यह मान लिया कि इसके कहने से मैं गधा नहीं हो गया, मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ा उसे दुःख नहीं होगा। यदि यही वाक्य इंगलिश में कहा, "You are an ass" और सुनने वाला इंगलिश नहीं जानता है तो उसे दुःख नहीं होगा अथवा यही वाक्य 'तुम गधे हो' पिता ने अपने शिशु, गुरु ने शिष्य को कहा तो

वह बुरा नहीं मानेगा, प्रत्युत मुस्करायेगा। विवाहोत्सव पर ससुराल में स्त्रियां वर व वर के परिवार वालों को गीतों में गालियां देती है परन्तु उन गालियों को कोई बुरा नहीं मानता। यदि गाली से दुःख होता तो सब सुनने वालों को समान रूप से दुःख होता, सब समय होता, सब परिस्थितियों में होता। परन्तु ऐसा नहीं होता। इससे प्रमाणित होता है कि गाली देने की घटना दुःख का कारण नहीं है।

दूसरा उदाहरण लें—मेरे पास पचास हजार रुपये हैं। उन रुपयों को कोई मेरे से छीन ले तो मुझे घोर दुःख होगा। दूसरी अवस्था लें–मैं, किसी बैंक का कर्मचारी हूं, ये रुपये किसी बैंक के हैं जिन्हें मैं, किसी दूसरी शाखा या बैंक में जमा कराने जा रहा हूं और ये रुपये किसी ने छीन लिये तो मुझे पहली अवस्था में रुपये छिनने से जितना दुःख हुआ, दूसरी अवस्था में उतना दुःख नहीं होगा। तीसरी अवस्था में मैंने अपने पचास हजार रुपये देकर मोहन जौहरी से एक नगीना खरीद लिया और मोहन जौहरी से मेरे सामने ही पचास हजार रुपये छीन लिए गए तो रुपये छीनने का अब मुझे दुःख नहीं होगा। यदि रुपये छीनने की घटना से दुःख होने का सम्बन्ध होता तो तीनों अवस्थाओं में घटना तो एक ही घटी रुपये छीने गये, ऐसी दशा में मुझे तीनों अवस्थाओं में समान दुःख होना चाहिये था परन्तु ऐसा नहीं होता। होता यह है कि जिस वस्तु से हमने अपना जितना सम्बन्ध जोड़ रखा है जितना उसे अपना मान रखा है, उतना ही दुःख उसके छिन जाने या वियोग से होता है। यह दुःख घटना के कारण नहीं होता है प्रत्युत घटना की प्रतिक्रिया करने से होता है। यही कारण है कि एक ही घटना को हजारों लाखों लोग प्रतिदिन रेडियो, टेलीविजन, समाचार-पत्र आदि से अथवा प्रत्यक्ष भी जानते-देखते हैं, उसका उन सब पर सुख-दुःख रूप भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ता है, एकसा प्रभाव नहीं पड़ता। यदि घटना परिस्थिति ही दुःख-सुख का कारण होती तो सब समान रूप से सुख-दुःख होता। इससे यह स्पष्ट कि कोई परिस्थिति या घटना सुख–दुःख का कार नहीं है।

हम एक उदाहरण और लें। किसी स्त्री व प्रियतम पति की किसी दुर्घटना से विदेश में मृत्यु ह गई। उस स्त्री को दूसरे दिन मृत्यु का समाचा मिला। समाचार मिलते ही दुःख का वज्रपात हो गया। असह्य दुःख हुआ। यदि यह दुःख उसके पति की मृत्यु की घटना से हुआ तो पति की मृत्यु तो पहले दिन ही दुर्घटना में हो गई थी, अतः उसी समय यही दुःख होना चाहिये था परन्तु मृत्यु के दिन दुःख नहीं हुआ। दुःख हुआ दूसरे दिन जब मृत्यु का समाचार मिला। वह समाचार उस समय सैकड़ों लोगों ने सुना, उन्हें भी वैसा ही दुःख होना चाहिये था परन्तु वैसा नहीं हुआ। पत्नी को जितना दुःख हुआ उतना पुत्र को नहीं हुआ, पुत्र को जितना दुःख हुआ उतना पड़ौसी को नहीं हुआ। पड़ौसी को जितना दुःख हुआ उतना नगर के अन्य नागरिकों को नहीं हुआ। जिन्होंने मृत्यु लेखा पुस्तिका में नामांकन किया उन्हें बिल्कुल ही नहीं हुआ। यही ही नहीं जो पति का दुश्मन था उसे सुख हुआ। इस प्रकार प्रथम तो घटना से दुःख हुआ ही नहीं, कारण घटना से दुःख होता तो घटना घटते ही हो जाता। दुःख हुआ घटना की जानकारी मिलने पर उसकी प्रतिक्रिया करने से। जिसने जैसी और जितनी प्रतिक्रिया की उसे वैसा ही उतना ही दुःख या सुख हुआ।

आइये, न्यायाधीश का उदाहरण लें:–न्यायाधीश का एक ही निर्णय सुनकर एक पक्ष हर्ष-विभोर हो जाता है दूसरा पक्ष दुःख-सागर में डूब जाता है और न्यायालय के कर्मचारियों को न दुःख होता है और न सुख। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि घटना में सुख दुःख नहीं है।

विश्व में प्रतिक्षण असंख्य घटनाएं घट रहीं हैं। सैकड़ों व्यक्तियों की दुर्घटना या रोग से मृत्यु हो रही है। सैकड़ों दुःखी होकर आत्म-हत्या कर रहे हैं। हजारों व्यक्ति समारोह मनाकर हर्ष-विभोर हो रहे हैं। यदि इन सब घटनाओं का सुख-दुःख रूप प्रभाव व्यक्ति पर पड़ने लगे तो व्यक्ति एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। यही नहीं जो व्यक्ति स्वयं घटना के प्रति प्रतिक्रिया कर सुखी-दुःखी होता है उसका वह बड़े से बड़ा सुख व दुःख विस्मृति के गहरे गर्त में समा जाता है। कोई भी सुख-दुःख सदा नहीं रहने वाला है कारण कि उसका अपना अस्तित्व ही नहीं है। वह व्यक्ति की मान्यता, कल्पना या प्रतिक्रिया का परिणाम मात्र है।

यदि किसी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, घटना में सुख-दुःख होता तो उस वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति के रहते निरन्तर मिलता रहता परन्तु कोई सुख-दुःख दो क्षण भी समान नहीं रहता उसमें परिवर्तन होता ही रहता है। उदाहरण के लिए एक विदेशी को लें। जो भारत के ताजमहल की प्रशंसा सुनकर हजारों रुपये व्यय कर ताजमहल देखने आया। उसे ताजमहल देखने से सुख हुआ परन्तु क्षण प्रतिक्षण वह सुख घटता गया और दो-तीन घंटे में तो यह स्थिति हो गई कि उसे ताजमहल देखने में अब कोई सुख नहीं रह गया और वहां से चलने को तैयार हो गया। प्रश्न उपस्थित होता है कि ताजमहल भी वहीं है और दर्शक भी वहीं है फिर सुख कहां चला गया? नियम है कि कारण-कार्य की सामान स्थिति रहते हुए कार्य की निष्पति बराबर बनी ही रहनी चाहिये थी। जैसे जब तक विद्युत की लहर आती रहती है और यन्त्र की स्थिति यथावत् रहती है तब तक उससे चलने वाले यन्त्र रेडियो, टेलीविजन, बल्ब, पंखें, बराबर उसी प्रकार चलते रहते हैं क्योंकि उनमें कारण-कार्य संबंध विद्यमान है। परन्तु सुख-दुःख के विषय में यह बात नहीं है। जिस वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति या घटना को वह अपने सुख-दुःख का हेतु मानता है उनके यथावत् विद्यमान रहने पर भी सुख-दुःख में परिवर्तन चलता ही रहता है इससे यह स्पष्ट है कि वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, अवस्था या घटना आदि सुख-दुःख के कारण नहीं हैं। सुख-दुःख का कारण हमारी स्वयं की अज्ञान जनित मान्यता है।

इसे एक उदाहरण से समझें। जैसे सर्प को कोई व्यक्ति लाठी से मारता है तो सर्प अपने मारने के दुःख का कारण लाठी को मानता है जिससे वह अपने फण का प्रहार लाठी पर करता है, लाठी को काटता है। जबकि वास्तविक कारण लाठी नहीं लाटी चलाने वाला व्यक्ति है। लाठी तो निमित्त कारण है या करण है। जैसे सर्प अपनी मार का कारण लाठी को समझता है तो यह उसकी भूल है। इसी प्रकार दुःख का कारण वस्तु-व्यक्ति-परिस्थिति आदि अन्य को समझना भूल है। ये सब तो निमित्त कारण हैं। मूल कारण तो अपनी अज्ञानजनित राग-द्वेषात्मक प्रतिक्रिया है। यदि हम प्रतिक्रिया न करें, वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति के प्रति उपेक्षा भाव रखें, उदासीनता व समता में रहें, तटस्थ व दृष्टा रहें तो कोई वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति आदि जो अपने से भिन्न है-पर है, अन्य है, वह लेशमात्र भी हमें दुःख-सुख नहीं दे सकती। प्राणी दुःखी-सुखी स्वयं अपनी राग-द्वेष रूप की गई प्रतिक्रिया से होते हैं। अतः दुःख-सुख का का कारण अन्य को मानना भ्रान्ति है। इस भ्रांति के फलस्वरूप दुःख के मूल पर प्रहार नहीं होता। प्राणी फल रूप दुःख को दूर करने का प्रयत्न करता है दुःख के मूल को नहीं। उसका कार्य वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति कांटों से बचने के लिए बबूल के कांटे तोड़ता रहे परन्तु वह व्यक्ति बबूल के मूल (जड़) को न उखाड़े। बबूल की जड़ को न उखाड़ने से वह व्यक्ति बबूल के पहले के कांटे दूर करता जायेगा और नये कांटे आते जायेंगे। कांटों से छुटकारा कभी नहीं होगा। इसी प्रकार दुःख की मूल अपनी भूल को दूर न कर विद्य-

मान दुःख को दूर करते रहने से नये दुःख बराबर आते रहेंगे और दुःख से छुटकारा कभी भी नहीं होगा। यही कारण है कि सब प्राणी अपना दुःख दूर करने का अनन्त काल से प्रयत्न कर रहे हैं परन्तु दुःख आज भी ज्यों का त्यों है। दुःख में कमी न आई और न अंत हुआ। और इस भूल के रहते भविष्य में अनन्तकाल तक कभी भी दुःख दूर नहीं होने वाला है।

**दुःख का कारण : दोष**

प्रश्न उपस्थित होता है कि जब हमें स्पष्ट दिखाई देता है कि धन की प्राप्ति से सुख और धन की हानि से दुःख, व्यक्ति के संयोग से सुख और वियोग से दुःख; अपने सम्मान से सुख और अपमान से दुःख होता है तो अन्य से सुख दुःख होता ही है, इसे सत्य क्यों न मानें ?

उत्तर में कहना होगा कि जो हमें अन्य से सुख-दुःख की प्रतीति होती है, वह किसी न किसी दोष की देन है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति को नशे की लत का दोषन हो तो शराब पीने को मिलने पर सुख और न मिलने पर दुःख नहीं होगा। जिनमें नशा करने का दोष नहीं है उन्हें शराब की प्राप्ति अप्राप्ति से सुख-दुःख नहीं होता। इसी प्रकार जिसके जीवन में लोभ का दोष होगा, उसे ही धन के लाभ में सुख और हानि में दुःख का भास होगा। जिन साधु-सन्यासियों ने लोभ के दोष को त्याग दिया, उन्हें धन की प्राप्ति-अप्राप्ति में सुख-दुःख का भास नहीं होता। इसी प्रकार मोह का दोष होने से संयोग सुख का और वियोग दुःख का कारण प्रतीत होता है। जिसको जिस व्यक्ति के प्रति मोह नहीं होगा, उसे उस व्यक्ति के संयोग से सुख नहीं होगा और वियोग से दुःख नहीं होगा। अतः संयोग वियोग जनित सुख-दुःख का कारण व्यक्ति नहीं, मोह रूप दोष है। ऐसे सम्मान-अपमान से होने वाले सुख-दुःख का कारण आदर, अनादर नहीं है प्रत्युत अपने व्यक्तित्व का मोह एवं अहंभाव का दोष है। इसी प्रकार अन्य कोई सुख-दुःख ऐसा नहीं है जिसका कारण कोई न कोई दोष न हो।

अभिप्राय यह है कि हमें जो भी सुख-दुःख होता है वह किसी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति आदि अन्य के कारण नहीं होता है, बल्कि अपने ही किसी न किसी प्रकार के दोष के कारण होता है। और कोई भी दोष किसी दूसरे की देन नहीं है अपितु हमारी ही भूल का परिणाम है। जब भूल हमारे ही द्वारा उत्पन्न हुई है तो उसे मिटाने का दायित्व भी हमारा ही है। भूल न किसी अन्य ने पैदा की है और न कोई अन्य हमारी भूल को मिटा सकता है। हमें अपने ही विवेक का आदर कर अपनी भूल को मिटाना है। भूल के मिटने से दोष जिट जायेंगे। दोष मिट जाने से दोष जनित सुख-दुःख मिट जायेंगे। सुख-दुःख मिट जाने से देहातीत, लोकातीत, अनंत, अविनाशी, ध्रुव जीवन में प्रवेश हो जायेगा। इसी की उपलब्धि के लिए यह अमूल्य मानव जीवन मिला हैं। ऐसे अमूल्य जीवन को सुख-दुःख के भोग में बिताना अपनी सबसे बड़ी हानि है, अपना सर्वस्व खोना है। इस हानि से बचना मानव मात्र का कर्त्तव्य व दायित्व है। इसी में जीवन की सार्थकता व सफलता है।

प्राणी द्वारा दोप करना और उसके फलस्वरूप दुःखी होना, यही प्राणी का अपने प्रति अपना अमित्र होना हैं और दोष का त्याग करना, फलस्वरूप प्रसन्न होना प्राणी का अपने प्रति अपना मित्र होना हैं।

**सुख-दुःख का कारण—**

जो प्राणी अपने दुःख का कारण दूसरे को मानता है वहीं दूसरों से अर्थात् वस्तु, व्यक्ति, परि-स्थिति, अवस्था से सुख पाने की आशा करता है।

१. **वस्तु नहीं** :—किसी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति एवं अवस्था से सुख की आशा करना भयंकर भूल है। कारण कि जिन वस्तुओं से हम सुख की आशा करते हैं क्या उनसे हमारा नित्य संबंध है ? जिन व्यक्तियों

से सुख की आशा करते हैं क्या वे स्वयं दु;खी नहीं हैं ? जिन परिस्थितियों से हम सुख की आशा करते हैं क्या उनमें किसी प्रकार का अभाव नहीं है जिस अवस्था में सुख का भास होता है, क्या उसमें परिवर्तन नहीं है ? तो कहना होगा कि किसी भी वस्तु से नित्य संबंध संभव नहीं है । कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं हैं जिसके जीवन में दु:ख न हो । कोई भी परिस्थिति ऐसी नहीं है जो अभाव रहित हो और प्रत्येक अवस्था परिवर्तनशील है । जिससे नित्य संबंध नहीं है, जो स्वयं दु;ख से पीड़ित हैं, जो अभावयुक्त है, उससे सुख की आशा करना भूल हैं । यह भूल किसी की देन नहीं है अपितु स्वयं की ही देन है अपना ही बनाया हुआ दोष है । इस दोष से ही प्राणी दु:खी हो रहा है ।

वस्तुओं से सुख मिलता है इस भूल पूर्ण मान्यता का परिणाम यह होता हैं कि जो वस्तुएं अनित्य हैं उनमें नित्यता, सत्यता एवं सुन्दरता प्रतीत होने लगती हैं जिससे प्राणी उन वस्तुओं की दासता में जकड़ जाता है । वस्तुओं की दासता प्राणी में लोभ या संग्रह वृत्ति उत्पन्न कर देती है । लोभ या संग्रह वृत्ति अभाव की द्योतक है और अभाव दरिद्रता का द्योतक है । अत: लोभ ही दरिद्रता का मूल है । यही ही नहीं जड़ वस्तुओं के लोभ से उनमें अपनापन का भाव होने से उन जड़-वस्तुओं से जुड़ने से जड़ता बढ़ती जाती है जिससे चिन्मयता, चेतनता तिरोहित होती जाती है, जो बहुत बड़ी हानि है ।

**(२) व्यक्ति नहीं**—व्यक्तियों से सुख की आशा करने का परिणाम यह होता है कि प्राणी संयोग की दासता और वियोग के भय से ग्रस्त हो जाता है । यद्यपि संयोग मात्र निरंतर वियोग में बदल रहा है परन्तु सुख की आशा संयोग काल में वियोग का दर्शन या बोध नहीं होने देती जिससे प्राणी मोह में आवद्ध होकर अपने अविनाशी स्वरूप से विमुख हो जाता है । यह ही नहीं जिन व्यक्तियों से प्राणी सुख की आशा करता है, वे व्यक्ति भी स्वयं उससे सुख की आशा करने लगते हैं । इस प्रकार दो दु:खी व्यक्ति सुख की आशा से परस्पर मोह में आवद्ध हो जाते हैं । यह नियम है कि जहां मोह है वहां मूर्च्छा है, जहां मूर्च्छा, वहां जड़ता है और जहां जितनी मूर्च्छा (वेहोशी), जड़ता है व उतनी ही चेतनता की कमी है ।

**(३) परिस्थिति नहीं**—विश्व में कोई परिस्थिति ऐसी नहीं है जो परिपूर्ण हो, जिसमें कि भी प्रकार का अभाव न हो । किसी न किसी प्रक का अभाव प्रत्येक परिस्थिति में रहता ही है । अ परिस्थिति स्वभावत: ही अपूर्ण होती है जो अ है उसे सुखद स्वीकार करना अपूर्णता में आ होना है, जिसके परिणाम स्वरूप प्राणी परिस्थिति से अतीत जो अपना वास्तविक पूर्ण जीवन है उ विमुख हो जाता है ।

**(४) अवस्था नहीं**—प्रत्येक अवस्था सी तथा परिवर्तन-शील है । अत: अवस्था में आ प्राणी अपने असीम-अनंत स्वभाव से विमुख हो ज है ।

इस प्रकार वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, अव में अर्थात् अपने से भिन्न—अन्य या पर से सुख आशा करने में अथवा सुख में आवद्ध होने से अथ उनमें जीवन है ऐसा मानने से, अथवा उन उपलब्धि के आधार पर अपना मूल्यांकन करने महत्त्व आंकने से प्राणी अपनी वास्तविकता से हो जाता है । वास्तविकता से हट जाना ही दु:ख का कारण है ।

**(५) सुख—दु:ख अन्य से न मानने से प्रा लब्धियां**—अपने सुख-दु:ख का कारण अन्य को मा से होने वाली हानियां और न मानने से होने वा लब्धियां इस प्रकार हैं—

अपने दुःख का कारण अन्य को न मानकर अपने को मानने से सजगता आती है और दुःख का निवारण करने में हम समर्थ और स्वाधीन हैं, यह भावना व उत्साह जागृत होता है, जिससे-प्रमाद मिटकर दुःख से मुक्ति पाने का पुरुषार्थ-पराक्रम प्रबल होता है।

जब व्यक्ति अपने दुःख का कारण किसी और को नहीं मानता है तब उसके जीवन में से द्वेष की आग सदा के लिए बुझ जाती है। जिसके बुझने से हृदय में प्रेम का सागर हिलोरें लेने लगता है और वैर-भाव का नाश हो जाता है जिससे निर्भयता समता, मृदुता, मुदिता आदि दिव्य गुणों की अभिव्यक्ति स्वतः होती है, दिव्य जीवन का अवतरण होता है।

समस्त सृष्टि सुख-दुःख का समूह है। इसी कारण कोई भी प्राणी यहाँ दुःख से रहित नहीं है। फिर भी सुख-दुःख दोनों ही आने-जाने वाले हैं, अनित्य है, अतः जीवन नहीं है। इसलिए मानव को सुख-दुःख से अतीत के जीवन की अनुभूति के लिए पुरुषार्थ करना चाहिये।

जो अपने आए हुए दुःख का कारण दूसरों को मान लेता है, उसका ध्यान दुःख के मूल हेतु की खोज की ओर नहीं जाता तथा सदा क्षुभित व खिन्न रहता है एवं दुःख से मुक्ति पाने में अपने को असमर्थ मान लेता है जिससे वास्तविक जीवन की विस्मृति हो जाती है जो सर्वस्व विनाश का हेतु है। जब मानव अपने दुःख का कारण किसी अन्य को नहीं मानता तो उसे दुःख के भूल का बोध हो जाता है जिससे दुःख दूर करने की सामर्थ्य स्वतः आ जाती है जो विकास का मूल है।

परिस्थिति की उपस्थिति कर्मों का फल है। परिस्थिति से सुखी-दुःखी होना या न होना यह मनुष्य के विवेक, अविवेक या भावों पर निर्भर करता है। अतः विवेकशील भयंकर से भयंकर परिस्थिति में भी अपने को दुःखी नहीं करता है अपितु उसे अपनी उन्नति का साधन बना लेता है एवं सब परिस्थितियों को परिवर्तनशील, अनित्य, अन्य, अपूर्ण व अभावमय समझकर परिस्थितियों से अपने को असंग कर परिस्थिति, संसार और शरीर से अतीत अनंत आनंद का अनुभव करता है।

दुःख-सुख का कारण अन्य को मान लेने का परिणाम यह होता है कि हम अनुकूल परिस्थितियों की प्राप्ति के लिए अनवरत प्रयत्न करते रहते हैं और जो परिस्थिति हमें प्राप्त है उसका सदुपयोग नहीं करते। इससे वस्तु, व्यक्ति आदि के हम दास हो जाते हैं फलतः अनुकूल व सुखद वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति के प्रतिराग और प्रतिकूल वस्तु व्यक्ति, परिस्थिति के प्रति द्वेष करने लग जाते हैं। राग-द्वेष ग्रस्त व्यक्ति किसी के भी संबंध में सही निर्णय नहीं कर सकता। कारण कि जिसके प्रति राग हो जाता है उसका दोष नहीं दिखाई देता और जिसके प्रति द्वेष होता है उसका गुण नहीं दिखाई देता। जब गुण-दोष का सही बोध नहीं होता तो निर्णय सही नहीं हो सकता। अतः हमें किसी के विषय में सही निर्णय करना है तो अपने को रागद्वेष रहित करना होगा, तटस्थ बनना होगा। रागद्वेष रहित होने के लिए यह अनिवार्य है कि हमें अपने सुख-दुःख का कारण किसी दूसरे को नहीं मानना होगा।

**दोष का कारण—विषयेच्छा, भोगेच्छा—**

पहले कहा गया है कि दुःख का कारण दोष है तो प्रश्न उपस्थित होता है कि व्यक्ति या प्राणी दोष करता ही क्यों है? तो कहना होगा कि सुखाभास को सुख मानने की भूल से। आभास उसे कहा जाता है कि जिसकी प्रतीति तो हो परन्तु प्राप्ति नहीं हो जैसे ग्रीष्मऋतु में रेगिस्तान में दिखाई देने वाली मृग मरीचिका में जल की प्रतीति तो होती है परन्तु जल की प्राप्ति नहीं होती। इसी प्रकार पदार्थों के भोग से सुख मिलता तो प्रतीत होता है परन्तु

वास्तव में भोग में सुख है नहीं। यदि भोग में सुख होता तो वह प्राप्त होता और उसका संचय होता रहता और अब तक बहुत संचित हो जाता। परन्तु हम सब का अनुभव है कि सुख प्रतीत होता हुआ सुख का एक क्षण भी नहीं रहता है दूसरे क्षण ही उस सुख में कमी हो जाती है और यह कमी प्रतिक्षण बढ़ती जाती है और अंत में वह सुख की प्रतीति भी क्षीण होकर लुप्त हो जाती है। यदि वस्तु या वस्तु के भोग से मिलने वाला सुख वास्तविक होता तो उस वस्तु के रहते हुए उस वस्तु से संबंधित सभी व्यक्तियों को सुख मिलता और सदा मिलता। परन्तु हम सबका अनुभव है कि ऐसा होता नहीं है, होता इसके विपरीत ही है। पूर्वोक्त ताजमहल देखने के सुख का उदाहरण ही लें। ताजमहल के पहरेदार चौकीदार व्यक्ति को ताजमहल देखने से किंचित भी सुख नहीं मिलता फिर सदा सुख मिलने की तो बात ही नहीं उठती। कामी पुरुष को जो स्त्री सौंदर्य की मूर्ति दिखाई देती है वही स्त्री उसकी शत्रु स्त्री को चुड़ैल दिखाई देती है।

इस संबंध में एक तथ्य यह भी है कि विषय-भोग से जो सुख मिलता प्रतीत होता है, वह सुख भी भोग से नहीं मिलता हैं अपितु कामना रहित होने से मिलता है। होता यह है कि इन्द्रिय ज्ञान के आधार पर जब प्राणी किसी वस्तु की प्राप्ति में सुख पाने की कल्पना करता है तो उसमें उस वस्तु के पाने की इच्छा या कामना उत्पन्न होती है। कामना उत्पन्न होते ही कामना की पूर्ति नहीं हो जाती है, कामना पूर्ति के लिए जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न व परिश्रम करना पड़ता है जिसके लिए समय अपेक्षित है। अत: कामना की पूर्ति हतु वस्तु, श्रम व समय की अपेक्षा होती है। जितने समय तक कामना की पूर्ति नहीं होती तब तक अभाव रूप कामना अपूर्ति का दु:ख भोगना पड़ता है। वस्तुत: वह दु:ख भोग्य वस्तु के न मिलने से नहीं हुआ। क्योंकि वस्तु के न मिलने से दु:ख होता तो वस्तु तो कामना उत्पत्ति से पूर्व भी नहीं थी अर्थात् वस्तु का अभाव था। परन्तु जब तक कामना की उत्पत्ति नहीं हुई तब तक न तो वस्तु के अभाव का अनुभव हुआ और न अभाव-जन्य दु:ख हुआ। आज हम में से प्रत्येक के पास विश्व की अगणित वस्तुओं में से कुछ गिनती की ही वस्तुएं हैं, शेष असंख्य वस्तुएं नहीं हैं फिर भी हमें उनके अभाव से दु:ख नहीं होता। अभाव-जन्य दु:ख तब होता है जब वस्तु से सुख पाने की कामना उत्पन्न हो। इससे यह परिणाम निकलता है कि दु:ख वस्तु अभाव में नहीं है कामना की उत्पति में है।

वस्तुत: दु:ख वस्तु के अभाव से नहीं होता अपितु अभाव के अनुभव से होता है। अभाव का अनुभव होता है कामना उत्पति से। कामना उत्पत्ति होती है सुख पाने की इच्छा से। सुख पाने की इच्छा होती है सुखाभास को सुख मानने से। सुखाभास को सुख मानना भूल है, भ्रान्ति है जो अपने ही ज्ञान के अनादर या अविवेक का फल है। ज्ञान का अनादर या अविवेक हैं जो सुख रहता ही नहीं है अर्थात् जिसका अस्तित्व ही नहीं है उसका अस्तित्व स्वीकार करना, यही अज्ञान है। अज्ञान का अर्थ ज्ञान रहित होना नहीं है प्रत्युत जो 'नहीं है', उसे 'है' मानना है अथवा इन्द्रिय–जन्य अल्पज्ञान या अधूरे ज्ञान को ही सत्य मान लेना और बुद्धि ज्ञान रूप विवेक और निजज्ञान (जो स्वभाविक व सनातन है) रूप प्रज्ञा का अनादर करना है।

आशय यह है कि ज्ञान के अनादर या अज्ञान से कामना की उत्पति होती है। कामना-उत्पन्न होने पर उस कामना की पूर्ति करने के लिए श्रम अपेक्षित है। श्रम के लिए समय अपेक्षित है। तात्पर्य यह है कि कामना उत्पन्न होते ही कामना की पूर्ति नहीं हो जाती, उसकी पूर्ति के लिए शक्ति व श्रम और श्रम के लिए समय अपेक्षित है। अत: जितने समय तक कामना पूर्ति नहीं होती उतने समय तक कामना अपूर्ति की अवस्था रहती है।

कामना अपूर्ति की अवस्था में वस्तु के अभाव का अनुभव होता है । अभाव का अनुभव होना दु:ख है । अतः कामना अपूर्ति की अवस्था में अभाव के अनुभव का दु:ख भोगना ही पड़ता है । जब कामना पूर्ति हो जाती तो यह दु:ख मिट जाता है । दु:ख के मिट जाने से सुख का अनुभव होता है ।

कामना पूर्ति की अवस्था है कामना का न रहना अर्थात् कामना का अभाव । अतः यह सुख कामना के अभाव से होता है । कारण कि कामना के न रहने से कामना अपूर्ति का दु:ख मिट जाता है जिससे यह सुख मिलता है न कि कामना पूर्ति की अवस्था में मिली वस्तु की उपलब्धि से । क्योंकि यह देखा जाता है कि भले ही वस्तु मिले या न मिले विवेक से या अन्य किसी कारण से कामना का त्याग कर दिया जाय तो कामना अपूर्ति का दु:ख मिटकर शांति के सुख का अनुभव होने लगता है । अतः सुख कामना पूर्ति के समय प्राप्त वस्तु, परिस्थिति आदि में नहीं अपितु कामना के अभाव में है परन्तु प्राणी की भूल यह होती है कि जो सुख कामना के न रहने से, अभाव से होता है उसे कामना पूर्ति से मिली वस्तु से मान लेता है इस मान्यता से अपने सुख–दु:ख का कारण वह वस्तु या अन्य को मान लेता है फलतः वह सुख पाने के लिए बार-बार नवीन कामनाएं करता रहता है और कामना अपूर्ति का व श्रम जन्य थकान का दु:ख भोगता रहता है । यदि किसी प्रकार अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति हो गई और उससे कामना पूर्ति हो गई तब भी उससे जो सुख मिलता प्रतीत होता है वह प्रतीयमान सुख भी रहता ही नहीं क्योंकि वस्तु में सुख होता ही नहीं । अतः वस्तु या अन्य से सुख की उपलब्धि मानना भूल है ।

यदि वस्तु में सुख होता तो प्रथम बात तो यह होती कि जिसके पास वस्तुओं का जितना अधिक संग्रह है उसे उतना ही अधिक सुख मिलता और बालक, सन्यासी और गरीब व्यक्ति को सुख नहीं मिलता परन्तु ऐसा देखा नहीं जाता । देखा यह जाता है कि दु:ख या अशांति से छुटकारा पाने के लिए नींद की गोलियां अधिक संग्रही व्यक्ति को ही लेनी पड़ती हैं । दूसरी बात यह है कि प्राप्त वस्तु प्राप्तकर्त्ता से अभिन्न नहीं हो पाती । वस्तु और इसके प्राप्तकर्त्ता में दूरी सदैव बनी ही रहती है और उससे सुख जैसी कोई शक्ति (Power) निकल कर आती नहीं है । तीसरी बात उस वस्तु के न होने पर भी असंख्य व्यक्ति सुखी दिखाई देते हैं । चौथी बात जब तक हममें कामना की उत्पत्ति नहीं हुई थी तब तक हम भी उस वस्तु के न होने से दु:खी नहीं थे । अतः इससे यह फलित होता है कि वस्तु की प्राप्ति के साथ सुख की प्राप्ति का कोई भी संबंध नहीं है ।

यहां यह जिज्ञासा होती है कि 'दु:ख' पाना कोई भी नहीं चाहता फिर दु:ख का कर्ता अपने को कैसे मान जाय ? तो कहना होगा कि 'दु:ख' का कोई स्वयं अस्तित्व नहीं है । दु:ख की प्रतीति होती है सुख पाने की इच्छा की अपूर्ति से । अतः दु:ख वही पाता है जो सुख का भोगी है । वस्तुतः दु:ख का कारण है सुख का भोग, सुख की दासता । सुख की दासता अन्य किसी की देन नहीं है स्वयं अपनी ही उपज है यह नियम है कि यदि जिसे अनुकूलता में सुख की प्रतीति होती है उसे ही प्रतिकूलता में दु:ख होता है । दु:ख का कारण प्राणी की स्वयं की सुख-भोग की इच्छा है । अतः दु:ख से मुक्ति पाने का उपाय है सुख-भोग का त्याग । सुख-भोग का त्याग करने पर व्यक्ति का दु:ख-सुख से अतीत के जगत में सदा के लिए प्रवेश हो जाता है जहां अक्षय अव्या-बाध, अनंत रस का सागर सदैव लहराता है । परन्तु इस रहस्य को वे ही जानते हैं जिन्होंने विनाशी सुख (सुखाभास) का सर्वथा त्याग कर दिया है । उन्हीं का जीवन धन्य है । —जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान,

ए-९, बजाज नगर, जयपुर

Dr. Kamal Chand Sogani

# Ahinsa, Karuna and Seva

Seva is Interested in the wellbeing of the 'Other', to work for the animal and human welfare, and to devote oneself to cultural renaissance are some of the dimensions of seva, Thus Ahinsa. Karuna and Seva are interrelated and are conducive both to Individual and social progress.

Ahinsa is primarily a social value. It begins with the awareness of the 'other'. Like one's own existence, it recognises the existence of other beings. In fact, to negate the existence of other beings is tantamount to negating one's own existence. Since one's own existence can not be negated, the existence of other beings also can not be negated. The Acarang a rightly remarks, that one should not falsify the existence of other beings. He who falsifies the existence of other beings falsifies his own existence. Thus there exists the Universe of beings in general and that of human beings in particular, The basic chaıacterisations of these beings are.life is dear to all and any kind of suffering is painful to all of them,

Now for the progress and development of these beings, Ahinsa ought to be the basic value guiding the behaviour of human beings. For a healthy living, it repr-esents and includes all the values directed to the 'otheı" wihtout overemphasizing the values directed to one's own self. Thus it is the pervasive principale of all the values. Posit Ahinsa, all the values are posited. Negate Ahinsa all the values are negated. Ahinsa purfies our action in relation to the self and other beings. This purification consists in our refraining from certain action and also in our performing certain acti-ons by keeping in view the existence of human and sub-human beings. The Acaranga, the oldest text of Jainism, advise us, on the one hand, to refrain from killing, gover-ning, enslaving, tormenting and provoking human and sub-human beings, while, on the other, it inspires us to promote mental equanimity, social and economic justice.

There is no denying the fact that we are living in an age of science and technology. The impact of technological advancement on human behaviour is so great that the rate of value change has grown very high. Prior to scientific progress, values

changed veiy slowly. At present, we are confronted not merely with the question, "what will future generations value?", but also with the more pressing question, "what will we ourselves, value a decade or two from now?" Again, the question is, "which of the values, which fulfill the criterion of Ahimsa, are to be nourished?" In fact, values will be values only when they possess an element af Ahimsa in them, The values of friendship, chastity, honesty, truthfulness, forgiveness and the like are the expressions of Ahimsa in different ways.

It is of capital importance to note that Ahimsa can be both an extrinsic value, i. e. both value as a means and value as an end. This means that both the means and the ends are to be tested by the criterion of Ahimsa. Thus the principle that "the end justifies the means" need not be rejected as immoral, if the means and ends are judged through the criterion of Ahimsa. In fact, there is no inconsistency in saying that Ahimsa is both an end and a means.

It may be asked, what is in us on account of which we consciously lead a life of values based on Ahimsa ? The answer is; it is Karuna which makes one move in the direction of adopting Ahimsa-values. It may be noted that the degree of Karuna in a person is directly proportionate to the development of sensibility in him. The greatness of a person lies in the expression of sensibility beyond ordinary limits. This should be borne in mind that the emotional life of a person plays a decisive role in the development of healthy personality and Karuna is at the core of healthy emotions. Attachment and aversion bind the human personality to mund-ane existence, but Karuna liberates the individual from Karmic enslavement. The Dhavala, the celebrated commentary on the Satkhand – agama remarkably pronounces that Karuna is the nature of soul. To make it clear, just as infinite know–ledge is the nature of soul, so also is Karuna. This implies that Karuna is potentially present in every being although its full manifestation takes place in the life of the Arhat, the perfect being. Infinite Karuna goes with infiinite knowledge. Fine Karuna goes with fiinite knowledge.

Thus if Karuna which is operative on the perception of the sufferings of the human and subhuman beings plunges in to action in order to remove the sufferings of these beings, we regard that action as Seva. Truely speaking, all Ahimsa values are meant for the removal of varied sufferings in which the human and sub-human beings are involved. Sufferings may be phyiscal and mental, Individual and social, moral and spiritual. To alleviate, nay, to uproot these diverse sufferings is Seva. In fact, the performance of Seva is the veri-

fication of our holding Ahimsa-values. It is understandable that physical, mental and economic sufferings block all types of progress of the individual and make his life miserable. These may be called first-order human sufferings. There are individuals who are deeply moved by these sufferings and consequently they dedicate them selves to putting an end to these sufferings. Thus their Karuna results in Seva. It is not idle to point out that Karuna is an emotion and Seva is in action. This emotion and the resulting action make the individual free from earthly attachments, ignoble desires and selfish expectations. Thus Seva becomes Self-purifying and consequently it serves as an internal austerity (Antaranga Tapa).

The second-order human sufferings is ignorance. Human beings may be ignorant of the moral and spiritual values of life. This makes them forgetful of the basic purpose of life. With the increase in the capacity of rational understanding and Intuitive perception, Karuna issues in cultural action of propagating knowledge and persuading people to adopt a moral and spiritual way of life. This type of Seva is one of the most difficult tasks. Hence it is pursued by the enlightened human beings.

To sum up, Seva is interested in the well-being of the 'other'. To work for the animal and human welfare, and to devote oneself to cultural renaissance are some of the dimensions of Seva. Thus Ahimsa, Karuna and Seva are interrelated and are conducive both to Individual and social progress.

—Profesor of Philosophy
Sukhadia University Udaipur (Rajasthan)

□ प्रो. कल्याणमल लोढ़ा

# जैन साहित्य और साधना में ओम् : एक संक्षिप्त विवेचन

△

जैन चिन्तन में ओम् और अर्हम् को लेकर अनेक जिज्ञासु प्रश्न उठाते हैं कि ओम् के स्थान पर अर्हम् को महत्व देने का कारण क्या है ? वस्तुतः जैन साधना पद्धति में दोनों का अपना महत्व है। ओम् की साधना प्राण शक्ति की और पंच परमेष्ठी की साधना है, नमस्कार मंत्र की पर-प्राण-शक्ति की साधना में अर्हम् का वहुत बड़ा महत्व है। ओम् का जप वैखरी, मध्यमा और पश्यन्ती तीनों में समान रूप से हो सकता है—इसे ही हम संजल्प, अन्तर जल्प और ज्ञानात्मक भूमियां कह सकते हैं।

भारतीय धर्म साधना, दर्शन और अध्यात्म का सर्वाधिक गूढ़ प्रतीक और महत्वपूर्ण शब्द यदि उसे शब्द कहें तो : प्रणव या ओम् है। यही अखिल ब्रह्माण्ड और पिण्ड की सूक्ष्मतम दिव्य ध्वनि है—इसी को तन्त्र और योग शास्त्र में 'दिव्य नाद'-या 'परानाद' कहा जाता है। भारतीय चिन्तकों और योगियों ने इसे पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी से अग्राह्य वताया है। यही समस्त अभिव्यक्ति का मूल है और उसके सभी रूप इसी से विकसित है। वैदिक साहित्य से लेकर अद्यावधि भारत क समस्त धर्मों में जैन, वौद्ध, सिख एवं मंत्र, तत्र, योग साधना में इसको सर्व्रोपरि महत्व दिया गया है। भारतीय चिंता धारा में ही क्यों, विश्व के सभी धर्मों ने किसी न किसी रूप में ओम् की महत्ता को सर्वोपरि गिना है। इस्लाम में इसको 'आमीन' और ईसाई धर्म में 'आमेन्' कहा गया है। लगभग सभी प्रार्थनाओं के अन्त में ईसामसीह का अभिवादन आमेन् शब्द के प्रयोग द्वारा ही होता है। सन्त जान ने कहा—'यही प्रथम शब्द' है। अनेक तत्वज्ञों की राय है कि ओम् का ऊपर का भाग जो अर्ध चन्द्राकार है, यही इस्लाम में चांद के आधे भाग के रूप में मान्यता प्राप्त कर स्वीकृत हुआ। वौद्ध धर्म में 'ॐ मणि पद्मे हुम्' ही प्रधान मन्त्र है और इसके द्वारा वौद्ध धर्म ओंकार को सर्वोपरि मान्यता देता है। सिख 'एक ओंकार सद्गुरु प्रसाद'—का सस्वर वाचन कर ओंकार की गरिमा और महिमा स्वीकार करते हैं। इस प्रकार विश्व के प्रायः सभी धर्मों में ओंकार या ओम् की महत्ता और गणना सर्वसाध्य मन्त्र के रूप में की जाती है और उसे निखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त सूक्ष्मतम नाद कहा जाता है।

हिन्दू धर्म और अध्यात्म जगत में तो ओंकार या प्रणव को मन्त्रराज गिना ही जाता है। प्रणव ओंकार का ही पर्याय है। कहा गया है 'मंत्रणां प्रणव सेतुः'। प्रणव को ओंकार ॐ: कहने का कारण भी विशिष्ट है। अथर्वशिर के अनुसार अरसादुच्यते प्रणवः यस्मादुच्चार्य माण एवं पृचो यजूंषि सामान्यर्वांडिग रसश्चयज्ञ ब्रह्म ब्राह्मणोभ्य प्रणवति तस्मादुच्यते प्रणवः। यन्त्रों के लिए यह सेतु रूप है। इसी से सभी मन्त्र प्रणव से ही प्रारम्भ होते हैं।

ऐतरीय आरण्यक के अनुसार 'ओंकारों वे सर्वावाक् है और गीता में भी यही भाव है। महर्षि पातंजलि ने तो इसे ब्रह्म का वाचक ही कहा है—'तस्य वाचव प्रणव: ।' गायत्री महामन्त्र में प्रथम प्रणव ही है। श्री कृष्ण ने गीता में—

**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन ।**
**यः प्रयाति त्यजन् देह स याति परमागतिम् ।।**

अर्थात् जो प्रणव या ओंकार इस एक अक्षर रूपी ब्रह्म का ध्यान करता हुआ पार्थिव शरीर छोड़ता है, वह अवश्य ही परम गति प्राप्त करता है। मनु के अनुसार—'क्षरन्ति सर्वा वैदिक्यो जुहोति यजति क्रिया ।'

**अक्षरमक्षयं ज्ञेयं ब्रह्म च एव प्रजापतिः**

उपनिषदों में तो सर्वत्र प्रणव की महिमा स्वीकार की गई है। उपनिषदों में प्रणव की विविध रूपेण व्याख्या की गई है। कठोपनिषद, मांडूक्य उपनिषद, मुण्डकोपनिषद, प्रश्नोपनिषद, छांदोग्य से लेकर ध्यान बिन्दूपनिषद, नाद बिन्दूपनिषद आदि इसके प्रमाण हैं। संक्षेप में पुण्यराज के कथनानुसार प्रणव 'सर्ववाद विरोधिनी' है और इसी के गर्भ में सभी दर्शन शास्त्र और अध्यातम तत्व उदित और समाहित होते हैं। इसी प्रकार साधकों और योगियों की परमानुभूति, जो अनाहत, अगम्य अगोचर, अनभिव्यक्त और अवर्णनीय है—प्रणव उसी का प्रतीक है। मुनित्व की व्याख्या ही ओंकार से सम्बन्धित है—

**'ओंकारो विदितो येन स मुनिर्नेतेरोजनः'**

इस प्रकार ओंकार परम सत्य का, विराट् की परम चेतना का, पर ब्रह्म की सत्ता का, योग की चरम, निष्फल या निर्विकल्प स्थिति का समर्थ और सर्वमान्य प्रतीक है। तन्त्र शास्त्रमें प्रणव चादितो दत्त्वा स्तोत्रं व संहित पठेत्—

**अन्ते च प्रणवं दद्यादित्युवाचादि पुरुष : (वाराही तंत्र) ओंकार का ही तांत्रिक रूप 'हूं' बीज है।**

संक्षेप पें भारतीय साधना राज्य में प्रणव [illegible] ओकार का विशिष्टतम महत्व है। इसके विभिन्न [illegible], इसका तात्पर्य, इसके अवयवों की व्याख्या सभी अत्यन्त गूढ़ है। इन सबका विवेचन किसी एक लघु निबन्ध में सम्भव नहीं। योगियों ने मानव शरीर में [illegible] ओंकार के रूप और उसकी स्थिति का विशद वर्णन किया है।

जैन धर्म में भी ओंकार का महत्व सर्वमान्य और सर्वस्वीकृत है। एक आचार्य के अनुसार-

**ओमित्येकाक्षर ब्रह्म वाचकं परमेष्ठिन् ।**
**सिद्ध चक्रस्य सद् बीज सर्वदा प्रणमाम्यहम् ॥**

एक अक्षर रूप 'ॐ' यंत्र अनीश्वर ब्रह्म है। यही पंच परमेष्ठी का वाचक हैं। यन्त्र क्षेत्र [illegible] समस्त यन्त्रों में शीर्ष मणि सिद्ध चक्र यन्त्र का बीज मन्त्र है—एतदर्थ मैं इसे प्रणाम करता हूं। श्रीहेमचन्द्र आचार्य ने प्रणव को ओंकार का ही पर्याय गिना है- 'ओंकार प्रणवो समो' जैन साहित्य की एक गाथा के अनुसार—

**अरिहंता असरीरा आयरियउवज्झाय मुणिणों**
**पंच खर निष्वरणो ओंकारो पंच परमिठो**
(वृहद द्रव्य संग्रहः)

अरिहन्त, अशरीरी : सिद्ध : आचार्य, उपाध्याय और मुनि इन पांचों अक्षरों से निष्पन्न ओंकार परमेष्ठी का ही रूप—प्रतीक है। इसकी निष्पति महापुरुषों के आद्य अक्षर इस प्रकार हैं—

**अरिहंत का प्रतीक-परिचायक—अ**
**सिद्ध का प्रतीक परिचायक—अ**
**आचार्य का प्रतीक परिचायक—आ**
**उपाध्याय का प्रतीक परिचायक—उ**
**मुनि का प्रतीक परिचायक—म**

जैन गाथाओं में इसकी व्याख्या इस प्रकार है अ+अ=आ+आ=आ आ+उ=ओ—और मु म मिलकर ओम् बनता है। एक और प्राचीन गाथा है—'प्रणव हरिया रिहा इअमंतई दीआणि सप्प

वाणी सव्वेसि तेसि मूलो इक्का नवकार वर मन्तो।' प्रणव माया और अर्हं आदि प्रभावी मन्त्र हैं, पर इन सबका मूल 'नमस्कार मन्त्र' ही हैं।

एक जैनाचार्य का कथन है—

**ओंकारं विन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।**
**कामदं, मोक्षदं चएव ओंकाराय नमोनमः॥**

इसकी अत्यन्त प्रामाणिक, वैज्ञानिक और व्याकरणिक व्याख्या की गई है कि किस प्रकार ओम् शब्द निष्पन्न होता है। जैन शास्त्रों में अर्हन्तवाणी को जो ओंकार की ही ध्वनि मात्र है, सर्व भाषामय गिना है। जिनेन्द्र वाणी के अनुसार 'केवल ज्ञान होने के पश्चात् अर्हन्त भगवान् के सर्वांग से एक विचित्र गर्जना रूप ओंकार ॐ: ध्वनि रिवरति है, जिसे दिव्य ध्वनि कहते हैं, जैन शास्त्रों में इस दिव्य ध्वनि का विशद विवेचन उपलब्ध है। दिव्य ध्वनि इच्छा पूर्वक नहीं होती–वह स्वतः स्फूर्त है। यह ध्वनि केवल ज्ञानियों में ही संभव है, यह ध्वनि मुख से निःसृत है भी और नहीं भी, यह अनक्षरात्मक है और नहीं भी, यह सर्व भाषामय है और बीजात्मक रूप है। वैदिक मान्यता के अनुसार ओंकार का एक अर्थ तीन लोकों से है। अ का अर्थ है अधोलोक, उ का अर्थ उर्ध्व लोक और म का मध्य लोक। जैनाम्नाय के अनुसार यह त्रिलोकाकार घटित है। जैनागमों में तीनों लोकों का आकार तीन वात वलयों से वेष्ठित पुरुषाकार, जिसके ललाट पर अर्ध चन्द्र सिद्ध लोकका व विन्दु सिद्ध का प्रतीक है। मध्य में हाथी के सूंडवत त्रसनाली है। उसी आकार को शीघ्र लिखा जावे तो कलापूर्ण :ॐ: लिखा जाता है (जैन धर्मावलंबियों का सर्वमान्य धर्म प्रतीक चिन्ह इस दृष्टि से दृष्टव्य है)। यही त्रिलोक का प्रतिनिधि है। ओंकार प्रदेशापचय के अर्थ में भी प्रयुक्त है। जैन धर्म में ओम् की आकृति ॐ ही मान्य है ओम् जप का भी विधान जैन शास्त्रों में उपलब्ध है। हृदय जप के अनुसार श्वेत, लाल, पीत, हरा और काले रंगों की पांखुड़ियों पर ओम् का क्रमशः ध्यानकिया जाता है। इसके लिए मन के संकल्प से हृदय में ही पांच रंगों का कमल बनाकर कमल के बीच में अर्हम् का ध्यान अपेक्षित है। और विभिन्न रंगों की पंखुड़ियों पर पंच परमेष्ठी का जाप करने से आध्यात्मिक शक्ति का वर्धन होता इसी प्रकार अ–सि–आ–उ–सा के मन्त्र में भी 'ओम्' की स्थापना से साधना की जाती है। यदि कोई साधक अपने चैतन्य केन्द्रों को जागृत करना चाहता हैं तो उसे महामन्त्र के ओम् रूप की साधना करनी होगी। दर्शन केन्द्र, ज्ञान केन्द्र और आनन्द केन्द्र तीनों केन्द्रों को जागृत करने के लिए, तीन रंगों के साथ ओम् का उन केन्द्रों पर ध्यान करना होगा–दर्शन केन्द्र पर लाल, ज्ञान केन्द्र पर श्वेत और आनन्द केन्द्र पर पीला।

जैन आचार्यों ने ओम् की निष्पत्ति का एक और भिन्न रूप प्रस्तुत किया है। अ = ज्ञान उ = दर्शन और म् = चारित्र का प्रतीक है। इस प्रकार ओम् ज्ञान दर्शन और चारित्र का भी प्रतीक ठहरता है–त्रिरत्न का ओंकार की उपासना मोक्ष मार्ग की उपासना है। मंत्र शास्त्र में शब्द का उच्चारण, प्रयोग, जप, नियम आदि का पालन कर मंत्र के अवयवों को साक्षात् अनुभव गम्य बनाना अनिवार्य है। इससे मंत्र जागृत हो है। ओम् की साधना का भी यही नियम है। मातृ का नियम से भी स्वरोदय-स्वराधति, अर्धमात्रा आदि का अनुपालन अभीष्ट है। ओम् में अर्ध मात्रा और तुरीय मात्रा स्वीकार की जाती है। साधना प्रणाली में इन मात्राओं का विशिष्ट महत्त्व है। सोऽहं में सकार और हकार को हटाने से 'ओम्' बनता है– इस प्रकार ओम् सोऽहं का ही परिवर्तित रूप है। ओम् प्राण-ध्वनि है और इसकी साधना का अन्यतम साधन कहा गया है 'सकारं च हकारं च लोपयित्वा प्रयुज्यते' जैन चिन्तन में ओम् और अर्हं को लेकर अनेक जिज्ञासु प्रश्न उठाते हैं कि ओम् के स्थान पर अर्हम् को महत्त्व देने का कारण क्या है? वस्तुतः जैन साधना पद्धति में दोनों का अपना महत्त्व

है। ओम् की साधना प्राण शक्ति की और पंच परमेष्ठी की साधना है, नमस्कार मंत्र की पर प्राण-शक्ति की साधना में अर्हम् का बहुत बड़ा महत्त्व है। ओम् का जप वैखरी, मध्यमा और पश्यन्ती तीनों में समान रूप से हो सकता है—इसे ही हम संजल्प, अन्तर जल्प और ज्ञानात्मक भूमियां कह सकते हैं।

इस प्रकार यह निर्विवाद है कि जैन दर्शन, अध्यात्म और साधना में ओम् ॐ का महत्त्व सर्वोपरि व निर्विवाद है। इस संक्षिप्त निवन्ध में यही निर्दे[illegible] करने की चेष्टा की गई है। भारत की विभि[illegible] धर्म प्रणालियों में जो एक मूल भावना और प[illegible] विद्यमान है, जो इन धर्मों को एक दूसरे के अभिन्न[illegible] का प्रमाण बनती है, उनमें 'ओम्' विशिष्टतम् [illegible] से एक है सर्व मान्य, सर्व स्वीकृत और सर्व शीर्ष[illegible]

२-ए, देश प्रिय पार्क, कलक[illegible]

# हृदय परिवर्तन

△ मोतीलाल सुराना, इन्दौर

चोर जेल से छोड़ दिया गया। बहुत बार कठोर यातना सहने के कारण चोर ने किसी सन्त की सेवा में जाने की सोची। योग से सन्त एकनाथजी उस समय उधर से आ रहे थे। चोर दौड़कर एकनाथजी के पास पहुंचा, पैरों में गिरा तथा चोरी करने की अपनी आदत कबूल कर आगे से चोरी न करने की बात कही। सन्त ने उसे चोरी न करने की प्रतिज्ञा कराई तथा पूछा कि हम तीर्थ-यात्रा पर जा रहे हैं, अगर तुम भी चलना चाहो हमारे साथ चलो पर प्रतिज्ञा के अनुसार कभी भी चोरी मत करना। चोर ने हां कहा तथा साथ हो लिया।

तीर्थयात्रा पर निकली संत एकनाथजी के साथ की संत मंडली रोज-२ परेशानी में पड़ जाती। कभी किसी का कमंडल नहीं मिलता तो कभी किसी का अंगोछा। बाद में पता चलता कि जहां वे ठहरते थे वहां रात को चोर सामान को इधर-उधर रख दिया करता था। उसने चोरी तो छोड़ दी थी पर हेरा-फेरी के बिना उसे चैन न पड़ता था।

जब संत मंडली ने शिकायत की तो चोर से पहले संत मंडली को एक-नाथजी ने समझाया कि मन बाहरी दबाव से एक हद तक रोका जा सकता है, पर आत्म सुधार के लिये तो हृदय परिवर्तन की जरूरत है। जो साधना और संयम से समय लगकर बदलता है। फिर चोर को भी प्रेम से समझाया कि ऐसा न करा करो तो धीरे-धीरे चोर भी एक संत की तरह जीवन-यापन करना सीख गया।

# भावात्मक एकता : प्रकृति और जीवन का सत्य

□ डा. नरेन्द्र भानावत

△

> भावात्मक एकता की पुष्टि एवं अखण्ड मानवता की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि हम अपनी विविधता को द्रष्टा बनकर देखें न कि भोक्ता बनकर उसका अपने स्वार्थ के लिए दुरुपयोग करें। यह द्रष्टा भाव ही हमें अणु से विभु बनायेगा, वैभव-सम्पन्न बनायेगा। तब अनन्त से हमारा जुड़ाव होगा।

भावात्मक एकता प्रकृति और जीवन का सत्य है। जब तक इस सत्य से साक्षात्कार बना रहता है, जीवन और समाज में सुख, शांति एवं समता का वातावरण बना रहता है पर ज्योंही यह सत्य नकारा जाता है, जीवन और समाज में अशांति, विग्रह और दुःख व्याप्त हो जाता है। सामान्य दृष्टि से देखें तो पता चलता है कि अपने चारों ओर विविधता ही विविधता बिखरी हुई है। किसी पेड़ या पौधे को देखिये, उस पर लहलहाने वाले पत्ते एक होते हुए भी विविधता लिए हुए हैं। जगत में जितने भी जीव हैं, उन सब में स्वभावगत भिन्नता और व्यवहारगत वैशिष्ट्य है। बगीचा तभी सुन्दर लगता है जब उसमें भांति-भांति के पेड़, पौधे और फूल हों। सार रूप में कहा जा सकता है कि विविधता प्रकृति का धर्म है, विविधता विकास का मूल है, विविधता सम्पन्नता की परिचायक है पर यह सब तब है जब विविधता का विवेकपूर्वक सदुपयोग किया जाता है। यदि विवेकहीन होकर, कोई अपने स्वार्थ के लिए विविधता का दुरुपयोग करता है तो विविधता सम्पन्नता का कारण न रहकर, विपन्नता का कारण बन जाती है। इसीलिए आप्त पुरुषों ने विविधता में एकता को प्रकृति का और जीवन का सत्य बताया है।

भारत एक ऐसा राष्ट्र है जो विविध धर्मों, विविध जातियों, विविध खनिज पदार्थों, नदियों, मैदानों, पहाड़ों, गांवों और नगरों का देश है। यहां प्रकृति प्रत्येक ऋतु में विविध शृंगार करती है। धार्मिक मान्यताओं, सामाजिक रीति-रिवाजों, सांस्कृतिक कला-विधानों आदि में वैविध्य हैं। यहां विविध भाषाएं और काव्य शैलियां हैं। यह सब वैविध्य राष्ट्र को सम्पन्न और समृद्ध बनाता है। इसीलिए कहा जाता है कि देवता भी भारत भूमि में जन्म लेने के लिए लालायित रहते हैं।

भारतीय संतों, दार्शनिकों, और साहित्यकारों ने इस विविधता में एकता का दर्शन कर पूरे राष्ट्र को भावात्मक एकता में बांधा है। उन्होंने यह सत्य प्रतिपादित किया है कि यह विविधता तब वरेण्य बनती है जब ऐक्य भाव हो। उदाहरण के लिए पेड़ में अलग-अलग पत्ते, फूल और फल हैं पर उन सबकी एकता वृक्ष के बीज और जड़ से बंधी हुई है। इसी तरह हाथ की अंगुलियां अलग-अलग हैं, पर उन सबकी शक्ति हथेली से जुड़ी हुई है। इसी प्रकार देश में अलग-अलग धर्म, भाषा, जाति और व्यवसाय के लोग हैं, पर वे सब परस्पर प्रेम, सहयोग, और मैत्री भाव से जुड़े हुए हैं। "आत्मवत् सर्व भूतेषु", 'वसुधैव कुटुम्बकम्' 'मित्ती मे सव्व भूएसु' के पीछे यही दृष्टि रही है। बड़े-बड़े दार्शनिकों, और रहस्यवादी कवियों ने जीव और ब्रह्म की एकता का गुणगान किया है। सन्त कबीर ने अनुभूति की गहराई में पैठकर कहा—'जल में कुम्भ,

कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी । फूटा कुम्भ जल-जल ही समाना, यह तथ कथ्यो गयानी ।' अर्थात् सरोवर में घड़ा है और घड़े में जल है । सरोवर ब्रह्म के समान है और घड़े में रहा हुआ जल जीव के समान है । यह जीव ब्रह्म का ही अंश है । जिस प्रकार मिट्टी के घड़े की परत सरोवर के पानी से घड़े में रहे हुए पानी को अलग करती है वैसे ही मन के विकार जीव को ब्रह्म से अलग करते हैं । जिस प्रकार घड़े के फूटने पर घड़े में रहा हुआ पानी पुनः सरोवर के पानी में मिल जाता है, उसी प्रकार मन के विकार नष्ट होने पर जीव ब्रह्ममय हो उठता है ।

सामाजिक और राष्ट्रीय संदर्भ में यह विकृति ही एकता में बाधक है, और यह विकृति है सकीर्ण मनोवृत्ति अपना-अपना स्वार्थ, जातीयता, प्रान्तीयता, सम्प्रदायवाद । भेद में अभेद की अनुभूति होने पर भावात्मक एकता पुष्ट होती है ।

वैचारिक स्तर पर एकता का अर्थ है—समानता । अपने से परे जो शेष सृष्टि है, उसके प्रति अनुरागात्मक संबंध । समानता की ऐसी अनुभूति के क्षणों में ही सन्त कबीर कह उठते हैं—'जाति पांति पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि को होई ।' सन्त नानक गा उठते हैं—"ना मैं हिन्दू ना मैं मुसलमान, पंच तत्त्व का पुतला, नानक मेरा नाम ।" जब मैत्री भाव प्राणी मात्र के प्रति उमड़ पड़ता है तब भेद रहता ही नहीं । इसी स्तर पर जगत् और ब्रह्म की एकता के भी दर्शन होने लगते हैं । "लाली मेरे लाल की, जित देखो तित लाल । लाली देखने मैं गई, मैं भी हो गई लाल । इस तरह की अनुभूति होने पर स्वार्थ परमार्थ में बदल जाता है, शक्ति सेवा का रूप ले लेती है । पर जहां यह एकात्मक अनुभूति नहीं होती, वहां भेद बना रहता है और शक्ति सत्ता के साथ जुड़कर विघटन का तांडव नृत्य कराती है ।

इस भावात्मक एकता के चिन्तन में बुद्धिजीवियों की बड़ी भूमिका है । यदि बुद्धि स्वार्थ में डूबी हुई है तो उसे विविधता में एकता के नहीं, भिन्नता के, समता के नहीं विषमता के दर्शन होंगे । पर को बुद्धि प्रज्ञा में स्थित है, परमार्थ के साथ गतिशील है, हृदय की सहगामिनी है तो उसमें अनेकान्त दृष्टि का विकास होगा । वह विविधता मे निहित एकता के सूत्र को पकड़ेगी, तब वह मधुमक्खी की प्रक्रिया को अपनायेगी । मधुमक्खी जो विविध रंगों के फूलों से रस ग्रहण करती है, पर उनसे जो शहद बनाती है वह एक ही रंग का, एक ही स्वाद का होता है मधुर-मीठा । समष्टि भाव का बोध होने पर समस्त भेद-अभेद में और द्वैत-अद्वैत में बदल जाता है। व्यक्ति अपने लिए नहीं, समष्टि के लिए जीने लगता है । वह अपने को परिवार के लिए, परिवार को गांव के लिए और गांव को प्रान्त के लिए, प्रान्त को देश के लिए समर्पित कर देता है। वैदिक ऋषियों ने सह-अस्तित्व और सामुदायिक भाव को अपने विभिन्न मंत्रों में स्पष्ट किया है—

**सहनाववतु सहनौ भुनक्तु, सह वीर्य करवावहै।**
**तेजस्विनाऽवधीतमस्तु, मा विद्विषावहै ॥**

अर्थात् हम सब एक दूसरे की रक्षा करें, हम प्राप्त साधनों का साथ-साथ उपभोग करें, हम साथ-साथ पराक्रम करें, हमारा अध्ययन तेजस्वी हो, हम परस्पर द्वेष न करें ।

**संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनासि जानताम् ।**
**देवा भाग यथापूर्वे संजनानां उपासते ॥**

अर्थात् सब साथ-साथ चलो, साथ-साथ बोलो, एक दूसरे के मनों को जानों, जिस प्रकार देवता पहले एक दूसरे को जानकर एक दूसरे की सेवा करते थे, वैसे तुम भी करो ।

भगवान् महावीर ने "परस्परोपग्रहोजीवानाम्" अर्थात् परस्पर उपकार करते हुए जीवन जीने को ही सच्चा जीवन माना है और इसी अनुभूति के धरातल से उन्होंने सत्य और अहिंसा का उपदेश दिया है ।

पर आज बड़े दुःख की बात है कि राजनैतिक और आर्थिक स्वार्थों के कारण विविधता में एकता के

भाव को हृदयगंम करने की भावना दुर्बल और दृष्टि धूमिल होती जा रही है। जहां संत नानक ने "आदम की जात सभी एक ही पहचानों" कहकर मनुष्य-मनुष्य में एकता को प्रतिष्ठापित किया वहां आज मनुष्य को मनुष्य न समझकर उसके साथ पाशविक व्यवहार किया जा रहा है। जिस राम ने अयोध्या से चलकर लंका तक गुह-निषाद, शबरों तक के मन को जीता और सामाजिक समन्वय को पुष्ट किया वही क्षेत्र आज भाषा-भेद और संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण दग्ध हैं। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन, सांस्कृतिक एकता की पुष्टि का आन्दोलन है। रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, सन्त नामदेव, तुकाराम, एकनाथ, जांभोजी, दादू, रज्जब, मीरां, हेमचन्द्राचार्य आदि ने एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में घूम-घूमकर जो अलख जगाई उसी के फलस्वरूप, विदेशी आक्रान्ताओं के बीच में भी हमारी अस्मिता और संस्कृति सुरक्षित रह सकी। आज तो हम स्वतन्त्र हैं। उन भक्त संतों और कवियों द्वारा जागृत अलख को हमें और अधिक तेजस् बनाना है। हमें यह समझना है कि जो अनेकता के तत्व हैं, वे आवश्यकताओं के विभाजन और आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन रूप हैं। इनकी मांग भौतिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए हैं। जीवन का सत्य भोगवृत्ति नहीं है। इस कारण अनेकता रूप साधनों के निमित्त से अखण्ड मानवीयता खण्डित नहीं होनी चाहिये। भावात्मक एकता की पुष्टि एवं अखंड मानवता की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि हम अपनी विविधता को द्रष्टा बनकर देखें न कि भोक्ता बनकर उसका अपने स्वार्थ के लिए दुरुपयोग करें। यह द्रष्टा भाव ही हमें अणु से विभु बनायेगा, वैभव-सम्पन्न बनायेगा। तब अनन्त से हमारा जुड़ाव होगा। संत रज्जब के शब्दों में—

**रज्जब बूंद समन्द की, कित सरके कहं जाय।**
**साझा सकल समन्द सो, त्यूं आतम राम समाय॥**

जिस प्रकार अथाह व अनन्त जल से भरे हुए समुद्र की एक बूंद चाहे किधर भी चली जाए, सरक जावे वह समुद्र का ही भाग बनी रहती है, उसी प्रकार व्यक्ति बूंद की तरह है और समग्र राष्ट्र समुद की तरह। यह समग्रता का दृष्टिकोण ही भावात्मक एकता का आधार है।

—सी २३५ ए. दयानन्द मार्ग, तिलकनगर, जयपुर-४

# समाज सेवा भी साधना है

△ सौभाग्यमल जैन

△

श्रीमद् स्थानांग सूत्र में वर्णित दस धर्म (ग्राम, नगर, राष्ट्र धर्म आदि) के प्रति स्वनाम धन्य स्वर्गीय पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज ने समाज के सम्मुख महत्व प्रतिपादित किया था। समाज में जो इने-गिने आज राष्ट्रीय भावना के व्यक्ति हैं वे उस आह्वान का परिणाम हैं जो स्वर्गीय पूज्यश्री ने उस समय रखा था। जैन समाज भी स्थानीय ग्राम नगर या राष्ट्र की जनता की इकाई है, उसे इनकी समस्याओं में अपना योगदान देना होगा।

जैन साहित्य में श्रीमद् 'उत्तराध्ययन सूत्र' का महत्वपूर्ण स्थान हैं, उसमें एक स्थान पर कहा गया है—

**चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणि य जंतुणो।**
**माणुसतं, सुई, सद्धा, संजम च वीरियं ॥**

तात्पर्य यह है कि जगत में मानव भव दुर्लभ है। असीम पुन्यों से मनुष्य योनि में जन्म होता है। उक्त गाथा में 'माणुसतं' का प्रयोग किया गया है। मेरे नम्र विचार में भाव यह है कि मनुष्यत्व के गुण सहित (मानवीय गुण सम्पन्न) व्यक्ति दुर्लभ हैं। उपनिषद के ऋषि ने भी मनुष्य को श्रेष्ठतर माना है— "नहि मानुषात् श्रेष्ठतर हि किंचित्' इस्लाम परम्परा में मनुष्य को सृष्टि, जगत (खलक) में अशरफ (श्रेष्ठ) बताया गया उसे "अशरफुल मखलूकात' कहा गया है। सब परम्पराओं में मनुष्य को उत्तम योनि माना किन्तु जैन धर्म ने मनुष्य की गरिमा को बहुत ऊंचा उठा कर देवत्व से भी महत्वपूर्ण माना है। यह सुनिश्चित हैं कि मानव जीवन का लक्ष्य निःश्रेयस (मुक्ति, मोक्ष) प्राप्त करने के लिये देव को भी मनुष्य जन्म लेना पड़ेगा। जैन धर्म की मान्यता के मुताबिक मनुष्य असीम अनन्त शक्ति का पुंज है। उसी में यह क्षमता है कि वह अपनी सुप्त (सोई हुई) परमात्म शक्ति का प्रस्फुटन कर सके। निश्चय नय की दृष्टि से प्रत्येक प्राणी शुद्ध, बुद्ध है उसमें और पूर्ण काम (सिद्ध अवस्था) की आत्मा के मौलिक गुणों में कोई अन्तर नहीं है। यह शुद्ध बुद्ध अवस्था आत्मा की वर्तमान अशुद्ध दशा के कारण अप्रगट है। वैदिक ऋषि का 'अहं ब्रह्मऽस्मि, सोऽहं' का नाद्य इस विचार की पुष्टि करता है। सती मदालसा अपने गर्भ शिशु को लोरियों के द्वारा यह सिखाती थी—

**शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि, निरंजनोऽसि।**
**संसार माया परिवर्जितोऽसि ॥**

वेदांत के अनुसरण में सूफी परम्परा का संत सरमद देहली की सड़कों पर तत्कालीन मुगल बादशाह औरंगजेब के शासनकाल में 'अनल हक' (अहं ब्रह्माऽस्मि) बुलन्दी के साथ कहता चला जा रहा

था । वह उसकी सुप्त ईश्वरीय शक्ति (परमात्म तत्व) का इजहार था किन्तु बादशाह की दृष्टि में यह इस्लामी सिद्धांत के प्रतिकूल था । इस कारण सन्त को सूली पर चढ़ाने का दण्ड दिया गया । सूली पर से भी सन्त प्रसन्नता पूर्वक यही उद्घोष करता जा रहा था । संक्षेप में यह कि मनुष्य में निहित इस सुप्त दशा (शुद्ध दशा) को किस प्रकार जागृत किया जावे, यह महत्वपूर्ण है । यह शुद्ध दशा कहीं बाहर से आयात नहीं होने वाली है । अपितु मानव को अन्त-र्मुखी होकर अपनी साधना में लगकर प्रकट करना है ।

जैन दर्शन की मान्यता के मुताबिक मनुष्य की शुद्ध दशा प्रकट होने या ईश्वरत्व प्रकट होने में कर्मों का आवरण मुख्य कारण है । यह आवरण शुद्ध दशा के ऊपर सूफी या अद्वेत की भाषा में 'दुई' (द्वैत) का पर्दा हैं । यह आवरण या पर्दा हटाये विना या नष्ट हुए विना शुद्ध दशा प्रकट नहीं हो सकती है । प्रसिद्ध कवि तथा दार्शनिक डॉ. इकबाल ने कहा था—

**ढूंढ रहा है इकबाल अपने आप को**
**गोया मुसाफिर और मंजिल एक है ।**

द्वैत का पर्दा हट जाते ही मनुष्य अपने स्व-भाव (शुद्ध दशा) में आ जाता है । यहां सब्जेक्ट (Subject) और आब्जेक्ट (Object) विषय और विषयी या गुण-गुणी एकाकार हो जाते हैं । कर्मो के आवरण या द्वैत के पर्दे के लिये साधना (तप) द्वारा अनिवार्य है । जैन दर्शन में तप मुख्य रूप से बाह्य तथा आभ्यन्तर दो भागों में विभाजित है । लेखक के नम्र मत में बाह्य तप व्यक्तिगत साधना है । मनुष्य अनशन आदि द्वारा तपश्चरण करता है । आभ्यन्तर तप में मनुष्य अपनी व्यक्तिशः साधना के साथ अन्य की सेवा भी करता है । आभ्यन्तर तप में उदाहरणार्थ 'वैयावच्च' (संस्कृत में वैयावृत) भी शामिल है । यह तप अन्य की सेवा द्वारा ही हो सकेगा । तात्पर्य यह है कि जैन दर्शन द्वारा मान्य साधना या तपश्चरण केवल व्यक्तिगत नहीं अपितु अन्य की सेवा द्वारा भी की जाती है । वैयावृत्य को तो अधिक महत्व देकर यह प्रावधान किया गया कि तीर्थंकर गौत्र के लिये बीस कारणों में यह भी एक कारण है ।

उपर्युक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि जैन दर्शन में जहां व्यक्तिशः साधना पर बल दिया गया है वहीं अन्य की सेवा द्वारा भी साधना को महत्व दिया है । तीर्थंकर पद प्राप्त महापुरुषों की स्तुति (णमोत्थुणम या शक्र स्तव) में 'तिन्नाणम तारयाणम' शब्दों का प्रयोग किया गया है । वह अपनी साधना द्वारा संसार समुद्र से तिर जाते हैं साथ ही अन्यों को इस पथ का अनुसरण करने के लिये मार्गदर्शन करते हैं । तीर्थंकर महावीर को अपनी साढ़े बारह वर्षीय साधना के पश्चात् आत्म साक्षात्कार (कैवल्य प्राप्ति) हो गया । जैन दर्शन में आत्मा का लक्षण उपयोग(ज्ञान)माना है, 'जीवो उवओग लखणो' इसी कारण आत्म साक्षात्कार की स्थिति को केवल (Only) ज्ञान कहा गया होगा । तात्पर्य यह कि उस स्थिति में केवल (सिर्फ) ज्ञान ही रह जाता है । आत्मा तथा ज्ञान (गुण-गुणी) एकाकार हो गये । केवल ज्ञान के पश्चात् महावीर लगभग ३० वर्ष तक स्थानीय जनता को सन्मार्ग पर लाने के लिये ग्रामा-नुग्राम विहार करके पथ प्रदर्शन करते रहे । उन्होंने गणधर गौतम के एक प्रश्न के उत्तर में स्पष्ट कहा कि जो दीन-दुःखी, रोगी की सेवा करता है, वह धन्य है । एक सुभाषित में कहा गया है—

**श्लोकार्थेन प्रवक्ष्यामि, यदुक्तम् ग्रन्थ कौटिभिः ।**
**परोपकाराय पुन्याय पापाय परपीडनंम् ॥**

किंतु वर्तमान के जीवन संघर्ष या योग्यतम के अस्तित्व (Survival of the fittest) के युग में एक कवि ने ठीक ही कहा था—

**बस एक रह गई थी, मजहबे इन्सानियत की बात**
**बामज्ले खुदा, आज वह भी जुर्म हो गई ॥**

जबकि वास्तविकता यह है उर्दू के एक कौल के अनुसार—

**क्या करेगा प्यार वह भगवान को**
**क्या करेगा प्यार वह ईमान कों।**
**जन्म लेकर गोद में इन्सान की,**
**प्यार कर न पाया जो इन्सान को ॥**

तथागत बुद्ध द्वारा प्रणीत बौद्ध धर्म की एक शाखा 'महायान' की मान्यता के अनुसार भगवान बुद्ध केवल स्वयं मुक्त नहीं होना चाहते अपितु संसार के प्रत्येक प्राणी को दुःख मुक्त करके मुक्त होना उनका लक्ष्य है। यह एक अनुपम संकल्प है।

जब हम साधना या सेवा शब्द का प्रयोग करते हैं तब स्वाभाविक रूप से साधना के साथ साधक, साध्य तथा सेवा के साथ सेव्य तथा सेवक शब्द भी उपस्थित हो जाते हैं। साधक मनुष्य है। और उसका साध्य निःश्रेयस है। यह उसे व्यक्तिशः साधना या अन्य (सेव्य) की सेवा द्वारा प्राप्त हो सकती है। वह अन्य एक व्यक्ति भी हो सकता है, समाज भी हो सकता है। व्यक्तियों के समूह का नाम ही समाज है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य चाहें व्यक्तिगत साधना करे, अन्य व्यक्ति या समाज की सेवा करे, वह उसके लक्ष्य प्राप्ति में सहायक है। एक अंग्रेज विचारक ने ठीक ही कहा था जिसका संक्षेप में सार यह है कि **ईश्वर की प्रार्थना में उठे सौ हाथ की अपेक्षा किसी के प्रति करुणा से दान देने के लिए उठा एक हाथ महत्वपूर्ण है।**

यह अनिवार्य है कि जब कोई व्यक्ति अन्य व्यक्ति या समाज की सेवा करे तो निष्काम सेवा (यशकीर्ति की कामना रहित) हो उसमें सेव्य के प्रति हीनत्व की भावना साथ ही हृदय में सेवा का अहम भाव न हो तभी वह निःश्रेयस की प्राप्ति में सहायक हो सकती है। अन्यथा कषाय बन्ध होना स्वाभाविक है। उससे कर्म बन्ध ही होगा जो उसके लक्ष्य में भटकन पैदा करेगा। इस अवसर पर दिनांक २७, २८, २९ जून १९८१ को अ.भा. जैन विद्वत परिषद द्वारा जलगांव (महाराष्ट्र) में आयोजित गोष्ठी के कार्यकारी दल के निष्कर्ष का कुछ अंश देना अनुयुक्त नहीं होगा जिसमें कार्यकर्ता की अभिवृत्तियों व गुणों का जिक्र किया गया है—

**१. वह सरल, विनम्र, सहनशील हो।**
**२. उसकी वाणी में माधुर्य, औदार्य हो।**
**३. वह स्वार्थ तथा प्रशंसा से ऊपर उठकर काम क**
**४. वह सदाचारी हो त्याग तथा सेवा की भाव से ओतप्रोत हो।**
**५. वह निरभिमानी हो।**
**६. वह सदैव मानवीय दृष्टिकोण से कार्यरत हो**
**७. वह मिलनसरिता का सदेव परिचय दे तथा को साथ लेकर चले।**
**८. नियमितता भी एक आवश्यक गुण है।**

यह सत्य है कि ये अभिवृत्तियां तथा गुण आदर्श है। एक मनुष्य में सबका दर्शन हो पा असम्भव नहीं तो मुश्किल अवश्य है। यदि हमें औ दर्जे के व्यक्ति भी सामाजिक कार्य में रस लेने वा उपलब्ध हो जावें तो यह सन्तोष का विषय होगा।

दुर्भाग्य से जैन समाज में सेवावृत्ति की का कमी रही। हमारे पूज्य मुनिराजों का उपदेश अधि तर व्यक्तिशः साधना पर रहा, उसी पर अधिक दिया गया। इस कारण भी जैन समाज सेवा के क्षे में पिछड़ा रहा। इससे जैन धर्म को क्षति उठा पड़ी है। श्रीमद् स्थानांग सूत्र में वर्णित दस (ग्राम, नगर, राष्ट्र धर्म आदि) के प्रति स्वनाम ध स्वर्गीय पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज ने समाज सम्मुख महत्व प्रतिपादित किया था। समाज में इने-गिने आज राष्ट्रीय भावना के व्यक्ति हैं वे आह्वान का परिणाम हैं जो स्वर्गीय पूज्यश्री ने समय रखा था। जैन समाज भी स्थानीय ग्राम नगर या राष्ट्र की जनता की इकाई है, उसे इनकी स स्याओं में अपना योगदान देना होगा। यदि सेवा क्षेत्र में हम इसाई धर्म प्रचारकों का उदाहरण रखें और उनकी सेवा भावना के अनुसार कार्य

(ईसाई मिशनरियों के धर्म परिवर्तन के उद्देश्य को लेकर सेवा का कार्य अनुचित है ) तो समाज के लिये शुभ होगा । इसका कदापि यह अर्थ नहीं है कि जैन समाज सेवा या समाज सेवा की दिशा में शून्य है । कई संस्थायें कार्यरत हैं किन्तु जैन समाज में जितना उत्साह चाहिये, उतना नहीं है । इसके लिये यह आवश्यक है कि हमारे श्रमण वर्ग अपने उपदेशों की धारा को प्रभावशाली तरीकों से इस ओर मोड़ दें तथा श्रद्धालुजन को विश्वास दिलावें कि सेवा के कार्य भी मानव जीवन की लक्ष्य प्राप्ति में सहायक हैं ।

संक्षेप में यह कि समाज सेवा भी एक साधना है, केवल यही नहीं महत्वपूर्ण साधना है जिससे स्वयं के जीवन के उत्कर्ष के साथ-साथ समाज, धर्म का भी उत्कर्ष निहित है । —सुजालपुर मंडी (म.प्र.)

## प्रारम्भ और समाप्त

▱ मोतीलाल सुराना, इन्दौर

बात कुरूक्षेत्र की है और महाभारत के समय की । वे लड़े और खूब लड़े । यों समझो कि सारा मैदान लाशों से भरा पड़ा था । आसमान में मंड-राती चीलें लाशों को आ-अकार खा रही थी। शमीक ऋषि अपने शिष्यों सहित जब उधर से आश्रम की ओर लौट रहे थे तब चिड़िया के दो नन्हे-नन्हे बच्चों को चहचहाते देखा ! शिष्यों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा । गुरुजी से पूछा भगवत्, यह युद्ध स्थल लाशों से पटा हुआ है और यहां ये दोनों बच्चे जीवित कैसे ?

शंका का समाधान करते हुए महर्षि ने कहा—उड़ती हुई चिड़िया को किसी योद्धा का तीर लगा, जब वह गिर रही थी तब उसके दो अंडे गिरे जो जमीन पर आकर फूट गये और ये दोनों बच्चे उन अंडों में से निकले । पर ये बच कैसे गये—शिष्यों ने पूछा तो ऋषि राज बोले—हाथी के गले का घण्टा संयोगवश गिरा और इन दोनों को ढक लिया । फिर इन्होंने श्रम कर मिट्टी खोदी, क्योंकि घण्टे का वजन बहुत था । तथा फिर ये पूरा जोर लगाकर घण्टे की बाजू से निकल आये । अब तुम इन्हें आश्रम में ले चलो व इनकी रक्षा करो ।

पर जब अभी तक इन दोनों की रक्षा जिस किसी शक्ति ने की वह अब आगे इसकी रक्षा नहीं करेगी क्या ? तो महर्षि बोले—अदृश्य शक्ति का काम समाप्त हो गया । अब तो यहां मनुष्य की दया का काम प्रारम्भ होता है । मानवता इसी में है कि देवी शक्ति से बचे हुए को अनुकम्पा और दया का दान दें ।

राष्ट्र जिनका चतुर्थ जन्म शताब्दी वर्ष मना रहा है

# मानवतावादी कवि: बनारसीदास

□ श्री संजीव भानावत

जीवन के कठोर अनुभवों और संघर्षशील थपेड़ों ने कवि की आत्म-चेतना को झकझोरा। वह मानवता के जागरूक प्रहरी के रूप में उठ खड़ा हुआ। उसने श्रृंगार भाव में पगी अपनी "नवरसपदावली" को गोमती की धार में फेंक, 'समयसार नाटक' के रूप में आत्म तत्त्व को सहेजा, समेटा, और अनुभव किया कि मनुष्य-मनुष्य एक है, एक ही प्राण-चेतना सबमें व्याप्त है।

आज से ४०० वर्ष पूर्व सं. १६४३ में माघ शुक्ला एकादशी रविवार को जौनपुर में मध्यमश्रेणी के परिवार में एक बालक का जन्म हुआ जिसका नाम विक्रमाजीत रखा गया। बालक के पितामह मूलदास मुगल उमराव के मोदी थे और पिता खरगसेन ने कुछ समय तक बंगाल के सुलतान सुलेमान पठान के राज में चार परगनों की पोतदारी की लेकिन बाद में शाहजादा दानियाल (अकबर के तीन बेटों में से एक) की सरकार में इलाहाबाद में जवाहरात का लेन-देन करते रहे। भगवान् पार्श्वनाथ की पूजा-उपासना के पश्चात् उनके जन्म स्थान बनारस के नाम पर बालक विक्रमाजीत का नाम बनारसीदास रखा गया। यही बालक आगे चलकर क्रान्तिकारी समाज सुधारक, अध्यात्म चिन्तक, मानवतावादी कवि और हिन्दी के प्रथम आत्मचरित "अर्द्ध कथानक" के लेखक के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

बनारसीदास उन विरले व्यक्तियों में थे जिन्होंने अकबर, जहांगीर और शाहजहां—इन तीन मुगल बादशाहों के राज्य का निकटता से अध्ययन कर उसकी सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का अपने आत्मचरित के माध्यम से यथार्थ, प्रामाणिक, खरा, स्पष्ट चित्र अंकित किया जो समग्र भारतीय साहित्य में बेजोड़ है। उस समय मोटे रूप से मुगल बादशाह ही अपना आत्मचरित लिख रहे थे पर बनारसीदास ने राजवैभव और पद-प्रभुता से परे हट, कर अपने सामान्य जीवन की सफलता-असफलता, सबलता-दुर्बलता का 'अर्द्ध कथानक' में ऐसा सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है जो उनकी स्वाधीनचेता आत्मा का दस्तावेज होने के साथ-साथ तत्कालीन युग का सवाक् चित्रपट है।

कवि का जीवन संघर्ष का जीवन रहा। ५ वर्ष की अवस्था में संग्रहणी और ६ की अवस्था में चेचक का आक्रमण। १६ वर्ष की अवस्था में विवाह। जिस दिन नववधू के साथ घर में प्रवेश किया, उसी दिन इनकी नानी का स्वर्गवास और घर में बहिन का जन्म। इस प्रकार कवि ने एक साथ जन्म, मृत्यु एवं विवाह सम्पन्न होते देखे—

**नानी मरन सुता जनम, पुत्रवधू आगौन।**
**तीनों कारज एक दिन, भए एक ही भौन॥**

कवि ने जिस युग में जन्म लिया वह राजनैतिक अत्याचारों एवं सामाजिक उत्पीड़न का युग था। धार्मिक अन्ध विश्वासों से जीवन और समाज जकड़ा हुआ था। कवि स्वयं तन्त्र, मन्त्र और थोथी पूजा–उपासना का शिकार हुआ। सस्ते प्रेम–पचड़े में भी उलझा। व्यापार क्षेत्र में ठगा गया, छला गया। अनेक व्यसनों से आक्रान्त हुआ। तीन-तीन विवाह किये। नौ सन्तानें हुई पर एक भी जीवित न बची। जीवन के कठोर अनुभवों और संघर्षशील थपेड़ों ने कवि की आत्म–चेतना को झकझोरा। वह –मानवता के जागरूक प्रहरी के रूप में उठ खड़ा हुआ। उसने शृंगार भाव में पगी अपनी "नवरस–पदावली" को गोमती की धार में फेंक, 'समयसार नाटक' के रूप में आत्म तत्व को सहेजा, समेटा और अनुभव किया कि मनुष्य–मनुष्य एक है, एक ही प्राणी-चेतना सबमें व्याप्त है—

**एक रूप हिन्दू तुरक, दूजी दशा न कोय।**
**मन की दुविधा मान कर, भए एक सौ दोई ॥**
**दोउ भूले भरम में, करैं वचन की टेक।**
**"राम-राम" हिन्दू कहैं, तुर्क "सलामालेक" ॥**
**इनके पुस्तक वांचिए, वेहू पढ़े "कितेब"।**
**एक वस्तु के नाम दो, जैसे "सोभा" जेब।**

कवि की दृष्टि में प्राणी मात्र की एकात्मता समा गई। वह भेद में अभेद और द्वैत में अद्वैत का दर्शन करने लगा। दुविधा का अन्त हुआ। घट-घट में रमा "राम" सर्वत्र दिखाई दिया—

**तिनको दुविधा जे लखे, रंग-विरंगी चाम।**
**मेरे नैननि देखिए, घट-घट अन्तर राम ॥**

आत्मा ही राम है। विवेक रूपी लक्ष्मण और सुमति रूपी सीता उसके साथी हैं। शुद्ध भाव रूपी वानरों की सहायता से वह रणक्षेत्र में उतरता है। ध्यान रूप धनुष की टकार में विषय-वासनाएं भागने लगती हैं और धारणा की अग्नि से मिथ्यात्व की लंका भस्म हो जाती है। प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में यह "सहज संग्राम" निरन्तर होता रहता है।

**विराजै रामायण घट मांही।**
**मरमी होय मरम सो जानै।**
**मूरख मानै नाहीं ॥**

कवि में सामाजिक चेतना का स्वर ओजपूर्ण अभिव्यक्ति लिये हुए है। जाति, धर्म, सम्प्रदाय व मतवाद का उसकी दृष्टि में कोई महत्व नहीं। जन्म से कोई बड़ा नहीं होता, बड़प्पन सत्कर्मों पर निर्भर है। ब्राह्मण वह है जिसकी दृष्टि ब्रह्ममुखी है—

**जो निहचै मारग गहै गहै ब्रह्म गुन लीन।**
**ब्रह्मदृष्टि सुख अनुभवै, सो ब्राह्मण परवीन ॥**

और वैष्णव वह नहीं है जो केवल तिलक लगाता है, माला जपता है, वलिक वह है जो प्राणी-मात्र में हरि के दर्शन करता है—

**जो हर घट में हरि लखै, हरि बाना हरि बोल।**
**हर छिन हरि सुमरन करै, विमल वैसनव सोइ ॥**

और मुसलमान कौन ? जो अपने मन पर नियन्त्रण करता है, अल्ला की मर्जी के मुताबिक चलता है—

**जो मन मूसै आपनो, साहिब के रूख होई।**
**ग्यान मुसल्ला गहि टिकै, मुसलमान है सोइ ॥**

कवि ने स्थान-स्थान पर वाह्य आडम्बर और ज्ञान रहित क्रियाकांड का मखौल उड़ाया है। परम तत्व का मर्म जाने बिना किताबी ज्ञान चाहे कितना ही हो जाय, वाह्य तप चाहे क्यों न किया जाय, वह व्यर्थ है—

**जो महन्त है ज्ञान विन, फिरै फुलाए गाल।**
**आप मत्त औरनि करै, सो कलिमांहि कलाल ॥**

कवि की दृष्टि में वेष का महत्व नहीं, महत्व है निर्मल, विशुद्ध आत्म-भाव का—

**भेषधार कहै भैया भेष ही में भगवान्,**
**भेष में न भगवान्, भगवान् भाव में।**

अपने अज्ञानी मन को "भोंदू" नाम से सम्बोधित कर कवि ने कहा है—

**भौंदू भाई, देखि हिय की आंखें ।**

जो हृदय की आंख से देखना सीख लेता है, उसके लिये कोई पराया नहीं रहता, दुविधा का अंचल हट जाता है—

**बालम तुहूं तन, चितवन गागरि फूटि ।**
**अंचरा गौ फहराय सरम गै छूटि ॥**

द्वैत भाव के बिनाश से उसमें और प्रिय में कोई अन्तर नहीं रहता । दोनों की जाति एक है प्रिय उसके घट में है और वह प्रिय में । प्रिय सुख-सागर है तो वह सुख-सीमा, प्रिय शिव मन्दिर है तो वह उसकी नींव, प्रिय ब्रह्मा है तो वह सरस्वती, प्रिय माधव है तो वह कमला, प्रिय शंकर है तो वह पार्वती, प्रिय जिनदेव है तो वह उसकी वाणी, प्रिय योगी है तो वह उसकी मुद्रा—

**पिय सुखसागर, मैं सुखसींव,**
**पिय शिवमन्दिर, मैं शिवनींव ।**
**पिय शंकर मैं देबि भवानी,**
**पिय जिनवर मैं केवल बानी ।**

इस प्रकार आत्मानुभूति के क्षणों में कवि ने आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों की माधुर्यपूर्ण अभिव्यक्ति की है ।

यद्यपि कवि का जन्म श्रीमाल जाति के विहोलिया गोत्र में एक जैन परिवार में हुआ पर वे समग्र मानवता के लिये जीवन पर्यंत संघर्षरत रहे । ११० वर्ष को पूर्ण उत्कृष्ट आयु मानकर ५५ वर्ष की अवस्था में उन्होंने जो "अर्द्धकथानक" लिखा वह ६७५ दोहा-चौपाइयों में निबद्ध पद्यबद्ध आत्मकथा है । इसमें अपनी मूर्खताओं और असफलताओं पर वे खूब हंसे हैं । जिस साहस और शिल्प के साथ कवि ने यह वृतान्त लि[illegible] है वह तत्कालीन भारतीय जनमानस का प्रामाणि[illegible] इतिहास बन गया है ।

कवि का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ है 'समयसा[illegible] नाटक" जो आचार्य कुन्दकुन्द विरचित प्राकृत [illegible] 'समयपाहुड' एवं उस पर संस्कृत में अमृत चन्द्राचा[illegible] द्वारा लिखी गई 'आत्मख्याति, नामक टीका को आधा[illegible] बनाकर लिखा गया है । इसमें दोहा, चौपाई, सोर[illegible] छप्पय, सवैया, कवित्त आदि ७२७ छंद हैं । इस[illegible] १३ विभाग हैं जिन्हें 'द्वार' कहा गया है । जी[illegible] अजीव के सम्बन्धों एवं आत्मतत्व-विचारणा जैसे [illegible] विषय को सरल-सरस बनाकर प्रस्तुत करने में क[illegible] को विशेष सफलता मिली है । "बनारसी विला[illegible] कवि का महत्वपूर्ण संकलन-ग्रन्थ है जिसमें वि[illegible] काव्य रूपों और काव्य शैलियों/छन्दों का प्रयोग [illegible] कवि ने एक ओर तत्कालीन युग में प्रचलित [illegible] विश्वासों पर कुठाराघात किया है तो दूसरी [illegible] आत्मा-परमात्मा के रहस्यानुभवों को वाणी दी है ।

९ फरवरी १९८७ माघ शुक्ला एकादशी [illegible] पूरे देश में कवि का ४०० वां जन्म-दिवस, वि[illegible] ज्ञान-गोष्ठियों के रूप में मनाया गया । आवश्यक[illegible] इस बात की है कि कवि जिन जीवन-मूल्यों के लि[illegible] संघर्षरत रहा, हम उन्हें अपने जीवन में उतारें । [illegible] मूल्य हैं—

सर्वधर्मसमभाव, मानव-एकता, पुरुषार्थवादि[illegible] सत्यनिष्ठा, स्वाभिमान, सतत जागरुकता [illegible] स्पष्टवादिता ।

—सी-२३५ ए, दयानन्द मार्ग, तिलकनगर, जयपुर

# प्रतिक्रमण: एक अध्ययन

△ महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर

प्रतिक्रमण वास्तव में आत्मशोधन की आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। आध्यात्मिक दृष्टि से प्रतिक्रमण के द्वारा आत्मा की शुद्धि एवं आत्मा का अवलोकन होता है और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रतिक्रमण के द्वारा विकीर्ण चित्त एवं ऊर्जा का एकीकरण होता है। इस प्रकार प्रतिक्रमण का सिद्धांत अध्यात्म-दर्शन एवं मनोविज्ञान-जगत को महावीर स्वामी की महत्वपूर्ण देन है।

"प्रतिक्रमण' जैन आचार-दर्शन का एक विशिष्ट शब्द है। जैन-आगमों एवं आगमेतर जैन साहित्य में प्रतिक्रमण के स्वरूप, माहात्म्य एवं विधि-विधान के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक विवेचन हुआ है। जैन धर्म में प्रतिक्रमण की परम्परा साधारणतया अनादि/प्राचीनतम मानी जाती है, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि-कोण से इतना तो निश्चित है कि ऋषभदेव से पार्श्वनाथ की मध्यवर्ती परम्परा में प्रतिक्रमण जिनोपदिष्ट साधना-मार्ग का अनिवार्य अंग नहीं बन पाया था। पार्श्वनाथ अथवा उनसे पूर्ववर्ती तीर्थङ्करों की परम्परा एवं महावीर की परम्परा के भेद का एक मुख्य कारण प्रतिक्रमण की मान्यता भी है। महावीर स्वामी की धर्म-देशना को ग्रन्थों में सप्रतिक्रमण धर्म कहा गया है। 'आवश्यक-नियुक्तिक' के आधार पर प्रथम एवं अन्तिम तीर्थंकर के शासन में प्रतिक्रमण-युक्त धर्म ही प्रतिपादित किया गया है—

सपडिक्कमणो धम्मो पुरिमस्य य पच्छिमस्य य जिणस्स।

'सूत्रकृतांग सूत्र' भगवती सूत्र इत्यादि आगमों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के बहुत से श्रमणों ने पार्श्व परम्परा को छोड़कर महावीर के पंचयाम/पंच महाव्रत और सप्रतिक्रमण-धर्म को स्वीकृत किया। 'कल्पसूत्र' आदि ग्रन्थों के आधार पर परिज्ञात होता है कि महावीर के पूर्ववर्ती तीर्थकरों की परम्परा में श्रमण-साधक लोग प्रतिक्रमण तभी करते थे जब उनके द्वारा दुष्कृत्य, अनाचार या नियम-भंग हो जाता, परन्तु भगवान महावीर ने अपने श्रमण-वर्ग के लिए प्रतिक्रमण प्रतिदिन करणीय बताया फिर चाहे दुष्कृत्य, अनाचार या नियम भंग हुआ हो या न हुआ हो। महावीर के अनुसार दुष्कृत मिथ्याकरण एवं निरन्तर जागृति हेतु प्रतिक्रमण आवश्यक क्रिया है। इसीलिए दैनिक प्रतिक्रमण के अतिरिक्त समय-समय पर विशिष्ट प्रतिक्रमण करने का निर्देश दिया गया। प्रतिक्रमण के छः भेद इसी तथ्य की सूचना देते हैं। यथा—दैवसिक प्रतिक्रमण, रात्रिक प्रतिक्रमण, पाक्षिक प्रतिक्रमण, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण, वार्षिक/सांवत्सरिक प्रतिक्रमण और जीवनान्तिक प्रतिक्रमण। जैन शास्त्रों में तो यहां तक कहा गया है कि यदि श्रमण प्रतिक्रमण नहीं करता है तो वह अपने श्रमणत्व से च्युत हो जाता है और श्रावक यदि प्रतिक्रमण नहीं करता है तो वह अपने को श्रावक कहने-कहलाने का अधिकार नहीं रखता।

इस प्रकार वर्तमान जैन साधना का प्रथम सोपान प्रतिक्रमण है। जैन साहित्य में 'प्रतिक्रमण' शब्द का प्रयोग अत्यधिक होने के कारण जैन विद्वानों ने इस शब्द की विविध दृष्टिकोणों से व्याख्या की है। फलस्वरूप प्रतिक्रमण का अर्थ-विस्तार हुआ। 'प्रति-क्रमण' शब्द में मूलतः 'प्रति' उपसर्ग है और 'क्रम' धातु। इनमें 'प्रति' का अर्थ है उल्टा एवं 'क्रम' का अर्थ है पद-निक्षेप, लौटना अर्थात् वापस आना—यही प्रतिक्रमण का शब्दार्थ है। यह वापसी कहां से और कैसे हो—इसी के समाधान एवं उत्तर में 'प्रतिक्रमण' का अर्थ-विस्तार हुआ। 'योगशास्त्र-स्वोपज्ञ-वृत्ति' में प्राप्त उल्लेखानुसार प्रतिक्रमण के सम्बन्ध में आचार्य हेमचन्द्र का अभिमत है कि शुभ योग से अशुभ योग की ओर गये हुए अपने आपको वापस शुभ योग में लौटा लाना प्रतिक्रमण है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने 'नियमसार' में बताया है कि वचन-रचना मात्र को त्यागकर जो साधु रागादि भावों को दूर कर आत्मा का ध्यान करता है, उसी के प्रतिक्रमण होता है। आचार्य के अनुसार ध्यान में लीन साधु सब दोषों का परित्याग करता है। इस-लिए ध्यान ही समस्त अतिचारों/दोषों का प्रतिक्रमण है—

**मोत्तूण वयणरयणं, रागादीभाववारणं किच्चा।**
**अप्पाणं जो झायदि, तस्स दु होदि त्ति पडिक्कमणं।८३।**
**झाणणिलीणो साहु. परिचागं कुणइ सव्वदोसाणं।**
**तम्हा दु झाणमेव हि, सव्व दिचारस्स पडिक्कमणं।९३।**

इसी प्रकार 'समयसार' में कहा गया है कि पूर्वकृत कर्मों के विपाक रूप शुभ-अशुभ भावों से आत्मा को अलग करना प्रतिक्रमण है:

**कम्मं जं पुव्वकमं सुहासुहं मणेय वित्थर विसेयं।**
**तत्तो णियत्तदे अप्पयं तु जो सो पडिक्कमणं ॥४०३॥**

"मूलाचार" के अनुसार निन्दा तथा गर्हा से युक्त साधक का मन, वचन, शरीर के द्वारा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के व्रताचरण-विषयक दोषों की आलोचना पूर्वक शुद्धि करना प्रतिक्रमण है—

**दव्वे खेत्ते काले भावे य कयावराहसोहणयं।**
**णिंदणगरहणजुत्तो, मणवचकायेण पडिक्कमणं॥**

आचार्य हरिभद्रसूरि ने "आवश्यकवृत्ति" में प्रतिक्रमण का विस्तृत अर्थ प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार प्रतिक्रमण के तीन अर्थ होते हैं—

(१) प्रमादवश स्व-स्थान से पर-स्थान में अर्थात् स्वधर्म से परधर्म मे गये हुए साधक का पुनः स्वस्थान/स्वधर्म में लौट आना ही प्रतिक्रमण है।

(२) क्षायोपशमिक भाव का औदयिक भाव में परिणत होने बाद जब साधक पुनः औदयिक भाव से क्षायोपशमिक भाव में लौट आता है, तो यह प्रतिकूल गमन के कारण प्रतिक्रमण कहलाता है।

(३) अशुभ आचरण से निवृत्त होकर मोक्ष फलदायक शुभ आचरण में निःशल्य भाव से प्रवृत्त होना—यह प्रतिक्रमण है।

"सर्वार्थसिद्धि" एवं तत्वार्थ "राजवार्तिक" में कहा गया है कि कर्म के वश प्रमाद के उदय से जो मेरे द्वारा दुष्कृत्य हुआ है, वह मिथ्या हो—इस प्रकार के प्रतिकार को प्रगट करना प्रतिक्रमण है—

**'मिथ्या दुष्कृताभिधानादभिव्यक्तप्रतिक्रिया प्रतिक्रमण'**

"धवलाटीकाकार' के अनुसार पांच प्रकार के महाव्रतों में लगे हुए कलंक को प्रक्षालित करने का नाम प्रतिक्रमण है—

**'पंचमहव्वएसु, कलंक-पक्खालणं पडिक्कमणं णाम'**

"नियमसार-वृत्ति" में उल्लेखित है कि अपने के दोषों के लिए जो प्रायश्चित किया जाता है, वह प्रतिक्रमण है।

प्रतिक्रमण के सम्बन्ध में पूर्ववर्ती विद्वानों के अतिरिक्त आधुनिक विद्वानों के मन्तव्य भी उल्लेखनीय हैं। एलाचार्य मुनि विद्यानन्दजी ने प्रतिक्रमण को आत्म-शुद्धि एवं आत्मान्वेषण की प्रक्रिया बताया है। आचार्य नानालालजी म. सा. के अनुसार प्रतिक्रमण विभाव से स्वभाव में वापसी है। युवाचार्य म...

ने प्रतिक्रमण को ग्रन्थि-शोधन की आधार-भूमिका बताया है। साध्वी कनकप्रभाश्री प्रतिक्रमण का अर्थ करती हैं स्वयं का स्वयं में होना। डॉ. सागरमल जैन ने प्रतिक्रमण को पाप स्वीकृति और आत्म-आलोचना की परम्परा बताया है। मुनि नगराजजी प्रतिक्रमण को आत्मावलोकन तथा आत्मपरिमार्जन का साधन बताते हैं। डॉ. नेमीचन्द जैन के मतानुसार जाले से बाहर होना प्रतिक्रमण है डॉ. प्रेमसुमन जैन ने लिखा है कि उस तट से इस तट तक आना प्रतिकमण है।

उक्त अनेक विद्वानों के मन्तव्यों का आशय यही है कि अतिक्रमण से पुनः लौटना ही प्रतिक्रमण है। प्रतिक्रमण का विपर्यय है आक्रमण। आक्रमण का अर्थ होता है–दूसरे पर हमला करना या अपना विस्तार करना। अतिक्रमण सीमोल्लंघन का बोधक है। प्रतिक्रमण इसका उलटा क्रम है। हमलों की वापसी, प्रत्यावर्तन, खण्ड-खण्ड में विभक्त चित्त को समेटना एवं अपने घर लौट आने की यात्रा—यही प्रतिक्रमण है। शीघ्रबोधगम्यता के लिए प्रतिक्रमण को "टर्न अबाउट" कहा जा सकता है। जिस प्रकार व्यक्ति शत्रु-पक्ष पर आक्रमण करके वापस आ जाता है, सूर्य सायंकाल में अपनी रश्मियों को समेट लेता है, पक्षी सान्ध्य-वेला में अपने नीड़ में पहुंच जाता है, उसी प्रकार स्वयं में आ जाना प्रतिक्रमण है अर्थात् चित्त का जिन-जिन से सम्बन्ध योजित है, उन-उन से चित्त की वापसी प्रतिक्रमण है। अभिप्राय यही है कि प्रतिक्रमण विकीर्ण चित्त/चैतन्य/आत्म-ऊर्जा-का संगृहीत रूप है अथवा संगृहीत करने की पद्धति है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रतिक्रमण के दो अर्थ होते हैं—(१) तात्विक अर्थ और (२) व्यावहारिक अर्थ, तात्विक अर्थ की दृष्टि से आत्म-केन्द्र की ओर बढ़ने का प्रयास करना प्रतिक्रमण है तथा व्यावहारिक अर्थ की दृष्टि से प्रतिक्रमण सूत्रों/पाठों द्वारा अथवा निन्दन-गर्हण आदि के द्वारा कृत दोषों का शोधन प्रतिक्रमण है।

प्रतिक्रमण चौथा आवश्यक कर्म है। आवश्यक कर्म छः हैं। 'अनुयोगद्वार' सूत्र में ये षडावश्यक निर्दिष्ट हैं—(१) सामायिक, (२) चतुर्विंशतिजिनस्तव, (३) वन्दना, (४) प्रतिक्रमण, (५) कायोत्सर्ग, (६) प्रत्याख्यान—

**'सामाइयं चउवीसत्थओ वंदणयं ।**
**पडिक्कमणं काउसग्गो पच्चक्खाणं ॥७४॥'**

यद्यपि इन छः आवश्यक कृत्यों में प्रतिक्रमण का स्थान चतुर्थ है, किन्तु वर्तमान में इन सारे आवश्यकों को एक ही 'प्रतिक्रमण' शब्द से उपमित एवं व्यवहृत किया जाता है। वस्तुतः सामायिक के द्वारा व्यक्ति में समता की प्राण-प्रतिष्ठा होती है। तत्पश्चात् दूसरे आवश्यक के द्वारा वह नैतिक तथा साधनात्मक जीवन के आदर्श पुरुष के रूप में जिनेश्वर तीर्थंकर की स्तुति करता है। तीसरे आवश्यक कर्म में वह साधनामार्ग के पथ-प्रदर्शक गुरु को सविनय वन्दन-ज्ञापन करता है। प्रतिक्रमण नामक चौथे आवश्यक के द्वारा कृतपापों की आलोचना, आत्म-अन्वेषण और ग्रन्थि-शोधन के लिए प्रयत्न करता है। पांचवें आवश्यक कर्म में शारीरिक चंचलता एवं देहासक्ति का त्याग किया जाता है और छठे आवश्यक प्रत्याख्यान के द्वारा आगामी दोषों के त्याग का संकल्प होता है। इस प्रकार यह साधना का क्रमिक विकसित रूप हुआ। हां, यहां पर यह संकेत अनिवार्यतः देय है कि प्रतिक्रमण का अर्थ विस्तार हो जाने के कारण आजकल प्रतिक्रमण में उक्त सारे गुणों की उपस्थिति अपरिहार्य बताई जाती है।

प्रतिक्रमण वास्तव में आत्मशोधन की आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। आध्यात्मिक दृष्टि से प्रतिक्रमण के द्वारा आत्मा की शुद्धि एवं आत्मा का अवलोकन होता है और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रतिक्रमण के द्वारा विकीर्ण चित्त एवं ऊर्जा का

एकीकरण होता है। इस प्रकार प्रतिक्रमण का सिद्धांत अध्यात्म—दर्शन एवं मनोविज्ञान-जगत को महावीर स्वामी की महत्त्वपूर्ण देन है।

प्रतिक्रमण किसका किया जाता है—इस संबंध में जैनाचार्यों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से निर्देश दिये हैं। इसी का निर्वचन करते हुए आचार्य भद्रबाहु ने 'आवश्यक-निर्युक्ति' में लिखा है कि मिथ्यात्व, असंयम, कषाय तथा-अप्रशस्त शारीरिक, वाचिक एवं मानसिक व्यापारों का प्रतिक्रमण करना चाहिए। प्रकारान्तर से भद्रबाहु ने आवश्यकसूत्रान्तर्गत वंदित्तुसूत्र में निम्नांकित तथ्यों का प्रतिक्रमण करने का निर्देश दिया है—

(१) श्रावक तथा श्रमण के लिए निषेध किये गये कार्यों का आचरण कर लेने पर, (२) जिनोपदिष्ट कार्यों का आचरण न करने पर, (३) संशय एवं अश्रद्धा के उपस्थित हो जाने पर तथा (४) असम्यक् सिद्धांतों का प्ररूपण करने पर प्रतिक्रमण करना चाहिए। 'स्थानांग-सूत्र' में जिन छः तथ्यों का प्रतिक्रमण करना चाहिए उनका निर्देश इस प्रकार किया गया हैं—१. उच्चार प्रतिक्रमण अर्थात् मल आदि के निक्षेपण या विसर्जन करने के बाद तत्संबंधी तथा ईर्यापथिक प्रतिक्रमण करना, २. प्रस्रवण प्रतिक्रमण अर्थात् मूत्र करने के पश्चात् तत्सम्बन्धी तथा ईर्यापथिक प्रतिक्रमण करना, ३. इत्वर प्रतिक्रमण अर्थात् भूल या अपराध होते ही उसी समय उसका प्रतिक्रमण करना, ४. यावत्कायिक प्रतिक्रमण अर्थात् समस्त जीवन के लिए पापों से निवृत्त होने का संकल्प करना, ५. यत्किंचिन्मिथ्या प्रतिक्रमण अर्थात् सावधानी पूर्वक जीवन-यापन करते हुए असावधानी से किसी भी प्रकार का असंयम पूर्ण आचरण हो जाने पर उस त्रुटि को स्वीकार करना और उसके प्रति प्रायश्चित करना, और ६. स्वप्नान्तिक प्रतिक्रमण अर्थात् विकृति व वासना के कारण कुस्वप्न—दर्शन होने पर उसके प्रति पश्चात्ताप करना।

स्थानांगसूत्रकार ने जिन छः बातों के प्रतिक्रमण करने का निर्देश दिया है, वे श्रमण—वर्ग के प्रतिक्रमण से सम्बन्धित हैं। इसके अतिरिक्त जैनाचार्यों ने पंचाचार से भी प्रतिक्रमण का सम्बन्ध घोषित किया है। दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार, और वीर्याचार—इन पांच आचारों का सम्यक्तया पालन न करने से दर्शनातिचार, ज्ञानातिचार, चारित्रातिचार, तपातिचार और वीर्यातिचार—इन पांच प्रकार के अतिचार/दोष होते हैं। इन अतिचारों के शोधन के लिए प्रतिक्रमण किया जाता है।

आशय यही है कि श्रमण—वर्ग को पंचमहाव्रतों से संबंधित असंयम, अयतनाचार आदि दोषों का प्रतिक्रमण करना चाहिए। श्रावक-वर्ग को अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत, (स्वदार-सन्तोषव्रत) परिग्रह-परिमाणुव्रत—इन पांच अणुव्रतों में, दिशापरिमाणव्रत, उपभोगपरिमाणव्रत, अनर्थदण्ड परित्याग व्रत—इन तीन गुण अणुव्रतों में सामायिकव्रत, देशावकाशिकव्रत, पौषधोपवासव्रत, अतिथिसंविभागव्रत—इन चार शिक्षाव्रतों में लगने वाले अतिचारों का प्रतिक्रमण करना चाहिए। प्रतिक्रमण किसका करना चाहिए, इस सम्बन्ध में श्रमणसूत्र, वंदितुसूत्र, श्रमण प्रतिक्रमण सूत्र, क्षुल्लक प्रतिक्रमण सूत्र, सावग पडिक्कमण सुत्तं आदि अवलोकनीय हैं।

जैन धर्म के प्राचीन ग्रन्थों में जो प्रतिक्रमण-विषयक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, उनमें सबसे प्राचीन ग्रन्थ 'आवश्यक सूत्र' प्राप्त होता है। चूंकि प्राप्त साक्ष्यों से यह बात पूर्णरूपेण निश्चित है कि प्रतिक्रमण ईसा से पूर्व ही जैन साधना-पद्धति का एक अनिवार्य अंग बन चुका था। अतः 'आवश्यक सूत्र' पर अनेक विद्वानों ने विस्तारपूर्वक व्याख्या ग्रन्थ लिखे हैं। उन व्याख्या-ग्रन्थों में आचार्य भद्रबाहु विवेचित 'आवश्यक निर्युक्ति' और जिन भद्रगणि क्षमाश्रमण विवेचित 'विशेषावश्यक भाष्य' उल्लेखनीय हैं। दिगम्बर-परम्परा में प्रतिक्रमण सम्बन्धी प्राचीन साहित्य का अभाव-सा है। वस्तुतः आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा व्यावहारिक प्रतिक्रमण को विषकुम्भ कह दिये जाने के कारण दिगम्बर—परम्परा में निश्चय प्रतिक्रमण पर

अधिक बल दिया जाने लगा। यही कारण है कि इस परम्परा का प्रतिक्रमण सम्बन्धी साहित्य समृद्ध नहीं हो पाया। 'समयसार', 'नियमसार' आदि दिगम्बर ग्रन्थों में जो प्रतिक्रमण के सम्बन्ध में वर्णन उपलब्ध होता है वह लगभग निश्चय प्रतिक्रमण से ही प्रभावित है। वर्तमान में श्वेताम्बर एवं दिगम्बर परम्परा में सामान्यतः प्रतिक्रमण करने की जो प्रक्रिया है, वह शब्दसाम्यपूर्ण तो नहीं है, किन्तु अर्थ/ध्येय-साम्य अवश्य हैं। सचमुच, प्रतिक्रमण ने दोनों परम्पराओं में व्यापक रूप धारण किया है। आज आवश्यकता है कि हम प्रतिक्रमण का सम्बन्ध श्वेताम्बरत्व/दिगम्बरत्व की संकीर्णता से हटकर आत्मा एवं जीवन के साथ जोड़ें। प्रतिक्रमण की परम्परागत प्रणाली को तो हमें मानना ही है, परन्तु हम जिस प्राकृत-भाषा में प्रतिक्रमण करते हैं उसके लिए यह अपेक्षा है कि हम या तो प्राकृत-भाषा का प्राथमिक शिक्षण प्राप्त करें अथवा हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं में प्रतिक्रमण के अनुवाद के द्वारा उसे समझें ताकि प्रतिक्रमण हमारे लिए लाभदायक सिद्ध हो सके। जो व्यक्ति प्रतिक्रमण के मूल पाठों का अर्थ नहीं जानता और मात्र शब्दोच्चारण करता है, उसकी क्रिया निर्जीव एवं निष्प्रभ होगी। प्रतिक्रमण सूत्रों का एक-एक शब्द मन्त्र रूप हैं। अर्थबोध एवं श्रद्धासहित प्रतिक्रमण-सूत्रों का प्रयोग करने पर ये महाफलदायक सिद्ध होंगे।

—श्री जितयशाश्री फाउण्डेशन,
९ सी, एस्प्लानेड रो ईस्ट, कलकत्ता-७०००६९

## मनोबल की विजय

△ मोतीलाल सुराना इन्दौर

नोबुनागा नाम का जापान के सुप्रसिद्ध सेनापति में यह खूबी थी कि वह कम साधनों से एवं थोड़े से सैनिकों से भी अपने से ज्यादा साधन सैनिकों वाले शत्रुओं से डरता और अन्त में विजयश्री हासिल करता था। उसके पास अपने सैनिकों का मनोबल बढ़ाने की अद्वितीय कला थी।

एक बार ऐसा हुआ कि लड़ते-२ सैनिकों की संख्या कम हो गई तो शत्रु के खूंखार सैनिकों के आगे नोबुनागा ने अपने सैनिकों का मनोबल बढ़ाने के लिये एक नई तरकीब आजमाई। संध्या को लड़ाई बंद होने पर अपने सैनिकों को वह एक मंदिर में ले गया और मूर्ति के सामने अपनी जेब से तीन सिक्के निकालकर सैनिकों से बोला—मैं तीन सिक्के तीन बार उछालूंगा। यदि हमारी जीत होने की आशा होगी तो सिक्के सीधे चित्त पड़ेंगे। सिक्के उछालने पर एक, दो, तीन तीनों बार तीनों सिक्के चित्त पड़े। सभी सैनिक जोर-जोर से चिल्लाने लगे—हमारी जीत निश्चित है, जीत, जीत, जीत।

दूसरे दिन सुबह लड़ाई प्रारम्भ हुई। शत्रु के चार गुना सैनिक होते हुए भी नोबुनागा के सैनिकों की विजय हुई। विजय समारोह में नोबुनागा ने सैनिकों के मनोबल की सराहना की तथा रहस्य पर से परदा उठाते हुए बताया कि तीनों सिक्के पर आगे व पीछे एक ही चित्र वाला निशान था।

मनोबल और आत्म विश्वास की सदैव विजय होती है।

# जैन श्रावकाचार व उनकी सामाजिकता

□ डॉ. सुभाष कोठारी

△

सामाजिक व्यवस्था व धार्मिक सिद्धान्त परस्पर साथ-साथ चलें, इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए ही शायद तीर्थंकरों ने इस प्रकार मनोवैज्ञानिक वृतों व नियमों का प्रावधान किया होगा ।

भारतीय सभ्यता व संस्कृति का विश्व के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है । यहां के धार्मि व आध्यात्मिक वातावरण ने हमेशा दुनियां को प्रभावित किया है । साधना के क्षेत्र को हमारे ऋषि महर्षियों ने दो भागों में विभक्त किया है । साधु-साध्वी और गृहि, उपासक या श्रावक । गृहि उपासक व श्रावक साध की उस श्रेणी में आते हैं जिसमें व्यक्ति नियमित रूप से सांसारिक कार्यों को करते हुए भी अपने आत्मि उत्थान की ओर अग्रसर होने के लिए जीवन को संयमित करता है । जैन धर्म को आधार मानने वाले जैन व्रतों के रूप में इनका उल्लेख किया है।

**जैन व्रत**—मनुष्य को केवल आध्यात्मिक व धार्मिक सिद्धांतों का ज्ञान कराने वाले ही नहीं अपितु सामाजिक सौहार्द व प्रेम के पर्यायवाची भी हैं । फर्क सिर्फ दृष्टि का है । अगर ऊपर-ऊपर से दे जाय तो ये व्रत, नियम, प्रत्याख्यान, त्याग, धर्म व अध्यात्म का रूप दिखाई पड़ते हैं और अन्तरंग से अध्य किया जाय तो ये ही व्रत समाज सुधार कुरीतियों का निवारण, सहअस्तित्व व भाईचारे के ही प्रतीक हैं।

जैन व्रतों के निर्माता तीर्थंकर वाह्य व आन्तरिक भावों को जानते-देखते व समझते थे । परन्तु युगानुकूल परिस्थितियों के अनुसार जन-मानस की भावना व देशकाल की स्थिति को ध्यान में रखकर दि गया उपदेश ही सार्थक होता है इस मनःस्थिति से उस समय अन्याय व अत्याचार का साम्राज्य था । पशु व मनुष्यों की आहुतियां दी जाती थी, स्त्रियों से धार्मिक अध्ययन-अध्यापन व अनुष्ठानों के अधिकार छी लिये गये थे, उनको सड़कों पर बेचा जाता था, शुद्रों को तो समाज में खड़े रहने तक का स्थान नहीं था।

महावीर ने इन सबके विरोध में मार्मिक उपदेश दिये, स्त्रियों को दीक्षा देकर वैदिक सिद्धांतों को आश्चर्यचकित कर दिया, शुद्रों को धार्मिक अधिकार देने के साथ अपने शिष्य बनाए । इस तरह उन्होंने एक नैतिकतावादी, समाजवादी समाज रचना का सिंहनाद किया ।

महावीर यह जानते थे कि हर व्यक्ति साधु न बन सकता है न बनेगा । चतुर्विध संघ की स्थापना में साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका के विभाजन के साथ ही जैन व्रत व आचारों का भी विधान किया । श्रावक-श्राविका सद्गृहस्थ बनकर धार्मिकता के साथ-साथ सामाजिक व राष्ट्रीय कर्त्तव्यों की ओर भी अपना ध्यान केन्द्रित करें, यही प्रतिपादन अपने उपदेशों में किया । यही कारण है कि स्थानांग सूत्र

१० धर्मों के विवेचन में ग्राम धर्म, नगर धर्म, राष्ट्र धर्म, पाखण्ड धर्म, कुल धर्म, गण धर्म, संघ धर्म, श्रुत धर्म, चारित्र धर्म व अस्तिकाय धर्म का वर्णन किया ।[1]

धार्मिक व सामाजिक जागरण के लिए श्रावकाचार को जब हम देखते हैं तो सात व्यसनों का त्याग व बारह व्रत महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं । यही हमें जीवन को नियमित ढंग से जीने की प्रेरणा देने के साथ समाज व राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्यों का बोध कराते हैं । जैनागमों व परवर्ती साहित्य में इस विषयक महत्त्वपूर्ण तथ्य पाये जाते हैं ।

**१– स्थानांग** — **२– समवायांग**
**३– उपासक दशांग** — **४– विपाक**
**५– एवं आवश्यक सूत्र आदि आगमों साथ-साथ** — **६– तत्वार्थ सूत्र**
**७– श्रावक प्रज्ञप्ति**
**८– योग शास्त्र** — **९– रत्नकरण्डक— श्रावकाचार**
**१०–वसुनन्दि श्रावकाचार**
**११–सागार धर्मामृत आदि ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें जैन व्रतों का विस्तार वर्णित है ।**

जैन सूत्रों के मूल स्त्रोत आगमादि ग्रन्थ ही हैं । नागरिक जीवन निर्माण के आधार वे ही ग्रन्थ होते हैं जिनमें कर्त्तव्यों का धार्मिक परिवेश में चिंतन किया जाता हो ।

**सप्त व्यसन और उनकी अनुपयोगिता :—**

सप्त व्यसनों का त्याग जैनाचार का प्रारम्भिक बिन्दु माना जाता है । श्रावकाचार के सभी ग्रन्थों में जुआ, मांस, शराब, चोरी, परस्त्रीगमन, वेश्यागमन व शिकार के स्पष्ट त्याग का विधान है । क्योंकि ये ऐसी बुराईयां है जिनके सेवन करने से व्यक्ति का विवेक कुंठित हो जाता है, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और विवेक कुंठित होते ही अन्य सभी बुराईयां मानव जीवन में प्रविष्ट हो जाती हैं । इन बुराइयों ने सदियों से इस देश की संस्कृति को दूषित किया है । हाल ही में देश की जासूसी करने वाले जिन अनेक लोगों के काण्ड प्रकाश में आये वे सब शराब आदि के व्यसनी थे । पाश्चात्य जगत में दस हजार विद्यार्थियों में से पांच-पांच हजार विद्यार्थियों पर शाकाहार व मांसाहार का परीक्षण करने के उपरांत यह पाया गया कि मांसाहारियों में क्रोध क्रूरता व हिंसादि गुणों का प्राधान्य होता है और शाकाहारियों में क्षमा दया व वीरता की मुख्यता ।[2]

**बारह व्रत :—**

हमारे पूर्वाचार्यों, तीर्थंकरों ने गृहस्थावस्था में रह कर जीवन निर्माण के लिए बारह व्रतों का विधान किया । इनमें ५ अणुव्रत, तीन गुणव्रत व चार शिक्षाव्रत हैं । कहीं-कहीं गुणव्रत व शिक्षाव्रत का संयुक्त नाम शीलव्रत भी पाया जाता है । ये व्रत हमारे सुसमाज की संरचना के रामबाण हैं । इनका यथावत् पालन समाज व राष्ट्र में सुव्यवस्था, सह-अस्तित्व व प्रेम भाव उत्पन्न करा सकता है ।

अहिंसा पहला व्रत है इससे दया व करुणा के भाव जाग्रत होते हैं । इन्हीं को ध्यान में रख कर अतिचारों (व्रत भंग होने के कारण) के माध्यम से यह बात स्पष्ट कर दी थी कि किसी प्राणी को बांधना, पशुपक्षी के अंग छेदना, पीटना, अधिक भार लादना दोष है ।[3] यह वर्तमान के सामाजिक जगत् में भी पूर्ण प्रासंगिक है, सामाजिक दृष्टि से वह क्रूर व राज्य व्यवस्था की दृष्टि से वह अपराधी है ।

---

१– स्थानांग सूत्र-१०/७६०

२– श्रावक धर्म की प्रासंगिकता का प्रश्न-डा. सागरमल जैन. पृ. १४

३– पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा । तंजहा बंधे वहे छविच्छेए अइभारे भतपाण वोच्छेए । उवासकदसाओ सूत्र-४१ उपासकदशांग टीका-पृ. २७, श्रावक प्रज्ञप्ति २५८, रत्नकरण्डक श्रावकाचार ५२, योगशास्त्र-२/५८

असत्य भाषण नहीं करना द्वितीय व्रत है। ग्रन्थों में यह स्पष्ट उल्लेख है कि धार्मिक वातावरण को दूषित करने वाले वचन बोलना-बुलाना, गलत सलाह देना, स्वार्थ हेतु असत्य घोषणा करना, आपत्तीजनक अस्त्र-शस्त्र रखना व्रत भंग के कारण हैं।[1] यह सब वर्तमान समाज व्यवस्था में सटीक बैठता है। समाज व्यवस्था व राष्ट्रहित में व्यवधान इन्हीं के माध्यम से डाला जाता है। पंजाब में हो रहे हत्याकाण्ड, समाज में आपसी वैमनस्य, विरोध ये सब इसके उदाहरण माने जा सकते हैं।

तीसरा व्रत बिना स्वामी की अनुमति कोई वस्तु ग्रहण नहीं करना है। चोरी की वस्तु खरीदना राजकीय नियमों की अवहेलना करना, वस्तुओं में मिलावट करना, करों का बचाव करना धार्मिक नियमों का खण्डन है।[2] यह वर्तमान समाज व्यवस्था का कितना बड़ा अपराध है, कहने की आवश्यकता नहीं है। यदि हर व्यापारी इनका सेवन नहीं करे तो समाज के हर वर्ग को कितना लाभ हो सकता है।

चौथी विचार धारा काम प्रवृत्ति पर मर्यादा रखती है। अपनी स्त्री को छोड़कर बाकी सभी स्त्रियों से संसर्ग का त्याग करना ब्रह्मचर्य सिद्धान्त है।[3] परन्तु इस सैद्धान्तिक बात को छोड़कर मनुष्य जब अन्य रूप में अपना वैचारिक दृष्टिकोण बना लेता है तो बलात्कार, व्यभिचार जैसी भावना सहज ही उजागर हो जाती है। पाश्चात्य जगत में एड्स नामक बीमारी जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर फैल रही है, वह इसी का दुष्परिणाम है। परिवार, समाज व राष्ट्र की शांति एवं व्यवस्था के लिए इसकी उपयोगिता निर्विवाद है।

पांचवीं विचारधारा में सम्पत्ति एवं वस्तुओं को सीमित करने की बात आती है, साम्यवाद की बात आती है और समानता का सिद्धान्त उत्पन्न होता है "जहा लाहो तहां लोहो"। उत्तराध्ययन की यह उक्ति सार्थक ही है कि व्यक्ति का जैसे-जैसे लोभ बढ़ता जाता है, उसकी तृष्णा भी वैसे-वैसे ही बढ़ती जाती है। परिग्रह के कारण समाज में विषमता बढ़ती है क्योंकि यह सीधे-सीधे समाज को प्रभावित करता है। इसका अर्थ यह नहीं कि समाज में लोग पैसा न रखें। समाज के लोग आर्थिक, राजनैतिक व बौद्धिक रूप से अपना-अपना विकास करें क्योंकि जब तक ऐसा नहीं करेंगे धर्म की प्रतिष्ठा इस भूतल पर टिकी नहीं रहेगी। जैनियों के पास पैसा लूट से नहीं मेहनत से आया है।

अर्जन व संग्रह बुरा नहीं है परन्तु जब इसका आधार शोषण या विषमता हो जाता है तब यह समाज व राष्ट्र के लिए जहर हो जाता है। समाज असहयोग करे तो सम्पत्ति का संग्रह करना तो दूर रहा अर्जन करना भी कठिन हो जायेगा। शायद इसी बात को ध्यान में रखकर मार्क्स ने (केपिटल इज द सोसियल पावर) 'पूंजी एक सामाजिक शक्ति है' कहा है।[4]

यह हमारा दुर्भाग्य है कि जब मानवता का एक बड़ा भाग भूख व अभावग्रस्त है, पानी व अनाज

---

१– उपासकदशांग सूत्र १/४२, उपासकदशांग टीका पृ. २८

२– "विरुद्ध नृपयोराज्यं विरुद्ध राज्यमृतस्यातिक्रमोतिक्रमोऽति लंघन विरुद्ध राज्यमिल धनम्" उपासकदशांग टीका पृ. ३१
श्रावक प्रज्ञप्ति टीका पृ. १५८

३– आवश्यक सूत्र पृ. ३२४

४– जिनवाणी-अपरिग्रह विशेषांक पृ. ११७

के अभाव से अकालग्रस्त है वहीं दूसरी ओर वैभव विलास के विशाल प्रदर्शन होते हैं। अमेरिका में अनाज का मूल्य कम न हो इसके लिए लाखों टन अनाज समुन्द्र में फेंक दिया जाता है। दूध की कीमत घटे नहीं इसलिए लाखों गायें काट दी जाती है, यह सब क्या है ? यह सब सांस्कृतिक विकृति है जो समाज व विश्व को खतरा उत्पन्न कराती है।[1]

इसीलिए अपरिग्रह सिद्धान्त को यदि समाज व राष्ट्र के संदर्भ में देखा जाय तो यह न केवल उत्पादन वृद्धि में सहायक होता है वरन् साम्राज्यवाद व आर्थिक हिंसा पर भी रोक लगाता है।

श्रावकाचार के वर्णन में गुणव्रतों का विधान किया गया है। दिशाव्रत नामक गुणव्रत में गमनागमन की सीमा निश्चित करने को कहा गया है जब व्यक्ति देश विदेश की सीमा भूल जाता व क्षेत्र वृद्धि[2] कर लेता है तो सामाजिक वैमनस्य व परिवार का विघटन होता है। तुच्छ १ या २ फीट जमीन के लिए हुए भाई-भाई पिता-पुत्र के संघर्ष हम सब जानते, देखते ही हैं। इसलिए वर्तमान युग में इस व्रत का अत्यधिक महत्त्व है। प्रत्येक व्यक्ति, समाज व राष्ट्र अगर अपनी सीमाएं निश्चित कर ले तो संघर्ष स्वतः ही मिट जायेंगे। पं. जवाहरलाल नेहरू के पंचशील सिद्धान्त में इसी बात पर बल दिया था।

सातवें उपभोग परिभोग व्रत में पन्द्रह कर्मादानों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि व्यक्ति को उन्हीं व्यवसायों को करना चाहिये जिससे समाज व राष्ट्र में विकृति या कुरीति उत्पन्न न हो। श्रावकाचारों में गृहस्थों के १५ निषिद्ध व्यवसाय बताये गये हैं।[3] इनमें जंगल में आग लगाना, जंगल कटवाना, रथादि बनवाकर बेचना, पशुओं को किराये पर चलाना, खान खोदना, हाथी मारकर व्यापार करना, लाख का व्यापार करना, मधु मांस का व्यापार करना, विष का व्यापार करना, बालों का व्यापार करना, अस्त्र-शस्त्र का व्यापार करना, बैल आदि को नपुंसक बनाना। जंगल में आग लगवाना, झील सरोवर को सुखाना, वैश्या आदि से पैसा एकत्र करना शामिल है।

उपर्युक्त व्यापारों में से आज भी ऐसे अनेक व्यापार हैं जिनके करने से समाज पर बुरा प्रभाव पड़ता है, ये हमारे समाज व राष्ट्र की सभ्यता का नाश करने वाले हैं।

इसी तरह अनर्थदण्ड अनर्थकारी हिंसा पर रोक लगाता है। क्योंकि बिना प्रयोजन भूमि खोदना, आग लगाना, हरे पेड़ पौधों को काटना सामाजिक व राष्ट्रीय धरोहर का नाश करना है जो हमारे पर्यावरण संरक्षण के विरुद्ध भी है।

शिक्षावृत्तों में सामायिक, देशावकाशिक, पोषध व अतिथि-संविभाग है। ये आध्यात्मिक जीवन को उन्नत करने के व्रत हैं, सामूहिक तत्वज्ञान व चर्चा, सामाजिक व आध्यात्मिक संबंधों की दृढ़ता का द्योतक होता है। इनमें मानव मात्र के प्रति सेवा, समर्पण, सहयोग, सहभागिता, अभाव ग्रस्त समाज के भाइयों के प्रति अपने कर्त्तव्य का बोध होता है।[4]

---

१– जिनवाणी अपरिग्रह विशेषांक पृ. १२२

२– (अ) 'उड्ढदिसिपमाणाइक्कमे, अहोदिसिपमाणाइक्कमे, तिरियदिसिपमाणाइक्कमे खेतवुड्ढी, सइअन्तरद्धा'
—उवासकदशाओ १/५०

(ब) 'अननुस्मरणं स्मृत्यन्तरा धनम् सर्वार्थसिद्धि-७३०

३– उवासगदशाओ, योग शास्त्र-३/९८-१००, श्रावक प्रज्ञप्ति २८७-२८८, सागार धर्मामृत ५ २१,२३

४– सर्वार्थसिद्धि-७/२१, पुरुषार्थ सोद्धयुपाय-१४३

इस प्रकार जैन श्रावकाचार व उसकी सामाजिकता पर संक्षेप में चर्चा करने के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रावकाचार के सिद्धान्त सामाजिक कर्त्तव्यों के पर्यायवाची हैं। सामाजिक व्यवस्था व धार्मिक सिद्धान्त परस्पर साथ-साथ चलें, इस दृष्टि कोण को ध्यान में रखते हुए ही शायद तीर्थंकरों ने इस प्रकार मनोवैज्ञानिक व्रतों व नियमों का प्रावधान किया होगा। अगर इनका व्यवहारिक जगत में प्रयोग किया जाय तो निश्चय ही हमारा वर्तमान जितना सुन्दर, सुखी, और समृद्ध होगा उससे कहीं अधिक हमारे भविष्य के कर्णधार इस नैतिक वातावरण के आधार पर समाज व राष्ट्र को मजबूत बना सकेंगे।

हमें चाहिये कि हम ऐसे धर्म-समाज की स्थापना करें जो जन-जन तक महावीर के संदेशों को पहुंचाये। अगर हमारा युवा आगे बढ़कर इस पुनीत कार्य में हाथ बंटायें तो निश्चय ही हमारा धर्म उन व्यक्तियों तक भी पहुंचेगा जो जैन होते हुए आज भी इससे अनभिज्ञ हैं।

—शोध अधिकारी, आगम-अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान
उदयपुर (राजस्थान)

## बहाना चिपकने का

□ मोतीलाल सुराना, इन्दौर

उस तेली को नारदजी बार-बार धर्म करनी करने को कहते और वह एक था जो कभी लड़की की शादी की तो कभी लड़के की शादी का बहाना कर जाता और एक दिन वह मर गया। नारदजी ने ज्ञान में देखा कि वह तो इसी घर में बैल बन गया है। बैल से पूछा-अब क्या इरादा है? तो बैल ने नारदजी को कहा-इस घर का परिवार बहुत बड़ा है। यदि मैं रात-दिन मेहनत न करूंगा तो बेचारा परिवार भूखे मर जावेगा और हुआ यह कि परिवार का तो कोई मरा नहीं पर बैल मर गया।

नारदजी को चैन कहां देखा-बैल मरकर इसी घर में कुत्ता हो गया है तो कुत्ते से बोले-धर्म करनी के लिये कुछ सोचा क्या, तो कुत्ते ने जवाब दिया-कल ही पड़ोस में चोरी हो गई थी। मेरे पर पूरी-पूरी जवाबदारी हैं। मैं एक मिनिट भी इधर-उधर जाऊं तो यह घर चौपट हो जावेगा। नारदजी कुछ दिन बाद आये। कुत्ता मरकर सांप बन गया था। सांप से बात चलाई तो नारदजी को टके सा जवाब मिला। देखते नहीं, चूहे कितने पैदा हो गये हैं। सांप ने कहा-मैं इनका सफाया न करूं तो इस घर का दीवाला ही निकल जावे। और थोड़े दिन बाद सांप भी मर गया। नारदजी ने देखा सांप निर्जीव पडा है। घर का सब काम बरकरार चल रहा है। सांप की आत्मा नारदजी से बोली-जितना पाप किया है उससे कहीं ज्यादा धर्म करनी करूंगा तो ही सद्गति मिलेगी और वह आत्मा-पश्चाताप करने लगी। संसारी लोग संसार के पाप के काम को महत्त्व देते हैं तथा सद्कार्य न करते हुए कुछ न कुछ बहाना बना लेते हैं।

☐ नथमल लूणिया

# भाग्यशाली-अभागे

△

> हमारे में से कितने लोग ऐसे हैं जो इन अमूल्य ज्ञान रत्नों से अपने आपको अलंकृत करने में सचेष्ट हैं ? कितने ऐसे हैं, जो इन अनुपम-हीरे-जवाहरातों से अपने अन्तर की जेबें भर कर समृद्ध हो रहे हैं । लगता है हम में से अधिकांश व्यक्ति आलस्य एवं प्रमादवश इन सुलभ आध्यात्म-रत्नों के प्रति न केवल उदासीन ही बने हुए हैं बल्कि इनकी उपेक्षा भी कर रहे हैं और भौतिक कंकड़-पत्थरों में उलझ कर नाहक ही भटक रहे हैं । ऐसी हालत में क्या हम सचमुच 'भाग्यशाली-अभागों' की गिनती में नहीं आ जाते हैं ?

शीर्षक देख कर चौंकने या हैरान होने जैसी बात नहीं है । विश्वास कीजिए 'भाग्यशाली-अभागे' भी होते हैं, और हैं । मैं आकाश पाताल की बात नहीं कर रहा सच पूछिए तो हमारे और आपके बीच ही बहुत से ऐसे महानुभाव मिल जायेंगे जिनको 'भाग्यशाली-अभागों' का खिताब दिया जा सकता है । आप कहेंगे, वाह ! यह कैसे, जो भाग्यशाली हैं, वे अभागे क्यों ? और जो अभागे हैं वे भाग्यशाली कैसे ?

मैं आपसे निवेदन करूं कि आज जिन हीरे, पन्ने और माणक आदि बहुमूल्य रत्नों की राशियां हमें दीख रही हैं उनकी उपलब्धि का इतिहास कितना कष्ट कर एवं श्रम साध्य रहा है, यह हम सभी जानते हैं । बीहड़ जंगलों में अवस्थित ऊंची-२ पर्वत श्रेणियों के मार्ग में दूर-दूर तक फैली दुर्गम घाटियों, अंधेरी गुफाओं एवं पृथ्वी के गर्भ में समायी हुई भयानक खदानों के अगणित चक्कर लगाते-लगाते बड़ी मुश्किल से कहीं एक-आध बड़ी या छोटी चट्टान ऐसी दीख जाती हैं, जिसके अन्तराल में ये बहुमूल्य नीधियां अपना कलेवर छिपाये रहती हैं । फिर इन्हें प्राप्त करके साफ और शुद्ध करना, बारीकी से तराश कर सुघड़ और सलोना रूप देना तो और भी अधिक श्रम-साध्य होता है ।

फर्ज कीजिए, अगर इतने कष्ट साध्य ये बहुमूल्य रत्न हमारे लिए सुलभ हो जाय इनके ढेर के ढेर चौराहे पर पड़े मिल जाय और साथ ही इनसे अपनी जेबें भर-भर कर घर ला सकने की निर्बाध एवं निरापद छूट भी मिल जाय तो निश्चय ही यह हमारे लिए भाग्यशाली होने जैसी बात होगी किन्तु इतना होते हुए भी अगर हम इस सुअवसर से लाभ न उठाएं.आलस्य एवं अकर्मण्यतावश इन बहुमूल्य रत्नों से अपनी जेबें न भरकर कंकड़ एवं पत्थरों में ही उलझे रह जाय, तो क्या यह हमारे लिये दुर्भाग्यपूर्ण बात नहीं होगी? ऐसी स्थिति में, क्या हम 'भाग्यशाली अभागे' नहीं कहे जायेंगे ?

आप कहेंगे - जी, किस दुनिया में रहते हैं, आप ? ऐसे अभागे बसते होंगे कहीं दूर, किसी अज्ञात प्रदेश में । हमारे-इर्द-गिर्द तो ऐसा एक भी अभागा ढूंढने से भी नहीं मिलेगा । अगर कहीं ऐसे नादान का पता भी मिल जाय तो सच मानिए, हम किसी को कानों-कान खबर तक नहीं होने दे और ऐसे कचड़े

सिलाए जिनमें आगे-पीछे अन्दर-बाहर जेवें ही जेवें हों, और उस स्थान पर पहुंच कर दोनों हाथों से अपनी जेवें भर-भर कर अपने घर तक इस द्रुत गति से रन बनाना शुरू करें कि क्या कोई क्रिकेट का खिलाड़ी हमारे मुकाबले में रन बना पायेगा। बस ऐसी निरापद छूट और लूट का अता-पता कोई बता तो दे।

हां तो आइये, मैं आपको स्मरण करा दूं उन बहुमूल्य एवं अलौकिक रत्नों का, जो इन पूर्व चर्चित रत्नों से कई गुना अधिक अनमोल एवं अद्वितीय हैं, साथ ही उनकी उपलब्धि का इतिहास भी अत्यन्त श्रम साध्य रहा है। फिर भी हमारा परम सौभाग्य है कि ये अलौकिक रत्न अत्यन्त सुलभ रूप में हमारे चतुर्दिक विद्यमान हैं। इनसे अपने आपको समृद्ध बनाने की सबके लिए खुली एवं निर्बाध छूट भी है।

हमारे देश, भारत वर्ष की कतिपय मान्य विशेषताओं में से एक है—आध्यात्मिकता। यहां के प्राचीन एवं अर्वाचीन ऋषि मुनियों ने गिरी-कंदराओं में, निर्जन जंगलों एवं दुर्गम पर्वत शिखरों पर वर्षों तक अपना जीवन तपा-तपा कर, त्याग और संयम के सहारे अन्तर की गहराइयों में उतर कर आत्मज्ञान रूपी रत्नों के जिस खजाने को उपलब्ध किया, उसे उन्होंने कभी भी छिपाकर नहीं रखा, बल्कि उस अनुभूत ज्ञान राशि की अगम्यता को सुगम एवं सरल बनाकर जन-समूह में वितरण कर दिया। आत्मगुणों से प्रकाशमान मुक्ता, मणियों की लड़ियां आज भी हमारे आस-पास हर क्षेत्र में लहरा रही हैं और संत जन हमें इनसे लाभान्वित होने के लिए प्रतिदिन सचेत भी कर रहे हैं।

भगवान् महावीर ने साढ़े बारह वर्षों तक सघन वनों, पर्वत शिखरों, भयावनी गुफाओं, निर्जन एवं खतरनाक स्थानों में तप, त्याग, ध्यान एवं मौन का एकाकी जीवन बिताया। अपने साधना काल में उन्होंने अनेकानेक कष्ट एवं उपसर्ग सहे। ठिठुरा देने वाली बर्फीली हवाओं और आग बरसाती लू की लपटों के दुर्धर्ष प्रहारों को उन्होंने नंगे बदन पूर्ण शांति एवं प्रसन्नता पूर्वक सहा। इस प्रकार अतिदुष्कर साधना के बल पर जिन अनुपम-अनमोल आत्म-रत्नों की उपलब्धि उन्हें हुई उनको अपने लिए ही बटोर कर उन्होंने नहीं रखा बल्कि रत्न राशियों के उस आलोक का उपयोग उन्होंने अज्ञानांधकार में भटकते ज मानस को ज्योतिर्मय बनाने में किया।

उनके अनुयायी शिष्यों ने आगे जाकर उ अगाध ज्ञान गरिमा को आगमों के रूप में लिपिब कर सुरक्षित रखा। आज उन पर अनेकों चूर्णि निर्युक्तियां, भाष्य एवं टीका ग्रन्थ आदि उपलब्ध साथ ही आज का भौतिक विज्ञान भी हमारे सू शरीर में होने वाले स्पंदनों तथा लेश्याओं द्वारा निर्मि अन्तर्भावों की झांकियों को यन्त्रों एवं उपकरणों द्वा दृष्टि गम्य बनाने की दिशा में प्रयत्नशील है। सु है, उन्हें कुछ हद तक अपने प्रयासों में सफलता मिली है। आशा है, धीरे-धीरे उनकी उपलब्धि आज के तर्कशील जन-मानस को सर्वज्ञों द्वारा बता गए लोक परलोक एवं आत्मा से सम्बन्धित उन अनुभूत तथ्यों के प्रति आस्थावान बना सकेंगे। इ प्रकार हमारा यह परम सौभाग्य है कि दुर्लभ ए अलौकिक ज्ञान की ये रत्न राशियां हमें अनायास ही सुलभ हो रही हैं और इस दृष्टि से निश्चय ही ह अतिभाग्यशाली हैं।

किन्तु, फिर भी हमारे में से कितने लोग ऐ हैं जो इन अमूल्य ज्ञान रत्नों से अपने आपको अलंकृ करने में सचेष्ट हैं? कितने ऐसे हैं, जो इन अनुपम हीरे जवाहरातों से अपने अन्तर की जेबें भर कर समृद्ध हो रहे हैं। लगता है हम में से अधिकांश व्यक्ति आलस्य एवं प्रमादवश इन सुलभ आध्यात्म-रत्नों के प्रति न केवल उदासीन ही बने हुए हैं बल्कि इनकी उपेक्षा भी कर रहे हैं और भौतिक कंकड़, पत्थरों में उलझ कर नाहक ही भटक रहे हैं। ऐसी हालत में क्या हम सचमुच 'भाग्यशाली-अभागों' की गिनती में नहीं आ जाते हैं?

आज हमारे पठन-पाठन की रुचि एवं दृष्टि भी निम्न स्तर के साहित्य की ओर झुकती जा रही है। यह निश्चय ही एक बहुत बुरा संकेत है। फलस्वरूप दिनों दिन हमारा नैतिक पतन एवं मानवीय गुणों का ह्रास होता जा रहा है। आज प्रायः हर घर में वासनोत्तेजक उपन्यासों, तथाकथित सत्य कथाओं एवं गुमराह करने वाली सिने पत्रिकाओं का ढेर लगा हुआ मिलता है। रेल एवं बसों की यात्राओं में, प्रतीक्षा की घड़ियों एवं फुर्सत के क्षणों में हम ऐसे ही अर्थ-हीन साहित्य में उलझ कर अपने वर्तमान एवं भविष्य को बिगाड़ रहे हैं। भावी पीढ़ी के नैतिक एवं चारित्रिक मार्गदर्शन की दिशा में यह एक सर्वोपरि विचारणीय बात है।

उपवास, एकांतर एवं लम्बी-लम्बी तपस्याएं करना निश्चय ही निर्जरा का मार्ग है। किन्तु यह भी सच है कि बहुत कम लोग ही इस तरह की तपस्याएं करने में सक्षम होते हैं। किन्तु, अनसन रूप तप ही मात्र तप नहीं होता। स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग, सेवा एवं आत्म-निरीक्षण आदि भी तप माने गए हैं। इन से भी कर्मों की निर्जरा होती है। असल में ये ही वे महत्वपूर्ण खदाने हैं, जिनसे हमारे ऋषि मुनियों ने आत्म-ज्ञान रूपी अलौकिक रत्नों का निःसरण किया था। स्वाध्याय के सम्बन्ध में तो यहां तक कहा गया है कि—'नहि अत्थि न वि अहो ही सज्झाय समं तवोकम्म।'

अतः नित्य प्रति सुविधानुसार आगमवाणी अथवा इन पर आधारित सत्-साहित्य का स्वाध्याय के रूप में अनुशीलन कर सहज ही निर्जरा एवं आत्म-विकास के पथ पर बढ़ा जा सकता है। काश, हम यों अपनी सहज उपलब्ध भाग्यशालिता को बरकरार रख पाते।

—नवरंग, लालजी मार्केट, पटना

## वचन भंग से सर्वनाश

❀ मोतीलाल सुराना

वह सिरमौर वंश का वासक था—नाम था मदनसिंह। राजा था तो कुछ न कुछ शोक अवश्य चाहिये। इसे न तो शिकार का शौक था, न निशानेवाजी का। बस शौक था तो एक-नटों के खेल देखना। कभी-कभी जादू का खेल देखने में भी राजा मदनसिंह अपना समय बिताता था।

एक बार जब मदनसिंह के राज्य में नटों का काफिला आया तो शहर के एक-दो प्रमुख लोगों ने राजा के सामने नटी के करतब की तारीफ की। बस फिर क्या था। राजा ने नटों के काफिलों को राजमहल में बुलवाया व नटी के करतब देखे। नटी रस्से पर काफी देर तक नाच करती तथा इधर-उधर और उधर से इधर दौड़कर आती थी। राजा ने सभी दर्शकों के सामने नटी को बुलाया तथा बोले—हम गिरि गंगा के आर-पार रस्सा बंधवा देते हैं। अगर तुम इस पार से उस पार तथा उस पार से इस पार नाचते हुए आ जाओगी तो तुम्हें ईनाम में आधा राज्य दे दूंगा।

राजा की इस अजीब शर्त को सुनकर सभी दरबारी आश्चर्य में पड़ गये, पर किसी की हिम्मत न हुई कि वे इस बात का विरोध करें। नटी नाचते हुए गिरि-गंगा के आर-पार बन्धे रस्से पर गई व वापस पूरा रास्ता पार कर आ रही थी तो आधा राज्य जाते देख राजा ने इशारा किया। एक कर्मचारी ने तलवार से रस्सा काट दिया। नटी नदी में गिरकर मर गई। डूबते हुए नटी ने राजा को शाप दिया कि इस नदी की बाढ़ में तू, तेरा परिवार और तेरा राज्य सब डूब जाएगा। तेरा सर्वनाश होगा।

सचमुच अतिवृष्टि हुई और सर्वनाश हो गया। लोभवश वचनभंग नहीं करना चाहिये।

# लोक कल्याण के संदर्भ में महावीर की साधना

△ डॉ. मानमल कुदाल

△

> महावीर ने जहां तत्व चिंतन का नवनीत हमें दिया वहां आत्म विकास और समाज विकास के मूल मंत्रों को प्रस्तुत कर जीवन की सर्वांगिणता की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया। महावीर ने यह सिद्ध कर दिया कि आत्म-साधना और समाज-विकास के मार्ग एक दूसरे के विरोधी न होकर सहयोगी हैं। सच तो यह है कि आत्म-साधना के पश्चात् ही सामाजिक मूल्यों का सृजन किया जा सकता है।

विश्व के सांस्कृतिक इतिहास में समय-समय पर ऐसे अनेक महापुरुष हुए हैं जिन्होंने मानव को कल्याणकारी मार्ग की ओर चलने को प्रेरित किया है तथा मनुष्य को पाशविक दासता से निकालकर उर्ध्वगामी बनने का साहस दिलाया है। ऐसे व्यक्ति किसी एक देश, जाति, समाज और धर्म की निधि न होकर मानव जाति की सम्पत्ति बन गये। उन्होंने जो कहा वह मानव इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठ के रूप में समभा गया। अतीत में अनेक महापुरुषों का इतिहास काल के कराल गाल में समा गया। फिर भी अनेक परम्पराओं ने ऐसे महापुरुषों की जीवन गाथाओं को आत्मसात् कर आज भी जीवित रखा है। श्रमण परम्परा इनमें से एक है जिसने भारत के प्राचीन महापुरुषों के जीवन और चिन्तन को विरासत के रूप में संजोया है।

इस परम्परा के पुरुषों को अर्हत् एवं तीर्थंकर के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इसमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभ और अन्तिम तीर्थंकर महावीर हुए हैं।

महावीर के समय में भारत की स्थिति बड़ी विषम थी। सामाजिक क्षेत्र में मानव-मानव के बीच दूरी थी। वर्ग भेद का बोलबाला था। मूक प्राणियों के प्रति दया भाव उठ गया था। नारी की स्थिति दयनीय थी। वह दासता में जकड़ रही थी। सामान्य तबके के लोगों का शोषण हो रहा था। धार्मिक स्वतन्त्रता नहीं थी। मानव अधिकार बड़े नाजुक दौर में थे, उनका दिन दहाड़े हनन होता था। व्यक्ति की सत्ता लगभग मिट चुकी थी। सब ओर अराजकता छायी हुई थी अतः जनता अशान्त थी। ऐसे समय में महावीर का जन्म होना मानवता के लिए वरदान सिद्ध हुआ। महावीर के समय में अनेक विचार धाराओं को मानने वाले चिन्तक थे। चिन्तन की विभिन्न मान्यताओं के रहते भगवान् महावीर का तत्व चिन्तन की गहराई में उतरना स्वाभाविक था। सत्य को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखना यह उनकी विशिष्ट उपलब्धि थी।

महावीर को ऐसा लगा कि राज–भवनों में रहकर जनहित की बात करना प्रभावकारी नहीं हो सकता। उसके लिए स्वजनों की परिधि को विस्तृत करना होगा। प्राणीमात्र के कल्याण की बात सोचनी होगी। इसलिए उन्होंने श्रमण दीक्षा ग्रहण की।

महावीर के साधना काल में अनेक उपसर्ग आए पर वे हमेशा शान्त रहे । विरोधियों के प्रति भी उनके हृदय में द्वेष नहीं था । कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उनकी साधना का दीप जगमगाता रहा । अन्ततः महावीर की आत्मा ने लम्बी साधना के बाद अपने स्वरूप के सत्य से साक्षात्कार किया ।

महावीर अब अपनी साधना और चिन्तन की उपलब्धियों को लोक-कल्याण के लिए प्राणी मात्र तक पहुंचा देना चाहते थे । उन्होंने जन सामान्य की भाषा में ही अपना दिव्य उपदेश दिया जिसे अर्धमागधी भाषा (प्राकृत) के नाम से जाना गया है । उनके उपदेशों में जगत के स्वरूप की व्याख्या, आत्मा और कर्म का विश्लेषण, आत्म-विकास के मार्ग का प्रतिपादन, व्यक्ति और समाज के उत्थान की बात तथा हिंसा-अहिंसा का विवेक आदि का विवेचन था । जब राजा-महाराजाओं से उनकी चर्चा होती थी तो वे उन्हें लोक शासन के सूत्र समझाते, जब वे कृषकों, कर्मकारों और व्यापारियों से मिले तो उन्होंने उन्हें जीविकोपार्जन में प्रामाणिक रहने की बात कही । किसी के अधिकार हड़पने-हनन करने से मना किया तथा सदाचार का जीवन जीने की कला सिखायी । वे जब नारी समाज को लक्ष्य कर बोलते तो उसे अपनी शक्ति को पहचानने के लिए प्रेरित करते । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी के विकास की सम्भावनाओं पर प्रकाश डालते । उन्होंने तत्व और धर्म के वास्तविक स्वरूप की व्याख्या कर आत्म कल्याण का मार्ग सभी के लिए प्रशस्त किया । इस तरह महावीर के उपदेशों ने बौद्धिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन को समग्र रूप से प्रभावित किया । उन्होंने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में वैचारिक क्रान्ति का सूत्रपात किया । इसीलिए कहा जाता है—महावीर व्यक्ति नहीं थे, एक विचार थे ।

महावीर ने जहां तत्व चिंतन का नवनीत हमें दिया वहां आत्म विकास और समाज विकास के मूल मंत्रों को प्रस्तुत कर जीवन की सर्वांगिणता की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया । महावीर ने यह सिद्ध कर दिया कि आत्म-साधना और समाज-विकास के मार्ग एक दूसरे के विरोधी न होकर सहयोगी हैं । सच तो यह है कि आत्म-साधना के पश्चात् ही सामाजिक मूल्यों का सृजन किया जा सकता है । महावीर का जीवन इस बात का साक्षी है । उन्होंने अपनी साढ़े बारह वर्ष की ध्यान साधना के परिपूर्ण होने के पहले कोई प्रतिबोध नहीं दिया । वे इस बात के दृढ़ समर्थक प्रतीत होते हैं कि आधारभूत सामाजिक मूल्यों का निर्माण आत्म-साधना के बिना कार्यकारी नहीं होता । अतः उन्होंने अपनी साधना के परिणाम-स्वरूप आत्मानुभूति की । पर वे यहीं रुके नहीं । उनका शेष जीवन सामाजिक समस्याओं से पलायनवाद का न होकर उन समस्याओं के स्थाई और आधारभूत हल को ढूंढ़ निकालने का संघर्ष था । महावीर ने अपने जीवन का अधिकांश भाग सामाजिक मूल्यों के निर्माण में ही लगाया । इतिहास इसका साक्षी है । वे बैठे नहीं, किन्तु चलते ही गये यह था महावीर के जीवन में "स्व" और "पर", "मैं" और "तू" का समन्वय । जो लोग केवल महावीर को केवल आत्मानुभूति का पैगम्बर समझते हैं, वे उनके साथ न्याय नहीं करते हैं । महावीर तो आत्मानुभूति और समाज-सृजन दोनों के जीते-जागते उदाहरण हैं ।

भगवान् महावीर ने व्यक्ति के पूर्ण विकास के लिए एक ओर तो जहां आत्म-विकास का पथ प्रशस्त किया है, वहां दूसरी ओर उन्होंने लोक कल्याण के लिये सामाजिक मूल्यों का सृजन किया । महावीर ने जिन मूलभूत सामाजिक मूल्यों को उद्घाटित किया है—वह हैं:-"अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त ।" ये तीनों मूल्य महावीर के सामाजिक अनुसंधान के परिणाम हैं । आत्म-साधना में महावीर ने लौकिक व्यवस्था के आधारभूत तत्वों की उपेक्षा नहीं की ।

उनका मन कह उठा कि अहिंसा की प्रतिष्ठा मनुष्य-मनुष्य में व्याप्त भेद को अस्वीकृत करने में है। ऊंच-नीच, छुआ-छूत हिंसा की पराकाष्ठा है। प्रत्येक मनुष्य का अस्तित्व गौरवपूर्ण है। उनकी गरिमा को बनाये रखना अहिंसा का सुमधुर संगीत है। समाज में प्रत्येक मनुष्य चाहे स्त्री हो या पुरुष उसे धार्मिक स्वतन्त्रता है। अहिंसक समाज कभी भी वर्ग-शोषण का पक्षपाती नहीं हो सकता। महावीर ने दलित से दलित लोगों को सामाजिक सम्मान देकर उनमें आत्म-सम्मान प्रज्वलित किया। वास्तव में जब महावीर ने हरिकेशी चाण्डाल को अपने गले लगाया तो अहिंसा अपने पूरे रूप में आलोकित हुई। पुरुष के समान स्त्री को जब महावीर ने प्रतिष्ठा दी तो सारा समाज अहिंसा के आलोक से जगमगा उठा। अहिंसा का यह उद्घोष आज भी हमारे लिए महत्वपूर्ण बना हुआ है। समाज में अहिंसा के प्रयोग की परिपूर्णता उस समय हुई जिस समय महावीर ने धर्मचक्र के प्रवर्तन के लिए जनता की भाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। यह महावीर की जनतान्त्रिक दृष्टि का परिपाक था। महावीर जानते थे कि भाषा किसी भी व्यक्ति के लिए उतनी ही महत्वपूर्ण होती है जितना की उसका जीवन। भाषा का अपहरण जीवन का अपहरण है। इसलिए अहिंसा की मूर्ति महावीर जहां जाते वहां ऐसी भाषा का प्रयोग करते जो जनता की अपनी होती थी। महावीर अहिंसा के क्षेत्र में मनुष्य तक ही नहीं रुके। इसलिए वे कह उठे कि प्राणीमात्र अन्ततः एक है इसलिए किसी भी प्राणी को सताना, मारना और उसे उद्विग्न करना हिंसा की पराकाष्ठा है।

महावीर इस बात को भली-भांति जानते थे कि आर्थिक असमानता और आवश्यक वस्तुओं का अनुचित संग्रह समाज के जीवन को अस्तव्यस्त करने वाला है। इसके कारण एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का अपहरण करता है और उसको गुलाम बनाकर रखता है। मनुष्य की इस लोभ वृत्ति के कारण समाज अनेक कष्टों का अनुभव करता है। इसीलिए महावीर ने कहा—आर्थिक असमानता को मिटाने का अचूक उपा है अपरिग्रह। परिग्रह के सब साधन सामाजिक जीवन में कटुता, घृणा और शोषण को जन्म देते हैं। अपने पास उतना ही रखना जितना आवश्यक है, बाकी सब समाज को अर्पित कर देना, अपरिग्र पद्धति है। धन की सीमा, वस्तुओं की सीमा, ये स्व स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए जरुरी है। ध हमारी सामाजिक व्यवस्था का आधार होता है और कुछ हाथों में इसका एकत्रित हो जाना समाज के बहुत बड़े भाग को विकसित होने से रोकना है। जीवनोपयोगी वस्तुओं का संग्रह समाज में अभाव की स्थिति पैदा करता है। ऐसे परिग्रह के विरोध में महावीर ने आवाज उठाई और अपरिग्रह के सामाजि मूल्य की स्थापना की।

मानवीय तथा आर्थिक असमानता के साथ साथ वैचारिक मतभेद भी समाज में द्वन्द्व को जन्म देते हैं, जिनके कारण समाज रचनात्मक प्रवृत्तियों को विकसित नहीं कर सकता। वैचारिक मतभेद मान मन की सृजनात्मक मानसिक शक्तियों का परिणा होता है पर इसको उचित रूप में न समझने मनुष्य-मनुष्य के आपसी मतभेद संकुचित संघर्ष कारण बन जाते हैं और इससे समाज शक्ति विघटि हो जाती है। समाज के इस पक्ष को महावीर गहराई से समझा और एक ऐसे सिद्धान्त की घोष की कि जिससे मतभेद भी सत्य को देखने की दृष्टि बन गई और व्यक्ति समझने लगा कि मतभेद पक्षभेद के रूप में ग्राह्य है, मनभेद के रूप में न वह सोचने लगा कि मनभेद संघर्ष का कारण किन्तु विकास का द्योतक है। वह एक उन्मुक्त मस्ति की आवाज है। इस तथ्य को प्रकट करने के महावीर ने कहा कि वस्तु एकपक्षीय न होकर अ पक्षीय है। इस सामाजिक मूल्य से विचारों का ग्रहणीय बन गया। मनुष्य ने सोचना प्रारम्भ

कि उसकी अपनी दृष्टि भी उतनी ही न होकर दूसरे को दृष्टि भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। उसने अपने क्षुद्र अहं को गलाना सीखा। इस सामाजिक मूल्य ने सत्य के विभिन्न पक्षों को समन्वित करने का एक ऐसा मार्ग खोल दिया जिससे सत्य की खोज किसी एक मस्तिष्क की वपौती नहीं रह गई। प्रत्येक व्यक्ति सत्य के एक नये पक्ष की खोज कर समाज को गौरवान्वित कर सकता है। महावीर ने कहा कि परिसमाप्ति वस्तु के किसी एक पक्ष के जानने में नहीं किन्तु उसके अनन्त पक्षों की खोज में है। इस सामाजिक मूल्य ने वैचारिक अनुचित संघर्ष को समाप्त कर दिया और कन्धे से कन्धा मिलाकर चलाने के लिए आह्वान किया। अनेकान्त समाज का गत्यात्मक सिद्धान्त है जो जीवन में वैचारिक गति को उत्पन्न करता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि महावीर का सारा जीवन आत्म साधना के पश्चात् सामाजिक मूल्यों के निर्माण में ही व्यतीत हुआ। इसी कारण महावीर किसी एक देश, जाति व समाज के न होकर मानव जाति के गौरव के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

—सुखाड़िया विश्व विद्यालय, उदयपुर

संदर्भ ग्रन्थ–भगवान् महावीर : जीवन और उपदेश

## पुरुषार्थ

❀ कर्म तुम्हारे बनाये हुए हैं, कर्मों के बनाये तुम नहीं हो। फिर तुम इतने कायर क्यों हो रहे हो कि अपने बनाये कर्मों से आप ही भयभीत होते हो। कर्म तुम्हारे खेल के खिलौने हैं। तुम कर्मों के खिलौने नहीं हो।

❀ होनहार के भरोसे पुरुषार्थ त्याग देना उचित नहीं है। पुरुषार्थ के बिना कार्य की सिद्धि नहीं होती।

❀ तुम भाग्य के खिलौना नहीं हो वरन् भाग्य के निर्माता हो। आज का तुम्हारा पुरुषार्थ कल भाग्य बन कर सखा की भांति सहायक होगा।

❀ उत्साही पुरुष पर्याप्त साधनों के अभाव में भी अपने तीव्र उत्साह से कठिन कार्य भी साध लेता है।

❀ लोग क्रिया से मुंह मोड़कर पुरुषार्थ हीन बन रहे हैं। स्वयं परिश्रम न करके दूसरों के परिश्रम पर गुलछर्रे उड़ाना चाहते हैं, यही लड़ाई-झगड़े का बीज है।

❀ जिन गुणों को सिद्ध प्राप्त कर सके हैं, उन्हें हम भी पा सकते हैं।

❀ मुक्ति का मार्ग लम्बा है और कठिन भी है, यह सोचकर उस ओर पैर ही न बढ़ाना एक प्रकार की कायरता है।

—आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा.

# जैन धर्म परदेश में

□ श्रीमती गीता जैन

आज वैसे तो जैन धर्म की सही आवश्यकता तो समग्र विश्व को है, खासकर पश्चिम की भौतिक संस्कृति के लिए तो जैन धर्म अति आवश्यक है जिससे कि शस्त्रों के प्रति गलत दौड़ और तीव्र हिंसा के क्रूर प्रयासों से उन्हें बचाया जा सके। दुनिया के 'वॉर मिसाईल्स' के सामने अपनी 'पीस मिसाईल्स' अहिंसा अपरिग्रह और अनेकांतवाद (स्याद्वाद) रखना ही एकमात्र अच्छा उपाय रहा है।

अभी कुछ थोड़े वर्षों पूर्व तक नदी, समुद्र और छोटी-छोटी टेकरियों और पहाड़ियों को लेकर आस-पास के क्षेत्र के लोगों से अरस-परस अनजान होते थे, इसलिए कि आवागमन के साधन तब नहीं थे और न ही रेडियो, वेतार, टेलीफोन आदि की सुविधाएं थीं। परन्तु आज तो सात समुद्र के पार या हिमालय और अल्पस जैसे विशाल पर्वत भी आसानी से लांघे जा सकते हैं। इसी कारण से आज आदमी-आदमी के बीच का व्यवहार सम्पर्क, संस्कृति का आदान-प्रदान सात समुद्र पार भी सहज संभव बन गया है। इससे आदमी-आदमी के अधिक करीब आया है, आदान-प्रदान धर्म संस्कृति आदि का अधिक सम्भव बना है।

आज का युग वैज्ञानिक युग है। आवागमन के तेज साधनों के विकास को लेकर आज की दुनियां अधिक नजदीक आई है। एक दूसरे का अन्तर समाप्त हो रहा है। आज हम हजारों किलोमीटर दूर तक गिनती के समय में पहुंच सकते हैं। मिनटों में हम दूर सुदूर देशों से बात कर सकते हैं। घर बैठे टी. वी., वीडियो के माध्यम से देश परदेश की यात्रा कर सकते हैं। विश्व भर कीघटनाओं से वाकिफ हो सकते हैं, उन्हें निजी आंखों से देख सकते हैं।

वर्षों पूर्व जब अनेक मुश्किलों से परदेश जाया जाता था, तब भी साहसी प्रवासी और व्यापारी दूर-दूर के देश-परदेश में पहुंच जाते थे तो फिर आज जब यात्रा की इतनी सुविधाएं उपलब्ध है तब सहज ही मानव सुलभ प्रवास जिज्ञासा सबको दूर-दूर तक खिंच ही ले जाती है। उद्यमी व्यापारियों ने तो देश परदेश में अनेक स्थानों पर अपनी व्यावसायिक पेढ़ियां, ऑफिस आदि स्थापित कर आयात-निर्यात के अपने व्यापार में अच्छी वृद्धि कर ली है। इस तरह इस तेज जेटयुग का विस्तृत लाभ इन व्यापारियों ने उठाया है जिसके फलस्वरूप आज विश्व के हर कोने में हम भारतीयों को देख सकते हैं। जैन समाज मूलभूत संस्कारों से व्यापारी समाज ही है, इस तरह जैन धर्म भी व्यापार के साथ-साथ विश्व के प्रत्येक भाग तक पहुंचा गया है। व्यापारियों के साथ-साथ जैन शिक्षित युवा वर्ग भी अच्छी आमदनी की उम्मीद में अच्छी तादाद में विदेश पहुंच चुका है। इस तरह आज जैन समाज की काफी अच्छी संख्या परदेश में स्थाई हो गई है। दूसरे समाज की बजाय जैन समाज में शिक्षा का अनुपात काफी अच्छा है। इस दृष्टि से जैन समाज अपनी उद्यम बुद्धि, परिश्रम, सूझबूझ, साहस आदि के कारण साधन सम्पन्न भी है। भगवान् महावीर

के आदर्श गुणों से जैनों में उदारता, सहिष्णुता, प्रेम व दया की भावना का विकास हुआ है इसलिए यह समाज हमेशा ही अन्य सभी के साथ हिल-मिलकर रहता आया है ।

इस तरह देश परदेश से अति तीव्र गति से रहन-सहन, पहनावा, रीति रिवाज, खानपान आदि की लेन-देन अपने आप होती गई । इनके साथ-साथ धर्म का आदान-प्रदान भी शुरू हुआ । जैन धर्म प्राणी करुणा का महान् धर्म है जिसके प्रति अनेक अजैन लोगों का आकर्षित होना स्वाभाविक है । फलस्वरूप अनेक विदेशी अजैनियों ने जैन धर्म का अध्ययन पूर्ण उत्साह से शुरू किया । कइयों ने वहां की लाइब्रेरी से प्राप्त पुस्तकों से अध्ययन किया तो अनेक ने भारत की यात्रा कर इस महान् धर्म के प्रति अपनी अधिक से अधिक जिज्ञासाएं शांत करने का, अधिक से अधिक जैन धर्म का अध्ययन करने का प्रयास किया जिससे कि वे इस धर्म की बारीकियों को समझ सकें, जैन तत्वों को समझ सकें ।

आज जर्मनी की युनिवर्सिटीज में जैन धर्म पर विभाग खुले हैं, जहां पर अनेक जर्मन विद्वान् जैन धर्म पर, जैन ग्रंथों पर अच्छा रिसर्च (शोध-कार्य) कर रहे हैं । न सिर्फ संशोधनकार्य बल्कि जैन धर्म के अलभ्य ग्रन्थों का यत्नपूर्वक जतन भी कर रहे हैं । जापान के लोगों का भी जैन धर्म के प्रति आकर्षण कम नहीं है, वहां भी युनिवर्सिटीज में अध्ययन संशोधन आदि का कार्य हो रहा है । वहां के एक विद्वान् डॉ. टाकोशी शिनोडा अहमदाबाद और पूना में काफी दिनों तक रहे और जैन अनेकांतवाद का अच्छा अध्ययन भी किया । यू. एस. ए. और यू. के. में तो हजारों जैन बसे हुए हैं । वहां वे धर्म की पावन अस्मिता का गौरव तो रखते ही हैं । साथ ही साथ अपने धार्मिक त्योहारों का भी पूरे उत्साह से आयोजन करते हैं । पर्युषण पर्व मनाते हैं, तप, ध्यान आदि भी नियमित करते हैं । वहां भी देरासर, उपाश्रय, लायब्रेरीज, प्रवचन हॉल आदि बने हुए हैं । इस तरह परदेश में बसे लोगों की धर्म भावना दिन पर दिन बढ़ती जा रही है । वैसे भी आज के युग में जहां हथियारों को होड़ में दिन पर दिन क्रूरता बढ़ती जा रही है । वहां मानवीय भावना की श्रेष्ठता, करुणा का भी उदय हो रहा है । इसी के फलस्वरूप वहां के लोगों में जैन धर्म के प्रति भूख बढ़ती ही जा रही है । तो दूसरी तरफ इस मामले में उनकी बढ़ती हुई मुश्किलें भी ध्यान में आ रही हैं ।

जो लोग भारत से वहां जाकर बसे हैं उन्हें तो अपनी मातृभाषा और जैन धर्म का ज्ञान है, श्रद्धा भी है और उनमें से काफी लोग तो जैन तत्वज्ञान से भी अवगत होते हैं । वहां बसने के बाद उनके यहां जनमी संतानों में उस नई पीढ़ी में अपनी संस्कृति, अपनी मातृभाषा और तत्वज्ञान के बारे में काफी अज्ञान होता है । मातृभाषा के अभाव में उनका सम्पर्क माध्यम ही टूट जाता है जो काफी चिंताजनक है । परदेश निवासी जैन समाज के लिए अपनी धर्म संस्कृति-तत्वज्ञान की रक्षा और आज के अति भौतिकवादी के सामने पुरातन अध्यात्मवाद की रक्षा करना एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी का काम है । हालांकि वहां का प्रवासी जैन समाज उसके लिए पूर्णतया सजग है, चिंतित भी है और उसी के फलस्वरूप वे लोग वहां पर अधिक सक्रिय बने हैं । वे अब प्रतिवर्ष भारत से जैन विद्वानों को, तत्वचिंतकों को, धर्मप्रचार, तत्वज्ञान एवं धर्म परिचय वगैरा कार्यों के लिए स्वयं प्रेरित होकर आमंत्रित करते रहते हैं । उनके लिए तमाम आने-जाने की व्यवस्था आयोजन आदि भी करते रहते हैं जिससे कि उनकी भावी पीढ़ी को धर्मदर्शन मिलता रहे ।

मुनि श्री सुशील कुमारजी, श्री चित्रभानुजी, डॉ. हुकुमचन्द भारिल्ल, डॉ. कुमारपाल देसाई आदि अनेक विद्वान् वहां की भूमि पर जैन धर्म का ज्ञान

ज्योति द्वारा धर्मगंगा का प्रचार कर रहे हैं । उन्हें इस पावन यज्ञ में सफलता मिले, केवल इतनी शुभेच्छा देकर क्या हम हमारा फर्ज पूरा समझेंगे ? भारत के जैन समाज का भी इस मामले में बहुत बड़ा फर्ज है । यहां के धर्म प्रेमी लोग इस पुनीत कार्य में तन-मन-धन से सहयोग हेतु तत्पर रहने चाहिए । यहां के विद्वानों को चाहिए कि वे वहां के लिए धर्म प्रचार हेतु साहित्य, प्रवचन आदि का सहयोग करें जिससे कि जैन संस्कृति का प्रचार व जतन हो सके ।

देश–प्रदेश में बसे जैन समूह अगर संगठित रूप से, योजनाबद्ध तरीके से प्रयास करेंगे तो काफी अच्छा व उपयोगी कार्य हो सकेगा । कारण कि भारत की तरह वहां अभी तक 'गच्छ' साम्प्रदायिकता की भावना का विस्तार नहीं हुआ है इसलिए वहां 'गच्छ' फिरकों के भेद-भावों का असर नहीं है । वहां के सभी जैन मिल-जुल कर आपसी स्नेहभाव से रहते हैं । वहां की भावना, जैन यानि जैन । इसी परिभाषा से वहां जैन धर्म की अधिक उत्तम सेवा हो रही है । वहां की औरतें शिक्षित हैं इसलिए ऊपरी क्रिया काण्डों की बजाय विशेष तत्वज्ञान में रुचि लेती हैं जिससे छोटे साम्प्रदायिक भेदभाव नहींवत हैं, जिससे एकता का विशाल दृष्टिबोध मिलता है, उनमें जैन तत्वज्ञान के मर्म को समझने, जानने की तीव्र इच्छा देखने को मिलती है । 'क्रमबद्ध पर्याय' या 'नय चक्र' जैसे गूढ़ विषयों की जानकारी भी वे प्राप्त करना चाहती हैं । जैन संस्कृति व तत्वज्ञान की सुरक्षा के लिए वे भारतवासी जैनों से भी अधिक विशेष आतुर होती हैं बल्कि अपने धर्म की सही कीमत उन्हें प्रदेश में ही समझ में आती है, यह एक उज्ज्वल पक्ष है ।

वहां के जैन जैनधर्म की पुस्तकें भारत से मंगाते हैं, उनका पठन-पाठन व चिन्तन मनन करते हैं । धर्म साहित्य द्वारा हम वहां के जैन समाज के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं, यह सभी जानते हैं कि धर्म साहित्य कितना प्रभावशाली माध्यम हो सकता है जिसकी पकड़ बहुत गहरी व दूरगामी होती है तो वैसे साहित्य को प्रदेश के जैन समाज हेतु विशेष रू‍ से तैयार कराने की जरूरत है । वहां के स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों के लिए उनकी समझ योग्य सरल भाषा में वैसा साहित्य तैयार कराने की खास जरूरत हैं । साथ ही साथ चित्रकथाओं द्वारा भी धर्म साहित्य का सबल आकर्षक माध्यम तैयार कराके लाखों की संख्या में वहां भेजने की जरूरत हैं । बचपन से ही शिक्षा के साथ-साथ इस माध्यम द्वारा प्रदेश में बसने वाले उन जैन बालकों को धर्मज्ञान दिया गया तो वह उनके बाल संस्कारों को और अधिक मजबूत करेगा ।

आज वैसे तो जैन धर्म की सही आवश्यकता तो समग्र विश्व को है, खासकर पश्चिम की भौतिक संस्कृति के लिए तो जैन धर्म अतिआवश्यक है जिससे कि शस्त्रों के प्रति गलत दौड़ और तीव्र हिंसा के क्रूर प्रयासों से उन्हें बचाया जा सके । दुनियां की 'वॉर मिसाईल्स' के सामने अपनी 'पीस मिसाईल्स' अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकांतवाद (स्याद्वाद) रखना ही एकमात्र अच्छा उपाय रहा है ।

श्री चित्रभानुजी की प्रेरणा से जैन मेडिटेशन इंटरनेशनल सेन्टर की न्यूयार्क, पीट्सबर्ग, पेनोसिल्वानिया, केनेडा और बोस्टन में स्थापना हुई है । उन्होंने वहां के जैन धर्म प्रेमियों को भारत की जैन तीर्थ यात्राएं कराके संस्कृति प्रचार व दर्शन का महत्वपूर्ण काम भी किया है । वे निश्चित व ठोस प्रयासों द्वारा धर्म रक्षा के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान कर रहे हैं । समय आ गया है कि हम भी यहां रहते हुए वहां के प्रवासी जैन बंधुओं के लिए इसी तरह ठोस प्रयासों द्वारा सहयोग कर सकते हैं । हमें अपने बुजुर्गों द्वारा भौतिक सम्पत्ति के साथ-साथ धार्मिक संस्कारों का उत्तराधिकार मिलता आया तो इसी तरह का धार्मिक उत्तराधिकार आज समग्र जैन पीढ़ी को अपनी आने वाली पीढ़ियों

सुपुर्द करना है और यह उत्तराधिकार धार्मिक नैतिक आध्यात्मिक संस्कारों द्वारा ही दे सकते हैं। जिस तरह हमें पिछली अनेक शताब्दियों से भगवान् महावीर का पावन सन्देश मिलता आया है, ठीक वही परंपरा हमें भी आगे जारी रखनी है। भारत में सामाजिक वातावरण द्वारा बालकों को धार्मिक संस्कार, उपासना और सात्विक निरामिष भोजन आदि के मिलते ही रहे हैं परन्तु परदेश में बसने वाले बच्चों में ये संस्कार डालने की जिम्मेदारी हमारी है जिसकी उपेक्षा करने से हम सभी धर्म दोष के भागी बनेंगे। एक पीढ़ी की उपेक्षा भावी अनेक पीढ़ियों तक पहुंचेगी जो अक्षम्य होगी इसीलिए हम सभी को समयसर सचेत होना जरूरी है।

परदेश में प्रति सप्ताह शनि-रविवार को दो छुट्टियां होती हैं, जिसमें की एक छुट्टी वे अपने आराम मनोरंजन या सामाजिक व्यवहार कार्यों हेतु उपयोग करते हैं। वहां जो स्थान-स्थान पर प्रवचन हाल वगैरा बना दिए जाएं तो छुट्टी के दूसरे दिन का वे लोग इस धर्म कार्य हेतु उपयोग कर सकेंगे। उस दिन वहां इकट्ठा होकर प्रवचन भक्ति संगीत, स्वामी वात्सल्य, तत्व चर्चा, शास्त्रोक्त माहिती, इतिहास, कला दर्शन ओडियो–विडियो प्रवचन, वीडिओ आदि का आयोजन भी कर सकते हैं जिससे कि उनमें सतत धर्म संस्कार जाग्रत रह सके। श्री तीर्थंकरों, जैन महानुभावों, श्रेष्ठियों, साधु महाराजाओं के जीवन चरित्र, दीक्षा महोत्सव, पर्युषण उत्सव, वगैरा की फिल्म तैयार करके हम उन्हें भेज सकते हैं। आज के नए उपलब्ध वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करना हमारा फर्ज है और समाज को उसके लिए विशेष प्रवासी धर्म बन्धुओं के लिए करना चाहिए।

इसी तरह वर्ष में एक दो बार आस-पास नजदीक के सभी शहरों की जैन प्रजा का सामूहिक मिलन आयोजित करना चाहिए और उसके लिए उपरोक्त प्रचार सामग्री साहित्य साधनों का अधिक से अधिक उपयोग करने के लिए हमें ये साधन वहां भेजने चाहिए। भारत की जैन संस्थाओं को अपने यहां से बड़े-बड़े विद्वानों को वहां भेजना चाहिए, उनके कार्यक्रम आयोजित कर अथवा उनके प्रवचनों के ओडियो विडियो केसेट्स भेज कर धर्म जाग्रति का काम करना चाहिए।

उनके मार्ग दर्शन हेतु अमुक प्रशिक्षित व्यक्तियों को कायमी रूप से वहां भेजने की व्यवस्था की जाय ताकि उनके माध्यम से यह धर्मज्ञ स्थायी रूप से जारी रह सकेगा। उनके निर्वाह खर्च की जिम्मेदारी समाज को उठानी चाहिए। वे वहां की भाषा के जानकार हो साथ ही वहां की भाषा में ही प्रचार साहित्य तैयार कराया जाय, यह जरूरी है। ये मार्गदर्शक प्रशिक्षित विद्वान् जैन साहित्य इतिहास, कला तत्वज्ञान नियमों आदि से सुपरिचित होने चाहिए।

वहां के बच्चों को सामान्यतया तीन महीनों का अवकाश भी होता है। छोटी-छोटी टुकड़ियों में उन बच्चों को भारत यात्रा के लिए बुलाना चाहिए। यहां उनके लिए धार्मिक शिविरों के साथ ही साथ जैन तीर्थ यात्रा धामों की प्रवास व्यवस्था भी करनी चाहिए जिससे कि अपनी धर्म संस्कृति का प्रत्यक्ष ज्ञान व दर्शन उन्हें मिल सके। जैन संस्थाओं, सांस्कृतिक केन्द्रों की मुलाकात और साधु महात्माओं के प्रत्यक्ष दर्शन–प्रवचन आदि उन्हें मिल सके जिससे कि उन्हें धर्म के सही स्वरूप से अवगत कराया जा सके। वहां के बच्चों को अंग्रेजी के सिवाय दूसरी भाषा का ज्ञान लगभग नहीं के बराबर ही होता है, अतः इस बात को भी हमें ध्यान में रखते हुए ही प्रयास करने चाहिए।

इसके लिए एक ही मार्ग है, जैन तत्वज्ञान का सार, अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में तैयार करना चाहिए जो कि वहां के बच्चों को सिखाया जा सके। यहां के धर्मगुरु विद्वानजन और वहां भेजे गये अपने प्रशिक्षित मार्गदर्शक इस कार्य को काफी सफलता से

कर सकेंगे जिससे उनके लिए धर्म समझना काफी सरल और सुगम होगा और बालक पूरे उत्साह से सीखेंगे और ग्रहण कर सकेंगे।

अमुक परदेशी जैन भारत में धर्मज्ञान, तत्वज्ञान आदि की जिज्ञसा हेतु आते हैं तो उन्हें हमें अपने यहां आवास-निवास, शिक्षण, साहित्य, लायब्रेरी ग्रन्थों आदि की सहुलियतें देनी चाहिए और इससे भी आगे जाकर जरूरत पड़ने पर खर्च तक का सहयोग देना चाहिए कि वे अपने थोड़े आवास समय के दरम्यान अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकें। वे यहां से ज्ञान साधना लेकर प्रदेश में हमारे **धर्मदूत का** महत्वपूर्ण कार्य कर सकेंगे। आज तो विदेश की भूमि पर जैन देरासर भी स्थापित हुए हैं और अन्य जैन सेन्टर्स भी बन चुके हैं जिसके लिए प्रतिभा सम्पन्न एवं शिक्षित जैन बन्धुओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनके इन प्रयत्नों में अधिक शक्ति से सहयोग देना यहां के समाज का प्रथम फर्ज है जिसे पूरा करना ही चाहिए।

इस सम्बन्ध में अन्य मित्रों के साथ जब भी चर्चाएं होती हैं, तब सुझाव सूचना तो सभी को पसन्द आते हैं, परन्तु एक ही बात पर जाकर चर्चा अटक जाती है कि **'ये सब कौन करेगा ?' 'कौन जिम्मेदारी लेगा ?'**

अरे भाई—यह कोई अकेले दुकेले आदमी का काम नहीं है। इसे तो संगठन द्वारा ही पूरा किया जा सकता है। आज का युग ही संगठन का है [illegible] काम पहले कभी राजा-महाराजाओं द्वारा धन व [illegible] से होता था, आज वह शक्ति किसी व्यक्ति में [illegible] बल्कि उससे भी अधिक संगठन में होती है। [illegible] से सम्बन्धित **जैन श्रेष्ठीजन ही वैसे** राजा-महारा[illegible] **का काम कर सकते हैं।**

अगर सभी ने तय कर लिया, संस्थाओं ने [illegible] एक कर्त्तव्य मान कर अपनी प्राथमिक प्रवृति का [illegible] दे दिया तो फिर क्या मुश्किल है? विद्वान, [illegible] महात्मा, साहित्य आदि सभी उपलब्ध हैं, [illegible] प्रचार का माध्यम तैयार करना वहां के लिए प्रशि[illegible] क्षित विद्वान्, मार्गदर्शक आदि भेजना, ये सभी का[illegible] आसानी से पूरे हो सकेंगे। जिसके फलस्वरूप [illegible] हमारे धर्म के संस्कार हमारी अपनी ही भावी पी[illegible] में गहरे उतरेंगे—साथ ही साथ अन्य परदेशी जिज्ञासु[illegible] को धर्म दीक्षा, धर्मज्ञान दिया जा सकेगा अन्य[illegible] उनके धर्म भ्रष्ट होने का संस्कार भ्रष्ट होने [illegible] जिसकी कि आज के भौतिक युग में पूरी सम्भाव[illegible] है—**का दोष केवल हमारी अकर्मण्यता** को होगा।

आखिर तो यह सब हमारी-आपकी-सभी [illegible] सक्रियता पर ही निर्भर करेगा, वही हमारी सफ[illegible] का मापदण्ड होगा—**तो संकल्प करें उस धर्म** [illegible] **का, तैयार होकर दूसरों को तैयार करें,** धर्म के [illegible] **धर्ममेघ कार्य में।** □
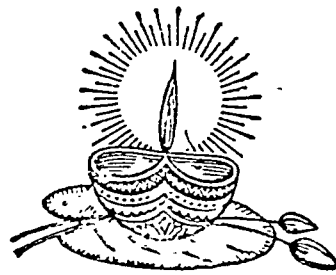
# राष्ट्रीय एकता में जैन व्यवसायियों का योगदान

❀ प्रो. सतीश मेहता

△

वर्तमान समय में हमारे राष्ट्र में अनेक जैन व्यवसायी हैं जो राष्ट्रीय एकता को कायम करने एवं मानव को दानवों से मुक्ति प्रदान करने में सहायक हैं। जैन व्यवसायी पूरे देश में अर्थात् आसाम, पं. बंगाल, बिहार, गुजरात, उड़ीसा, कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, पंजाब उत्तरप्रदेश आदि अनेक राज्यों में (व्यापार, वाणिज्य, उद्योग, पेशा) व्यवसाय कर रहे हैं और व्यवसाय से प्राप्त लाभ का उपयोग न केवल स्वयं ले रहे हैं बल्कि वे इस लाभ का उपयोग मानव मात्र के लिए अर्थात् मानव कल्याण के लिए कर रहे हैं।

भारत एक विशाल देश है। विशाल देश होने के कारण हमारे देश में अनेक प्रकार की [प्रा]कृतिक, भौगोलिक एवं सामाजिक विविधता देखने को मिलती है। देश में विभिन्न धर्म व भाषाएं है, तथापि [भा]रतीय जनजीवन में एक मौलिक तथा आधारभूत एकता विद्यमान है। इस प्रकार का मूल स्रोत भारतीय [सं]स्कृति है। "विभिन्नता में एकता" भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र रहा है। भारतीय विचारकों ने प्राचीन [का]ल से ही भारत की आधारभूत एकता की कल्पना की थी। उन्होंने जीवन व उसकी समस्याओं के प्रति [स]मान दृष्टिकोण तथा सार्वभौम नैतिक एवं आध्यात्मिक आदर्शों की स्थापना की थी।

हमारी संस्कृति में मानव-कल्याण की भावना पर बल दिया गया है। व्यवसायी भी मानव [क]ल्याण पर ध्यान देते हैं और राष्ट्रीय एकता में सहायक होते हैं क्योंकि ये मानव के पांच दानवों से मुक्ति [प्र]दान करने में सहायक होते हैं—अर्थात् आवश्यकता, बीमारी, अज्ञानता, गन्दगी और बेकारी को दूर करने [में] महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि ये दानव देश में रहेंगे तो राष्ट्रीय एकता की बात सोचना ही संभव [न]हीं होगा।

किसी राष्ट्र का विकास उस देश के व्यवसायियों पर निर्भर करता है एवं व्यवसायी राष्ट्र की [रच]ना के सूत्रधार कहे जा सकते हैं। व्यवसाय का उद्देश्य भले ही लाभ कमाना प्रमुख रहा हो परन्तु [ब]दलते हुए समय व प्रतिस्पर्धा के युग में लाभ तक सीमित न रहकर सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करना [ही] उनका मुख्य दायित्व है। अर्थात् सेवा करते हुए, मानवीय दृष्टिकोण रखते हुए लाभ कमाना। आज [व्य]वसायी—ग्राहक, अंशधारी, पूर्तिकर्ता, सरकार, राष्ट्र और स्थानीय समुदाय (समाज) के प्रति दायित्वों को [पू]रा करते हुए व्यवसाय करता है और राष्ट्रीय एकता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

वर्तमान समय में हमारे राष्ट्र में अनेक जैन व्यवसायी हैं जो राष्ट्रीय एकता को कायम करने [ए]वं मानव को दानवों से मुक्ति प्रदान करने में सहायक हैं। जैन व्यवसायी पूरे देश में अर्थात् आसाम, [पं.] बंगाल, बिहार, गुजरात, उड़ीसा, कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, पंजाब, उत्तर प्रदेश आदि अनेक राज्यों

में (व्यापार, वाणिज्य, उद्योग, पेशा) व्यवसाय कर रहे हैं। और व्यवसाय से प्राप्त लाभ का उपयोग न केवल स्वयं ले रहे हैं बल्कि वे इस लाभ का उपयोग मानव मात्र के लिए अर्थात् मानव कल्याण के लिए कर रहे हैं।

जैन व्यवसायियों ने व्यवसाय से प्राप्त लाभ से अनेक ट्रस्ट, पुस्तकालय, स्कूल, कॉलेज, धर्मशालाएं, वाचनालय औषधालय, सेवा संस्थान स्थापित कर लोक कल्याण में उल्लेखनीय योगदान दिया है। जैसे—महावीर विकलांग सेवा समिति, महावीर इन्टरनेशनल आदि आदि।

जैन व्यवसायियों ने आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में अपना योगदान देकर महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में सहयोग दिया है।

जैन शास्त्रों में उल्लेखित है कि—जैन धर्म के आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव दीक्षा से पूर्व भारत में सर्व प्रथम असि, मसि, कृषि, और शिल्प जैसे लौकिक कर्मों के जनक माने जाते हैं और उन्हीं के पुत्र भरत के नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा।

असि कार्यकर्ता क्षत्रिय; मसि कार्यकर्ता ब्राह्मण और कृषि कार्यकर्ता वैश्य कहलाये। तीनों ही कर्मों में जिनकी स्वाभाविक प्रवृति और गति नहीं थी वे कर्मकार शुद्र कहलाये। आदि तीर्थंकर ने इन चारों ही वर्णों को समान माना और ऊंच-नीच का भेद नहीं रखा।

आज के युग में धन कमाने की प्रतिस्पर्धा चल रही है और देश में व्याप्त बेरोजगारी बढ़ रही है। ऐसे समय में जैन व्यवसायियों ने जाति-पांति के भेदभाव व ऊंच-नीच की भावना को दूर कर सभी को चिकित्सा, शिक्षा, रोजगार, प्रोत्साहन (छात्रवृति, पुरस्कार) प्रदान किया है।

भारत की आर्थिक समृद्धि में आरम्भ से ही जैन व्यवसायियों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका रही तथा वर्णों के जातीय स्वरूप ग्रहण करने पर भी जैन समाज ने व्यापार, वाणिज्य, कृषि आदि सभी की सर्वांगीण वृद्धि की है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि देश की आर्थिक स्थिति और समृद्धि के प्रमुख स्तम्भ जैन देश के हर भाग के आर्थिक क्षेत्रों के संयोजक व संचालक रहे हैं।

भारत का प्रथम जगत सेठ जो राजस्थान की ही देन था। नागौर के इस सेठ का उड़ीसा, बंगाल विहार के अर्थतन्त्र पर पूर्ण प्रभुत्व था। देश के अनेक पूर्वी राज्यों में इनके व्यवसाय का जाल बिछा हुआ था। यह सेठ वंगाल के नवाव सिराजुद्दौला की भी समय-समय पर सहायता करता था। यह अपने समय में विश्व का प्रमुख सामुद्रिक व्यापारी था।

दोशी गोत्र के चित्तौड़ के वैश्य व्यापारी तोलाशाह का व्यापार वंगाल व चीन तक होता था। इनका चीन में भी व्यवसाय का जाल-सा बिछा हुआ था। तोलाशाह के पुत्र कर्माशाह ने गुजरात के वादशाह को विपत्ति के समय लाखों रुपये व लाखों का कपड़ा देकर सहयोग दिया इसी तरह-इतिहास में अनेक उदाहरण जैन व्यवसायियों के मिलते हैं जो राज्य की समृद्धि, प्रगति व एकता के प्रतीक हैं।

यदि हम राजस्थान राज्य की तरफ नजर डालें तो ज्ञात होगा कि राजस्थान के वाहर भाग्य आजमाने जाने वाले व्यापारियों एवं साहूकारों में जैन साहूकारों की संख्या अधिक रही। सुदूर अनजाने प्रदेशों में जाना और वहां वसना सरल काम नहीं था फिर भी जैन साहूकारों ने अद्भुत साहस का परिचय दिया। वंगाल, विहार, आसाम, मद्रास आदि प्रान्तों में अनेक प्रसिद्ध जैन गद्दियों की स्थापना हुई। प्रारम्भ में ये लोग वेनियन हुए। फिर मुनीम और दलाल हुए। किन्तु वर्तमान में हम उन्हें बैंकर, प्रमुख उद्योग

के बड़े व्यापारी, प्रधान जूट बेलर, अग्रिम पंक्ति के लोहे के व्यापारी, चाय बागानों के स्वत्वाधिकारी के रूप में देखते हैं। साथ ही साथ ऐसे अनेक जैन परिवारों का उल्लेख मिलता है जो कि एक लोटा-डोर लेकर कमाने के लिए बाहर निकल पड़े और हजारों मील की दूरी तय करके अनजाने इलाकों में बस गये और वहां व्यापार-वाणिज्य द्वारा अच्छी सम्पत्ति अर्जित की और उन इलाकों में जैन धर्म का आलोक भी फैलाया।

जैन व्यवसायियों द्वारा विभिन्न उद्योगों की स्थापना की गई है, जिनमें प्रमुख है सूती वस्त्र, जूट, सीमेंट, वनस्पति घी, कागज, ऊन, पाईप, फिल्म, मशीनरी पार्ट, घड़ियों के पार्टस, चाय, अफीम, रसायन, एग्रो उद्योग, हीरे, जवाहरात आदि-२। जैन व्यवसायियों द्वारा स्थापित विभिन्न उद्योगों में ऊंच-नीच व वर्ग भेद से हटकर सभी को रोजगार प्रदान किया गया है। साथ ही साथ सभी जाति एवं धर्मों के लोग साथ उठते-बैठते व कार्य करते है। इससे-इनमें सहयोग एवं एकता की भावना का विकास होता है। उद्योग के कारण ही तो सभी एक जगह एकत्र हुए है अतः यहां जाति व धर्म से ऊपर उठकर राष्ट्र को प्राथमिकता देते हुए कार्य किया जाता है। अधिकांशतः समाज-उत्थान के कार्य भी उद्योगपतियों द्वारा किये जाते हैं। अनेक ऐसे उद्योग है जिनके मालिक व संचालक जैन होने के बावजूद भी सभी धर्मों के प्रतीक विविध देवी-देवताओं के मन्दिर, मठ, गुरुद्वारा आदि एक ही स्थान पर एक साथ उद्योग के परिसर में स्थापित किये हैं जो राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है। उद्योगों की स्थापना से राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ-साथ गरीबी-निवारण व राष्ट्रीय समृद्धि बढ़ी हैं।

देश के प्रमुख उद्योगपतियों व व्यवसायियों में प्रमुख है साहू श्रेयांस प्रसाद जैन, शांति प्रसाद जैन, अशोक कुमार जैन, खेलशंकर दुर्लभजी, जवाहरलाल मुणोत, गणपतराज बोहरा, सरदामल कांकरिया, मोहनमल चोरड़िया, छगनमल मूथा, गुमानमल चोरड़िया, सुरेन्द्र रामपुरिया, शिखरचन्द चौधरी, चुन्नीलाल मेहता, किशनचन्द बोथरा, जुगराज सेठिया, रिखबचन्द बैद, भंवरलाल बैद, दीपचन्द भूरा, जयकुमार लिग्गा, भंवरलाल बांठिया, जगदीशराय जैन, अमृतलाल जैन, हरिभाई कोठारी, हरीशचन्द जैन, ज्ञानचन्द कोठारी शान्ति भाई कोठारी, सुन्दरलाल कोठारी आदि। साहू जैन द्वारा १९६३-६४ में नियंत्रित कम्पनियां २६ थीं जिनकी प्रदत्त पूंजी ६० करोड़ रु. व सम्पत्तियां ६७.७ रु. करोड़ थी जो दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ी हैं। अतः हम यह कह सकते हैं कि जैन व्यवसायियों द्वारा स्थापित उद्योग राष्ट्रीय एकता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

जैन धर्म लोक धर्म है। इसके सिद्धांत लोक-कल्याण की भावना के प्रतिबिम्ब हैं। भगवान् महावीर ने लोक-सेवा को महान् धर्म बतलाया था। उन्होंने अहिंसा को परम धर्म कहा। महावीर ने कहा—'जीओ और जीने दो।' इस कथन के अनुसार प्रत्येक समर्थ, शक्तिवान एवं सम्पन्न का यह पवित्र कर्त्तव्य है कि वह समाज के असहाय, पीड़ित, अभावग्रस्त लोगों की सहायतार्थ अपनी शक्ति व धन का सदुपयोग करे और परमार्थ को जीवन में आवश्यक समझे।

जैन धर्म में अध्ययन, मनन, स्वाध्याय चिन्तन आदि को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। ज्ञान का समुचित प्रकाश पा कर ही मानव अपने स्वरूप को पहचान सकता है। अपने को पहचान कर और पाकर ही मानवतात्मा मुक्ति की राह पकड़ सकता है। जैन धर्म का प्राणी मात्र के लिए निर्दिष्ट पथ है स्वप्रयत्नों से आत्मा को क्रमशः ऊर्ध्वगामी बनाते हुए परम लक्ष्य को प्राप्त करना, कर्म-मुक्त होना, स्वयं शुद्ध प्रबुद्ध परमात्मा बन जाना और कहना न होगा इस लक्ष्य की प्राप्ति का प्रथम सोपान आधारभूत सोपान 'शिक्षा' है, ज्ञान है।

इसलिए जैन व्यवसायियों द्वारा राष्ट्र के विविध भागों में अनेक शिक्षा-संस्थाओं का निर्माण व संचालन, पुस्तकालयों, वाचनालयों की स्थापना व संचालन, अध्ययनरत छात्रों की सुविधा के लिए छात्रावासों का संचालन, साहित्य का प्रणयन व प्रकाशन, स्वाध्याय, मनन व चिन्तन के लिए अन्य धार्मिक व सार्वजनिक संस्थाओं की स्थापना,शास्त्र व सत् साहित्य के पठन व श्रवण की परम्परा, ज्ञान गोष्ठियों का आयोजन, जिनका बिना भेदभाव के सभी लाभ उठा सकते हैं। शिक्षण शिविरों का आयोजन आदि अनेक प्रवृत्तियां हैं जिनके माध्यम से जैन व्यवसायी देश में व्याप्त अज्ञानान्धकार को नष्टकर ज्ञान की समुज्जवल प्रभा विकीर्ण करता रहा है। इनमें प्रमुख है—जैन इन्जीनियरिंग कालेज मद्रास, जैन स्कूल कलकत्ता, दिल्ली, जैन सुबोध कालेज, वीर वालिका महाविद्यालय जयपुर, रामपुरिया कॉलेज व रामपुरिया एम. वी. ए. इन्स्टीट्यूट, जैन कॉलेज बीकानेर तेरापन्थ महाविद्यालय राणावास, विश्वभारती लाडनू, पं. उदय जैन महाविद्यालय कानोड़ (उदयपुर), श्री थानचन्द मेहता कला एवं उद्योग संस्थान राणावास आदि आदि। प्राइमरी, सैकण्डरी, हायर सैकण्डरी विद्यालय तो हर क्षेत्र में जैन व्यवसायियों की प्रमुख भूमिका रही है। इन विद्यालयों, महाविद्यालयों में सभी जाति के छात्र अध्ययनरत हैं अतः राष्ट्रीय एकता की ये (शिक्षण संस्थाएं) प्रतीक हैं।

पुस्तकें ज्ञान राशि का संचित कोष है अतः पुस्तकालय स्थापित करना एक पवित्र कार्य है। पुस्तकालय अच्छे समाज के निर्माण में कितने सहायक हो सकते हैं, यह कोई अप्रकट सत्य नहीं।

जैन व्यवसायियों ने अनेक सार्वजनिक पुस्तकालय व वाचनालय स्थापित किए हैं जो राष्ट्र की वृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान कर रहे हैं। इनमें प्रमुख हैं—आचार्य श्री विनयचन्द ज्ञान भण्डार जयपुर, अगरचन्द भैरोंदान सेठिया जैन लायब्रेरी बीकानेर अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर, श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार रतलाम, श्री जैन शास्त्र भण्डार संग्रहालय जैसलमेर श्री सन्मति पुस्तकालय जयपुर, विश्वभारती पुस्तकालय सरदारशहर व जैन साहित्य शोध विभाग पुस्तकालय जयपुर, पी. वी. शोध संस्थान वाराणसी आदि।

जैन व्यवसायियों द्वारा विभिन्न स्थानों पर ऐलोपैथिक, आयुर्वेदिक तथा होम्योपेथिक चिकित्सालय व औषधालय खोले गये हैं। जैन धर्म में दीन-दुखियों की सेवा को जो महत्त्व प्राप्त हैं, वह भावना इन संस्थाओं के द्वारा साकार होती दिखाई देती है। इनमें प्रमुख है—सन्तोकवा दुर्लभ जी मेमोरियल अस्पताल जयपुर, अमर जैन मेडिकल रिलिफ सोसायटी जयपुर, सेठिया जैन होम्योपेथिक औषधालय बीकानेर, मेडिकल रिलीफ सोसायटी मद्रास, कलकत्ता व जैन औषधालय लुधियाना, रतलाम आदि प्रमुख हैं।

जैन व्यवसायियों द्वारा स्थापित महावीर विकलांग सेवा समिति व महावीर इन्टरनेशनल ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। महावीर विकलांग सेवा समिति विकलांगों को कृत्रिम अंग मुफ्त में देता है, जिससे ये परिवार व समाज पर भार न बन सकें। विकलांगों को रोजगार प्रदान करने में भी इस समिति ने महत्वपूर्ण कार्य किया है।

महावीर इन्टरनेशनल नें रक्तदान, नेत्रदान जैसे महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। साथ ही साथ गरीब व जरूरतमन्द व्यक्तियों को मुफ्त दवाई भी उपलब्ध कराते हैं। अनेक जैन व्यवसायी अपने ट्रस्ट के द्वारा असहाय, गरीब व विधवा को आर्थिक सहयोग प्रदान कर रहे हैं। स्वस्थ नागरिक बनाने में भी समाज-सेवी संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान है।

जैन व्यवसायियों द्वारा स्थापित अनेक संस्थाओं, ट्रस्टों द्वारा अनेक क्षेत्रों में पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं—जैसे अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ द्वारा स्व. प्रदीप कुमार रामपुरिया स्मृति साहित्य पुरस्कार, तेरापन्थ

संस्था द्वारा अणुव्रत पुरस्कार, भारतीय ज्ञान पीठ द्वारा ज्ञान पीठ पुरस्कार आदि आदि ।

उपर्युक्त सभी तथ्यों से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि देश भर में व्यवसाय (व्यापार, वाणिज्य, उद्योग, पेशा) के क्षेत्र में जैन व्यवसायियों का संचालन व्यापक स्तर पर था और आज भी है । जैन व्यवसायी प्राचीन समय में राज–कोषों तक को आर्थिक सहयोग प्रदान करते थे और वर्तमान में सरकार को भी शिक्षा संस्थान–संचालन, चिकित्सालय, पुस्तकालय, वाचनालय व उद्योग स्थापित करके महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करते रहे हैं । इसके साथ ही साथ हम इन धनाढ्य श्रेष्ठियों में धर्म धुरीणता और लोकोपकार की भावना का प्राचुर्य पाते हैं । आज भी इनमें अपने कार्य और धर्म पर अविचल रहना व देश का आर्थिक दायित्व वहन करना पाया जाता हैं । अपने व्यसन रहित जीवन, रक्त, वर्ण और कर्म की श्रेष्ठता और अनुपालन से आरम्भ से ही जैन भारतीय समाज में सबसे समृद्ध व देश की आर्थिक स्थिति के संयोजक–नियोजक रहे हैं और इन्हीं गुणों के कारण भविष्य में भी रहेंगे । अतः स्पष्टतया कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय एकता में जैन व्यवसायियों का योगदान अमूल्य रहा है व भविष्य में भी रहेगा । □

–श्री जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)

# कुछ परिभाषायें

संकलन—श्री चम्पालाल छल्लाणी

**जन्म**—जन्म कर्ज ली हुई एक छोटी रकम है, जिसका कि भुगतान जीवन में कई-कई बार और कई–कई किस्तों में करना होता है ।

**मृत्यु**—मृत्यु एक बड़ी रकम है जिसे जीवन में एक ही बार और एक ही किस्त में चुकाना होता है ।

**आयु**—आयु एक डोरी है कहीं कच्ची, कहीं पक्की और कहीं गांठ जुड़ी । कहां से कब टूट जाय कोई ठिकाना नहीं ।

**जीवन**-जीवन एक गुब्बारा है सांस का, अधिक हवा भरोगे फूट जायगा और यदि इसकी हवा एक बार निकल गई तो दुबारा फूलेगी भी नहीं ।

**भोग**—भोग खुद छोड़कर चले जायें तो दुःख होता है स्वयं उन्हें छोड़ दें तो सुख होता है ।

कठपुतली नाटिका–

# मंगलम् महावीरम्

□ डा० महेन्द्र भानावत

△

> कभी किसी चीज का अभिमान मत करो और न धीरज खोओ। आत्मवल रखो, सफलता जरुर मिलेगी।

## ❀ दृश्य पहला ❀

कठपुतली का पारम्परिक मंच, वैशाली का एक गांव, भगवान् महावीर के जन्म की खबर पूरा गांव आनन्द विभोर है। लगता है जैसे गांव की चप्पा-चप्पा भूमि हरियाई हुई है। गृह वधुएं मका की लीपा-पोती कर अपने आंगनों को मांडनों के विविध चौक सातियों से पूर रही हैं। गृह देहली पर पग तथा फूल-पत्तियों की कलात्मक वेलें खींच रही हैं। छोटी-छोटी लड़कियां भी पंखी, चटाई, गेंददड़ी त गाडूले जैसे मांडनों में मिट्टी, खड़ी की लालें मोती पो रही हैं—प्रत्येक घर आंगन और गांव का हर म अखूट खुशियों में भरा फूला नहीं समा रहा है। मंच के पोछे इन्हीं मांडनों की विविध दृश्यावलियां दिख जाती हैं। मंच पर दो युवतियां मांडने, मांडनें में लगी हैं। वे गीत गाती जा रही हैं—

कंकूरे पगल्ये महावीर जलमिया।<br>
केसर रे पगल्ये महावीर जलमिया॥

नाच्या घर आंगन गेरू मांडस्यां।<br>
रतन कटोरे ओ मेंदी घोलस्यां॥

घूमर घालो ए सइयां संग में,<br>
आछा नगतर में कुवर कुखिया।

इतने में गांववलाई ढोलदार के साथ एलान करता है—

भाग्यशाली राजा सिद्धार्थ और भागवंती रानी त्रिशला के तेजस्वी राजकुमार ने जन्म लिय हैं। (ढम ढम ढम) राज्य के प्रत्येक घर-गांव में सात दिन तक खुशियां मनाई जायेगी (ढम ढम ढम)। कई ख्याल तमाशे वाले आयेंगे और आप लोगों का मन वहलायेंगे। (ढम ढम ढम ढम ढम ढम ढम) प्रस्थान। इनके जाते ही मंच पर नक्काल आता है जो अपने घोड़े की नकल वताता है।

नक्काल—घोड़ा (हिन् हिन् हिन् कर पूंछ हिलाता है) वहुत सुन्दर घोड़ा (नचाता है)

केसर कस्तूरी सा रंग।<br>
जिसका कसा हुआ है तंग॥<br>
खाता पिश्ता दाख बदाम।<br>
हवा में चलना इसका काम॥

लगे एड़ी, पहुंचे अकाश
ोड़ा ऊपर चला जाता है) ।
ाल—अरे ! घोड़ा कहां चला गया ?
पुतलीवाला—ऊपर
न०—ऊपर कहां ?
पु०—अन्तरिक्ष में
न०—क्या करने ?
पु०—मून देखने ।
न०—तुम क्यों नहीं गये ?
पु०—मुझे नहीं ले गया ।
न०—क्यों ?
पु०—कहता है कि तुम यहीं रहो मैं तुम्हारे
। यहीं मून ला दूंगा ।
( इतने में घोड़ा मंच पर आ जाता है )
पु०—लो, यह आ गया मून देख कर ।
न०—(घोड़े को पुचकार कर) घोड़ा, घोड़ा,
त थक गया । (मालिश करता है)
मालिश-मालिश

कम्फरटेवल इसकी पीठ ।
एयरकन्डीशन है सीट ॥
लेकर महावीर का नाम ।
पहुंचो कुन्डनपुर कुल ग्राम ॥

(दोनों चले जाते हैं)

## ❀ दूसरा दृश्य ❀

कठपुतली का वही मंच । गांव के वाहर
ाल का पेड़ । महावीर और उनके दो ग्राम साथी
ा और किसना । तीनों की उम्र कोई आठ-दस
, पेड़ कूदनी खेल खेलने के लिए आये हैं । पेड़
थोड़ी दूर एक पत्थर रखा हुआ है जिसे पेड़ की
ी से कूदकर जो पहले छुए वही विजयी कहलाये ।
हावीर—अरे, रामा किसना कहां गया ?
ामा—किसना कमीज खोलकर आ रहा है (प्रवेश) ।
ि०—देखो भाई, यह वृक्ष फैला रहेगा खेलने के लिए ।
ि०—बहुत अच्छा रहेगा ।

कि०—इसकी डालियां भी वड़ी अच्छी फैली हुई है ।
झुलने-कूदने में आनन्द आजायेगा ।
म०—आनन्द तो आ जायेगा मगर इससे कूदना जितना
तुम्हें आसान लग रहा है, वैसा नहीं है ।
रा०—ऐसी क्या वात है ?
म०—वात तो कुछ नहीं वच्चूजी, जव गिरोगे तव
नानी याद आ जायेगी ।
कि०—नानी वानी तो क्या याद आये पर हां, थोड़ा
संभलकर खेलना पड़ेगा ।
म०—थोड़ा नहीं, पूरा ही संभलकर खेलना
पड़ेगा, नहीं तो हाथ-पांव तोड़ वैठोगे और
घर में पिटाई होगी सो अलग ।
रा०—यूं तो हिम्मत हारने वाले नहीं हैं, लो
ये चढ़ा (चढ़ने का प्रयत्न करता है मगर पूरा
चढ़ नहीं पाता है) ।
म०—वाह रे हिम्मतवर, क्या ताकत पाई है ?
(महावीर उसे सहारा देकर चढ़ाते हैं) लगा जोर
और लगा । इतना ही नहीं चढ़ पाया तो
क्या खेलेगा खाक ?
कि०—वाह रे रामा ! देख ली तेरी पहलवानी वड़ी
भुजाएं फैलाता है और जंघा फटकारता है ।
रा०—क्यों शेखी वघारते हो । खुद ही चढ़कर वता
दो तो गोलियां खिला दूं अभी चार । और
नहीं तो हो जाये दस-दस की शर्त ।
म०—तुम दोनों इधर रहो । मैं वताता हूं चढ़ने
की तरकीव । वल तो ठीक है मगर वल से
भी अधिक कल की जरूरत है । तुम्हारा वल
तो तुमने आजमा ही लिया, अव देखो मेरी
कल । (महावीर वृक्ष पर पांव रखते ही हाथ
से डाली पकड़कर चढ़ जाते हैं) गोलियां
तुम्हीं खाओगे कि मुझे भी खिलाओगे । आओ
चढ़ो मेरे सामने । (एक-एक कर दोनों को
महावीर हाथ पकड़कर ऊपर खींच लेते हैं)
देखो भाई, वो रखा पत्थर । डाल से कूदकर

जो उसके पास पहुंचे वो ही जीतेश्वर । शर्त-वर्त कुछ नहीं । बोलो ठीक है ? (दोनों–हां ठीक है कहते हैं और तब महावीर एक दो–तीन कहकर तीसरी ताली में वहां से कूदकर पत्थर छूने का इशारा करते हैं । तीसरी ताली लगते ही रामा किशना इधर–उधर भागते हैं परन्तु डाली से कूदने की उनकी हिम्मत नहीं होती । महावीर डाल से लटककर जोर–जोर से भूलते हैं । चकरी खाते हैं, टांगे फैलाते हैं, फूदका–फूदकी करते हैं और दोनों से कहते हैं—बोलो बेटों क्या हो गया ? ताकत कहां चली गई ? बड़े शूरवीर हो तो कूद जाओ न ! यह कहते हो दोनों साहस कर कूद पड़ते हैं परन्तु वे उठते हैं तब तक महावीर पहले ही पत्थर को जा छूते हैं)

म०—आओ, विश्राम करलो थोड़ा ।

रा०—तुम तो यार बड़े तेज निकले ।

कि०—छोटे पर बड़े खोटे हो ।

म०—अरे, खोटे तो वे होते हैं जो चलते नहीं हैं, रुक जाते हैं । रुक तुम गये और खोटा मुझे बता रहे हो । खोटा ही सही । इससे क्या पड़ने वाला है टोटा । कहो तो एक दांई और हो जाय ।

रा०—बिल्कुल हो जाय । अबकी बार देखना मेरा करिश्मा ।

म०—बतादो–बतादो क्यों पीछे रहते हो । पहले भी बता ही चुके हो । अब फिर बतादो ।

कि०—हां-हां, बता देंगे । ऐसी क्या बात है ? अरे अन्न यों ही थोड़ेई बिगाड़ा है ।

म०—अरे ललुए, कौन कह रहा है कि तुमने अन्न बिगाड़ा है । अन्न खा–खाकर तो तुम बड़े बहादुर और बलिष्ठ बन गये हो ।

रा०—क्यों ताना मारते हो यार ।

म०—अरे, इसमें ताने की क्या बात है ? हाथ कंगन को आरसी क्या ? हो जाय एक-एक हा[illegible] और ।

कि०—हां, हो जाओ तैयार ।

रा०—तैयार

म०—तो एक, दो और ये तीन ।

(तीन कहते ही तीनों वृक्ष पर चढ़ने [illegible] उपक्रम करते हैं । महावीर जान–बूझकर [illegible] चढ़ते हैं । पहले दोनों को चढ़ाकर फिर च[illegible] हैं मगर जब डाली से उतरते हैं तो महावीर सम्पूर्ण वृक्ष को हिलाकर वहीं से पत्थर प[illegible] जा कूदते हैं । दोनों देखते रह जाते हैं और फिर होड़ा-होड़ी चल पड़ती है ।)

म०—कभी किसी चीज का अभिमान मत करो और न धीरज खोओ । आत्मबल रखो, सफलता जरुर मिलेगी ।

रा०—वाकई यार, बात तुम्हारी सही है सीख[illegible] आना ।

कि०—हड़बड़ी और होड़ा-होड़ी दोनों ही मिलकर काम बिगाड़ देते हैं ।

म०—चाहो तो एक बार और खेल लो । अबकी बार विजय तुम्हारी दिखती है ।

रा०—हां, तो करलो तैयारी ।

कि०—मैं तो तैयार हूं ।

म०—तो कौन तैयार नहीं है ?

एक············दो·················

रा०—अरे, ठहरो–ठहरो ! वो देखो वृक्ष की डाल पर सर्प जैसा क्या दिखाई दे रहा है ?

कि०—अरे, सर्प ही दीख रहा है बड़ा भयंकर नाग है । देखो, जीभ निकाल रहा है और फूफकार मार रहा है ।

म०—करने दो यार उसको जो भी करे, अपना [illegible] खेल चालू रखो । बिना कसूर के वो कि[illegible] का क्या कर लेगा ?

कि०—दो–चार पत्थर मारो, अभी चला जावेगा ।

(दोनों उस पर पत्थर फेंकते हैं पर वह टस से मस नहीं होता है। तब वे महावीर को वहां से चल देने को कहते हैं। महावीर चलने की बात पर आनाकानी कर उसे पकड़ने को उद्यत होते हैं)

म०—ठहरो, ठहरो, डरते क्या हो ? मैं अभी उसे पकड़कर राह लगाता हूं।

(दोनों महावीर को रोकते हैं पर महावीर उनकी एक भी नहीं सुनकर उसे पकड़ने को वृक्ष पर चढ़ जाते हैं। सांप जोर-जोर से फन फैलाता है, फूफकार मारता है पर महावीर तनिक भी विचलित नहीं होकर उसका फन और पूंछ पकड़ लेते हैं। यह देख रामा किशना कांपने लग जाते हैं। महावीर नीचे कूदकर सांप को छोड़ देते हैं। सांप चुपचाप अपनी राह पकड़ता है)

०—डरो मत। बिना सताये कोई किसी का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। अपन चुपचाप खेल रहे थे। अपने बीच में स्वयं सांप आया तो आखिर उसे ही हार खाकर जाना पड़ा।

०—चलो अब रात्रि होने को है। घर चलें।

०—मुझे तो बड़ा डर लग रहा है। सांप ही सांप दीख रहा है।

०—चलो, चलो, डरो मत। सबसे आगे मैं चलता हूं। (तीनों का प्रस्थान)

## ❀ दृश्य तीसरा ❀

गांव के बाहर एकांत में महावीर ध्यान मग्न खड़े हैं। सूर्यास्त का समय उधर से दो बालक खेलते आ रहे होते हैं। वे बीच में महावीर को देखकर भयभीत खड़े रह जाते हैं। परन्तु जब महावीर न हिलते-डुलते हैं तो उन्हें क्रोध आ जाता है। उनकी ओर छोटे-छोटे कंकड़ फेंकते हैं। महावीर पर उनका भी कुछ असर नहीं होता है। तब वे धूल फेंककर आनंदित होते हैं। इस बीच उधर से एक ग्वाले को अपने बैल सहित आते देख दोनों भागते हुए नजर आते हैं। ग्वाला महावीर की ओर देखता है।

ग्वाला—महाराज जे रामजी की। (महावीर की ओर से कोई उत्तर नहीं मिलने पर) साधू बा राम राम। (महावीर पूर्ववत् ध्यान मग्न हैं)। अरे ओ पाखंडी ! राम राम करते मेरी जीभ घीसी जा रही है और यह बेटा आंखें बन्द कर खड़ा है। बोलो कि अभी कुल्हाड़ी से तेरह तूम्बड़े कर दूं (थोड़ा ठहरकर)। बा मत बोल ये दोनों बैल छोड़कर जा रहा हूं, इनकी पूरी निगरानी रखना। यदि ये इधर-उधर हो गये तो ढोंगपना निकाल दूंगा। (यह कहकर वह चला जाता है और कुछ समय में वापस आकर अपने बैल वहां नहीं पाता है) बैल कहां गये ? अरे बोल तो सही। (महावीर चुप हैं) बैल बता देना नहीं तो अभी एक बार की देरी है। रास्ता भुला दूंगा। (वह नजदीक आकर महावीर को घूरता है) बेटा न हिलता है, न डुलता है। इतने में एक उसी का परिचित किसान नवला उधर से आता दिखाई देता है। वह उसे आवाज लगाता है।

नवला—अरे नवला, ए नवला ! जरा इधर आना तो। (नवला आवाज सुनकर वहां आता है) देख तो ये ढोंगीराम मैं इनके भरोसे अपने बैल छोड़कर गया और पीछे से इन्होंने उन्हें गायब कर दिये।

नवला—ऐसा नहीं हो सकता। ये तो पूरे तपस्वी हैं, देखता नहीं आंखें मूंद रखी हैं, कोई करके तो देखे।

ग्वाला—भगवान ने आंखें दी देखने के लिए उसके तो करम ही फूटे हैं। सूझता होता हुआ भी अन्धा बना हुआ है।

नवला—तू तो पागल दीखता है तू भी बन्द करके तो

देख दो मिनट के लिए ही। मैंने कल सुना कि एक साधु महात्मा वड़ा तेजस्वी, उसका कोई मुकावला नहीं। वह यही तो नहीं है।

ग्वाला—हुआ रे हुआ।

नवला—हुआ क्या? शकल सूरत से तो वही दीखते हैं। कैसा कांतिवान चेहरा, क्या रूप दिया है भगवान ने।

ग्वाला—भाई तू कुछ भी कह आजकल कोई भरोसा नहीं। ढोंगी-पोंगी ज्यादा हैं। पता नहीं कौन कैसा हो?

नवला—सो तो चेहरे से ही पता लग जाता है। शरीर से ही पता लग जाता है। शरीर इनका कितना लावण्यमय है। ऐसे भागवानों के दर्शन का पुण्य मिलना भी एक वड़ी वात होती है।

ग्वाला—तुम कुछ भी कहो, मैं मानने वाला नहीं। मैं तो तव इनको मानूं जव मेरे वैल यहीं इसी वक्त वतला दें।

नवला—ऐसे संत महात्माओं से तुम्हारे वैलों का क्या लेना-देना? खैर तुम जानो तुम्हारा काम। (इतने में ग्वाले का लड़का ग्वाले को ढूंढता हुआ आ निकलता है। ग्वाले को देखकर-)

लड़का—काकाजी ओ काकाजी आज! इतनी देर से क्या कर रहे हो?

ग्वाला—तेरे वाप को रो रहा हूं, तुझे नहीं पता हजार रुपयों के वैल यहां से चम्पत हो गये।

लड़का—अरे, वैल चम्पत हो गये, किसने कहा! वे तो मैंने वांधे हैं, घर पर।

ग्वाला—कव?

लड़का—कोई घण्टा भर हो गया।

ग्वाला—सच!

लड़का—सोलह आना पाव रत्ती।

नवला—वोल, अव तो सच्चा है साधु।

ग्वाला—सच्चा पूरा। हीरा है हीरा! (चरणों में गिरकर) मुझे क्षमा करो भगवन्, मैं पापी आपको समझ नहीं पाया। फिर भी मैं आपको कुछ का कुछ समझ लिया। मुझे क्षमा करो। मेरा कहा सुना माफ करो। (तीनों वहां से चल पड़ते हैं। महावीर मूर्तिवत् ध्यान मग्न हैं। परदा गिर जाता है।)

—३५२, श्रीकृष्णपुरा, उदयपुर (राज०)

कहानी

# नई जिन्दगी

□ डॉ. शान्ता भानावत

△

> सुनीता को अपनी गलती का अहसास हुआ । वह सोचने लगी—मैं आज तक जिन लोगों को पिछड़ा और निम्न स्तर का समझ कर उनकी उपेक्षा करती आई हूं; आज उन्हीं ने मेरी प्राण रक्षा की है । वह मां से बोली—तुम्हारी सेवा और सहयोग की भावना का फल मुझे आज मिला है ।

घड़ी ने टन-टन करके आठ बजाये । सुनीता उनींदे नेत्रों को मलती हुई आकर किचन से लगी डाइनिंग टेबल की कुर्सी पर धम्म से बैठ गई । कुछ क्षण मौन रहने के बाद मुंह फुलाकर कहने लगी—मम्मी ! तुम्हें मैंने कितनी बार कहा कि इस दीवाल घड़ी को मेरे बेड रूम से हटा दो । यह मरी कभी पांच बजायेगी, कभी छह और कभी आठ, नौ । देखो न ! इसने तो मेरी नींद ही हराम करदी । घड़ी की ओर दांत किटकिटा कर देखती हुई बोली—मम्मी ! इसने तो मेरे स्वप्न के संसार में आग लगा दी । मुझे बहुत अच्छा सपना आ रहा था ।

१८ वर्ष की जवान लड़की को आठ बजे आंखें मलती और ऊंघती हुई देखकर मां को क्रोध तो बहुत आया पर अभी सुबह ही सुबह बेटी का मूड बिगड़ जायेगा, यही सोच, शांत भाव से उसने कहा—बेटी ! प्रातः इतनी देर तक सोना तुम्हें शोभा नहीं देता । देखो, पक्षियों को, उन्हें प्रातःकाल का आभास कितना जल्दी हो जाता है । मुर्गा चार बजे से बांग देने लगता है और तोता, मैना, चिड़िया आदि प्रातःकाल होते ही उन्मुक्त गगन में अपनी उड़ानें भरने लगते हैं । तुम तो मानव हो, प्रातः उठकर न सामायिक, न माला और देखो दस बजे तो तुम्हें कॉलेज पहुंचना है । कब निपटोगी ? कब नाश्ता और कब खाना होगा तुम्हारा ?

मम्मी की बात उसे अच्छी न लगी । वह तुनक कर बोली—मम्मी, आप तो हमेशा बेतुकी बातें करती हो । कभी सामायिक, कभी माला । मुझे आपकी ये रूढ़िवादी परम्पराएं बिल्कुल पसन्द नहीं हैं । देखो न, अपनी पड़ौसन श्रीमती [illegible] को । वे भी तो ९ बजे सोकर उठती हैं । बिस्तर पर ही चाय लेती हैं । जब फ्रेश हो लेती हैं तब घर का काम करती हैं । और मिसेज छाबड़ा को देखो । वे भी मॉडर्न हैं । न राम का नाम लेती है न कृष्ण का । देखो उनका खानपान और उनकी रंगरेलियां । कल ही श्रीमती [illegible] मुझे कालेज से आते समय बस में मिल गई थी । कह रही थी—अरे ! तुम्हारी मम्मी तो बाबा आदम के जमाने की है । कभी व्रत करेगी, कभी उपवास । हमारे घर [illegible] कभी [illegible] नहीं खाना, कभी होटलों पर नहीं खाना । नित्य नियम भी कठोर रूप से करते हैं । [illegible] जरूरी है परम्परा [illegible] करने में [illegible] होती है । वह [illegible] [illegible] [illegible] बोली ! [illegible]

के बाद कौन जाने क्या होगा ? यह जनम मिला है तो इसमें जितना खा लें, वही अपना है। तुम्हारी मम्मी तो बेकार ही में शरीर गला रही हैं। भई, हमारा तो सिद्धान्त है 'खाओ, पीओ और मौज करो देखो, बेटी सुनीता ! अपना तो सिद्धान्त है कि खूब खाओ और तान कर सोओ।

सुनीता ने मन ही मन सोचा—वर्मा आंटी ठीक ही तो कह रही हैं। कल ही मैंने एक 'प्ले' पढ़ा था। उसमें भी तो यही लिखा था—इट, ड्रिंक एण्ड बी मेरी। फिर भगवान ने इस संसार में जितनी भी चीजें बनाई हैं, वे हमारे खाने-पीने के लिये ही तो हैं। मम्मी तो सारे दिन कहती रहती हैं—खाने-पीने की चीजों की मर्यादा रक्खो, पहनने-ओढ़ने की चीजों की सीमा निर्धारित करो। व्यसनों से दूर रहो, यह किताब पढ़ो, वह किताब पढ़ो। भला यह भी कोई मां हैं। मुझे जीवन में कोई स्वतंत्रता नहीं। मैं आज ही मम्मी से कह दूंगी—यह करो, वह न करो के तुम्हारे इन वन्धनों ने मुझे बेड़ियों में जकड़ दिया है। मैं अब इन बंधनों को और बर्दाश्त नहीं कर सकूंगी। मुझे पक्षियों की भांति उन्मुक्त गगन में विचरण करने की स्वतंत्रता चाहिये। ये सारे बंधन मेरे जीवन में बाधक हैं।

इतने में घड़ी ने टन-टन करके ६ बजाये। सुनीता का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। क्रोधावेश में आकर उसने टेबल पर पड़े काच के गिलास को जमीन पर दे मारा और बोली—मम्मी ! एक घंटे से चिल्ला रही हूं कि एक कप चाय बना दो, पर तुम हो कि तुम्हारे कान पर जूं तक नहीं रेंगती। तुम्हें पता नहीं है कि मुझे १० बजे कालेज पहुंचना है। सुनीता पैर पटकती हुई उठी और बिना मंजन, कुल्ला और चाय के ही किचन से बाहर निकल आई।

सुनीता की मां को पुत्री का यह व्यवहार कतई पसंद नहीं आया। उसने एक बार तो मन ही मन सोचा कि वह अपनी बेटी से कह दे कि इस तरह मुझ पर क्रोध करने की तुम्हें आवश्यकता नहीं है। अपना काम खुद कर लिया करो। पर वे इस बात को अच्छी तरह से समझ गई थी कि इस समय बोलना आग में घी का काम करेगा। इसलिये वे मौन रहीं।

सुनीता का पारा अब भी ठंडा होकर नीचे नहीं उतरा था। बोक्स रूप में बनी वार्ड रोब खोलकर अपने कपड़े उसने लेने चाहे तो पता चला कि कपड़ों पर प्रेस भी नहीं हुई है। क्योंकि दो दिन से धोबिन नहीं आ रही थी। उसके पास अब इतना समय भी नहीं था कि वह कपड़ों पर इस्तरी तो कर ले। बिना इस्तरी के कपड़े देख सुनीता के तन-बदन में आग लग गई। उसने एक-एक कर अलमारी से कपड़े बाहर निकाल कर फेंक दिये और मां से कहने लगी—तुम मां हो या कोई दुश्मन ? मेरे कपड़े तैयार क्यों नहीं रखे ? अब मैं क्या पहन कर जाऊं ? बोलो, बोलती क्यों नहीं ?

मां ने शांत भाव से कहा—बेटी ! धोबन पांच दिन से बीमार हो रही है। परसों जब कपड़े धोने आई थी तो उसे बहुत तेज बुखार हो रहा था। इसलिये मैंने उससे कह दिया कि जब तक तू पूर्ण स्वस्थ न हो, मत आना।

धोबन के न आने की बात सुन सुनीता का चेहरा एकाएक फिर तन गया। वह मुंह चढ़ा कर बोली—तुमने नौकरों को सिर पर चढ़ा रखा है। धोबन को बुखार आ गया तो उसकी छुट्टी, बर्तन साफ करनेवाली के सिर में दर्द हो गया तो उसकी भी छुट्टी और ऊपर से उनको दवाई देवो, चाय पिलाओ। करती रहो तुम बेगार।

बेटी ! तुम इसे बेगार कहती हो। यह बेगार नहीं है। यह तो मानव सेवा है। सेवा मानव का सबसे बड़ा धर्म है। सुना है तुमने मदर टेरेसा का नाम ? वे मानव सेवा के क्षेत्र में बहुत बड़ा कार्य कर रही हैं। अंधे, अपाहिज, कोढ़ियों की सेवा

कर वे उन्हें नया जीवन दे रही हैं । 'देती होंगी, नया जीवन वे । मुझे तो ऐसे लोगों से घृणा है घृणा!' मां का उपहास करते हुए सुनीता कहती रही–क्या तुम भी मदर टेरेसा बनने जा रही हो ? सेवा, दया-दान आदि के नाम पर पिताजी की पूंजी लुटा मत देना, नहीं तो क्या बुढ़ापे में भीख मांगोगी । कल बाढ़ पीड़ितों के चन्दे में कितने रुपये दिये थे तुमने ?

बात-बात में क्रोध, आलस्य, प्रमाद ! गरीब, अपंग, और असहायों के प्रति उपेक्षा पूर्ण रवैया, यह सब देख मां का कलेजा विदीर्ण हो रहा था । वह मन मसोस कर बोली—अरे बेटी ! क्या बीमार नौकरों के साथ सहानुभूति रखना उन्हें सिर पर चढ़ाना है ? क्या अपंग, अपाहिज, संकटग्रस्त लोगों की सहायता करना धन लुटाना है ? सद्कार्यों में विद्या और धन का जितना उपयोग किया जाय उतने ही वे बढ़ते हैं ।

मां की बात का बिना प्रत्युत्तर दिये सुनीता ने जैसे-तैसे जल्दी-जल्दी दो कपड़ों के इस्तरी की और पहनकर बिना कुछ खाये-पिये ही कालेज के लिये घर से रवाना हो गई । जाते समय मां को यह भी नहीं बताया कि आज उसकी कक्षाएं कितने बजे तक चलेंगी और वह घर कब तक आयेगी ।

सुनीता को कॉलेज तक पहुंचने के लिये पुलिया से बस लेनी होती थी । उसकी नजर कलाई पर बंधी घड़ी पर पड़ी । साढ़े नौ बज रहे थे । बस रवाना होने में पांच मिनट शेष थे । सुनीता ने अपनी चाल तेज की । मां से हुई तकरार के कारण उसका मन और मस्तिष्क भारी हो रहा था । वह सोच रही थी–मम्मी कह रही थी, विद्या और लक्ष्मी गरीबों के लिये या सद्कार्य में खर्च करने से बढ़ती है तो मुझे क्या है, लुटाये घर ! नौकरों को भी भले ही लूट [illegible] रहे हैं । मुसीबी में हों, मुझे क्या करना ? वह सोचते-सोचते बस स्टैण्ड आ गया, सुनीता को पता नहीं चला । तब तक ८-४५ हो गये थे । देखते-देखते बस हार्न लगाकर रवाना हो गई । सामने रवाना होती बस को देख सुनीता शीघ्रता से उस पर चढ़ने लगी, पर फाटक पर लगा हैण्डल उसके हाथ में नहीं आ सका और वह चलती हुई बस से गिर पड़ी । बस से गिरते ही सुनीता अचेत हो गई । आस-पास लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई । सुनीता के सिर से खून बह रहा था । चश्मा टूट कर दूर जा गिरा था । शरीर पर भी काफी खरोंचें पड़ गई थीं । सब लोग यही कह रहे थे–कौन लड़की है ? किसकी है ? कहां घर है ? पर किसी में हिम्मत नहीं थी कि उसे अस्पताल पहुंचाये । तभी सिर पर कपड़े का गट्ठर लिये उधर से एक धोबन आई । एकत्रित भीड़ को देखकर वह लोगों के बीच घुस गई । सहसा अचेत सुनीता पर उसकी नजर पड़ी । वह उसे पहचान गई । उसने कपड़ों का गट्ठर एक ओर फेंका और खून से लथपथ सुनीता को छोटे बच्चे की भांति अपने कंधे पर उठा कर चल दी रिक्शे की खोज में । मुश्किल से वह दस कदम ही बढ़ी होगी कि उसे एक रिक्शा मिल गया । उसमें बैठते हुए उसने रिक्शा वाले को जनरल हॉस्पिटल चलने को कहा । उस समय उसकी जेब में एक पैसा भी नहीं था । अस्पताल पहुंच कर रिक्शे वाले ने जब अपनी मजदूरी मांगी तो धोबन ने अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए उसे अपनी चांदी की अंगूठी खोल कर दे दी ।

धोबन ने सुनीता को इमरजेन्सी वार्ड में भर्ती करवाया । उसके मरहम पट्टी करवाई तथा टिटनस के इन्जेक्शन के साथ ही आवश्यक दवाई दिलवाई । करीब दो घंटे बाद सुनीता को होश आया । सिर की चोट और हाथ-पैरों के दर्द से वह कराहती हुई बोली–भूली धोबन ! तू यहां कैसे? मम्मी कहां है ? धोबन ने कहा—बेटीजी मम्मी अभी आ रही हैं ।

सुनीता के होश में आने पर डाक्टर ने उसे घर जाने की छुट्टी दे दी । धोबन ने फिर रिक्शे वाले को बुलाया और उसमें सुनीता को लिटा कर

उसके घर ले आई । फाटक खोलने की आवाज सुनते ही सुनीता की मां बाहर आई । सामने देखती है कि सुनीता के सिर पर पट्टी वंधी है और धोबन उसका हाथ पकड़ कर ला रही है । सुनीता की मां को वस्तु स्थिति समझने में देर न लगी । धोबन से घटना की जानकारी प्राप्त कर सुनीता की मां ने धोबन को गले लगा लिया और कहा—बहन ! तुमने सुनीता को आज नई जिन्दगी दी है । तुम धन्य हो। यह कहते-कहते उसका गला भर आया ।

सुनीता को अपनी गलती का अहसास हुआ । वह सोचने लगी—मैं आज तक जिन लोगों को पिछड़ा और निम्न स्तर का समझ कर उनकी उपेक्षा करती आई हूं, आज उन्हीं ने मेरी प्राण रक्षा की है। वह मां से बोली—तुम्हारी सेवा और सहयोग की भावना का फल आज मुझे मिला है । मां ने स्नेहपूरित नेत्रों से कहा—बेटी ! तुमने प्रमाद और क्रोधावेश में अपने समय और शक्ति का अपव्यय न किया होता तो आज यह दिन नहीं देखना पड़ता । सुनीता के हृदय में पश्चाताप की अग्नि जल रही थी । वह बोली-मां, मुझे क्षमा करो । तभी सुनीता को छाती से लगाते हुए मां ने कहा—बेटी ! सुबह का भूला शाम को घर आ जाता है तो भूला नहीं कहाता ।

सी—२३५-ए, तिलक नगर, जयपुर।

## नीति, धर्म जुदा-जुदा

नीति और धर्म में बहुत अन्तर है । नीति को धर्म नहीं कहा जा सकता । नीति सीमित है, धर्म विराट् है । उदाहरणार्थ एक पड़ोसी अपने निकटवर्ती पड़ोसी की सेवा, सहायता इस भावना से करता है कि मेरी जरूरत में वह मेरी सहायता करेगा, तो यह उसकी नीति है । इसी दृष्टि में धर्मी यह सोचता है कि मेरी आत्मा के समान जगत की समस्त आत्माएं हैं । मुझे यथा-समग्र आत्माओं की विना आकांक्षा के सहायता करनी चाहिए । और, वह यथास्थान करता है, तो वह धर्म का रूप अदा करता है । नीति में स्वार्थांश रह सकता है जबकि धर्म में स्वार्थ का अंश नहीं रहता । नीति में अपेक्षा से लेन-देन की भावना रहती और धर्म में यह वात नहीं रहती । नीति के साथ धर्म की भावना जुड़ जाय तो सोने में सुहागा मिल जाय । पूर्वोक्त पड़ोसी के उदाहरण में यदि कर्त्ता की भावना आत्मीयता के साथ निस्वार्थता एवं कर्त्तव्य परायणता से जुड़ जाय तो वहां धर्म का रूप उपस्थित हो सकता है । धर्म के विना नीति, प्राणरहित शरीर की भांति कही जा सकती है ।

—आचार्यश्री नानेश

# आह्वान

□ डा. इन्दराज बैद

साथियो ! संभलो, समय के साथ चलना है तुम्हें ।
साथ चलना ही नहीं, आगे निकलना है तुम्हें ।।

(१)

लोग देखो आज बढ़कर आसमां को चूमते ।
बादलों की वाटिका की सैर करते, झूमते ।
तुम जो अपनी रूढ़ियों को तोड़ते, मरोड़ते,
तो आज उनके साथ तुम भी चंद्रमा पर घूमते ।
अर्चना विज्ञान की अविलंब करना है तुम्हें ।
साथियो ! संभलो, समय के साथ चलना है तुम्हें ।।

(२)

जागो, पुरानी रूढ़ियों की बेड़ियों को मोड़ दो ।
बेबसी पर तरस खाओ, दहेज का दम तोड़ दो ।
बेटा अगर लाख का तो बेटी सवा लाख की,
व्यापारियों, औलाद का व्यापार करना छोड़ दो ।
गरीब कन्याओं को घर की बहू करना है तुम्हें ।
साथियो ! संभलो, समय के साथ चलना है तुम्हें ।।

(३)

सोची कभी समाज की सुकुमारियों की भी दशा ?
काटा गरीबी ने प्रथम, तो फिर वैधव्य ने डसा ।
फूल सा मुखड़ा जवानी में यदि कुम्हला गया,
कौन दोषी नवयुवाओं, यह अंध समाज का नशा ।
फिर आज उनकी मांग में सिंदूर भरना है तुम्हें ।
साथियो ! संभलो, समय के साथ चलना है तुम्हें ।।

(४)

[illegible] की उड़ाओ, यह हंसी अच्छी नहीं है ।
भाइयो ! चेतो, यह फूट आपनी अच्छी नहीं है ।
[illegible] संसार तुम्हारा घर-फूंक तमाशा चाव से,
[illegible] रोज की, दिन-रात की दांताकली अच्छी नहीं है ।

उसके घर ले आई। फाटक खोलने की आवाज सुनते ही सुनीता की मां बाहर आई। सामने देखती है कि सुनीता के सिर पर पट्टी बंधी है और धोवन उसका हाथ पकड़ कर ला रही है। सुनीता की मां को वस्तु स्थिति समझने में देर न लगी। धोवन से घटना की जानकारी प्राप्त कर सुनीता की मां ने धोवन को गले लगा लिया और कहा—बहन ! तुमने सुनीता को आज नई जिन्दगी दी है। तुम धन्य हो। यह कहते-कहते उसका गला भर आया।

सुनीता को अपनी गलती का अहसास हुआ। वह सोचने लगी–मैं आज तक जिन लोगों को पिछड़ा और निम्न स्तर का समझ कर उनकी उपेक्षा करती आई हूं, आज उन्हीं ने मेरी प्राण रक्षा की है। वह मां से बोली–तुम्हारी सेवा और सहयोग की भावना का फल आज मुझे मिला है। मां ने स्नेहपूरित नेत्रों से कहा—बेटी ! तुमने प्रमाद और क्रोधावेश में अपने समय और शक्ति का अपव्यय न किया होता तो आज यह दिन नहीं देखना पड़ता। सुनीता के हृदय में पश्चाताप की अग्नि जल रही थी। वह बोली-मां, मुझे क्षमा करो। तभी सुनीता को छाती से लगाते हुए मां ने कहा–बेटी ! सुबह का भूला शाम को घर आ जाता है तो भूला नहीं कहाता।

सी–२३५-ए, तिलक नगर, जयपुर।

## नीति, धर्म जुदा-जुदा

नीति और धर्म में बहुत अन्तर है। नीति को धर्म नहीं कहा जा सकता। नीति सीमित है, धर्म विराट् है। उदाहरणार्थ एक पड़ोसी अपने निकटवर्ती पड़ोसी की सेवा, सहायता इस भावना से करता है कि मेरी जरूरत में वह मेरी सहायता करेगा, तो यह उसकी नीति है। इसी दृष्टि में धर्मी यह सोचता है कि मेरी आत्मा के समान जगत की समस्त आत्माएं हैं। मुझे यथा-समग्र आत्माओं की बिना आकांक्षा के सहायता करनी चाहिए। और, वह यथास्थान करता है, तो वह धर्म का रूप अदा करता है। नीति में स्वार्थांश रह सकता है जबकि धर्म में स्वार्थ का अंश नहीं रहता। नीति में अपेक्षा से लेन-देन की भावना रहती और धर्म में यह बात नहीं रहती। नीति के साथ धर्म की भावना जुड़ जाय तो सोने में सुहागा मिल जाय। पूर्वोक्त पड़ोसी के उदाहरण में यदि कर्त्ता की भावना आत्मीयता के साथ निस्वार्थता एवं कर्त्तव्य परायणता से जुड़ जाय तो वहां धर्म का रूप उपस्थित हो सकता है। धर्म के बिना नीति, प्राणरहित शरीर की भांति कही जा सकती है।

—आचार्यश्री नानेश

# आह्वान

□ डा. इन्दराज बैद

△

साथियो ! संभलो, समय के साथ चलना है तुम्हें ।
साथ चलना ही नहीं, आगे निकलना है तुम्हें ।।

(१)

लोग देखो आज बढ़कर आसमां को चूमते ।
बादलों की वाटिका की सैर करते, झूमते ।
तुम जो अपनी रूढ़ियों को तोड़ते, मरोड़ते,
तो आज उनके साथ तुम भी चंद्रमा पर घूमते ।
अर्चना विज्ञान की अविलंब करना है तुम्हें ।
साथियो ! संभलो, समय के साथ चलना है तुम्हें ।।

(२)

जागो, पुरानी रूढ़ियों की बेड़ियों को मोड़ दो ।
बेबसी पर तरस खाओ, दहेज का दम तोड़ दो ।
बेटा अगर लाख का तो बेटी सवा लाख की,
व्यापारियों, औलाद का व्यापार करना छोड़ दो ।
गरीब कन्याओं को घर की बहू करना है तुम्हें ।
साथियो ! संभलो, समय के साथ चलना है तुम्हें ।।

(३)

सोची कभी समाज की सुकुमारियों की भी दशा ?
काटा गरीबी ने प्रथम, तो फिर वैधव्य ने डसा ।
फूल सा मुखड़ा जवानी में यदि कुम्हला गया,
कौन दोषी नवयुवाओं, यह अंध समाज का नशा ।
फिर आज उनकी मांग में सिंदूर भरना है तुम्हें ।
साथियो ! संभलो, समय के साथ चलना है तुम्हें ।।

(४)

एक-दूजे की उड़ाओ, वह हंसी अच्छी नहीं है ।
भाइयो ! चेतो, यह फूट आपसी अच्छी नहीं है ।
देखता संसार तुम्हारा घर-फूंक तमाशा चाव से,
ये रोज की, दिन-रात की दांताकसी अच्छी नहीं है ।

रोटी कटें इकदांत ऐसे मिल के रहना है तुम्हें ।
साथियो ! संभलो, समय के साथ चलना है तुम्हें ।।

(५)

भूल गये क्या महाजनो ! उस चढ़ते हुए ग्रांक को ?
लाल, पीली, केसरी, उन पगड़ियों की बांक को ?
दे दिया धन पीढ़ियों का जिसने स्वदेश के लिए,
भूल गये अपने पुरखा भामाशाह की नाक को ?
सर्वस्व अपना देश पर न्यौछावर करना है तुम्हें ।
साथियो ! संभलो, समय के साथ चलना है तुम्हें ।।

(६)

कवि तुम्हीं से कह रहा है सुनो लक्ष्मी के लाड़लो !
उठो, माता सरस्वती की अब आरती उतार लो ।
पाया नहीं ज्ञान तो ऐश्वर्य धरा रह जायेगा ।
व्यर्थ गठरी अर्थ की सिर पर धरी, उतार लो ।
दीप ज्ञान का महल में फिर आज धरना है तुम्हें ।
साथियो ! संभलो, समय के साथ चलना है तुम्हें ।।

(७)

कर्म ऐसा करो कि वह मनुष्यता का कर्म बनें ।
सत्य, समता, त्याग की समग्रता का मर्म बने ।
महावीर के अनुयायियों, उगो तो सूर्य की तरह,
यत्न ऐसा करो कि तुम्हारा धर्म जग का धर्म बने ।
ठान लो कि मनुजता को जग धर्म करना है तुम्हें ।
साथियो ! संभलो, समय के साथ चलना है तुम्हें ।।

(८)

न धर्म में, न कर्म में औ' न ही देश की भक्ति में,
शत्रु को भीं उर से लगाने की पुनीत प्रवृत्ति में,
न कम थे कभी, न कम हो अभी, तुम किसी से भाइयों,
न ज्ञान में, विज्ञान में, श्रम-साधना ओ'संपत्ति में ।
पीढ़ियों के वास्ते कुछ धर के चलना है तुम्हें ।
साथियो ! संभलो, समय के साथ चलना है तुम्हें ।

—कार्यक्रम अधिकारी आकाशवाणी केन्द्र, पटना (

## जैसी करणी, वैसी भरणी,
## बनते और बिगड़ते हैं ।

—नथमल लूणिया

मन डमरू सा डोले पल–पल, चित चंचल, तन, प्राण भी,
जैसी करणी, वैसी भरणी, बनते और बिगड़ते हैं ।
दृष्टि बदलते सृष्टि बदल गई, मौसम और बहारें भी ।
जीने के अंदाज बदल गये, नखरे, नाज, नजारे भी ।
निशि वासर के क्रम में लिपटा, कालचक्र ढ़लता जाये,
चंग चढ़े अरमान हमारे, दहक रहे अंगारे भी ।
आंखों वाले अंधे अनगिन, श्रवण सहित लाखों बहरे ।
सिंधु वक्ष पर बल खाती सी, बेकाबू अल्हड़ लहरें ।
पांवों वाले पंगु बने हैं, मूक बने जिव्हा वाले,
अपने हाथों बुने जाल में, फंसते जाते हैं गहरे !
आंख मूंद अंधियारा करते, बन जाते अनजान भी,
नियति बदलती थी पहले, नर नीयत आज बदलते हैं ।
दिन सो जाता भरी दुपहरी, जगती मध्य निशाएं हैं ।
ताक झांक में नोंक झोंक में, सबकी सजग निगाहें हैं ।
वेश साधु का, काम ठगों का, लूट-पाट, धोखा-धमकी,
आज हवाओं का दम घुटता, दहसत भरी दिशाएं हैं ।
लुटते थे राही पहले भी, अब राहें लुट जाती हैं ।
प्राण छूटने से पहले ही, विकल सांस घुट जाती हैं ।
तेल पकौड़ों से पहले पीने वालों के क्या कहने,
गर्भाधान नहीं घटना का, अफवाहें उड़ जाती हैं ।
झूठ, कपट जिह्वा पर रखते, जेबों में व्यवधान भी,
बात बना करती थी पहले, आज बतंगड़ बनते हैं ।
सीतायें पकड़ी जाती हैं, आलिंगन अभिसारों में ।
शीलभद्र कोठों पर मिलते, संत मिले हत्यारों में ।
सेवा के सौदागर पनपे, अनुदानों की ले पूंजी,
बाग उजाड़े माली, मिलते अपराधी रखवारों में ।
खुलती जाती पोल निरंतर, पंडों की, जजमानों की ।
धर्म-कर्म की, पाप-पुण्य की, बिखर रही परिभाषाएं,
खेल रहे हैं खेल खिलाड़ी, बन आई शैतानों की ।
पूजा, पाठ, प्रार्थना बदली, त्याग, विराग विधान भी,
अर्थानर्थ बदलते पहले, अब परमार्थ बदलते हैं ।
जैसी करणी, वैसी भरणी, बनते और बिगड़ते हैं ।।

गीत-

# आओ, हम अपने को जानें !

डा. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम'

क्या-क्या जान गये हम जग में,
ज्ञान समेट लिया हर पग में,
हर विज्ञान हमारी चेरी—
सेवारत उद्यत हर मग में ।
पर अपने को जान न पाये,
हम क्या हैं ? पहचान न पाये,
भटक रहे हैं तम में पल-पल,
अन्तर्ज्ञान-विहान न आये ।

हम क्या हैं ? क्या ध्येय हमारा ? आओ, हम 'निज' को पहचानें ।

माया-ठगिनी हमें रिझाये,
तरह तरह के स्वांग रचाये,
चित्त-जलाशय मैला-मैला—
अपना बिम्ब नहीं दिख पाये ।
मन चंचल कैसे बंध पाये ?
हाथों में क्या पवन समाये !
कितना दुष्कर मन का निग्रह—
बुद्धि विकल पल-पल चकराये ।

बस, 'अभ्यास' 'विराग' निरन्तर जीवन का सम्बल अनुमानें ।

यह तन रथ है एक हमारा,
उसमें बैठा 'जीव' बिचारा,
बुद्धि-सारथी इसे चलाये—
मन की वल्गा, एक सहारा ।
इसे इन्द्रिय-अश्व ढो रहे,
इधर-उधर दिग्भ्रमित हो रहे,
कहीं 'सारथी' बहक न जाए—
पल-पल ये अपशकुन हो रहे ।

कहीं अश्व रथ गिरा न जायें, क्षण क्षण इस वल्गा को तानें ।

७ च २, जवाहर नगर, जयपु

卐

□ प्रो. सुन्दरलाल बी. मल्हारा

# दान है प्रेम का परिणाम

प्राणी वनस्पति से पोषित होते हैं और मानव प्राणियों के सहारे जीवित हैं। परस्पर सहयोग ही प्राणिमात्र का धर्म है, सर्व प्रथम कर्त्तव्य है। इसमें अहसान का स्पर्श भी नहीं है। यदि है तो अनुग्रह की भावना है, धन्यता का अहसास है कि उसने मेरा दान स्वीकार कर मुझे अनुग्रहित किया, मुझे सम्पत्ति के मोह से कुछ प्रमाण में मुक्त होने में सहयोग दिया।

कस्बे में एक वस्त्रदान समारम्भ है। प्रमुख अतिथि के हाथों बाल-मन्दिर के छोटे-छोटे बच्चों को वस्त्र बांटे जा रहे हैं। नाम पुकारे जाने के साथ ही शिक्षिका एक बच्चे को खड़ा करती है तथा उसे स्टेज तक खींच लाती है। बच्चा गहरे संकोच से अपने नन्हें-नन्हें हाथों से पोशाक प्राप्त करता है और आया के साथ पीछे चला जाता है। आयाएं बच्चों के जूते, पुराने कपड़े उतार कर उन्हें नये-नये कपड़े पहना रही हैं। मटमैले, बेढब, श्यामल शरीरों पर श्वेत स्वच्छ कपड़े अलग-थलग से दिखायी दे रहे है। जिन्हें कपड़े नहीं मिले हैं वे सुबक-सुबक कर रो रहे है और दूसरे नये-नये कपड़ों को निरख-निरख कर प्रमुदित हो रहे है। बच्चों के दुख-सुख कितने सहज और कितने स्पष्ट होते है।

वस्त्रदान के साथ ही साथ अतिथियों के धुआंधार लेक्चर भी चल रहे हैं। वक्ताओं के शब्दों में जो बात प्रमुख रूप से प्रकट हो रही है वह दाता की महानता, उसकी स्तुति, उसकी जी खोल कर वाह-वाही। कोई उन्हें कर्ण की उपमा दे रहा है तो कोई उन्हें धर्मराज दानवीर, शूरवीर आदि नामों से पुकार कर स्वयम् को धन्य समझ रहा है। पर बच्चों की ओर शायद ही किसी का ध्यान है। शीत की सुहावनी धूप में दमकते उनके चेहरों से किसी को सरोकार नहीं है। वे तो बस दाता के गुणगान में लगे हैं। उनकी भावनाएं उमड़ रही हैं और श्रोता गद्‌गद् हो रहे हैं। बाद में दाता तथा वक्ताओं का पुष्प मालाओं से स्वागत किया जाता है और अन्त में दाता की ओर से वक्ताओं और मेहमानों को एक बढ़िया भोज दिया जाता है, और इस प्रकार करीब तीन घण्टे बिता कर सभी अपने-अपने घर लौट जाते हैं।

**दान की यह परम्परा :**

यह दान देने और दान लेने की परम्परा अति प्राचीन है। भारतीय संस्कृति में दान का बड़ा गौरव गाया गया है। कहा गया है, दानी मृत्यु के बाद सीधे स्वर्ग में जाता है, जहां उसे सब कुछ प्राप्त हो जाता है—सुन्दरी, सुरा, महल, मन चाहे पक्वान्न, संगीत, कला तथा सदाबहार यौवन। स्वर्ग के लिये दान जरूरी है, दान के लिये गरीब जरूरी है और भारत में गरीबों की कभी कमी नहीं रही है। एक बुलाओ तो हजार मिल जाते हैं। अतः दान के लिये दूसरे शब्दों में स्वर्ग के लिये यहां बड़े अवसर हैं। गरीब ऐहिक सुख के लिये दान ले रहे हैं तो दानी पारलौकिक सुख के लिये दान दे रहे हैं, स्वार्थ दोनों में है,

फिर चाहे एक छोटा स्वार्थ हो और दूसरा बड़ा, एक नीचा है और दूसरा ऊंचा। दूसरी ओर स्वार्थ को शास्त्रों में सारे पापों का मूल कहा गया है। मनुष्य ने अपनी सुविधा के लिये धर्म को बड़ा एडजस्टेबल बना दिया है। राजनेता अपने ढंग से, धनी, सत्ताधारी अपने ढंग से तो साधु-संन्यासी और गरीब अपने ढंग से मोड़ लेते हैं।

**सहयोग जरूरी है :**

यह ठीक है व्यक्ति व्यक्ति को सहयोग दे, उसकी मदद करे, क्योंकि हम सभी मानव परस्पर एक दूसरे से हजार-हजार मार्गों से जुड़े हैं। कोई हमारे लिये अन्न उगा रहा है, कोई कपड़ा बुन रहा है, कोई घर बना रहा है, कोई धूल ला रहा है, कोई पानी की व्यवस्था कर रहा है, कोई अनुसंधान कर रहा है, कोई मनोरंजन जुटा रहा है। ऐसी अवस्था में यदि हम एक दूसरे को सहयोग देते हैं तो वह खुद का ही सहयोग है। इस प्रकार का सहयोग लेकर या देकर पतित नहीं, अपितु गौरवान्वित ही होते हैं। वस्तुतः दूसरा हम से अलग नहीं है। वह हमारा ही रूप हैं, और यह सहयोग हमें विकसित करता है, समृद्ध करता है। हमें अहसास कराता है कि हम धरती से, धरती के इन्सानों से, सारे प्राणियों से जुड़े हैं। हम किसी का शोषण नहीं कर रहे हैं, हम तो हर किसी का उसका हक लौटा रहे हैं। हम ऐसा कर स्वयम् बढ़ रहे हैं और दूसरों को भी बढ़ा रहे हैं। जीवन की यही रीति है, यही मार्ग है। हमारा तथाकथित दान क्या सही माने में सहयोग है? क्या इसमें एक गहन समता की भावना है? क्या इसमें वह सहजता है, निर्मलता है, पवित्रता है? यदि हम इस तथाकथित दान की मानसिकता पर जरा गहराई से विचार करें तो पता लगेगा कि इसमें एक ओर बड़प्पन है तो दूसरी ओर दीनता है। एक विवशता से हाथ फैला रहा है तो दूसरा दान देकर अपना बड़प्पन जाहिर कर रहा है। एक अपने सम्मान को बेच रहा है तो दूसरा दान देकर सम्मान अर्जित कर रहा है। ऐसा दान हमारे दिलों को निकट नहीं अपितु दूर ले जाता है। इससे ऊंच-नीच की भावनाएं समाप्त होने के बजाय अधिक तीव्र हो उठती हैं। एक ओर गर्व को तो दूसरी ओर दीनता को पोषण मिलता है।

**दान की मानसिकता :**

दान की मानसिकता क्या है? क्या दानी का उद्देश्य दीन के दुःख को मिटाना है? दान देकर उसे अपने समकक्ष लाना है या यह करुणा का एक ऐसा उद्रेक है कि दाता अभावग्रस्त व्यक्ति का दुःख देख नहीं सकता? यदि दाता की भावना सचमुच ही गरीब के दुःख को मिटाने की होती या दीन को ऊंचा उठाने की होती या गहन प्रेम की अनुभूति के साथ दान दिया जाता तो क्या आज समाज में इतनी दीनता, इतनी हीनता, इतनी क्रूरता तथा इतनी संवेदन शून्यता दिखायी देती? व्यक्ति-व्यक्ति के बीच क्या इतनी असमानता होती? इतना एक दूसरे का शोषण होता? एक दूसरे का विश्वासघात होता? इसके विपरीत वे परस्पर बड़े भाई-चारे से रहते। उनके सम्बन्धों में प्यार का प्रकाश होता। उनके अन्तःकरण में शान्ति की सरिता बहती।

**दान बना है अहम् की तृप्ति :**

वस्तुतः अधिकांश मनुष्य दान भी स्वार्थ के लिये देते हैं। कोई मान के लिये, कोई नाम के लिये, कोई अपने अहम् के पोषण के लिये, तो कोई स्वर्ग के लिये दान देता है। धर्मगुरु समझाते हैं "तुम एक दोगे तो परमात्मा तुम्हें दस लाख देगा। तुम इस जन्म में दोगे तो, तो प्रभु तुम्हें अगले जन्म में स्वर्ग देगा जहां तुम्हें सभी प्रकार की सुविधाएं मिलेंगी।' इसका यही अर्थ हुआ कि दान के पीछे भी हमारी लाभ-वृत्ति ही काम कर रही है। अधिक पाने के लिये हम कुछ दे देते हैं।

इस प्रकार के दान से हम केवल अपने अहम् को तृप्त करते हैं न कि उसे जिसे हम दान दे रहे

हैं। अतः इस प्रकार का दान सही रूप में दान नहीं कहलाता क्योंकि यह स्वार्थवश दिया जाता है और इस प्रकार ऐसे दान से दाता और गरीब दोनों पतित हो जाते हैं और आज बहुधा यही हो रहा है।

**दान कैसे पावन बने ?**

दान कैसे पावन बने ? किस प्रकार यह कल्याणकारी बने ? किस प्रकार यह देनेवाले और लेनेवाले दोनों को गरिमा प्रदान करे ? दोनों को ऊपर उठाए, दोनों को मुक्त करे। एक को सम्पत्ति के बन्धनों से तथा दूसरे को अभाव के बन्धनों से। क्या यह सम्भव है ? इसके लिये गहरी विचारशीलता की आवश्यकता है। वस्तुतः पूरा प्राणी जीवन ही एक दूसरे के सहयोग पर टिका है। किसी भी प्राणी के लिये अकेले जीना सम्भव ही नहीं है। वनस्पति पानी, हवा और जमीन के विविध क्षारों से जीती है, प्राणी वनस्पति से पोषित होते हैं और मानव प्राणियों के सहारे जीवित हैं। परस्पर सहयोग ही प्राणिमात्र का धर्म है, सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। इसमें अहसान का स्पर्श भी नहीं है। यदि है तो अनुग्रह की भावना है, धन्यता का अहसास कि उसने मेरा दान स्वीकार कर मुझे अनुग्रहित किया। मुझे सम्पत्ति के मोह से कुछ प्रमाण में मुक्त होने में सहयोग दिया। अथवा दाता के सहयोग से आवश्यकताओं से विमुक्त हो जीवन को योग्य मार्ग की ओर ले जा सका।

**दान है ऋण-मुक्ति का साधन :**

दान वस्तुतः मानवता के ऋण से मुक्त होने का एक श्रेष्ठ उपाय है। हमारे पास आज जो कुछ भी है वह आखिर कहां से आया? क्या हम उसे जन्म के साथ लाये थे ? नहीं ! इस सम्पत्ति को हमने वस्तुतः मानव एवम् अन्य प्राणियों के सहयोग से ही अर्जित किया है। यदि हमने सम्पत्ति अर्जन में सहयोगी प्रत्येक घटक को उसका पूरा हक दे दिया होता तो क्या हमारे पास संपत्ति का इतना संचय हो पाता ? सचमुच यह प्रेम का अभाव ही है कि हम इतनी सम्पत्ति अर्जित कर लेते हैं। मनुष्य प्राणी के अलावा अन्य किसी भी प्राणी में इतनी परिग्रह की भावना नहीं है, और सम्भवतः यह इसलिये कि मनुष्य ने अपनी बुद्धिमत्ता को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति मानकर उसका उपयोग अपने निजी स्वार्थों के लिये किया। मानवीय बुद्धि व्यक्ति की निजी धरोहर है या यह अखिल मानव जाति से मिली एक विरासत है। अतः इसका उपयोग निजी स्वार्थ के लिये न होकर पूरी मानवता के कल्याण के लिये होना जरूरी है। जे. कृष्णमूर्ति ने कितना ठीक कहा है—"धन संचित कर मरने का अर्थ है, जीवन व्यर्थ गंवा देना।" अतः मुख्य बात तो यह कि धन संचित ही न हो और यदि हो ही गया तो उसे बांट देना जरूरी है।

**दान एवम् स्वतंत्रता :**

वस्तुतः दान तो स्वतंत्रता की दिशा में उठाया गया पहला कदम है। दान तो आनन्द का दूसरा नाम है। जब हम दूसरों को आनन्दित करते हैं तो वह आनन्द हमारे पास ही लौट आता है। दूसरे को दिया गया दान वस्तुतः खुद को ही दिया गया दान है। क्योंकि दूसरा हमसे अलग नहीं है। दान तो एक ऐसा प्रवाह है जो दो दिलों को जोड़कर उनमें एकात्मता पैदा कर देता है। फिर वे एक दूसरे में आसानी से प्रवेश कर सकते हैं। यह दो मार्गों को मिलाने वाला सेतु बन जाता है और यह दोनों को ही प्रेम से आप्लावित कर देता है। दोनों दिलों को यह एक साथ एक लय से झंकृत कर देता है। उन्हें एक ही रंग में, प्यार के रंग में डुबो देता है।

**प्रेम के अभाव में दान सौदा है :**

लेकिन ऐसा दान तभी सम्भव है जब वह बिना किसी अपेक्षा से, बिना किसी लाभ से, बिना किसी नाम या मान की इच्छा से, बिना किसी स्वार्थ से दिया जाय। उसमें ऊंच-नीच की भावना का स्पर्श

भी न हो। सहज सहयोग की भावना हो, अनुग्रह की भावना हो, समानता की भावना हो, आदर की भावना हो। और यह तभी सम्भव है जब दान इस प्रकार दिया जाय कि दाहिने हाथ से दिये गये दान की खबर बांये हाथ को भी न लगे। किसी भी किस्म का दिखावा न हो, पूर्ण रूप से सहज हो, निजी हो। ऐसा दान ही दोनों को ऊपर उठा सकेगा—देने वाले को भी और पाने वाले को भी और यह तब हो सकेगा जब हमारा हृदय प्रेम से परिपूर्ण हो। प्रेम के अभाव में दिया गया दान एक सौदा मात्र है।

—६४, जिला पैठ, प्रधान डाकघर के पास
जलगांव (महाराष्ट्र)

# समता का लो सहारा

☐ समस्त दुःखों की जड़ ममत्व भाव में है। जिसका ममत्व भाव जितना संगीन होगा उसका दुःख भी उतना ही संगीन होगा। ममत्व भाव की जड़ जब तक मानव के अन्तरंग जीवन में फैली हुई है तब तक दुःख के अंकुर प्रस्फुटित होते ही रहेंगे। दुःखों के अंकुरों को जलाने एवं ममत्व की जड़ को खत्म करने के लिए मानव को समत्व भाव का सहारा लेना चाहिए। समत्व भाव के आधार पर उसे प्रिय के प्रति राग भाव एवं अप्रिय के प्रति द्वेष भाव को मिटाने का प्रयास करना चाहिए।

☐ संसार के चित्र-पट पर अनेक तरह के चित्र उभरते हैं। उन चित्रों को देख कर मानव कई बार घबड़ा जाता है। वह उसमें राग-द्वेष करने लग जाता है। उस मानव को समता दृष्टि से सोचना चाहिए कि यह घबराहट उसके लिए कतई योग्य नहीं है। उसकी योग्यता समभाव में है। चित्र पर न मुग्ध होना और बुरे चित्र पर न क्षुब्ध होना, समता के सहारे ही सम्भव हो सकता है।

☐ दुःखप्रद लगने वाली घटनाएं समत्व के सहारे सुखप्रद बन जाया करती हैं। व्यक्ति के विचारों का यह चमत्कार है। व्यक्ति अपने समत्व भाव के विचारों के भयंकर दुःख में भी सहानुभूति कर सकता है।

—*आचार्य श्री नानेश*

△ कन्हैयालाल डूंगरवाल, एडवोकेट

# कैसी समाज सेवा ?

△

मेरी ऐसी मान्यता है कि यदि जैन समाज देश में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था के परिवर्तन की ओर भी ध्यान दे और ऐसी शक्तियों को अपना नैतिक और साधनों का बल प्रदान करे तो एक अच्छी व्यवस्था कायम करने में सफलता मिल सकती है। जीवन में सदाचार, शाकाहार, स्वदेशी चीजों का व्यवहार, काले धन का निषेध, देश में उत्पन्न समस्याओं के समाधान में सक्रिय योगदान, और सेवा भाव के द्वारा हम देश और समाज को बदल सकते हैं और हम स्वयं अपने जीवन को सार्थक बना सकते हैं। जरूरत है संकल्प की और मैदान में कूदने की।

आजकल राजनेता, अफसर, व्यापारी, संस्थाएं चाहे सामाजिक या धार्मिक कैसी भी हों सब कहती हैं 'सेवा कर रहे हैं। इतनी धार्मिक और राजनैतिक तथा सामाजिक संस्थाएं होते हुए भी आम जनता सेवा से वंचित है। देश के ७० प्रतिशत लोग गरीबी की सीमा रेखा के नीचे जीवनयापन कर रहे हैं और निम्न मध्यम श्रेणी भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाती है। रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, चिकित्सा, रोजगार जैसी बुनियादी जरूरतें अधिकांश जनता की पूरी नहीं होती। कहने को अनाज के मामले में हम आत्मनिर्भरता का दम्भ भरते हैं किन्तु प्रतिव्यक्ति अनाज की खपत कम हो रही है क्योंकि क्रय शक्ति निरन्तर गिर रही है।

बढ़ती हुई जनसंख्या के मान से हमारे सब साधन कम पड़ रहे हैं। रोजगार मूलक उद्योग लगाने के बजाय हम कम्प्यूटरों, स्वचालित मशीनों एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के जाल में फंसकर उपभोक्तावाद की ओर बढ़ रहे हैं। इस अन्धी दौड़ के कारण अब दिनों-दिन समाज सेवा के लिये समय कम मिलने लगा है।

बुद्ध, महावीर, गांधी के देश में अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, आस्तेय, ब्रह्मचर्य, लोकतन्त्र, विकेन्द्रीकरण आदि के सिद्धान्तों की माला जपने वाली सरकारें और लोग महान् परिग्रहवादी, हिंसक, भ्रष्टाचारी, व एकाधिकारवादी बनते जा रहे हैं। समाज के ऐसे माहोल में समतावादी समाज के बजाय घोर विषमता फैलती जा रही है। ऐसे में कहीं-कहीं लोग दीन-दुखियों के लिये धर्मशाला, शिक्षण संस्था, मन्दिर-मस्जिद, चिकित्सालय आदि का निर्माण करवाते हैं। कोई अन्नकूट खोलते हैं। कोई नेत्र शिविर का या कोई और रोग परीक्षण का कैम्प लगाते हैं। विकलांगों को सायकल, लकड़ी के पैर, मरीजों को दवाइयां, गरीब विद्यार्थियों को पुस्तकें आदि दिलवाते हैं। इसको खराब तो कोई कैसे कहेगा पर एक दृष्टिकोण यह भी है कि इस

प्रकार के दान से समाज में कथित दानवीरों की ओर आक्रोश के बजाय श्रद्धा पैदा होती है जिससे समाज में यथास्थितिवाद की शक्तियां मजबूत होती हैं। परिवर्तन की आग ठंडी होती है।

फिर भी यह बात निर्विवाद है कि चाहे पूंजीवादी, साम्यवादी, समाजवादी या अन्य किसी भी राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था में समाज सेवा की गुंजाईश हमेशा रहेगी। कोई भी सरकार आम जनता की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकती। समाज में आध्यात्मिकता जगानी चाहिये। अध्यात्म के साथ ही करुणा, दया, संवेदना जगेगी। संवेदना से ही दीन दुखियों की सेवा का भाव जगता है। संवेदना से ही 'समता' स्थापित करने की प्रेरणा मिलती है।

आज हम संवेदनहीन होते जा रहे हैं। पहले कोई भी अपने पड़ोसी, सहयात्री, राहगीर किसी पर कोई भी मुसीबत आती थी तो लोग तत्काल सहायता के लिये तत्पर हो जाते थे। आज बीच में बोलने वाले के लिये खतरा पैदा हो गया है। अन्यमनस्कता का भाव पैदा हो गया है इसलिये तत्काल जब सहायता या सेवा की जरूरत हो आदमी उससे किनारा करना चाहता है। जरूरतमन्द को सहायता देना हमारा नैतिक दायित्व है, यह भाव जगना चाहिये और उसके मुताबिक काम होना चाहिये।

गांधीजी ने सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य सभी पर जोर दिया था और उसे मूर्तरूप देने के लिये गृह उद्योग, खादी, स्वदेशी भावना, आर्थिक और राजनैतिक विकेन्द्रीकरण पर बल दिया था। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध समूह ही नहीं बल्कि व्यक्ति भी लड़ सकें, इसके लिये सत्याग्रह का अमोघ अस्त्र उन्होंने काम में लिया और दुनियां को एक नई चीज दी। गांधी के इन्हीं विचारों को यदि हिन्दुस्तान कार्य रूप में परिणित करता तो हम आज दुनियां को अणुबम, शस्त्रों की होड़, युद्ध और तबाही के बजाय शांति, निशस्त्रीकरण, समता, सम्पूर्ण क्रांति का संदेश देते। हम खुद हथियारों की होड़ में शामिल हो रहे हैं। पड़ोसी मुल्कों से आपस में धार्मिक, साम्प्रदायिक और भाषावार द्वन्द्व में उलझ रहे हैं।

आज आदमी धर्म और शासन दोनों से नहीं खाता। उनका अनुशासन नहीं मानता। दान के जरिये काले धन को मान्यता मिल रही है। ऐसे लोग धार्मिक कार्यों में आगे आकर सामाजिक मान्यता प्राप्त कर रहे हैं। इसलिए समाज सेवा के एकांगी रूप को पकड़ने से वांछित फल की प्राप्ति नहीं होगी। गांधीजी पूंजीवादियों को समाज का ट्रस्टी बनने के लिये कहते थे। आज वह भाव कहां है? वर्ग संघर्ष के द्वारा प्राप्त साम्यवादी व्यवस्था में भी एक शासक वर्ग अलग ही बन जाता है जो आम जनता पर अपना मजबूत शिकजा रखता है। वर्ग संघर्ष हिंसक हो यह जरूरी नहीं है पर अहिंसक तरीके से तो होना ही चाहिये। बिना संघर्ष के जुल्म और विषमता मिटना कठिन हैं। आज पूंजीपति, अफसर व नेतृवर्ग सब उपभोक्ता संस्कृति और पाश्चात्य संस्कृति में डूब रहे हैं। बम्बई में ऑबेराय होटल में एक 'रोजिटरी केफै' है जिसमें दो आदमियों के भोजन पर १०–१२ हजार रुपया एक टाईम का ये समाज के ट्रस्टी खर्च करते हैं। उसी प्रकार धर्म में अपरिग्रह के सिद्धान्तों वाले अधिक से अधिक परिग्रह किसी भी जरिये से चाहे उचित अथवा अनुचित हो, जोड़ते हैं। समग्र देश में लोक भाषा, लोक भूषा, लोक भोजन और लोक भवन की संस्कृति का प्रचलन होना आज बहुत आवश्यक है।

जैन दर्शन हमें चिंतन के आधार पर समता-वादी समाज के निर्माण की ओर, निष्काम समाजसेवा की ओर प्रवृत करता है किन्तु हमारे यहां समाज और राज्यव्यवस्था ऐसी है कि आदमी यह जानते हुए भी कि गलत कर रहा है अधिक से अधिक पूंजी और धन इकट्ठा करने में लगा रहता है क्योंकि हमारे यहां सामाजिक सुरक्षा जैसा स्वास्थ्य-रोजगार और

ढ़ापे की पेंशन, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा आदि की ई व्यवस्था नहीं हैं । इसलिए भारतवासी जीवन र उलझा ही रहता है । ऐसे में समाज सेवा का म उसे रेगिस्तान में झील जैसी शांति देता है । री ऐसी मान्यता है कि यदि जैन समाज देश में माजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था के परि-र्तन की ओर भी ध्यान दे और ऐसी शक्तियों को अपना तिक और साधनों का बल प्रदान करे तो एक अच्छी वस्था कायम करने में सफलता मिल सकती है और दि देश में बेकारी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, गरीबी ट जाये तो फिर वह एक आदर्श श्रावक बन श्रमण संस्कृति को आनन्द पूर्वक जी सकता है । परिपाटी की सेवाओं के साथ-साथ इस प्रकार की नई सेवाओं पर भी हमारा ध्यान जाना चाहिये । जीवन में सदाचार, शाकाहार, स्वदेशी चीजों का व्यवहार, कालेधन का निषेध, देश में उत्पन्न समस्याओं के समाधान में सक्रिय योगदान और सेवा भाव के द्वारा हम देश और समाज को बदल सकते हैं और हम स्वयं अपने जीवन को सार्थक बना सकते हैं । जरूरत है संकल्प की और मैदान में कूदने की ।

—गांधी वाटिका के पास, नीमच (म. प्र.)

# शीतल पानी

शीतल पानी के पास जैसे कोई गर्मी से तपा हुआ प्राणी पहुंचता है, वह जैसी शीतलता, शान्तता प्राप्त करता है उससे भी बढ़कर संसार की विषय-वासनाओं की आग से संतप्त बना हुआ मानव साधु के निकट जाकर अनल्प शांति की अनुभूति करता है । पवित्र शुभ मानस तन्त्र का प्रभाव अवश्य पड़ता है । वास्तविक साधु का मानस अत्यन्त पवित्र मात्र शांति की सांस ले सकता है । जो शांति न डॉक्टर दे सकता है, न वकील दे सकता है और न अन्य कोई । इसीलिए कहा जाता है 'तीर्थ भूता हि साधवः ।' साधु-जीवन में रमण करने वाले साधु तीर्थ भूत होते हैं । यह स्थिति कैसे निष्पन्न होती है । इस स्थिति के निष्पन्न होने में जितनी मानसिक साधना काम करती है उतनी दूसरी शक्तियां काम नहीं करतीं ।

आचार्यश्री नानेश

व्यंग्य लेख

# सेवा, क्यों और कैसी ?

△ गणेश ललवानी

△

> यदि हम अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर लें तो हमारे चारों ओर जो हाय तौबा है, प्रतिस्पर्धा है जो कि जीवन को विक्षुब्ध बनाए है, वह सब शांत हो जाएगी । न मार्क्सवाद का झगड़ा रहेगा, न पूंजीवाद का शोषण । आप प्रगति की बात कहेंगे किन्तु वह प्रगति किस काम की जिसके ज्वालामुखी के मुख पर बैठकर हम एक विस्फोट की आशंका से आतंकित होते रहें और चन्द्रलोक की यात्रा की डींग मारते रहें ।

सेवा पर कुछ लिखूं तो क्या लिखूं कारण मुझे आज तक यही समझ में नहीं आया कि सेवा क्या है ? कैसे की जाती है ? मुझे तो यह प्रश्न उतना ही जटिल लगता है जितना जटिल वक रूपी धर्म का प्रश्न था—पथ क्या है ? उसके उत्तर में धर्मराज युधिष्ठर ने कहा था—जब श्रुति और स्मृति भिन्न भिन्न हैं । साथ हीं इसे लेकर ऋषि मुनियों में भी मतभेद है तब यह बताना कठिन है कि पथ क्या है ? अतः 'महाजनो येन गतः सः पन्थाः ।' महाजन जिस रास्ते पर चलते हैं, वही पथ है ।

युधिष्ठिर के इस उत्तर से वक रूपी धर्म तो सन्तुष्ट हो गए पर मैं नहीं हो सकता । उनके महाजन शब्द ने मुझे उलझन में डाल दिया । हमारे देश में मोदी या व्यवसायी को महाजन कहा जाता है । बंगाल में तो वणिक के लिए साधु शब्द का भी प्रयोग हुआ है । मोदी हो या व्यवसायी या वणिक पता नहीं इनका आचरण कभी महाजन या साधु जैसा रहा हो पर आज तो सर्वथा इसके विपरीत ही दृष्टिगोचर होता है । फिर राजेश खन्ना या हेमामालिनी जो कि अपने क्षेत्र के महाजन हैं क्या वे मुमुक्षु के लिए महाजन हो सकते हैं ? नहीं । जो तस्करी करना सीख रहा है वह क्या संत तुलसीदास जी को महाजन मान सकता है ? कदापि नहीं । उसका तो महाजन हो सकता हैं चार्ल्स शोभराज । उसे यदि आगे बढ़ना है तो चार्ल्स के पथ पर ही चलना होगा । तभी तो कहता हूं युधिष्ठिर के प्रत्युत्तर से कुछ भी निर्णय नहीं हो पाया कि पथ क्या है ?

सेवा के विषय में भी मेरी उलझन का यही कारण है ।

तेरापंथी साधु जब कहते हैं मेरी सेवा करो तो उसका तात्पर्य होता है तुम आकर मेरे अकेलेपन को दूर करो । उधर रवीन्द्रनाथ कहते हैं—'एकला चलो रे ।' किन्तु रवीन्द्रनाथ के कथन में कुछ तथ्य दिखाई दे रहा है। कारण संसार में हम अकेले ही आए हैं,अकेले ही जाएंगे । योगीराज हरिहरानन्द अरण्यक के लिए महामेघ आरण्यक मधुपुर स्थित अपने आश्रम की एक कोठरी में स्वयं को बन्द रखते थे। न किसी से मिलना न किसी से जुलना । साल में एक वार भक्तों को दर्शन देते थे । । दिन में एक वार सामान्य आहार लेते

थे। मेरी समझ में नहीं आया कि वह पथ ठीक था या यह पथ जो गप्प लड़ाते रहते हैं एवं नित नए प्रोग्राम बनाते रहते हैं। वे सेवा करते थे या ये करते हैं ? हां हिन्दू भक्त जब थाली परोसकर गुरु महाराज को कहता है—"महाराज, सेवा कीजिए" तो इसका अर्थ कुछ और होता है अर्थात् आप आहार ग्रहण करिए। यह भी ठीक ही है क्योंकि किसी को आहार-दान से परितृप्त करने से अधिक और क्या सेवा हो सकती है ? फिर जब हम कहते हैं कि कहिए मैं आपकी क्या सेवा करूं तो इसका अर्थ है मैं आपका क्या प्रिय कर सकता हूं। यह भी ठीक है। एक सन्त के सम्मुख जब अलेक्जेण्डर जाकर खड़ा हो गया और बोला—'महाराज क्या सेवा करूं आपकी ? तो उन्होंने कहा—जरा बगल हट जाओ ताकि जो धूप आ रही है, वह आती रहे। और जब कोई व्यक्ति मुझे लिखते हैं—योग्य सेवा लिखें तो मैं निरूत्तर हो जाता हूं। कारण उनके लायक सेवा क्या होगी यह मुझे ढूंढ़ निकालना होगा। क्योंकि यह काम कोई आसान नहीं अतः मैं समझ जाता हूं कि वे चाहते हैं मैं उन्हें कुछ नहीं लिखूं।

कभी-कभी मुझे स्वयं पर ग्लानि होने लगती है कि मैंने आज तक अपनी सेवा के अलावा किसी दूसरे की सेवा नहीं की। न देश सेवा के लिए जेल गया, न फांसी पर लटका, न जन-सेवा के लिए रुपये एकत्रित किए, न पद-यात्रा की, न धर्म के नाम पर माथा फोड़ा, न किसी का घर उजाड़ा। लोग कितनी भाग-दौड़ करते हैं और मैं हूं कि जहां का तहां खड़ा हूं। तभी स्मरण हो आई मिल्टन ( Milton ) की वह पंक्ति They also serve who stand and wait अर्थात् वे भी सेवा करते हैं जो चुपचाप खड़े हैं और इन्तजार करते हैं।

Paradise Lost—के कवि मिल्टन अन्धे हो गए थे अतः अन्धत्व के कारण वे जैसी चाहते थे वैसी भगवान की सेवा नहीं कर पाते थे। इसके लिए उनके मन में बड़ी ग्लानि थी। तभी जैसे उनके अन्तःकरण में कोई कह उठता है—'ईश्वर मनुष्य के कार्य को नहीं देखते उसके मानस को देखते हैं। उन्हें किस चीज की कमी है कि वे काम की प्रतीक्षा करेंगे ? वे तो राज राजेश्वर हैं।' एतदर्थं मेरा भी मन शान्त हो गया। मैं जो कुछ नहीं करता हूं, यह भी एक बड़ी भारी सेवा ही है आप इसे मानें या न मानें। गालब्रेथ जो कि भारत में अमेरिका के राजदूत थे और अर्थ-शास्त्री भी, अपने एक ग्रन्थ में अपनी पत्नी को धन्यवाद देते हुए लिखते हैं कि उसने शांत रहकर (by keeping quite) उनकी जो सेवा की है उससे लिए वे उसके आभारी हैं।

मुझे पता नहीं उनकी पत्नी झगड़ालु थी या नहीं। शायद थी तभी तो उसे शांत रहने पर साधुवाद (Complements) दिया। उसने शांत रहकर गालब्रेथ को ग्रन्थ-रचना में जो सहयोग दिया वह अमूल्य था। किन्तु झगड़ालु होना भी कोई बुरा नहीं है। सुकरात की पत्नी इतनी झगड़ालु थी कि सुकरात जरा देर भी घर में नहीं टिक पाते। अतः वे रास्तों में भटकते हुए एथेन्स के नवयुवकों को Corrupt करते यानि उनके माथे की धुलाई करते। सुकरात की पत्नी यदि झगड़ालु नहीं होती तो उसकी स्नेह छाया में सुकरात का समय यूं ही बीत जाता और हम प्लेटो के Dialogue से वंचित रह जाते। सुकरात की पत्नी की सेवा गालब्रेथ की पत्नी जैसी ही अमूल्य सेवा थी।

इसके विपरीत लीजिए बूना रामनाथ को। वे अपने अध्ययन और अध्यापन में इतने मग्न रहते कि उन्हें अन्य कुछ भी अपेक्षित नहीं था। इसी कारण वे दरिद्र भी थे। पर उन्हें इसकी कोई चिन्ता नहीं थी। उनकी इस निस्पृहता की बात कृष्णनगर के महाराज कृष्णचन्द्र के पास पहुंची। वे उन्हें देखने आए। उनकी पाठशाला को देखकर पूछा—आपको कोई अनुपपत्ति तो नहीं है ? अनुपपत्ति का अर्थ वे शास्त्रीय समस्या समझे। बोले—नहीं तो। जबकि राजा का आशय

था आर्थिक समस्या से । अन्ततः राजा ने स्पष्टीकरण करते हुए पूछा—कोई अभाव तो नहीं है ? उन्होंने कहा—नहीं, वह भी नहीं है । छात्रगण दो मुट्ठी चावल दे देते है और मोदी थोड़ा सा नमक । और यह जो इमली का पेड़ है इसका पत्ता उबाल लेते हैं । राजा ने पूछा—और वस्त्र । रामनाथ ने कहा—सामने ही एक कपास का पेड़ है उसी की रूई से ब्राह्मणी सूत कातकर कपड़ा बना लेती है । साल भर के लिए दोनों के दो कपड़े तो हो ही जाते हैं । भला ऐसे निस्पृही को राजा क्या दे सकता था ? अतः वे ब्राह्मणी के पास गए । सोचा, स्त्रियां अलंकार-प्रिय होती हैं शायद कुछ मांगें—पर वे थी जैसा पति वैसी पत्नी । उनके हाथ में सुहाग का चिन्ह शाखां तक नहीं था । केवल एक मंगल सूत्र बंधा था । राजा ने उससे प्रश्न किया—कुछ चाहिए । तो उनका भी वही प्रत्युतर था कुछ नहीं चाहिए । राजा के द्वारा शाखें की बात उठाने पर बोली—शांखा नहीं है तो क्या हुआ, मंगलसूत्र तो है। राजा वापस लौट गए ।

तो यह भी तो एक सेवा ही थी । यदि हम अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर लें तो हमारे चारों ओर जो हाय तौवा है, प्रतिस्पर्धा है जो हि जीवन को विक्षुब्ध बनाए हैं वह सब शान्त हो जाएगी। न मार्क्सवाद का झगड़ा रहेगा, न पूंजीवाद का शोषण। आप प्रगति की बात कहेंगे किन्तु वह प्रगति कि काम की जिसके ज्वालामुखी के मुख पर बैठकर हम एक विस्फोट को आशंका से आतंकित होते रहें और चन्द्रलोक की यात्रा की डींग मारते रहें ।

—सम्पादक तित्थयर, कलकत्ता

---

# समता चिकित्सा

शरीर की चिकित्सा डाक्टर करते हैं । मन एवं कर्मो की चिकित्सा समता करती है । मानसिक एवं कर्म-रोगों से रुग्ण मानवों को समता चिकित्सा प्रणाली अपनानी चाहिए । सच्चे शारीरिक चिकित्सक तो आज के जमाने में मंहगे एवं कठिनाई से प्राप्त होते हैं । पर समता चिकित्सा करने वाले चिकित्सक को प्राप्त करके जागृत होकर इस प्रणाली को अपनाकर कर्म-रोग से मुक्त होने का प्रयास कीजिये ।

—आचार्य श्री नानेश

❀ श्रीमती गायत्री कांकरिया

# सेवा : अहेतुक आत्म समर्पण

△
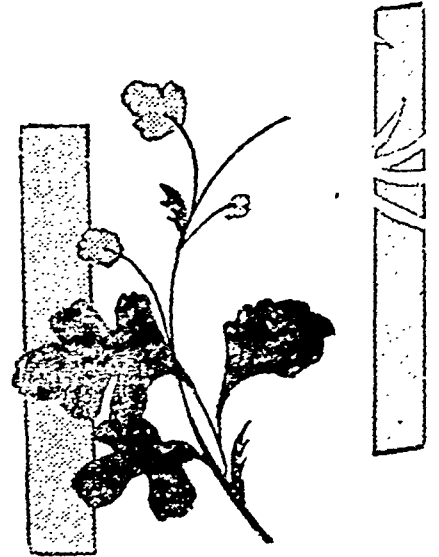
> सेवा का ही दूसरा नाम अहेतुक आत्म समर्पण है । सेवा का ही नाम प्रेम है, सेवा का ही नाम आनन्द है और ज्ञान अर्जित कर हम सत्-चित्-आनन्द की ही तो प्राप्ति चाहते हैं । ···· मनुष्य जितना देता है उतना ही पाता है प्राण देने से प्राण मिलता है, मन से मन मिलता है, आत्मदान ऐसी वस्तु है जो दाता और ग्रहीता दोनों को सार्थक करती है ।

आनन्द की खोज मानव स्वभाव का अंग है । जीवन में आनन्द की स्फुरणा तभी स्फुरित होती है जब हम क्षण भर के लिये ही स्वयं में पहुंचते है परन्तु भ्रान्ति यही है कि हम दूसरे को ही कारण समझते हैं । 'सत्य' (सत्) की पहचान कठिन है । भाषा के 'य' से जुड़कर 'सत्' 'सत्य' हो जाता है, जिसके अनेक अर्थ हो सकते हैं । अनुभूति को समझने के लिये अनुभूति के स्तर पर जाना जरूरी है । 'पर' को जानना चाहिये उससे कुछ पाने के लिये, अपनाने के लिये नहीं वरन् 'पर' से भिन्न 'स्व' की पहचान/खोज के लिये ।

इस जीव सृष्टि में मनुष्य ही सबसे अधिक क्रूर प्राणी है, फिर भी मनीषी मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ प्राणी एवं सुसंस्कृत मानते हैं··········। मानव श्रेष्ठ प्राणी है । लेकिन कब ? उस समय जब वह अपना स्वार्थभाव छोड़ कर दूसरों के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर दे अन्यथा उसका मूल्य दो कौड़ी का भी नहीं । स्वार्थ ही मनुष्य को सबसे अधिक क्रूर बना देता है । जो आपत्तियों में भी विचार निष्ठ रहता है, बुद्धि को विवेक से परिमार्जित करता है, मन में अनुकम्पा रखता है, वही सच्चा मनुष्य है ।

प्रत्येक व्यक्ति भिन्न-भिन्न विचारों, कल्पनाओं का अत्यन्त रहस्यमय ईकाई होता है । देखा जाय तो सारा जीवन ही रहस्य से भरा होता है । अपने आसपास क्या कम रहस्य हैं ? लेकिन उनमें एकाध ही रहस्य मन को छू लेने वाला होता है । शरीर के निकट रहने वाले व्यक्ति मन के भी निकट हैं यह निश्चित नहीं । सत्य सदैव वैसा ही नहीं होता जैसा लगा करता है । कुछ घटनाएं होती ही अटल हैं । साथ ही यह भी सत्य है कि कुछ घटनाओं के परिणाम टाले जा सकते हैं, इसके लिये लगन से प्रयत्न करना अत्यन्त आवश्यक है ।

कर्मवाद को स्वीकारते हुए सही पुरुषार्थ करते रहना ही जीवन की सच्ची साधना है । साधना कभी भी सामूहिक नहीं होती, बड़ी असंग स्थिति है यह । वैयक्तिक होते हुए भी साधना का परिणाम सामाजिक होता है । साधना से आनन्द की किरणें प्रस्फुटित होकर दूसरों को प्रभावित एवं आंदोलित करती हैं, जीवन में नित नवीन अनुभवों का संचार होता है, आत्मबल की वृद्धि होती है ।

आज लाखों–लाख मनुष्य अज्ञानता, अभाव और विश्रृंखलित आत्म-चिन्तन से जर्जर हैं, दुर्दशा-ग्रस्त है। उनमें आत्मबल का संचार करना ही सेवा है। मनुष्य अपने पुत्र-कलत्र के लिये, धन, मान के लिये जो करता है वह तब तक असत् होता है जब तक अपने को सबसे पृथक समझने की बुद्धि बनी रहती है। इस पृथकत्व बुद्धि पर विजय पाना ही तपस्या है। सद्गुरु के नेश्राय में ही यह भावना फलित होती है। सच्ची श्रद्धा मनोबल को उर्ध्वगति देती है, और नमन के साथ ही समझ का जन्म होता है–

> "झुकता वही है जिनमें जान है,
> अकड़पन मुर्दे की पहचान है।"

अच्छी चीज है, वह जीवन का अमृत है। किन्तु अकर्मण्यता और आशाहीनता जीवन का विष है। ज्ञान ही हमारी निर्णायक शक्ति है। ज्ञान के बिना सारे क्रियाकांड शून्य में भटकने जैसे हैं। बुद्धि की शीतलता और निर्देशक गुरु का होना ज्ञान के के लिये अनिवार्य है। जो लोग बुद्धि सम्पन्न हैं, उन्हीं में सुबुद्धि और शक्ति है। यह सुबुद्धि ही देवता है, यह शक्ति ही देवता हैं। मनुष्य का कर्त्तव्य है जो दीन दुखी निरीह प्राणियों को कष्ट पहुंचा रहे हैं उनका दमन करें। सामाजिक मंगल का उच्छेद करने वाले दंड के भागी हैं, उनको दंड देना मनुष्य का सहज धर्म हैं।

परिवर्तन सृष्टि का अनिवार्य क्रम है। जड़-प्रकृति की परिस्थितियां और मानव चित का संकल्प सघर्प-रत है। जरूरत है साक्षी भाव लेकर ज्ञाता, दृष्टा बनने की। जितना ही चित्त सत्वस्थ होगा उतना ही अधिक सर्जनशील होगा। सच्ची उपासना निरन्तर शुभ कार्य करने की प्रेरणा देती है। सेवा का ही दूसरा नाम अहेतुक आत्म समर्पण है। सेवा का ही दूसरा नाम प्रेम है, सेवा का ही नाम आनन्द है और ज्ञान अर्जित कर हम सत्-चित्-आनन्द की ही तो प्राप्ति चाहते हैं।....मनुष्य जितना देता है उतना ही पाता है। प्राण देने से प्राण मिलता है, मन से मन मिलता है, आत्मदान ऐसी वस्तु है जो दाता और ग्रहीता दोनों को सार्थक करती है।

चैतन्य आत्मा ब्रह्माण्ड के कण–कण से कुछ न कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकता है। जरूरत है सिर्फ आंख खोलकर देखने की। सही अर्थों में एक बार सही दिशा-बोध की। सम्यक् सम्प्राप्ति हो जाने पर जीवन में भटकाव नहीं रह पाता। जीवन में ज्ञान का पर्याप्त महत्व हो, इसके लिये 'ज्ञान के केन्द्रों का भी अपना महत्व पूर्ण उत्तरदायित्व होता है। शिक्षा का उद्देश्य मात्र अक्षर बोध ही नहीं–व्यक्तित्व के विकास के लिये स्नेह और अनुशासन दोनों ही सही अनुपात में जरूरी है तभी चरित्र निर्माण हो सकता है। ऊंची उपाधियां प्राप्त कर लेना ही ज्ञानार्जन नहीं है। ज्ञान आत्मानुभूति की धारा है। मनुष्य के निःश्वास में 'हं' और श्वास में 'स' की ध्वनि सुनाई पड़ती है। मनुष्य का जीवन क्रम ही 'हंस' है क्योंकि उससे ज्ञान का उपार्जन संभव है। ज्ञान को विस्तृत और वितरित करने का साधन वाणी है। दूसरों के हृदय को स्पर्श करने की शक्ति होना वाणी का विशेप गुण है। मनुष्य की मन, वचन और काया की शक्ति में वाणी शक्ति ही अधिक प्रबल है। शरीर की एक सीमा है। मन की बात व्यक्त करने का माध्यम वाणी है जो व्यक्ति की परिधि को लांघ कर परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्व को प्रभावित करती चली जाती है।...

संसार में प्रत्येक व्यक्ति गुरु बनना चाहता है शिष्यत्व किसी को पसन्द नहीं। गुरु की ज्योति प्राप्त करके शिष्य भी दूसरों को ज्योति देने वाला बने, तभी गुरु का सच्चा गौरव प्रकाशमान होता है। प्रबुद्ध के लिये गुरुजनों का कठोर अनुशासन ही हृदय को प्रिय लगता है। शिक्षा का सही अर्थ मुक्ति है। सर्वप्रथम बंधन का बोध करो और समझ कर इसे तोड़ो। शिव और शक्ति का सम्मेलन क्षेत्र प्रत्येक

शरीर की प्रत्येक गांठ में है। जब क्रिया और इच्छा दोनों ज्ञान की ओर बढ़ने लगते हैं तो नर नारी के पिंड में चिन्मय शिव तत्व की ज्योति जगती है। सामाजिक मंगल के लिये जो सहज प्रवृत्ति है, उसी का नाम धर्म है। धर्म कोई संस्था नहीं, सम्प्रदाय नहीं, वह मानवता की पुकार है। धर्म प्रेरणा है, धर्म मुक्ति दाता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समस्त जगत के सुख-दुख, हास्य-रोदन का प्रभाव परोक्ष रूप में उस पर पड़ता है। एक प्रकार की बिना रीढ़ की साधना इन दिनों समूचे भारत को ग्रास बनाये जा रही है। मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों की जड़ में ही कहीं बड़ा दोष रह गया है। आज फैले भ्रष्टाचार से आंखें नहीं चुराई जा सकती। संगठित होकर ही संगठित अत्याचार का विरोध कर सकते हैं। मनुष्य में काम, क्रोध, लोभ, मोह स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहते हैं। मन में हजार वासनायें उठती रहती हैं। उनके अनुसार अगर व्यक्ति चलने लगे तो बड़ा विकट परिणाम होता है। देखना चाहिये इच्छा क्यों हो रही है और कहां ले जायेगी? ज्ञान जिसके मूल में है और ज्ञान ही जिसकी सम्पत्ति है वही क्रिया ठीक हो सकती है। सभी कर्म ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं। ज्ञान से विज्ञान सधता है और विज्ञान से विसर्जन (त्याग) की प्रेरणा मिलती है। अपनी करनी पार उतरनी ही सही है। 'दूसरा' निमित्त बन सकता है। अनेकान्त का ध्यान रखना अनिवार्यता है। अतीत प्रेरणा स्रोत हो सकता है। भविष्य स्वर्णिम आदर्श और कल्पना का ताना-बाना हो सकता है पर वर्तमान अपने हाथ में होता है—

क्षण की आस क्षण भर की प्यास।<br>
क्षण में ही बन सकता इतिहास।<br>
क्षण में जीवन, क्षण में मरण,<br>
क्षण क्षण बदल रहा संसार।<br>
क्षण में कुछ घटता अलौकिक,<br>
क्षण की महिमा अपरम्पार।····

क्षण मात्र भी प्रमाद करना जीवन के अमूल्य समय को खोना है। महावीर ने कहा है—'समयं गोयम! मा पमायए।' महत्वाकांक्षा ही ऊंचा उठाती है। आत्मीय जनो! निर्भयता जीवन संगीत का सबसे ऊंचा स्वर है। स्वाभिमान है युवावस्था की आत्मा (मनुष्य अपनी श्रद्धा पर सदैव अभिमान करता है)। उदारता है यौवन का अलंकार, स्वयं जीवित रहकर दूसरों को जीने देने का अमूल्य साधन। समूचे शरीर में चित् का शासन हैं, मन उसी का अनुचर है। आदत बदलने का सबसे बड़ा सूत्र है—ग्रन्थि तंत्र का परिवर्तन, मन की यात्रा का परिवर्तन। तो क्यों न इसी क्षण को शुभ मुहूर्त मानकर सुविधाजनक रूपान्तरण की ओर अग्रसर हों। जो खुशी दूसरों की दृष्टि और रूचि पर आधारित या आश्रित होती है उसमें स्वयं के लिये न सुविधा होती है न आराम। अपनी वस्तु को स्वयं ही व्यवस्थित करना पड़ता है. दूसरे में यह सामर्थ्य नहीं। संकल्प की शक्ति से एकाग्रता सधेगी और साधना के पथ पर चलने की इच्छा जगेगी फिर कलान्ति भी आनन्ददायिनी होगी। सिर्फ प्रतिज्ञा का सफल होना ही बड़ी चीज नहीं वरन् प्रतिज्ञा करना ही बड़ी चीज है। अनासक्त भाव से अपने कर्त्तव्य-कर्म का निर्वाह करना ही व्यक्ति की श्रेष्ठ साधना है, आयाम अलग-अलग हैं। सत्य, अहिंसा, शिष्टता, सहिष्णुता, स्वाभिमान, रक्षा तथा आत्मोपम्य दृष्टि मानवता के आधार स्तम्भ हैं। अपने को मनुष्य सिद्ध कर सकना ही अभीष्ट है। अन्तश्चेतन में यहीं अनुगूंज है—

हमको मन की शक्ति देना,<br>
मन विजय करें।<br>
दूसरो की जय के पहले,<br>
खुद की जय करें।····

संयोजक—महिला समिति, कलकत्ता

# समाज सेवा : एक स्वैच्छिक कर्त्तव्य

□ पं. बसन्तीलाल लसोड़
न्यायतीर्थ, काव्यतीर्थ

समाज-सेवा और साधना हमारे देश की माटी की एक संस्कृति रही है और इधर वे ही लोग आते हैं जो आध्यात्मिक चिन्तन धारा से ओत-प्रोत होते हैं, जो परिवार की सीमा से ऊपर उठ कर कुछ समष्टिगत कार्य करने की ललक लेकर बढ़ते हैं। वे यदि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होते हैं तो उनमें दान देने की प्रवृत्ति उभरती है या वे अपने अर्जित धन को अन्य सामाजिक कार्यों में लगाते हैं। यदि उनमें प्रतिभा या नेतृत्व के गुण होते हैं तो वे सामाजिक धरातल पर समष्टिगत उपयोग करने–कराने में समर्थ होते हैं।

समाज, एकता की एक शृंखला, एक जंजीर है जिनमें धर्म, संस्कृति, साहित्य, भाषा, कला-कौशल, शिक्षा–दीक्षा, आचार-विचार, लोक-व्यवहार, व्यापार–व्यवस्था आदि अनेक कड़ियां जुड़ी हुई हैं। हमारे पूर्वजों ने इन कड़ियों को सतत सुदृढ़ बनाया और हमारे लिए एक समृद्ध विरासत छोड़ गए जो विश्व धरातल पर हमारी एक विशेष पहचान है, एक गौरवशाली परम्परा है। हम इन कड़ियों को निरन्तर मजबूत बनाते जावें। अपनी संस्कृति, संस्कार, भाषा, रीति-रिवाज एवं परम्पराओं को नहीं भूलें एवं इनके संवर्द्धन हेतु सदा प्रयत्नशील रहें, यही सच्ची समाज-सेवा है, एक साधना है।

सामाजिक कार्यों के प्रति रुझान, लोकोपकारी प्रवृत्तियों में तन-मन-धन से यथाशक्ति योगदान समाज-सेवा के अंग हैं। सच्ची समाज–सेवा में समर्पण की, साधना की, सेवा की, त्याग की, सहिष्णुता की, प्रेम की महती आवश्यकता है। आज हम समाज-सेवा में कितने लीन हैं, समाज के प्रति कितने समर्पित हैं, यह नितान्त विचारणीय है?

जो समाज भगवान् महावीर के समय एक ही शृंखला में आबद्ध था उसमें धीरे-धीरे परिस्थितिवश तनाव की स्थिति उत्पन्न होती गई। धार्मिक व्यापकता के स्थान पर धार्मिक संकीर्णता ने जन्म लिया और हम विभिन्न सम्प्रदायों एवं गच्छों में, पंथों में, वर्गों में, विभाजित हो गए। आज हमारी स्थिति यह है कि हम इन पंथों के प्रति अधिक वफादार हैं और इन्हीं के पालन–पोषण व संवर्धन में अपना गौरव व कर्त्तव्य समझने लगे हैं। आज हमें पंथत्व की चिन्ता इतनी अधिक सता रही है कि हम जैनत्व, जैन साहित्य, जैन संस्कृति और जैन समाज के उन्नयन की चिन्ता भूल बैठे हैं। ये पंथ, ये गच्छ नदी के उन दो किनारों की तरह बन गए प्रतीत हो रहे हैं जो कभी मिल नहीं पाते। वैसे हम विश्व स्तर पर अहिंसा, अनेकांतवाद, भ्रातृत्व, मैत्री, दया आदि की दुन्दुभी बजा रहे हैं, पर जब हम अपने अन्दर झांकते हैं, आत्मनिरीक्षण करते हैं तो लगता है हम भगवान् महावीर के इन सिद्धांतों को नदी में विसर्जित कर रहे हैं। हमारी आन्तरिक टकराहट, प्रतिस्पर्द्धा, अलगाववृत्ति ने हमें दिग्भ्रमित कर दिया है। वस्तुतः देखा जाय तो आज सही दिशा में ले जाने वाला कोई सशक्त नेतृत्व नहीं हैं। आज आवश्यकता है एक ऐसे मंच की जिसका एक नेता हो

क झण्डा हो, एक आचार संहिता हो, एक अनुशासन । यदि हम यह सम्भव कर सके तो यह समाज की हुत बड़ी सेवा होगी ।

व्यक्ति-व्यक्ति से समाज बना है । व्यक्ति क्या ? व्यक्ति अपने विश्वास, विचार और आचार का तिफल है । दृष्टि की विमलता से ही व्यक्ति का वन विमल और धवल बनता है। यदि यह विम-ता, धवलता हमारी समाज के तथाकथित पंथ-प्रति-पकों, मठाधीशों और उनके कट्टर अनुयायियों में ांश भी व्याप्त हो जावे तो हमारी एकता की स्या हल हो सकती है । वैसे अनुभव व व्यवहार देखा है यह पंथिक अभिनिवेष जितना पुरानी पीढ़ी दृष्टिगोचर होता है उतना नई पीढ़ी में नहीं है । र यदि कुछ युवकों-युवतियों में है भी तो वह अपने ता-पिता या बुजुर्गों के कारण है । और लगता है नई पीढ़ी के विचारों के कारण धीरे-धीरे यह ट्टरता की दीवारें ढहती चली जायेंगी। जैसे इतिहास ने आपको दोहराता है हम पुनः एक होने को तिवद्ध हो जावेंगे, वैसे यह सब कुछ भविष्य के गर्भ है पर इसके लिए भी आवश्यकता है उन मूल्यों र गुणों के प्रबल प्रचार-प्रसार की जो हमारे पूर्वजों बताए हैं ।

यह निश्चित हैं शरीर को टुकड़ों में नहीं सींचा सकता है । खण्ड-खण्ड का विचार अखण्डता के ए किया जावे तो सफलता सम्भव है । युवकों में यात्मक शक्ति का असीम भण्डार है, जिनको यदि ही उपयोग में लिया जावे तो एक समतामय समाज बना की प्रक्रिया सरल हो जावेगी । इसके लिये वश्यकता है हम युवक समाज को जागृत करें । उन्हें ावें कि राष्ट्रीय धरातल पर हमारे समाज की स्थिति ा है । समाज में एकता लाने की जिम्मेवारी उसके येक सदस्य की है । हमें दूसरों के दोषों की चर्चा व्यर्थ समय न गंवा कर कर युवकों के साथ-साथ भी को इस समाज-सेवा में प्रवृत होना चाहिये ।

समाज-सेवा का दूसरा पहलू लोकोपकारी प्रवृत्तियों का प्रचार-प्रसार व सामाजिक कार्यों के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करना है । बचपन में मैंने देखा है आर्थिक दृष्टि से अच्छे से अच्छे समृद्ध व्यक्ति स्वयं बहुत सादगी से रहते थे । वे स्वयं पर, अपने परिवार पर बहुत कम व्यय करते थे पर परोपकार के लिए दिल खोल कर खर्च करते थे । यही कारण है कि हमें जगह-जगह कलाकौशल के भव्य अमर स्मारक, धर्मशालाएं, कुएं, बावड़ी, अस्पताल, प्राकृतिक चिकित्सालय, स्कूल कॉलेज, सांस्कृतिक केन्द्र, मन्दिर, स्थानक, उपाश्रय, अतिथिगृह आदि नजर आ रहे हैं । आज भी हमारा समाज समृद्ध एवं सम्पन्न है । धनिकों की, कलाविदों की, बुद्धजीवियों की, दानवीरों की, शिक्षाविदों की, त्यागियों, तपस्वियों की कोई कमी नहीं है । समयानुसार अब हमें उद्योग व्यापार के साथ-साथ साहित्य, विज्ञान कानून, इन्जीनियरिंग, डाक्टरी, संगीत, संस्कृति, कलाकौशल आदि क्षेत्रों में समाज को तेजी से अग्रसर करना चाहिये ताकि हम राष्ट्रीय जीवन धारा से जुड़े रहें ।

आज का मानव भौतिकवाद की चकाचौंध से भ्रमित हो रहा है । वह मृगतृष्णा में धर्म और ईमान सब को भूल कर अनेक दुर्गुणों से ग्रसित हो गया है। इसका प्रभाव हमारी समाज पर भी पड़ा है और हमारे में भी फैशन परस्ती, फिजूलखर्ची, अन्धविश्वास, आडम्बर आदि अनेक कुरीतियां व्याप्त हो गई हैं । लोकहित के कार्यों के बजाय वैभव के प्रदर्शन बढ़ते जा रहे हैं । विवाह-शादी के अवसर पर अनाप-शनाप व्यय किया जा रहा है जिसका मध्यम वर्ग और अल्प आय वालों पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है । उदाहरण के तौर पर मृत्यु भोजों में मृतात्मा की शांति के नाम पर हजारों रुपया उड़ा दिया जाता है । दहेज भी आज हमारी समाज में पूर्ण रूप से अपनी विकरालता की जड़ें जमा चुका है । आज यह संपन्नता, प्रतिष्ठा एवं सभ्यता की निशानी माना जा रहा है ।

मध्यमवर्गी पालक वर्ग इस दहेज राक्षस से बुरी तरह त्रस्त है। अच्छी विदुषी कन्याएं भी अनुचित स्थानों पर फेंक दी जाती हैं। बेरोजगारी अत्यधिक मात्रा में व्याप्त है। आज हमारे समाज में हजारों होनहार युवक इसी कारण अपनी प्रतिभा का सदुपयोग नहीं कर पाते हैं। लगता है 'जीवो और जीने दो' की हमारी कला गुम हो चुकी है।

विचारों की संकीर्णता के कारण आज समाज सेवा और समाज निर्माण की बात तो दूर रही स्वयं का निर्माण भी कठिन होता जा रहा है। जिस शक्ति का उपयोग समाज कल्याण के लिए होना चाहिये वह समाज को विघटन के कगार पर धकेल रही है अतः यदि निकट भविष्य में इन कुरीतियों एवं अभावों की ओर ध्यान नहीं दिया गया तो हमारा भविष्य धूमिल, अन्धकारमय होता जायेगा अतः इनको दूर करने का हम बीड़ा उठावें, संकल्प लेवें तो यह हमारी समाज-सेवा का प्रशस्त सोपान होगा। युवक-युवतियां समाज के प्राण हैं और समाज में फैली इन बुराइयों को दूर करने में ये एक ऐसा माध्यम है जो समाज की आकांक्षाओं को पूर्ण कर सकता है। वह प्रण करे, लगन एवं परिश्रम से काम करे तो सामाजिक प्रतिष्ठा को संवार सकता है अतः इनको भी समाज सेवा के इस यज्ञ में आगे बढ़कर योगदान करना चाहिए।

आज हमारे मानवीय नैतिक मूल्यों में भी भारी गिरावट आ रही है अतः इस समय नवयुवकों को, बालक-बालिकाओं को सुसंस्कारों की नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा देना बहुत जरूरी हो गया है ताकि भविष्य में ये समाज के सुदृढ़ स्तम्भ बन सकें। इन्हें हमारी सभ्यता, संस्कृति, साहित्य और पुरातन कलाकौशल एवं समृद्धि से भी परिचित कराना अति आवश्यक है। हमारे गौरवमय इतिहास की भी इनको जानकारी देनी चाहिए ताकि भविष्य में एक सुसंस्कारी नागरिक होने के साथ-साथ अपनी सेवाओं के माध्यम से ये समतामय समाज के निर्माण का स्वप्न पूर्ण कर सकें।

हमारा अतीत बहुत गौरवशाली रहा है। पूर्वजों से हमें जो महान् सांस्कृतिक धरोहर प्राप्त हुई हैं, वह उनकी दीर्घकालीन साधना का परिणाम है। उस धरोहर को हमें केवल सुरक्षित ही नहीं रखना है बल्कि उस साधना का अनुकरण भी करना है। उन्होंने धर्म की प्रेरणा देने के लिए विशाल, भव्य, कलाकौशल युक्त जो स्मारक बनाए, साक्षात् सरस्वती स्वरूप जो ज्ञानभण्डार स्थापित किए उनकी सुरक्षा, देखभाल और उनसे ज्ञानवृद्धि के लिये भी जागरूक रहना आवश्यक है। ये कुछ ऐसे आयाम हैं जो अद्भुत रूप लिए हुए हैं। ये प्रबल प्रेरणा-स्रोत हैं, प्रकाश-स्तम्भ हैं। इनके द्वारा हम अपनी आत्मा के अज्ञानान्धकार को दूर कर जीवन-ज्योति जगा सकें। यह हमारी साधना के ऐसे सोपान, ऐसे प्रेरणापुंज होंगे जो युग-युगान्तर तक याद किये जाते रहेंगे।

समाज सेवा और साधना हमारे देश की की एक संस्कृति रही है और इधर वे ही लोग हैं जो आध्यात्मिक चिन्तन धारा से ओत-प्रोत होते हैं जो परिवार की सीमा से ऊपर उठ कर कुछ समाजगत कार्य करने की ललक लेकर बढ़ते हैं। वे आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होते हैं तो उनमें दान देने की प्रवृत्ति उभरती है या वे अपने अर्जित धन को सामाजिक कार्यों में लगाते हैं। यदि उनमें प्रतिभा नेतृत्व के गुण होते हैं तो वे सामाजिक धरातल समष्टिगत उपयोग करने-कराने में समर्थ होते हैं।

आज के इस अर्थ प्रधान कलुषित वातावरण में जहां भौतिकवाद का बोलबाला है वहां आध्यात्मिक चिन्तन धारा विरले ही लोगों में मिलती है। आज कल व्यापार, राजनैतिक मंच, साहित्य सृजन, पत्रकारिता आदि अर्थ व आत्मतुष्टि के विशेष साधन बन रहे हैं। आज अधिकांश व्यक्ति स्वार्थ पूर्ति के लिए समाज सेवा में घुसते हैं किन्तु जो समाज-सेवा को कर्त्तव्य समझ कर समाज-सेवा में आते हैं और के लिए समर्पित होकर काम करते हैं, वे ही

साधक होते हैं। वे सम्मान के भूखे नहीं होते हैं। निःस्वार्थ भाव से सेवा करते हैं। आज निःस्वार्थ सेवा की समाज में कोई कदर नहीं है और इसी से समाज सेवक बहुत कम सामने आते हैं। विदेशों में तो समाज सेवा एक व्यापार है जिसमें केवल स्वार्थ की गन्ध होती है पर अपने देश में समाज-सेवा एक स्वेच्छिक कर्त्तव्य है जिसमें सुगन्ध होती है और यही सुगन्ध समाज को सुवासित करती है। आज इसी सुवास से समाज को सुवासित करने की महती आवश्यकता है।

—मण्डी प्रांगण, नीमच (म.प्र.)

**आदमी—** आदमी एक ब्लॉटिंग-पेपर है, जिस पर कुछ भी और कैसा भी लिखा जाये, अक्षर सुवाच्य नहीं रहते।

**दर्द—** दर्द एक अनुभव है, जो किसी को होता है, किसी को नहीं।

**वर्षगांठ—** वर्षगांठ अभावग्रस्त व्यक्ति की मानसिक और अस्थायी प्रसन्नता है।

**निष्ठा—** निष्ठा एक आकृति है, किसी के लिए धुंधली, मटमैली-सी किसी के लिए उजली संवरी-सी।

**अभिनन्दन—** अभिनन्दन एक सम्पर्क है। जब चाहो जुड़ जाए, चाहो टूट जाए।

**स्वार्थ-परार्थ—** स्वार्थ जीवन के पशुपन की निशानी है। परार्थ ही मनुष्य जीवन का सही सम्बल है।

□ डा. मनोहर शर्मा
भूतपूर्व सम्पादक, श्रमणोपासक

# जैन विद्वानों द्वारा संस्कृत के माध्यम से प्रस्तुत लोक कथाएं

△

कहना न होगा कि इन कथा-ग्रन्थों का विवेचनात्मक अध्ययन अनेक दृष्टियों से अत्यन्त उपयोगी है। इनमें एक साथ ही लोक और शास्त्र दोनों का जीवन दर्शन है। अत: इनकी सामाजिक उपयोगिता स्पष्ट है। इसी प्रकार इनका अनुसंधानात्मक अध्ययन साहित्यिक दृष्टि से भी असाधारण महत्व रखता है।

राजस्थान की कथाएं राजस्थानी भाषा के अतिरिक्त संस्कृत भाषा के माध्यम से भी बड़ी संख्या में संकलित की गई हैं। इस विषय में जैन विद्वानों द्वारा संगृहीत कथाकोश ग्रन्थ बड़े महत्वपूर्ण हैं। उनमें प्राचीन शास्त्रीय-कथाओं के साथ ही अनेक लोक-प्रचलित कथानकों को भी स्थान दिया गया है। इस दृष्टि से मुनिश्री राजशेखर सूरि (समय पन्द्रहवीं शती) का 'कथा कोश' (विनोद-कथा-संग्रह सहित), श्री शुभशील गणि का 'पंचशती प्रबोध सम्बन्ध' (सं. १५२१) तथा मुनि श्री हेमविजय गणि का 'कथारत्नाकर' (सं १६५७) आदि विशेष महत्वपूर्ण हैं। ये ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे गए हैं परन्तु साथ ही इनमें यत्र-तत्र लौकिक गाथाएं भी संकलित कर ली गई हैं।

राजस्थानी तथा गुजराती लोक-कथाओं के अध्ययन हेतु ये ग्रंथ बड़े उपयोगी हैं। इस दृष्टि से यहां लौकिक कथानक पर प्रकाश डालने की चेष्टा की जाती है, जिससे कि इन ग्रंथों का वास्तविक महत्व स्पष्ट हो सके। अनुसंधान हेतु यह एक उत्तम विषय है।

### करहा म करि करक्कड़ो

किसी गांव में एक ब्राह्मण रहता था। वह ग्रहण के समय भी दान लेता था। उसकी पत्नी उसे ऐसा न करने के लिए कहती थी परन्तु वह मानता न था। कालान्तर में ब्राह्मण मरकर ऊंट बना और उसकी पत्नी मृत्यु के बाद राजपुत्री हुई। राजपुत्री का विवाह हुआ तो उसी ऊंट पर सामान लादा गया और वह अपने पीहर से ससुराल के लिए विदा हुई। सामान के अति-भार से वह ऊंट कराहने लगा तो राजपुत्री ने उस पर ध्यान दिया। अब उसे पूर्व-भव का वृत्तान्त स्मरण हो आया और वह ऊंट से बोली—

करहा म करि करक्कड़ो,
भार घणो घर दूरि।
तूं लेतो हूं वारती,
राहु गिलंते भूरि॥

इतना सुन कर ऊंट को भी पूर्व-भव का स्मरण हो आया और उसे बड़ा पछतावा हुआ। आखिर उसने अनशन के द्वारा शरीर छोड़ दिया और वह स्वर्ग को गया।

मुनि श्री शुभशील गणि द्वारा संकलित यह कथा कर्म फल का प्रकाशन करने हेतु एक सुन्दर उदाहरण है।

कार्तिक मास में राजस्थानी महिला वर्ग द्वारा एक पुण्य-कथा विशेष रूप से कही और सुनी जाती है। उस का नाम 'इल्ली घुणियो' है। उसमें अनाज में रहने वाली एक 'इल्ली' (कीट) घुन से कहती है कि वह भी उसकी तरह कातिक स्नान करे। परन्तु, धुन ऐसा नहीं करता। फलतः दूसरे जन्म में 'इल्ली' राजकुमारी वनती है और धुन मेंढ़ा (घेंटा) वनता है। राजकुमारी का विवाह होने पर वह मेंढ़ा भी उसे प्राप्त हो जाता है। जब उसे प्यास लगती है तो वह चिल्लाता है और कोई उसे पानी नहीं पिलाता तो वह राजकुमारी से कहता है—

**"रिमको-भिमको ए, श्यामसुन्दर बाईए,**
**थोड़ो पाणीड़ो प्या।"**

इस आवाज पर पूर्व-भव को स्मरण करके राजरानी उसे कहती है–

**"मैं कैवै छी ओ, तूं सुणै छो ओ,**
**दई म्हांरा घुणिया, कातिगड़ो न्हा।"**

नई रानी के इन शब्दों की चर्चा उसकी अन्य सौतों में फैलती है तो वह राजा को समस्त पूर्व-वृत्तान्त सुना देती है। राजा भी कार्तिक-स्नान के महत्व को समझ जाता है।

उपर्युक्त कथा का एक रूपान्तर भी श्री शुभ-शील गणि ने प्रस्तुत किया है। तदनुसार वन में रहने वाले एक कठियारे की स्त्री स्वयं जंगली पुष्पों एवं नदी जल से प्रभु सेवा करती है और अपने पति को भी ऐसा करने के लिए कहती है। परन्तु वह उसकी बात पर ध्यान नहीं देता। कालान्तर में कठियारी मर कर राजपुत्री और फिर राजरानी बनती है। कठियारा पहले ही की तरह सिर पर लकड़ी का भार रखकर बेचता फिरता है। उसे देखकर राजरानी को पूर्व-भव स्मरण हो आता है और वह कहती है–

**अड़वी पत्ती, नईअ जल,**
**तोई न वूहा हत्थ।**
**अज्ज एइ कवाड़ीह,**
**दीसई साईज अवत्थ॥**

गाथा काफी पुरानी है। आचार्य सोमप्रभ सूरि विरचित 'कुमारपाल प्रतिवोध' में इसका निम्न रूप प्राप्त है–

**अड़विहि पत्ती, नइहि जलु,**
**तो वि न वूहा हत्थ।**
**अवोनह कवाड़िह,**
**अज्ज विसज्जिए वत्थ॥**

(अटवी के पत्ते और नदी का जल सुलभ था तो भी उसने हाथ नहीं हिलाए। हाय, आज उस कावड़ वाले के तन पर वस्त्र भी नहीं है।)

आज भी यह कथा कार्तिक मास में कही जाती है। इसकी गाथा का प्रचलित रूप इस प्रकार है–

**कातिगड़े नंह न्हाइया.**
**नर नंह जोड़्या हत्थ।**
**सावधण वैठी समदरां,**
**तेरी वाह ही गत॥**

कहना न होगा कि इन कथा–ग्रन्थों का विवेच-नात्मक अध्ययन अनेक दृष्टियों से अत्यन्त उपयोगी है। इनमें एक साथ ही लोक और शास्त्र दोनों का जीवन दर्शन है। अतः इनकी सामाजिक उपयोगिता स्पष्ट है। इसी प्रकार इनका अनुसंधानात्मक अध्ययन साहित्यिक दृष्टि से भी असाधारण महत्व रखता है। यह सामग्री एक साथ ही संस्कृत तथा लोक भाषाओं (राजस्थानी और गुजराती) से जुड़ी हुई है। विशेषता यह है कि यह सम्पूर्ण सामग्री सत्कर्म के लिए प्रेरणा देने वाली है, भले ही विभिन्न वर्गों के लोगों की अपनी विधि कैसी भी हो। यह उदारता का क्षेत्र है, जो सबके लिए समान रूप से हितकारी है। निश्चय ही यह सामग्री रंजक भी कम नहीं है और यही कारण है कि काफी पुराने समय से यह रूपान्तर ग्रहण करती हुई आज भी जन-साधारण में अत्यन्त लोकप्रिय है।

—१६, कैलाश निकुंज, रानी बाजार, बीकानेर

# समाज-सेवा और साधना

□ पं. गुलाबचन्द शर्मा

मानव जाति ने विकसित मस्तिष्क, वाणी और अंगूठे के सदुपयोग पूर्वक सुख–शांति एवं साधना के पथ पर चलकर देवत्वमय जीवन, सभ्यता और संस्कृति का निर्माण किया है। अपनी विशेषताओं तथा लक्ष्य के प्रति सजगता से मानव ने सामाजिकता का ताना–बाना बुना है और वह भी इतनी दृढ़ता से कि अरस्तू जैसे महान् दार्शनिक ने घोषित कर दिया कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अरस्तू के इस कथन से समाज के साथ मनुष्य के सम्बन्धों की गहराई स्पष्ट हो जाती है। मनुष्य समाज से अलग नहीं हो सकता। अतः समाज और मानव के सम्बन्धों को सुसंस्कृत बनाने के सशक्त माध्यम के रूप में सेवा का जन्म हुआ। मानव-सेवा और समाज–सेवा ऐसे माध्यम हैं, जो एक साथ मनुष्य और समाज दोनों को जोड़ते हैं। वैसे समाज–सेवा में मानव–सेवा स्वतः अन्तर्निहित है।

सेवा का यह बिन्दु विकसित होते–होते विराट सिन्धु का रूप धारण कर लेता है, जिसके परिणामस्वरूप कला, साहित्य, विज्ञान, संस्कृति और सभ्यता हमारे सामने आते हैं। इस सेवा का स्वरूप भी कई प्रकार का होता है, जैसे समाज की बुराइयों से संघर्ष करना, धार्मिक प्रवृत्तियों के विकास हेतु जागरूक रहना। सेवा का वटवृक्ष विशाल है और परिवार, जाति, धर्म आदि की आधार भूमि में अवसर पाकर वह विकसित होता है।

मानव अपने जीवन में सुख के बाद शांति चाहता है और वह उसे समाज तथा सेवा के माध्यम से ही प्राप्त हो सकती है। समाज, सेवा के महत्व से सुपरिचित है और सेवा–भावना को प्रोत्साहित करने के लिए हर प्रकार का प्रयास करता है। सेवाभावी, कर्मवीर, दानवीर आदि विशेषण व्यक्ति को सामाजिक मान्यता से ही प्राप्त होते हैं। समाज-सेवा मनुष्य को महान् कार्य करने की मात्र प्रेरणा ही नहीं देती अपितु क्षेत्र भी प्रदान करती है। इसी के बल पर वह देवत्व प्राप्त कर लेता है।

समाज से प्राप्त सेवा–भावना से मनुष्य की धर्म श्रद्धा दृढ़ होती है और उसका जीवन धार्मिक बन जाता है। गम्भीरता से सेवा के मनोविज्ञान को समझें तो 'हमें एक कल्याणकारी खजाना प्राप्त हो सकेगा, कारण कि समाज-सेवा की भावना से समाज की बुराइयों का नष्ट होना स्वाभाविक है। सच्चा सेवाभावी बन जाने पर मनुष्य दहेज व मृत्युभोज जैसी बुराइयों पर धन व्यय न करके अच्छे धार्मिक कार्यों पर व्यय करेगा, जिससे समाज की बुराइयां समाप्त होंगी और मानव को आत्मशांति एवं आत्मकल्याण की भावना प्राप्त होगी।

इस स्तर पर पहुंच कर सेवा एक साधना का रूप ग्रहण कर लेती है। सेवा और साधना मिलकर जिस अमृत तत्व का निर्माण करते हैं, उससे सुख-सम्पत्ति और सरस्वती का समन्वय होता है, जिससे मन वीणा जागृत होकर वैराग्य का पथ प्रशस्त करेगी। जीवन एक साधना का रूप ले लेगा। जीवन संकल्पमय, श्रद्धामय, साधनामय हो जाएगा और उससे समाज, राष्ट्र और विश्व का कल्याण होगा। ऐसे सेवाधर्मी व्यक्ति चाहे साधु, श्रावक या साहित्यकार कुछ भी बनें, समाज को गौरव मंडित करेंगे।

आइये ! हम सब मिलकर अपने जीवन को सेवा और साधनामय बनावें।

—छोटीसादड़ी (राज.)

# साधुः विशेषणों का विशेषण

□ डा. नेमीचन्द जैन

साधु की आगमोक्त अस्मिता पर तो विचार हुआ है; किन्तु उसकी लोकोक्त इबारत पर बहुत कम सोचा गया है। 'उत्तराध्ययन' एक ऐसा संकलन सूत्र है जिसके पन्द्रहवें अध्ययन में भिक्खू/साधु के व्यक्तित्व पर, उसकी गुणवत्ता पर गहराई से विचार किया गया है। इसमें आये सोलह श्लोक जहां एक ओर साधु के व्यक्तित्व की उदार समीक्षा करते हैं, वहीं दूसरी ओर वे "टॉर्च-बेअरर" का काम भी करते हैं। लगता है जैसे सोलह मशालों का एक जुलूस आगे-आगे चल रहा हो साधु के, जो उसे रोशनी देता हो इतनी कि उसकी साधना फलवती हो सके, कामधेनु सिद्ध हो सके।

साधुओं पर तो मेरा ध्यान गया है, किन्तु उनके व्यक्तित्व पर विचार करते हुए 'साधु' शब्द के विभिन्न अर्थों पर भी ध्यान गया है। सोचता रहा हूं कि यह शब्द कैसे बना और कितने अर्थ हैं इसके ? जिस रूप में आज यह प्रचलित है क्या साधुवर्ग आज इसे उसी अर्थ में जी रहा है, या इसके जीते-जी वह अर्थान्तरों की अन्तहीन मृगमरीचिका में फंस-उलझ गया है ?

व्याकरण की आंख से साधु शब्द संज्ञा भी है और विशेषण भी। संज्ञा के रूप में इसके मायने हैं-मुनि, यति, सज्जन और विशेषण के रूप में सुन्दर, शोभन, प्रतिमित, परिनिष्ठित, मानक, आदर्श, भला, अच्छा, उचित, संतुलित, चतुर, योग्य, मुनासिब, वाजिब।

प्राकृत में इसका रूपान्तर है 'साहु' और लोक- भाषाओं में 'हाउ'। 'साहु' का अर्थ है साधु और 'हाउ' का अर्थ है अच्छा। साहु और हाउ दोनों ही साधु में से विकसित शब्द हैं।

संज्ञा और विशेषण के रूप में इसके जो अर्थ सामने आये हैं, वे लोकप्रयुक्त हैं और समाज की उस मंगल-कामना के परिचायक हैं, जो सदैव औचित्य और शालीनता का ध्यान रखती रही है। जब हम "साधु भाषा" कहते हैं, तब हमारा ध्यान भाषा के उस मानक रूप पर होता है, जिसके द्वारा हम समाज के उस विद्या क्षेत्र की अभिव्यक्ति करते हैं जिसमें जटिल और गहन विषयों का अध्ययन-अनुसंधान होता है। इसी के द्वारा हमारी वैज्ञानिक, शास्त्रीय, न्यायिक राजनैतिक,पुरातात्विक, तार्किक तथा कलागत धारणाओं की सूक्ष्मतर विवेचनाएं होती हैं। इसी में से मानव की सर्वोत्कृष्ट मेधा अंगड़ाई लेती है।

जैनधर्म में 'साधु' को साधना की बुनियाद निरूपित किया गया है। जैन साधना की आधार भूमि है 'साधु'। साधु के आगे की सीढ़ी है 'उपाध्याय'। उपाध्याय के आगे का सोपान है 'आचार्य', आचार्य के आगे का 'अरिहन्त' और अन्तिम है 'सिद्ध'। इस तरह साधु यदि नींव है, तो सिद्ध शिखर है। नींव से

शिखर तक की यह यात्रा स्थूल यात्रा नहीं है वरन् भीतर-भीतर निरन्तर होने वाली एक अत्यन्त अलौकिक/अव्यक्त यात्रा है—ऐसी, जिसकी सूचना बाहर के लोगों को कम, किन्तु साधक को अधिक और प्रतिपल/प्रतिपग मिलती है ।

साधु की आगमोक्त अस्मिता पर तो विचार हुआ है, किन्तु उसकी लोकोक्त इबारत पर बहुत कम सोचा गया है । 'उत्तराध्ययन' एक ऐसा संकलन-सूत्र है जिसके पन्द्रहवें अध्ययन में भिक्खू/साधु के व्यक्तित्व पर, उसकी गुणवत्ता पर गहराई से विचार किया गया है । इसमें आये सोलह श्लोक जहां एक ओर साधु के व्यक्तित्व की उदार समीक्षा करते हैं, वहीं दूसरी ओर वे 'टॉर्च-बेअरर' का काम भी करते हैं । लगता है जैसे सोलह मशालों का एक जुलूस आगे-आगे चल रहा हो साधु के, जो उसे रोशनी देता हो इतनी कि उसकी साधना फलवती हो सके, कामधेनु सिद्ध हो सके ।

कहा गया है कि साधु अपने विहार में चाहे वह अंतस्तत्व की खोज के लिए हो, या बाहर-प्रतिपल अप्रतिबद्ध होता है । वह किसी से संचालित नहीं होता बल्कि वह एक ही निष्कर्ष पर तमाम उसूलों को कसता है, निकष है—अध्यात्मसिद्धि के लिए, आत्मोपलब्धि के लिए कौन-सी स्थितियां हेय हैं और कौन-सी उपादेय ? उसका परमोच्च लक्ष्य होता है आत्मानुसंधान, आत्मा की मौलिकताओं को अप्रच्छन्न करना । उसकी सारी शक्ति/सम्पूर्ण सामर्थ्य आत्मगवेषणा में लगता है । वह स्वयं का दीपक स्वयं बनता है, मूलतः वह "आगमचक्षु" होता है । उसकी साधना इतनी प्रखर और तेजोमय होती है कि उसमें हो कर आगम को जर्रा-जर्रा देखा जा सकता है । वह न तो बंधता है और न ही बांधता है, वह मात्र सम्यक्त्व को खोजता है और यत्न करता है उन सारे मुलम्मों को उतार फेंकने के जो उसे प्रवंचित करते हैं, गतव्य तक पहुंचने में अड़चन डालते हैं । वह चलता जाता है और होता जाता है इस तरह कुछ कि उसके इस चलने/होने से उसका आत्मतत्त्व प्रकट होने लगता है । वह आच्छा- दनों को हटाता जाता है और विमलताओं को [illegible] का हर सम्भव प्रयत्न करता जाता है । वह अंतः दर्शन का मर्मी होता है—अप्रतिबद्ध, पूर्वाग्रहमुक्त, [illegible] पथ का पथिक । वह, यह, या वह पहले से [illegible] नहीं चलता बल्कि खुद खोजता है और पाता है [illegible] लोगों की छत्रछाया में जो उससे पहले हुए हैं, [illegible] उसके समकालीन हैं और जिन्होंने आत्मतत्त्व [illegible] उसकी सम्पूर्णता में जानने/पाने का प्रयास किया है।

साधु वह है, जिसकी किसी भी वस्तु, [illegible] या व्यक्ति में मूर्च्छा नहीं है । जो अनासक्त है प्रतिपल । जो न किसी वस्तु से बंधता है, न [illegible] वस्तु उसे बांध पाती है; वह निर्बन्ध/निर्ग्रन्थ, एका- एकल चलता है उन तमाम विकारों और दोषों [illegible] अलगाता हुआ जो उसकी अध्यात्मयात्रा में विघ्न [illegible] हैं, इसीलिए उसे सागर की उपमा दी गयी है । [illegible] है: वह "बहिःक्षिप्तमलः" होता है अर्थात् जिस त[रह] समुद्र अपने भीतर से मथ-मथ कर मलों को फें[कता] रहता है, ठीक वैसे ही साधु भी अपनी साधना [illegible] अपने अंतरंग के मल बाहर फेंकता रहता है स्वा[ध्याय] में, प्रतिक्रमण में, सामायिक में—प्रतिपल, प्रतिपग ।

जिस तरह वह यह सब करता है, विज्ञान [की] प्रयोगशालाओं में भी वही/वैसा होता है किंतु विज्ञान [की] प्रयोगशाला का कार्य भौतिक होता है—उसका [illegible] दृश्य बनता है; किन्तु साधु के भीतर का कोई [illegible] नहीं बनता, वह निरन्तर अपने काम में लीन [illegible] है और अमूर्च्छित चलता है । "मूर्च्छा" जैनागम[ों का] एक पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ है गहन आ[सक्ति,] अंधा मोह—ऐसा मोह जो अनात्म को आत्मतत्त्व [के] स्तर पर देखने लगता है । जब कोई किसी वस्तु [को] जो उसकी अपनी नहीं है, अपनी—बहुत अपनी—[मानने] लगता है, तब मूर्च्छा प्रकट होती है । मूर्च्छा गह[री] तब होती जाती है, जब आसक्ति प्रगाढ़ होती है[।]

को 'निज' मानने लगता है-एक भ्रांति में धंस है ।

जैनागम में परिग्रह को मूर्च्छा कहा गया है । इसीलिए, अंतरंग/वाह्य मूर्च्छा को उत्तरोत्तर ा है । संयम के द्वारा वह उस पर काबू पाता मूर्च्छा के कई द्वार हैं । वह आहार, भय, मैथुन से भी हमला कर सकती है । साधु सतर्क/ त्त रहता है और द्वार खुले रख कर ारी करता है । जो किसी भी वस्तु/स्थिति में ग्रत नहीं है, वह है भिक्षु । अमूर्च्छित महामुनि वाद के लिए कभी नहीं खाता; वह सिर्फ इस- भिक्षा लेता है ताकि जिये और अपने लक्ष्य की कदम उठाये रहे ।

'उत्तराध्ययन' के सत्रहवें अध्ययन में कहा गया क वह अलोलुप, रस में अगृद्ध, जिह्वाजयी, अमू- त रहता है और अपने लक्ष्यविन्दु पर एकाग्र ा है । अनासक्ति उसके जीवन का मूलाधार ा है ।

वह सब सहता है । हर्ष-विषाद, लाभ-हानि, दुःख, संयोग-वियोग, राग-द्वेष, माटी-स्वर्ण सबमें व रखता है । उसके लिए कहीं कोई मूर्च्छा नहीं ि--सब समान होते हैं । वह निराकुल होता है । लता मूर्च्छा में, विपमता में होती है, समत्व में लता के होने का कोई प्रश्न ही नहीं है । यही ण है कि साधु समत्व में जीता है और उसी को ने जीवन की बुनियाद बनाता है उसके लिए की निजता इतनी उदार हो बनती है प्राय: सभी आत्मवत् हो जाते हैं । उसकी सघन आत्मवत्ता में से अहिंसा का परमोत्कृष्ट व्यक्त होता है । वह अभीत हो जाता है, होता ा है । कहा गया है कि अभय अहिंसा का परि- ि है । वह अहिंसा की चरम सीमा है । अहिंसक तो किसी से डरता है, और न किसी को डराता । ऐसी कोई वजह ही नहीं बच रहती कि वह किसी से भयभीत हो । भय को जीतने पर अहिंसा आपोआप अपनी परमोत्कृष्टता में उस पर प्रकट हो जाती है ।

साधु आत्मगवेषी होता है । वह ढूंढ़ता है आत्मा को, स्व-भाव को । शरीर में बैठी उस आत्मा को जिसे लोग अक्सर देख नहीं पाते हैं । होता बहुधा यह है कि लोग देह को ही आत्मा मान बैठते हैं और उसमें मूर्च्छित हो जाते हैं । इन—ऐसी बीहड़ स्थि- तियों में शुरू होती है साधक की शोध-यात्रा ।

ध्यान रहे सत्य की खोज का काम गहन तिमि- रान्ध में शुरू होता है । शरीर की जड़ताओं के बीच आत्मा की एक किरण जब साधक को छूती है, उसके भीतर भिदती/उतरती है तब शुरू होती है उसकी सच्ची गवेषणा । एक संयत, सुव्रत, दूसरे साधुओं के साथ रहने वाला साधु ही आत्मगवेषणा का अधिकारी हो सकता है । सच्चा आत्मगवेषी अमूर्च्छित और परिपूर्ण संयम में चलता है । उसकी यात्रा अविराम चलती है, वह एक पल को भी रुकता नहीं है; तब तक वह पुरस्सर रहता है जब तक उसे आत्मसिद्धि की परमनिधि नहीं मिल जाती ।

भिक्षु कुतूहल नहीं करता । वह कहीं रुकता ही नहीं है; कहीं बिंधता ही नहीं है; उसके कहीं आरक्त/आसक्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता । वह सदा तपस्वी होता है । तप में उसका एक-एक क्षण बीतता है । उसके साधना के दीपक की लौ अखण्ड- अकम्प गलती है ।

वह विद्याओं को केवल आत्मसिद्धि में डालता है, उनका लौकिक उपयोग नहीं करता । वह तन्त्र- मन्त्र, टोने-टोटकों का भूल कर भी इस्तेमाल नहीं करता । आत्म-विद्या की अबाध/उत्तरोत्तर उपलब्धि में जो भी शक्तियां उसके भीतर बनतीं/उखड़ती हैं, उनका वह सिर्फ आत्मानुसंधान में उपयोग करता है, आजीविका उनमें से नहीं लेता । वह जानता है; किंतु उनका उपयोग लौकिक लाभ के लिए नहीं करता ।

कहा गया है:- **जो विज्जाहिं न जीवइ स भिक्खू**–जो विद्याओं के द्वारा आजीविका नहीं करता--वह भिक्षु है। आज ऐसे साधु बहुत सारे हैं जो लौकिक विद्याओं के जरिये आजीविका कर रहे हैं।

जो साधु "संथव" संस्तव/परिचय नहीं करता, वह भिक्षु है। भिक्षु कभी कोई ऐसा परिचय नहीं करता जिससे उसे सुविधाएं मिले, आराम मिले, सुख मिले। उसका मार्ग सुविधा भोग का मार्ग नहीं है, वह कंटकाकीर्ण रास्ता है। वह निराकुल मन से अपनी यात्रा करता है, रुकता नहीं है--सुविधा की याचना नहीं करता, असुविधा या संकट से कभी विचलित नहीं होता। संकट में से वह परीक्षित होता है और हर आपदा, उपसर्ग को एक सुविधा मानता है, आध्यात्मिक संपदा की तरह स्वीकार करता है। इसीलिए कहा गया है–**जो संथवं न करेइ स भिक्खू** जो परिचय (संस्तव) नहीं करता वह भिक्षु है।

जो अनिष्ट-योग और इष्ट-वियोग में भी अविचलित/अकम्प वना रहे, वह है साधु। चाहे जैसी विषमता हो साधु प्रद्वेष नहीं करता। जो प्रतिकूलताओं में सुमेरु की तरह अकम्प/अविचल रहता है, वह साधु है और जो अनुकूलताओं की खोज अथवा याचना नहीं करता वह साधु है। संतोष और साधुत्व में घनिष्ठ सम्वन्ध है। ऐसा सम्भव ही नहीं है कि जहां साधुत्व हो वहां सन्तोष न हो और जहां सन्तोष हो वहां साधुत्व की कोई जीवन्त सम्भावना न हो। कहा गया है–**जे तत्थ न पउस्सई स भिक्खू**– जो ऐसी विषमताओं/प्रतिकूलताओं में भी प्रद्वेष नहीं करता, वह भिक्खू है।

जो मन, वचन और काया से सुसंवृत्त है, वह भिक्षु है। यहां "सुसंवृत" शब्द पर ध्यान दीजिये। संवृत और विवृत के व्यतिरेक को समझिये। विवृत खुलाव को कहते हैं और संवृत(संवरित) वंद को; अतः जिसने मन, वाणी और काया के द्वार/कपाट वंद कर लिए हैं, वह भिक्खू है, वह साधु है। साधु इन द्वारों पर अप्रमत्त चौकी रखता है। वह प्रतिक्षण देखता है कि कहीं कोई अनचाहा/अयोग्य अतिथि तो द्वार नहीं खटखटा रहा है। वह तमाम दस्तकों के उत्तर नहीं देता, सिर्फ सम्यक्त्व की दस्तक सुनता है।

जो प्रान्तकुलों (पंतकुलाई)–सामान्य घरों से भिक्षा लाता है वह साधु है। यहां "प्रान्तकुल" शब्द पर ध्यान दें। सामन्त/भौगिक कुल यहां नहीं कहा गया है–प्रान्तकुल कहा गया है; स्पष्ट संकेत है कि वह जो प्रान्तकुलीन(कॉमन मेन) है वह सर्वहारा है और कम-से-कम मूर्च्छाओं में जीवन विता रहा है। अमूर्च्छित महामुनि ऐसे ही अत्यल्प अपरिग्रही के घर से अपनी भिक्षा का आकलन करता है। जिसे 'अन्तिम आदमी' कहा गया है, प्रान्तकुल में उसी की ओर इशारा है; अतः अन्तिम आदमी का ख्याल जो रख रहा है, वह साधु है; जो पंक्ति में खड़े प्रथम आदमी का ध्यान रख कर अपनी साधुचर्या चला रहा है, वह साधु नहीं है–वह असाधु हैं या फिर साधुत्व/मुनित्व की वारहखड़ी से अपरिचित है।

जो डरता नहीं है, वह साधु है। यह कड़ी सीधी किन्तु अत्यन्त प्रखर कसौटी है साधुत्व की। साधु डरे क्यों? कोई कारण नहीं है कि वह भयभीत हो। वस्तुतः वह कहीं भी/कैसे भी भयाक्रांत नहीं है। वह न भयभीत है, न भवभीत अपितु भववीत होने के मार्ग में अनवरत यत्नशील हैं। उसका युद्ध सब भयों से है और वह लगातार उन पर अपनी जय-पताका फहराता जा रहा है। उसने अपनी इस दुर्धर यात्रा में, जो निरन्तर है, न तो किसी की दासता को स्वीकार किया है और न ही कहीं किसी निराशा का शिकार वह हुआ है।

वह प्राज्ञ है अर्थात् जानता है गहराई में समत्व के मर्म को, आगम के परमार्थ को। वैषम्य को, असमंजस को, पसोपेश को वह खतम कर चुका है। वह जहां भी आंख पसारता है उसे समता की धड़कन थिरकती नजर आती है। उसने वस्तु स्वरूप को जाना है,

( शेष पृष्ठ १२० पर )

रजत-जयन्ती के उपलक्ष्य में आयोजित–
राष्ट्रीय निबन्ध प्रतियोगिता में प्रथम

# "आतंक व असंतुलन के वर्तमान परिवेश में समता की सार्थकता"

△ कुमारी कहानी भानावत

△

समता की सार्थकता, विषम परिस्थितियों में ही अधिक कारगर होती है। जब चारों ओर हाहाकार हो, लूट-खसोट हो, आतंककारी और आततायियों का बोलबाला हो, अशांति और अव्यवस्था का साम्राज्य हो तब कोई व्यक्ति इन सारी परिस्थितियों के बीच में भी संतुलित और संयमित रहते हुए परम समता-वान बना रहे तो ही उसकी सार्थकता है।

आज का युग कुंठा, अशांति, सन्त्रास, आतंक, असन्तुलन, विषमताओं तथा विविध ऊहापोहों का युग कहा जाता है। ज्ञान-विज्ञान तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जैसी संक्रामक स्थिति विगत अर्द्ध शताब्दी में आयी वैसी पिछले सैंकड़ों वर्षों में देखने को नहीं मिली। भौतिक समृद्धि और वैज्ञानिक उन्नति में हमने बहुआयामी प्रगति की। अंतरिक्ष तक को छान मारा। परमाणु का आविष्कार किया मगर आत्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में जो ऊंचाइयां हमारे ऋषि-मुनियों तथा महापुरुषों ने नापी थी, हम उन्हें विस्मृत कर गये।

जगत गुरु कहलाने वाला भारत अब वह भारत नहीं रहा। राम, कृष्ण, ईसा, बुद्ध, और महावीर जैसे ईश्वरीय पुरुष इस धरती पर अवतरित हुए। उन्होंने अपनी वाणी और व्यवहार के द्वारा जो कुछ कर दिखाया वह हमारे समाज और देश का आदर्श बन गया। इन्हीं के कथनी और करनी के मेल-जोल से हमारी भारतीय संस्कृति के उदात्त तत्त्व विकसित हुए परन्तु अब वैसी संस्कृति, वैसे संस्कार, वैसी सभ्यता और वैसी जीवनधर्मिता नहीं दिखाई देती। आज दुनिया एक हो गयी मगर मनुष्य एक नहीं हुआ। आदमी-आदमी में भेद-विभेद हो गया है। वह आत्मीयता और उदात्तता जो सबको एक सूत्र में बांधती थी, अब देखने को नहीं मिलती।

प्रेम और शांति, सद्भाव और सहिष्णुता की धाराएं जैसे हमारे जीवन से सूख गयीं। रिश्ते-नाते और भाईचारा के सबब और शब्द हमारे जीवन-कोष से निकल गये। अब वाद-विवाद, वितंडावाद अधिक हावी हो गया है। जो आदमी पहले समूह में, समाज में संयुक्त रूप से विचरण करने का आदी था वह अब अपने आप में एकांत, व्यक्तिनिष्ठ और जुदा-जुदा रहना पसन्द करता है। इसलिए संयुक्त परिवार भी टूटे, खण्ड-खण्ड हुए।

खण्ड-खण्ड होने की इस प्रक्रिया में विखण्ड और पाखण्ड अधिक पनपा। ऊंच-नीच के भेद बढ़े। भौतिकता की चकाचौंध ने अपने आप को ही सर्वाधिक महत्व दिया। इससे समाज का अन्य व्यक्ति हमारे प्रेम और सौहार्द का पात्र नहीं रहा। हर जगह टूटन ही टूटन और बिखराव की स्थिति पैदा हुई तो जीवन का सन्तुलन बिगड़ना और आतंक तथा विषमता का हावी होना स्वाभाविक था।

शिक्षा हमारे जीवन की महत्त्वपूर्ण धुरी है। परन्तु यह शिक्षा भी जीवन निर्माण की सही दिशा नहीं दे पायी है। अपनी जमीन, संस्कृति और संस्कारों से जुड़ी हुई शिक्षा जीवन में सरसता, समरसता और आत्मशक्ति का विकास करती है। परन्तु हमारे ऊपर पश्चिमी सभ्यता ने इस कदर अपना असर जमा रखा है कि हम उसी का अन्धानुकरण करते हैं। हमारे जीवन की विषमता की स्थिति का यह भी एक बहुत बड़ा कारण है। इस शिक्षा ने जहां हमें अपनी मेहनत और श्रम से तोड़ा है, वहीं अपनी संस्कृति और सहकार से भी मोड़ा है। पहले शिक्षा का बालचरण 'अ' मने 'अनार', 'आ' मने 'आम' से शुरू होता था।

निश्चय ही आम और अनार रस से भरे सरस फल हैं जो जीवन में सरस रस का संचार ही नहीं करते वरन् उसे पुष्ट, तरोताजा तथा शक्तिवान भी बनाते हैं। बुद्धि और ज्ञान का विस्तार करते हैं। प्रकृति के निकट लाते हैं और आरोग्य प्रदान करते हैं। समता तथा समरस को बढ़ावा देते हैं। आत्मिक विकास करते हैं और हमारी अन्तश्चेतना को उजला आयाम देते हैं परन्तु अब अत्याचार और आतंक का वातावरण बुरी तरह फैल गया है। आज का बच्चा ऐसी परिस्थितियों में असन्तुलित और अस्त-व्यस्त हो गया है। अब शिक्षा के मापदण्ड भी बदल गये हैं जो जीवन को विसंगतियों की ओर ही अधिक धकेल रहे हैं। ऐसी स्थिति में आज का बच्चा 'अ' मने 'अत्याचार' और 'आ' मने 'आतंक' ही अधिक पढ़ता, सुनता और देखता है।

शिक्षा में सबसे बड़ा बदलाव यह भी आया कि जो शिक्षा पहले श्रवणेन्द्रिय यानी कान से सम्बन्धित थी वह अब चक्षु इन्द्रिय यानी आंख से जा लगी है। कान वाली शिक्षा सीधी हृदय में पैठती थी। आंख वाली शिक्षा का उससे सम्बन्ध हट गया तो शिक्षा का दायरा अन्तर की गहराइयों और जीवन की ऊंचाइयों को नहीं नाप पाया। इससे व्यक्ति बेरोजगार हो गया। इस बेरोजगारी ने भी आदमी को आतंकित और असंतुलित किया है।

आतंक व असंतुलन के ऐसे परिवेश में केवल समता ही ऐसा अस्त्र है जो हमारे जीवन को सार्थकता की कसौटी दे सकता है। समता का अर्थ सम और विषम, अच्छी और बुरी, हितकारी और अहितकारी स्थितियों में एक जैसा भाव यानी समभाव रखने से है। यह कार्य जितना सरल है उतना ही मुश्किल है। कहने को तो तो सभी अपने को समता की महान् विभूति कह सकते हैं परन्तु जीवन व्यवहार में वे उससे उतने ही कोसों दूर लगते हैं। इसलिए आज का मानव अशांत, उत्पीड़ित और अनात्मिक अधिक लगता है।

हम जरा-जरा सी बात पर विचलित हो जाते हैं। कई बार अकारण ही हम विषमता को मोल ले लेते हैं। भ्रांतिवश भी हम अपनी समता को खोते नजर आते हैं। परायी चिंताओं से भी हम विचलित हो जाते हैं। हम अपने आप—को कभी नहीं तौलते। हमेशा दूसरों की ही गलतियां और बुराइयां दिखती रहती हैं। इसलिए हम अपने ही परिवार, अपने ही परिजनों के बीच समता का वातावरण स्थापित नहीं कर पाते हैं। जिस बहू को बड़े हरख के साथ सास अपने घर में लाकर प्रसन्न होती है उसी बहू से उसका समभाव नहीं रह पाता है। वह उसे एक भिन्न परिवार की समझती रहती है। उसे यह मालूम नहीं कि यही बहू आगे जाकर स्वयं उसकी जगह लेगी और इस घर की मालकिन कहलायेगी। यही उसका अपना घर है। जो उसका पीहर का घर था वह तो हमेशा के लिए छोड़ चुकी है परन्तु सास का हृदय कपाट उसे वह मान और स्थान नहीं दे पाता है इसलिए उस परिवार में हमेशा ही चख-चख चलती रहती है। थोड़े से स्नेह, प्यार और दुलार से जिस बहू को सास अपना बना सकती है उसी बहू को अपना विषम भाव देकर वह बहुत बड़ा कलह मोल ले लेती है।

समता की भावना की सार्थकता व्यावहारिक धरातल पर ही परखी जा सकती है। एक बहुत बड़ा धन्धा करने वाला व्यापारी लाभ के समय अति प्रसन्न रहता है और फूला नहीं समाता है किंतु वही यदि हानि के समय अशांत, असंतुलित और अन्य मनस्क हो जाता है तो हम उसे समभावी नहीं कहेंगे। वह समतावान तभी कहलायेगा जब दोनों स्थितियों में उसकी भूमिका एक जैसी रहेगी। न वह लाभ में अधिक लोभी बनेगा, अति आनन्दित होगा और न हानि के समय अति अशांत और दुःखी होगा। जैसी स्थिति उसकी लाभ के समय रहती है, वैसी ही स्थिति यदि उसकी हानि के समय रहेगी तो ही हम यह समझेंगे कि उसमें समता और सहिष्णुता की सार्थक परिणति हुई है। ऐसा व्यक्ति आतंक और असंतुलन की चाहे कैसी ही परिस्थितियां उपस्थित हो जाएं कभी भी अपने मन से, अपने पथ से विचलित नहीं होगा।

भगवान् महावीर स्वामी तो समता की साक्षात् मूर्ति थे। अपनी साधना और तपस्या के दौरान उन्हें जो दारुण दुःख और असाध्य कष्ट हुए, उन्होंने उन सबका हंसते-मुस्कराते पान किया। ग्वाले द्वारा उनके कानों में कीले ठोके जाने पर भी वे जरा भी विचलित नहीं हुए और न उस ग्वाले पर ही उन्हें कोई क्रोध आया। इसलिए ग्वाले का प्रहार उन्हें जरा भी चोट नहीं दे पाया। यही स्थिति उनके द्वारा चण्ड-कौशिक सर्प के साथ रही। अत्यन्त गुस्से में फुफकार मारते हुए जब सांप ने उन्हें बुरी तरह डसा और अपना सारा जहर उगल दिया तब भी क्षमामूर्ति महावीर के मन में उसके प्रति कोई ग्लानि, ईर्ष्या और द्वेष पैदा नहीं हुआ। यह महावीर की समता का ही सबसे बड़ा उदाहरण कहा जायेगा कि जिस स्थान पर सांप ने उनको काटा वहां से दूध की धार फूट पड़ी। महावीर की समता ने सांप के जहर को दूध में परिवर्तित कर दिया। इससे स्पष्ट है कि चाहे कैसी आतंककारी और असन्तुलन की विषम से विषम परिस्थितियां हों, यदि हम में समता भावों का पूर्णरूपेण समावेश है तो हमारे पर उनका कोई विपरीत असर नहीं पड़ सकता।

सभी महापुरुषों ने इसीलिए जीवन में समता की सार्थकता पर बल दिया और उसके व्यावहारिक दर्शन को जीवन में उतारने और समदर्शी बनने का उपदेश दिया। परम पूज्य 'आचार्य नानेश' ने इसी बात को बड़े ही सरल ढंग से इन शब्दों में कहा है—

"समदर्शी व्यक्ति मान-अपमान, हानि-लाभ, स्वर्ण-पत्थर, वन्दक-निन्दक इतना ही नहीं समस्त संसार के प्राणियों को आत्म-दृष्टि से देखता है। उसकी दृष्टि में तृण और मणि में अन्तर नहीं होता है। वह पुद्गल के विभिन्न पर्यायों को समझ कर उनके आधार पर अपने विचारों में उथल-पुथल नहीं आने देता है।"

समता भाव अपनों के प्रति ही नहीं, सबके प्रति होना चाहिये। उसमें छोटा—बड़ा, छूत-अछूत, जांत—पांत आदि का भेद नहीं होना चाहिये। आज यह भेद अधिक बढ़ गया है। कहने को तो हम सब एक हैं मगर वस्तुतः हैं नहीं। समता आज हमारी बातों और कथा-किस्सों में ही रह गयी है। अपने आचरण में उसे बहुत कम ढाल पाये हैं। वर्तमान युग के सबसे बड़े संत महात्मा गांधी का तो जीवन ही समता भावों से भरा—पूरा था। अपने साबरमती आश्रम में वे सबको समभावों से देखते थे। यहां तक कि कस्तूरबा और आश्रम के साधारण से साधारण कार्य—कर्त्ता के प्रति भी उनमें किसी प्रकार का कोई भेद नहीं था।

समतावान व्यक्ति किसी साधक और योगी से कम नहीं होता। जो साधु जरा-जरा सी बात पर उखड़ पड़े, गुस्सा हो जाये, अपना आपा खो दे, वह सच्चा साधु नहीं कहा जा सकता। साधु का कोई वेश या भेष नहीं है। वह तो पूरे जीवन का व्यव—हार है। जब तक वह अपनी इन्द्रियों और मन को वश में नहीं कर लेता, साधु या साधक नहीं कहला

सकता । अगर किसी साधु में समता नहीं, संयम नहीं है, सहिष्णुता नहीं है, शांति नहीं है तो वह साधु नहीं है । परन्तु ठीक इसके विपरीत यदि किसी गृहस्थ में इन सब अच्छे भावों का बीजारोपण है तो वह गृहस्थ होते हुए भी साधु है । गांधी जी ऐसे ही साधु और संत महात्मा थे ।

समता की सार्थकता, विषम परिस्थितियों में ही अधिक कारगर होती है। जब चारों ओर हाहाकार हो, लूट-खसोट हो, आतंककारियों और आततायियों का बोलबाला हो, अशांति और अव्यवस्था का साम्राज्य हो तब कोई व्यक्ति इन सारी परिस्थितियों के बीच में भी संतुलित और संयमित रहते हुए परम समतावान बना रहे तो ही उसकी सार्थकता है ।

आज वस्तुत: सबसे बड़ी आवश्यकता समता को जीवन के व्यावहारिक धरातल पर कथनी और करनी में एक रूप देने की है । समय रहते हुए यदि हमने यह नहीं किया तो हम धीरे-धीरे साम्प्रदायिक धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विषमताओं के शिकार बनते जायेंगे, जिससे मानव-मानव के बीच अलगाव की दूरियां बढ़ती जायेंगी । ऐसी स्थिति में हमारे पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय दायित्व के प्रति हमारा विनय और विवेक अपनी समतावादी संस्कारों वाली संस्कृति को खो बैठेगा ।

सारे विश्व में मनुष्य जीवन की सर्वश्रेष्ठ ऊंचाइयों और अच्छाइयों के गुण और तत्व हमारे यहीं के महामानवों, ऋषि-मुनियों और सन्त-महात्माओं द्वारा प्रवर्तित हैं और उनसे जीवन उपयोगी और आदर्शयुक्त बना है । यही कारण है कि उद्वेग, आतंक एवं असन्तुलन जैसा कैसा ही परिवेश हो, समताशील, शुद्धाचरण, नैतिक जिम्मेदारियां जैसे गुण ही आज के गंदलाते पर्यावरण को परिष्कृत कर सकते हैं । समता भावों की मानव कल्याणवादी इसी दृष्टि की आज सर्वाधिक आवश्यकता है । कहा है—

"विषमता के अन्धकार में समता की एक ज्योति भी आशा की नई-नई किरणों को जन्म देती है ।"

—आचार्य श्री नानेश

३५२ श्रीकृष्णपुरा, उदयपुर (राज.)

( शेष पृष्ठ ११६ का )

वस्तुमात्र की अस्मिता का सम्मान करता है; व किसी का अपमान नहीं करता, और न ही यह मान है कि उसका अपमान हुआ है/या होता है । जो ए गहन साम्य में जीता है और जिसके लिए मानापमान में फर्क ही नहीं रह गया है; ऐसे साधु में जहर-अमृत एक जैसे होते हैं । वह शूल-फूल में भेद नहीं कर और इसीलिए शूल-फूल भी उसमें कोई फर्क नहीं देखते। उस सत्यार्थी की आंखों में सत्य की खोज-पिपासा इतनी विदग्ध और तीव्र होती है कि सब कुछ उसमें निमग्न होता है । उसका एकमेव लक्ष्य होता है खु को अपनी सम्पूर्ण निजता में पाना । उसकी साधना असल में, निजता को खोजने और पाने की साधना होती है ।

वह भीतर-बाहर सब जगह अकेला होता है। भीतर उसके रागद्वेष समाप्त हुए होते हैं, इसलिए अकेला होता है और बाहर रागद्वेष के तमाम हेतु निष्क्रिय हो जाते हैं इसलिए अकेला होता है । ए तलस्पर्शी नैष्कर्म्य के कारण उसकी तमाम स्वाभाविक ताएं उन्मुक्त हो जाती हैं और वह निरन्तर शुद्ध तत्व के रूप में उभर कर सामने आने लगता है । कहा ग है—**चेच्चा गिहं एगचरे स भिक्खू**—घर छोड़ कर स पाने के लिए जो अकेला चलता है—रागद्वेष से विरक्त वह भिक्षु है । यहां 'एगचरे' पद पर ध्यान दीजिये। वह अकेला चलता है । वह स्वायत्तता की खोज में है । पराधीनताओं की जंजीरें उसने निरन्तर तोड़ी हैं अत: एक सर्वथा स्वाधीन स्थिति में वह लगातार उतरता जा रहा है । जो साधक पराधीनता को नष्ट कर स्वाधीनता का विलक्षण रसपान करता है, वह भिक्षु है ।

ऐसे साधु विशेषणों में लिप्त नहीं होते, बल्कि संसार को विशेषणों से विभूषित करते हैं। साधु-जीवन की गरिमा ही इसमें है कि वह भरपूर अप्रमत्तता में जिये और अलंकारों को अलंकृत करे, अलंकारों से अलंकृत न हो। अत: जो विशेषणों का विशेषण है वह भिक्षु है, वह साधु है ।

६५, पत्रकार कॉलोनी, इन्दौर (म.प्र.)
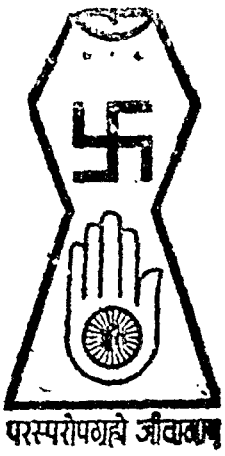
# संघ-दर्शन

**संघों गुणसंघाओ, संघो य विमोचओ य कम्माणं ।**
**दंसणणाणचरित्ते, संघायतो हवे संघो ।।**

गुणों का समूह संघ है । संघ कर्मों का विमोचन करने वाला है । जो दर्शन, ज्ञान और चारित्र का संघात (रत्नत्रय की समन्वित) करता है, वह संघ है ।

# श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ की विकास कथा

△ सरदारमल कांकरिया

आज जब देश भर में और यहां तक कि विदेशों में भी अनेक स्थानों पर श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ की स्थापना की २५ वीं जयन्ती रजत जयन्ती वर्ष के रूप में अपार हर्षोल्लास के साथ मनायी जा रही है । आज जब रजत जयन्ती वर्ष संघ के यौवन का साक्षी बन आने वाले स्वर्ण जयन्ती वर्ष की कल्पनाओं का समाज और राष्ट्र में विदन भर रहा है; आज जब संघ अपने २५ वर्षों के यशस्वी जीवन के शिखर पर आरूढ़ होकर प्रमुदित है, तब मेरा मन बार-बार २५ वर्ष पूर्व के उस क्षण को स्मरण कर पुलकित एवं उल्लसित होता है, जिस क्षण ने हमारे इस प्रिय संघ को जन्म दिया । आशा और निराशा, विश्वास और उद्विग्नता, आस्था और अनास्था तथा श्रेय और प्रेय के बीच झूल रहे, डोल रहे समाज को निर्णायक स्वरों में, श्रेय का, चेतना का, आशा, आस्था और विश्वास का पथ प्रदर्शित करने वाले संघ-प्रसव जन्म के उस क्षण का स्मरण कितना रोमांचक और हर्षद है ? केवल अनुभूति से ही जाना जा सकता है ।

आज से २५ वर्ष पूर्व संघ-जन्म के समय की परिस्थिति कितनी तिमिराच्छन्न थी, कितनी निराशाजनक थी, कितनी चिन्ता जनक थी ? आज की युवा पीढ़ी तो बहुत संभव है, इतनी कल्पना ही न कर पाए । श्रमण संघ द्वारा प्रतिपादित समाचारी का साधु समाज द्वारा खुल्लम खुल्ला उलंघन हो रहा था । स्थान-स्थान से शिथिलाचार के समाचार ज्वालामुखी से निकले तप्त लावे के समान समाज-जीवन को दग्ध कर रहे थे । पाली का कुख्यात कांड भी उन्हीं दिनों घटित हुआ था । जिसके कारण समग्र समाज में भयंकर रोष व्याप्त हो गया था । इस काण्ड के समाचार पत्रों में प्रकाशन से समाज नत शिर हो गया था, प्रत्येक श्रावक का माथा शर्म से झुक गया था । श्रमण संघ के प्रधानमंत्री पंडितरत्न श्री मदनलालजी म. सा. ने कार्य करना बन्द कर दिया था, बाद में पद से त्यागपत्र भी दे दिया था, तब श्रमण संघ के उपाचार्य के दायित्व को निर्भयता और साहस से निभाने का प्रयास उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. ने किया था । उपाचार्य श्री के शुद्धाचारी कड़े कदमों से, धर्मानुशासन बनाए रखने के उनके प्रयासों से जब श्रमण संघ के शिथिलाचारी साधुओं तथा सम्प्रदायवादी श्रावकों में उथल-पुथल मच गई और जब जिनशासन की प्रभावना और धर्म शासन की स्थापना के दृढ़ संकल्प सहित श्री गणेशीलालजी म. सा. ने श्रमण संघ से पृथक होने का निर्णय ले लिया, तब समग्र देश का चतुर्विध संघ एक घोर संकट में फंसकर उबरने की आशा छोड़ हताशा का अनुभव करने लगा था, उस समय ऐसा लग रहा था, मानो श्रमण संस्कृति के/भारत के गगन मंडल में घोर निराशा का साम्राज्य छा गया है । कभी न समाप्त होने वाली काल-रत्रि शुद्धाचार और

मर्यादा को मानो सदैव के लिए निगलने को आ पहुंची है। कहीं से कोई प्रकाश की रेख नहीं दिखाई दे रही थी। समाज पथ भ्रान्त और व्यथित था। उस अंधियारे को उजियाले में बदलने का संकल्प कुछ संकल्पशील मनों में उद्वेलित हो रहा था। उस संकल्प की चमक का एक साक्षी होने के नाते, एक सहभागी होने के नाते कभी-कभी विद्युत प्रकाश की भांति उस संकल्प का क्षण मन-मस्तिष्क में उभर आता है। वह संकल्प जिसने निराशा को आशा में, अनास्था को आस्था में बदल दिया था। संकल्प के उस क्षण की चमक, वह आलोक, आप सब के बीच बांटने को यह मन इस क्षण व्यग्र हो उठा है। [उस समय की स्थिति का कुछ दिग्दर्शन, उन दिनों प्रकाशित **"निवेदन पत्र"** में भी उपलब्ध है।]

**हे अरुणोदय ! तुम को प्रणाम !!**

निराशा के उस घने अंधकार को सहसा ही चीर कर उन दिनों उदयपुर में विराजित परम श्रद्धेय आचार्य-प्रवर श्री गणेशीलालजी म. सा. ने अपने स्वास्थ्य की चिन्ताजनक स्थिति में चिन्तित समाज को चिन्तामुक्त करने वाली ऐतिहासिक घोषणा करते हुए मिती आसोज कृष्णा नवमी वि. सं. २०१६ तदनुसार दि. २२ सितम्बर, १६६२ के पुनीत दिवस पर पंडितरत्न श्री नानालालजी म. सा. को युवाचार्य पद पर अभिषिक्त करने की घोषणा की। श्री गणेशाचार्यजी म. सा. द्वारा आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म. सा. की इस सम्प्रदाय और संघ के संचालन का दायित्व सौंपने की घोषणा के साथ ही उपस्थित जन समूह में उत्साह की लहर व्याप्त हो गई। आचार्य श्री जी ने आसोज सुदी २ सं. २०१६ को युवाचार्य पद की चादर प्रदान करने की तिथि निर्धारित की। इस निर्धारण के साथ ही संकल्प-विकल्प के बादल छंटने लगे। घोर निशा के गर्भ से स्वर्णिम प्रकाश ने जन्म लिया। संघ के भविष्य पर लगे समस्त प्रश्न चिन्हों का विलोप हो गया। समाज जीवन में एक शांत क्रांति ने जन्म लिया और एक नवीन सूर्य का उदय हुआ। समाज जीवन को प्रकाश देने के लिए श्री गणेशाचार्यजी साहसिक निर्णय लेकर जैन जगत के सिरमौर और भास्कर बन गए। उन्होंने युग सत्यों पर डाले गए अंधेरे के पर्दों को हटाया। उस पावन अरुणोदय को हम सभी के श्रद्धासहित अशेष प्रणाम।

**संघ संस्थापना :**

गुरु गणेशाचार्यजी द्वारा पंडितरत्न श्री नानालालजी म. सा. को युवाचार्य बनाने की घोषणा के संकेतों को सुज्ञ सुश्रावकों ने समझा। हिलौरें ले रहे, उत्साह के बीच स्थित-प्रज्ञ होकर उन्होंने समाज-हित-चिन्तन किया। समाज के प्रमुख धर्म प्रेमी वहां उपस्थित थे, जिनमें सुप्रसिद्ध श्रावक सर्वश्री जेठमलजी सेठिया, सतीदासजी तातेड़, अजीतमलजी पारख, आसकरणजी मुकीम सभी बीकानेर के, सेठ विजयराजजी मूथा मद्रास, सेठ छगनमलजी मूथा बैंगलोर, भागचन्दजी गेलड़ा मद्रास, हीरालालजी नांदेचा खाचरौद, कालूरामजी छाजेड़ उदयपुर, नाथूलालजी सेठिया रतलाम, भीखमचन्दजी भूरा देशनोक, वगड़ीवाली सेठानी लक्ष्मीदेवीजी घाड़ीवाल रायपुर प्रमुख थे। इन समाज सेवी वुजुर्गों ने कुछ नवयुवकों को बुलाकर एक मीटिंग की। उस मीटिंग में उपस्थित नवयुवकों में सर्वश्री जुगराजजी सेठिया, सुन्दरलालजी तातेड़ बीकानेर, महावीरचन्दजी घाड़ीवाल रायपुर के साथ में सरदारमल कांकरिया भी था। निरन्तर दो दिन तक गहन विचार-विमर्श पूर्वक चिन्तन के वाद निर्णय किया गया कि जिस दिन पंडित रत्न श्री

नानालालजी म. सा. को युवाचार्य पद की चादर प्रदान की जावे, उसी दिन एक अखिल भारतीय स्तर की संस्था स्थापित की जावे जिसके संचालन हेतु पांच लाख रुपये का ध्रुव फंड तथा एक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया जावे, जिससे समाज को निरन्तर वस्तुस्थिति से परिचित कराया जा सके। इस शुद्ध संगठन की स्थापना का विचार प्रकाश-पुंज की भांति उदित हुआ और सर्वत्र हर्ष छा गया। समाज प्रमुखों के समक्ष एक निर्णायक चुनौती थी कि ४-५ दिन की अल्पावधि में इस चिन्तन को किस प्रकार मूर्त्त रूप दिया जावे, किन्तु समाज के पैरों में पंख लग गए थे और उसका मानस उत्साह, उमंग और कुछ कर दिखाने की ललक से भरा हुआ था। संघ का नामकरण जिनशासन की सुप्रतिष्ठित मर्यादा के अनुसार किया—**श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ**। संघ के प्रथम अध्यक्ष के पद पर भीनासर निवासी सेठ श्री छगनलालजी बैद कलकत्ता आसीन हुए। प्रथम मंत्री परिषद के गौरवशाली सदस्यों के रूप में सेठ श्री भागचन्दजी गेलड़ा मद्रास तथा सेठ श्री हीरालालजी नांदेचा खाचरौद उपाध्यक्ष, श्री जुगराजजी सेठिया मंत्री, सहमंत्रीद्वय श्री सुन्दरलालजी तातेड़ एवं श्री महावीरचन्दजी धाड़ीवाल निर्वाचित किए गए। मुझे कोषाध्यक्ष का पद भार सौंपा गया। प्रथम कार्यसमिति सदस्यों के रूप में सर्वश्री छगनलालजी बैद भीनासर, हीरालालजी नांदेचा खाचरौद, भागचन्दजी गेलड़ा मद्रास, जुगराजजी सेठिया, सुन्दरलालजी तातेड़ बीकानेर, महावीरचन्दजी धाड़ीवाल रायपुर, सरदारमल कांकरिया कलकत्ता, छगनमलजी मूथा बैंगलौर, जेठमलजी सेठिया बीकानेर, नाथूलालजी सेठिया रतलाम, पुखराजजी छल्लाणी मैसूर, कन्हैयालालजी मेहता मन्दसौर, कन्हैयालालजी मालू कलकत्ता, कानमलजी नाहटा जोधपुर, मदनराजजी मूथा मद्रास, श्रीमती आनन्द कंवर पीतलिया रतलाम, पं. पूर्णचन्दजी दक कानौड़, खेलशंकर भाई जौहरी जयपुर, भंवरलालजी कोठारी, भंवरलालजी श्रीश्रीमाल बीकानेर, किशनलालजी लूणिया बैंगलोर, कालूरामजी छाजेड़ उदयपुर, चांदमलजी नाहर छोटीसादड़ी, गिरधरलाल भाई के. जवेरी बम्बई, कन्हैयालालजी मूलावत भीलवाड़ा, लक्ष्मीलालजी सिरोहिया उदयपुर, सम्पतराजजी बोहरा दिल्ली, गुणवन्तलालजी गोदावत बघानामंडी, श्रीमती नगीना बहिन चोरड़िया दिल्ली, राजमलजी चोरड़िया अमरावती एवं गोकुलचन्दजी सूर्या उज्जैन को मनोनीत किया गया।

संघ का प्रधान कार्यालय बीकानेर में रखने का निश्चय किया गया और बीकानेर संघ ने सहर्ष अपने रांगड़ी चौक स्थित भवन को केन्द्रीय कार्यालय हेतु प्रदान किया। कार्यालय ने कार्य करना प्रारंभ कर दिया और थोड़े ही दिनों में श्रमण-संस्कृति के संवाहक, श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ के मुखपत्र **"श्रमणोपासक"** का प्रकाशन भी प्रारंभ हो गया। श्रमणोपासक का देश में हार्दिक स्वागत हुआ और ५०० प्रतियों से प्रारंभ हुआ यह पत्र आज प्रतिपक्ष ४५०० के लगभग मुद्रित होता है।

**संघ-विस्तार :**

आसोज सुदी २ सं. २०१९ को पंडित रत्न श्री नानालालजी म. सा. के युवाचार्य पद प्रदान के पुनीत दिवस पर ही स्थापित यह संघ अपने कार्यकर्त्ताओं के अमित उत्साह और नेताओं की सूझ-बूझ से दिन-दूनी रात-चौगुनी प्रगति करने लगा। इसके प्रभाव क्षेत्र के विस्तार की गति आश्चर्य चकित कर देने वाली है। संघ प्रवासों की धूम मच गई और वर्षा ऋतु में जैसे सभी दिशाओं से वेगवान निर्झर आकर अपने प्रवाह को महानदी में समाहित-समर्पित कर देते हैं, उसी प्रकार इस संघ निर्माण के समाचार सुन-सुन कर कार्यकर्त्ताओं के

दल-बादल, उमड़-घुमड़ कर स्वयं प्रेरणा से महोदधि में आ-आकर मिलने लगे। शीघ्र ही
कार्यकर्त्ताओं का एक शक्तिशाली समूह बनता चला गया जिनमें सर्वश्री भंवरलालजी कोठारी
कन्हैयालालजी मालू, जसकरणजी बोथरा, हंसराजजी सुखलेचा बीकानेर, चम्पालालजी डा
गंगाशहर, तोलारामजी भूरा, दीपचन्दजी भूरा, लूणकरणजी तोलारामजी हीरावत, तोलाराम
डोसी देशनोक, श्रद्धेय (स्व.) श्री मूलचन्दजी पारख, नवयुवक श्री धनराजजी बेताला नोख
(स्व.) श्री अमरचन्दजी लोढ़ा. स्व. श्री पारसमलजी चोरड़िया, स्व. श्री चांदमलजी पामेचा
श्री कालूरामजी नाहर ब्यावर, श्री नेमीचन्दजी चौपड़ा, हस्तीमलजी नाहटा, श्रीमती प्रेमलता
जैन अजमेर, स्व. श्री स्वरूपचन्दजी चोरड़िया, सर्वश्री सरदारमलजी ढ़ढ्ढ़ा, घीसूलालजी ढ़ढ्ढ़ा
गुमानमलजी चोरड़िया, मोहनलालजी मूथा, उमरावमलजी ढ़ढ्ढ़ा, ज्ञानमलजी गुलेछा जयपुर
मालवा क्षेत्र से सर्वश्री स्व. कन्हैयालालजी मेहता मंदसौर, स्व. श्री गोकुलचन्दजी सूर्या उज्जैन
पी. सी. चौपड़ा, श्रीमती शान्ता मेहता एवं श्री मगनमलजी मेहता रतलाम, छत्तीसगढ़ क्षेत्र
श्री केवलचन्दजी मूथा, स्व. श्री जीवनमलजी वैद, स्व. श्री जुगराजजी बोथरा, श्री राणुलाल
पारख, श्री भूरचंदजी देशलहरा, प्राणीवत्सला श्रीमती विजयादेवीजी सुराणा व श्री चम्पालाल
सुराणा, उदयपुर से सर्वश्री डूंगरसिंहजी डूंगरपुरिया, स्व. श्री कुन्दनसिंहजी खिमेसरा,
फतेहमलजी हिंगड़, स्व. श्री हिम्मतसिंहजी सरूपरिया, श्री वीरेन्द्रसिंहजी लोढ़ा, कलकत्ता से सर्व
भंवरलालजी बैद, शिखरचन्दजी मिन्नी, बम्बई एवं गुजरात से सर्वश्री चुन्नीलालजी मेहता,
दानजी पारख, सुन्दरलालजी कोठारी व मोतीलालजी मालू, मारवाड़ से उदरमना सेठ
गणपतराजजी बोहरा, श्री सम्पतराजजी बोहरा, श्री गौतममलजी भंडारी आदि श्रावक सारे
में संघ को मजबूत बनाने के लिए जुट गए। संघ कार्य का तेजी से विस्तार होने लगा।

**श्री गणेश स्मृति :**

संघ स्थापना के मात्र चार मास पश्चात् ही आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा
स्वर्गवास हो गया। युवाचार्य श्री नानालालजी म. सा. को आचार्य पद की चादर प्रदान
गई। स्व. आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. के देहावसान से ३–४ वर्ष पूर्व उ
विराजने की अवधि में उदयपुर संघ ने जो सेवाएं दीं, वे अविस्मरणीय
अतः संघ कार्यसमिति ने अपनी बैठक में स्व. श्री गणेशाचार्यजी की जन्म, दीक्षा
स्वर्गारोहण भूमि होने के नाते उदयपुर में कोई शुभकार्य करने का निश्चय किया।
विचार के बाद उदयपुर रेल्वे स्टेशन के सामने ९ बीघा जमीन खरीदी गई तथा कालान्त
वहां एक आधुनिक सुविधायुक्त छात्रावास का निर्माण किया गया जो आज श्री गणे
छात्रावास के रूप में भीलों की इस नगरी में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। छा
की उपलब्धियां शिक्षा-संस्कार की दृष्टि से गौरवमय है।

**रतलाम चातुर्मास :**

संघ कार्यसमिति बैठकें व प्रमुखों के प्रवास स्थान-स्थान पर हो रहे थे, इसी
आचार्य श्री नानालालजी म. सा. का आचार्य पद ग्रहण के बाद प्रथम चातुर्मास रतलाम में
रतलाम संघ का उत्साह देखते ही बनता था। आचार्य श्री के उपदेशों का भी लोगों पर जबरदस्त
पड़ा! एक ओर श्रमण वर्ग समाचारी के विरूद्ध चल रहा था, दूसरी ओर आचार्य श्री जी

क्रिया पालते हुए, शुद्ध समाचारी का पालन करते हुए, जिन शासन की शोभा बढ़ा रहे थे। इससे अन्य समाजों के प्रबुद्ध वर्ग में भी चेतना जगी। झुंड के झुंड लोग आ-आकर संघ में सम्मिलित होने लगे। संघ और श्रमणोपासक की सदस्यता बढ़ती ही जा रही थी, सच कहें तो सदस्य बनने की होड़ लग रही थी। संघ निर्माण के समय सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि हेतु जो कल्पना की गई थी, वह साकार रूप धारण करने लगी थी। आचार्य श्री जी के जीवन से प्रेरित होकर अनेकानेक भव्य आत्माएं आत्म-साधना के पथ पर बढ़ते हुए दीक्षित हो रही थी। रतलाम संघ, वहां के युवकों और सेठानी श्रीमती आनन्दकंवर पीतलिया का उत्साह देखते ही बनता था। महिलाओं में नई जागृति हिलौरें ले रही थी।

**स्वर्ण-तिलक : धर्मपाल**

रतलाम के इस ऐतिहासिक चातुर्मास की पूर्णाहुति के पश्चात् आचार्य श्री नागदा पधारे। वहां पर गुजराती बलाई जाति के कुछ व्यक्ति आचार्य श्री की यशोगाथा सुनकर सेवा में उपस्थिति हुए और अत्यन्त पीड़ा भरे शब्दों में निवेदन किया कि गुरुदेव! हमें भी स्वाभिमान से जीने की राह बताइये। क्या हम स्वाभिमान से नहीं रह सकते? क्या छुआछूत के अपमान की आग में ही हमको जलना पड़ेगा? इस घोर अपमान की आग को सहने की अपेक्षा क्यों न हम मुसलमान या ईसाई बन जावें? गुरुदेव ने अमृतवाणी से उन्हें धैर्य प्रदान किया और शांति से आत्म निरीक्षण करने का परामर्श दिया। २-३ दिन के विचार-मन्थन के बाद आचार्य श्री जी ग्राम गुराड़िया पधारे, जहां सामाजिक समारोह के प्रसंग से सहस्रों बलाई एकत्र हुए थे। चैत्र शुक्ला दशमी सं. २०२१ के स्वर्णिम प्रभात में यशस्वी आचार्य के ओजस्वी आह्वान पर वहां उपस्थित हजारों लोगों ने आचार्यश्री से सप्त कुव्यसन के त्याग की प्रतिज्ञा ग्रहण की तथा सच्चाई से प्रतिज्ञा-पालन का विश्वास दिलाया। आचार्य श्री के प्रेरक उद्‌बोधन से वे लोग स्वयं को धन्य मानने लगे। आचार्य श्री जी को भी बलाई-भाइयों की सरलता, त्याग और निश्छलता को देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई और उन्होंने बलाई-बन्धुओं को **धर्मपाल** कह कर संबोधित किया। उनके उन्नत ललाटों पर धर्मपाल नामकरण का स्वर्णतिलक अंकित कर उन्हें उत्तम जीवन जीने की प्रेरणा दी। भारतीय धर्मों के इतिहास में यह एक स्वर्णिम दिवस बन कर अंकित हो गया। बलाई भाइयों ने भी अपने व्रत का दृढ़ता से पालन किया और स्वयं अपने समाज की व्यसन मुक्ति हेतु जुट गए।

गुराड़िया से प्रस्थान कर आचार्य श्री जी अनेक गांवों में गए, जहां बलाई निवास करते थे। सभी जगह आचार्य श्री जी के उपदेशों का जादू जैसा असर हुआ। दुर्व्यसन त्याग की होड़ सी लग गई। पूज्य गुरुदेव का आगामी चातुर्मास इन्दौर हुआ। वहां प्रथम धर्मपाल सम्मेलन श्री दीपचंदजी कांकरिया, कलकत्ता की अध्यक्षता में हुआ। प्रमुख अतिथि के रूप में मध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री पाटस्कर महोदय भी पधारे। वे धर्मपाल प्रवृत्ति से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने संघ के क्रियाकलापों पर प्रसन्नता प्रकट की और आचार्य-प्रवर की भूरि-भूरि प्रशंसा की। संघ सदस्यों में भी इस प्रवृत्ति की जानकारी से हर्ष की लहर दौड़ गई। शीघ्र ही संघ ने श्री धर्मपाल प्रचार प्रसार समिति की स्थापना की और आराध्य-गुरुदेव द्वारा प्रज्वलित ज्योति को और अधिक प्रज्ज्वलित करने का निश्चय किया। सर्वप्रथम श्री गेंदालालजी नाहर

को धर्मपाल प्रवृत्ति का संयोजक बनाया गया, जिन्होंने आयु और जरा जीर्णता की भी चिन्ता न करते हुए आत्मीयता और लगन से रात-दिन दौड़ धूपकर, तांगे और बसों में प्रवास कर धर्मपाल भाइयों के सहयोग से प्रवृत्ति कार्य को आगे बढ़ाया। बाद में श्रीसमीरमलजी कांठेड़ को प्रवृत्ति संयोजक बनाया गया। ज्यों-ज्यों धर्मपाल-प्रवृत्ति का कार्य बढ़ा त्यों-त्यों संघ ने उसकी अपेक्षाओं की पूर्ति की। इस क्षेत्र में जीप की जरूरत महसूस होने पर दानवीर सेठ श्रीगणपत-राजजी बोहरा ने और मैंने अर्थ सहयोग कर संघ को जीप भेंट कर दी। काम द्रुत गति से आगे बढ़ा। गांव-गांव में धार्मिक पाठशालाएं खुलने लगीं, जिनकी संख्या १४० से भी ऊपर पहुंच गई। धर्मपाल छात्रों को छात्रवृत्तियां देकर व कानोड़—छात्रावास में भेजकर शिक्षित करने के प्रयास किए गए। श्रीगोकुलचन्दजी सूर्या और उनके परिवार का विशेष योगदान मिला। श्री गणपतराजजी बोहरा तथा श्रीमती यशोदादेवीजी बोहरा तो प्रवृत्ति से एकात्म ही हो गए और समाज उन्हें धर्मपाल पितामह के रूप में संबोधित करने लगा। श्री कांठेड़ ने बड़ी लगन के साथ प्रवृत्ति को आगे बढ़ाया। वे आंधी-तूफान के वेग से कार्य सम्पन्न करने लगे। इसी समय सर्वोदयी कार्यकर्त्ता समाजसेवी मानवमुनिजी धर्मपाल प्रवृत्ति से जुड़े। उनका योगदान अभिनन्दनीय है। उन्होंने प्रवृत्ति में जोश की एक नई लहर पैदा करदी। धर्मपाल क्षेत्रों में पदयात्राओं के आयोजन इतने सफल हुए कि पश्चिम बंगाल के पूर्व उपमुख्य मंत्री श्रीविजयसिंह नाहर ने अपनी धर्मजागरण पदयात्रा को अनूठा और अनोखा संस्मरण निरूपित किया। पदयात्रा के दौर में ही पद्मश्री डॉ. नंदलालजी बोरदिया धर्मपाल प्रवृत्ति से जुड़े और उन्होंने अपनी महान् सेवाएं प्रदान कीं! श्री गणपतराजजी बोहरा ने धर्मपाल क्षेत्रों में चिकित्सा सुविधा जुटाने हेतु अपने अनुज श्री सम्पतराजजी बोहरा की स्मृति से श्रीमद् जवाहराचार्य स्मृति चल चिकित्सा वाहन भेंट किया। आदरणीय श्री बोहराजी ने रतलाम के निकट दिलीपनगर में श्री प्रेमराज गणपतराज बोहरा धर्मपाल जैन छात्रावास हेतु भवन युक्त विशाल भूखंड क्रय करके संघ को सौंपा। धर्मपाल क्षेत्रों में धर्म-ध्यान हेतु स्थान-स्थान पर समता-भवनों का निर्माण किया गया। शिविरों, प्रवासों और पदयात्राओं की धूम ने धर्मपाल प्रवृत्ति को सारे भारतवर्ष में चर्चित बना दिया। संघ के प्रधान कार्यालय का भी इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा। कार्य-विस्तार के साथ-साथ सर्व श्री पी. सी. चौपड़ा, श्री चम्पालालजी पिरोदिया, श्रीमती बूरीबाई पिरोदिया (भामाजी-मामीजी) सहित अनेकानेक कार्यकर्त्ता प्रवृत्ति से जुड़ते चले गए और धर्मपालों की व्यसनमुक्ति का यह अभियान 'ग्राम-व्यसन मुक्ति' का अभियान बन गया। सभी धर्मों और सभी वर्गों के लोग इस श्रेष्ठ कार्य में सहभागी बने। आचार्य-प्रवर की शिष्य-शिष्या मंडली ने धर्मपाल क्षेत्र में विहार कर कार्य को आशीर्वाद प्रदान किया।

पुरानी जीप खराब होने पर उसे बेचकर वर्त्तमान संघ अध्यक्ष उदारमना श्री चुन्नी-लालजी मेहता एवं उपाध्यक्ष श्री चम्पालालजी जैन ब्यावर ने प्रवृत्ति-प्रवासों हेतु नई गाड़ी भेंट की है। अभी प्रवृत्ति कार्य का संयोजन श्री पी. सी. चौपड़ा ५ क्षेत्रीय संयोजकों के सहयोग से कर रहे हैं। प्रायः प्रतिवर्ष संघ अधिवेशन पर धर्मपाल सम्मेलन आयोजित किए जाते हैं। इस प्रकार धर्मपालों से एकात्म होने का महान् अभियान चल रहा है। आचार्य श्री के प्रति धर्मपालों की गहन श्रद्धा है। गुरुदेव की कृपा से मालवा क्षेत्र के लगभग ६०० गांवों के लाखों बन्धु

व्यसनमुक्त और सम्मानित जीवन बिता रहे हैं । धर्मपाल-समाज से एकात्म होते जा रहे हैं ।

**छत्तीसगढ़ व महाराष्ट्र में धर्मोद्योत :**

मालवा क्षेत्र से आचार्य-प्रवर विहार करते हुए छत्तीसगढ़ क्षेत्र में पधारे, जहां श्रावकों की अच्छी संख्या है, किन्तु वहां चारित्रात्मा साधु-साध्वियों का आवागमन कम रहा है । आचार्य श्री जी के विचरण से क्षेत्र में अपूर्व जागृति आई । रायपुर, दुर्ग और राजनांदगांव चातुर्मासों से संघ के कार्य क्षेत्र का असीम विस्तार हुआ । राजनांदगांव में एक साथ ६ दीक्षाओं का प्रसंग शासन और संघ के गौरव का सुअवसर था । छत्तीसगढ़ से आपश्री महाराष्ट्र पधारे और अमरावती में चातुर्मास किया, जिससे इस क्षेत्र में जैन साधुओं के संबंध में व्याप्त भ्रान्त धारणाओं का निराकरण हुआ ।

**उग्र विहार, संघ-विस्तार :**

महाराष्ट्र से मालवा और अजमेर-मेरवाड़ा क्षेत्रों से होते हुए आचार्य-प्रवर ब्यावर पधारे । यहां से मारवाड़ के नागौरादि को स्पर्शते हुए बीकानेर पधारे । जहां त्रिवेणी क्षेत्र (बीकानेर-गंगाशहर-भीनासर) में एक साथ १२ दीक्षाएं हुई जिससे समाज में हर्ष और जागृति छा गई । थली प्रान्त के सरदारशहर तथा बीकानेर, देशनोक, नोखा तथा गंगाशहर--भीनासर के चातुर्मास पूर्णकर आचार्य श्री ब्यावर पधारे । गुरुचरणों के प्रसाद से सघ कार्य और प्रवृत्तियों का विस्तार होता ही चला गया । साधु और श्रावक के बीच का धर्म प्रचारक वर्ग तैयार करने की श्रीमद् जवाहराचार्य की कल्पना को साकार करते हुए देशनोक में **वीर संघ** की स्थापना की गई । नोखा में भगवान महावीर विकलांग समिति हेतु सहयोग जुटाया गया और यहीं पर **श्रीमद् जवाहराचार्य चल चिकित्सा वाहन** संघ को भेंट किया गया । पुनः ब्यावर प्रवास के समय वहां एक साथ **१५ दीक्षाओं** का भव्य दृश्य उपस्थित हुआ । दलौदा के श्री सौभाग्यमल सांड परिवार के सदस्यों ने एक साथ दीक्षा ली । उन्होंने **श्री सु. शिक्षा सोसायटी** की स्थापना की, जो संत - सती और वैरागी - वैरागिनों की शिक्षा-दीक्षा का श्रेष्ठ कार्य सुचारु रीति से कर रही है। इस संस्था में श्री भीखमचन्दजी भूरा ने जबरदस्त अर्थ सहयोग किया । संस्था ने विद्वान पंडित श्री पूर्णचन्दजी दक, रतनलालजी सिंघवी, रोशनलालजी चपलोत, कन्हैयालालजी दक और आचार्य चन्द्रमौलि के सहयोग से ज्ञान प्रसार में महान् योगदान दिया है । संस्था के मंत्री रूप में श्री धनराजजी बेताला की सेवाएं स्मरणीय रहेंगी । इसके गौरवशाली अध्यक्ष पद को सर्व श्री हिम्मतसिंहजी सरूपरिया, दीपचन्दजी भूरा और भंवरलालजी कोठारी सुशोभित कर चुके हैं । स्व. श्री सरूपरिया की सेवाएं बेजोड़ हैं ।

**समता-प्रचार संघ :**

बीकानेर क्षेत्र से आचार्य-प्रवर मारवाड़ क्षेत्र में पधारे जहां जोधपुर, राणावास तथा अजमेर चातुर्मास हुए । जोधपुर चातुर्मास के समय **श्री समता प्रचार संघ की** स्थापना की गई और आज यह संस्था भारत के स्वाध्याय संघों में अपना मूर्धन्य स्थान बना चुकी है । इसका मुख्यालय उदयपुर है । श्री समता प्र. संघ प्रतिवर्ष संत-सती से वंचित क्षेत्रों में पर्युषण पर्वाराधन कराने अपने स्वाध्यायी भेजता है, जिनमें स्वनाम धन्य श्री गणपतराजजी बोहरा और श्री पी.सी.

चौपड़ा भी सम्मिलित हैं। इस संघ के संयोजक श्री गणेशलालजी वया और उनके सहयोगी श्री मोतीलालजी चंडालिया, बंशीलालजी पोखरना, सज्जनसिंहजी मेहता 'साथी' एवं श्री सुजानमल जी मारू के प्रयास अभिनन्दनीय हैं। श्री वया ८५ वर्ष की उम्र में भी इस कार्य में प्राण-पण से जुटे हैं। वे धन्य हैं। संस्था संचालन में संघ अध्यक्ष श्री चुन्नीलालजी मेहता ने उदात्त व प्रभूत सहयोग प्रदान किया है।

**मधुर-मिलन :**

आचार्य-प्रवर के मारवाड़ विचरण के समय संघ-प्रमुखों की इच्छा फलीभूत हुई कि समान समाचारी वाले सन्त-मुनिराज परस्पर निकट आवें जिससे समाज में सुन्दर वातावरण बने। संयोगवश भोपालगढ़ में आचार्य श्री नानालालजी म. सा. और आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. का मधुर मिलन हुआ। दोनों आचार्यों ने वहां अनेक दिन समाज स्थिति का गहन विश्लेषण किया और आपस में प्रेम संबंध स्थापित किए, जिससे समाज में हर्ष की लहर दौड़ गई।

**ज्ञान भंडार :**

आचार्य श्री के उदयपुर चातुर्मास में संघ ने स्व. श्री गणेशाचार्यजी की स्मृति में श्री गणेश जैन ज्ञान भंडार, रतलाम में स्थापित करने का निश्चय किया, जिससे देश भर में बिखरे श्रेष्ठ ग्रन्थों व सूत्रों का एक स्थान पर संकलन किया जा सके और साधु-साध्वी, वैरागी-वैरागिन और जिज्ञासु जन इस भंडार का शोध कार्यों हेतु उपयोग कर सकें। संघ के सृजनात्मक चिन्तन को धन की कभी कमी नहीं रही। श्री गणेश जैन ज्ञान भंडार आज विद्या-शोध क्षेत्र में अग्रणी होकर कार्यरत है। इसके संयोजक श्री रखबचन्दजी कटारिया की श्रमनिष्ठा, लगन और सेवा अनुकरणीय है।

**प्रवृत्ति-विस्तार :**

**साहित्य-प्रकाशन** संघ की शक्ति के साथ-साथ इसकी प्रवृत्तियों का भी विस्तार होता चला गया। साहित्य समाज का दर्पण होता है। आज संघ द्वारा प्रकाशित साहित्य अपनेसमाज का सही चित्र उपस्थित कर रहा है। संघ ने श्रेष्ठ साहित्य प्रकाशित करने के लिए साहित्य प्रकाशन समिति का श्री गुमानमलजी चोरड़िया के संयोजन में गठन किया है। समिति ने विपुल मात्रा में उत्कृष्ट साहित्य का प्रकाशन किया है। संघ प्रकाशनों पर हमें गर्व है। संघ धर्मरूचि पाठकों और पुस्तकालयों हेतु रियायती दर पर भी साहित्य सुलभ कराता है। संघ द्वारा अब तक अनेक ग्रन्थ, सूत्र व पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं, जिनमें अन्तर्पथ के यात्री आचार्य श्री नानेश, श्रीमद् जवाहर यशो-विजय महाकाव्यम्, अष्टाचार्य गौरव गंगा, जिणधम्मो और आचार्य श्री नानेश : व्यक्ति और दर्शन जैसे सुप्रतिष्ठित ग्रन्थरत्नों सहित भगवती सूत्र तथा अन्तगड़ दशाओ पुस्तकाकार एवं पत्राकार भी समाहित हैं। भगवान् महावीर के पच्चीस सौ वें निर्वाण वर्ष के उपलक्ष्य में संघ ने 'भगवान् महावीर एण्ड रिलेवेन्स ऑफ टु डे' का अंग्रेजी में प्रकाशन किया जिसकी भूरि-भूरि सराहना पश्चिमी जर्मनी के फ्रेंकफूर्त नगर में आयोजित विश्व पुस्तक मेले में की गई! आचार्य जवाहर

के शताब्दी वर्ष में भी संघ ने जवाहर साहित्य से चुनकर पांच विभिन्न विषयों पर पॉकेट बुक सिरीज में पांच पुस्तकें प्रकाशित कीं जो खूब प्रशंसित हुईं ।

**साहित्य पुरस्कार :** संघ ने साहित्य सृजन को प्रोत्साहित करने के लिए श्री माणकचन्दजी रामपुरिया के अर्थ सहयोग से स्व. श्री प्रदीपकुमार रामपुरिया स्मृति साहित्य पुरस्कार की स्थापना की है, जिसके अन्तर्गत संप्रति १०,०००/- रु. का पुरस्कार प्रदान किया जाता है । संघ इस पुरस्कार से अब तक सर्व श्री कन्हैयालाल लोढ़ा जयपुर, मिश्रीलाल जैन गुना, सुरेश सरल जबलपुर को सम्मानित व पुरस्कृत कर चुका है । साहित्य के क्षेत्र में ही शांतिलाल जी सांड, बैंगलोर ने अपने पिताश्री की स्मृति में "स्व. श्री चम्पालालजी सांड स्मृति साहित्य पुरस्कार निधि" स्थापित की है, जिससे संघ प्रतिवर्ष ५१००) रु. का पुरस्कार श्रेष्ठ रचना पर प्रदान कर सकेगा । संघ श्री माणकचन्दजी रामपुरिया और श्री शांतिलालजी सांड का आभारी है । संघ, पुरस्कार के चयनकर्त्ताओं का भी आभारी है जो निष्पक्षता पूर्वक अपनी सेवाएं प्रदान करते हैं । **श्रीमद् जवाहराचार्य स्मृति व्याख्यानमाला**–संघ सम्यक् ज्ञान की आराधना हेतु ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. की स्मृति में प्रतिवर्ष विशिष्ट विद्वानों के देश के कोने-कोने के व्याख्यान आयोजित करता है । अब तक सर्वश्री डॉ. नरेन्द्र भानावत, डॉ रामचंद्र द्विवेदी, श्री भवानीप्रसाद मिश्र, डॉ. रामजीसिंह, डॉ. नेमीचन्द जैन, डॉ. महावीरसरण जैन, डॉ. सागरमल जैन, डॉ. इन्दरराज बैद, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा के व्याख्यान उदयपुर, जयपुर, कलकत्ता, रतलाम, मद्रास, जलगांव और अहमदाबाद में आयोजित किए जा चुके हैं ।

**श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड** की स्थापना करके संघ ने देश के कोने-कोने में फैले धर्म प्रेमियों की धार्मिक शिक्षा और परीक्षा की आकांक्षा पूरी की है । कानोड़ निवासी पं. श्री पूर्णचन्दजी दक, तत्पश्चात् गंगाशहर निवासी श्री प्रतापचन्जी भूरा ने इसे अपने खून-पसीने से सींचा । बोर्ड के विधिवत् कार्य, पुस्तकालय और निर्धारित पाठ्यक्रम से सुव्यवस्था पूर्वक हजारों विद्यार्थी लाभान्वित होते हैं । इसमें जैनधर्म की प्रारम्भिक जानकारी हेतु परिचय-प्रवेशिका से लेकर उच्च अध्ययन के लिए रत्नाकर(एम. ए. के समकक्ष)स्तर तक के छात्र-छात्राएं परीक्षा दे रहे हैं । अभी श्री पूर्णचन्दजी रांका बोर्ड के पंजीयक हैं और निष्ठा से अपना कार्य कर रहे हैं । विशेष हर्ष की बात यह है कि संत-सती और वैरागी-वैरागिनों के ज्ञानवर्धन में भी धार्मिक परीक्षा बोर्ड सहयोगी बन रहा है ।

संघ कार्यकर्त्ताओं के रचनात्मक चिन्तन तथा दूर दृष्टि का जीता-जागता नमूना है, **आगम अहिंसा-समता एवं प्राकृत शोध संस्थान उदयपुर ।** इस संस्थान की स्थापना का विचार आचार्य-प्रवर के उदयपुर चातुर्मास के समय उदित हुआ और शीघ्र ही संस्था ने मूर्त्त रूप धारण कर लिया । संस्था के निजी भवन का शिलान्यास कलकत्ता निवासी श्री चन्दनमलजी सुखाणी ने श्री गणेश जैन छात्रावास परिसर उदयपुर में कर दिया है । संस्थान की स्थापना उदयपुर संघ और श्री अ. भा. सा. जैन संघ के सहयोग से हुई । संस्थान श्री गणपतराजजी बोहरा एवं श्री चन्दनमलजी सुखाणी के प्रभूत अर्थ सहयोग हेतु आभारी है ।

**जैनोलॉजी विभाग :** संघ ने उदयपुर विश्व विद्यालय में श्री गणपतराजजी बोहरा और सु. शिक्षा सोसायटी के अर्थ सहयोग से २ लाख रुपये प्रदान कर जैनोलॉजी पीठ की स्थापना की है, जिससे जैन दर्शन तथा प्राकृत के अध्ययन-अध्यापन को प्रोत्साहन मिला है। धार्मिक शिक्षण व सुसंस्कार निर्माण हेतु संघ ग्रीष्मावकाश में छात्र-छात्राओं के प्रशिक्षण शिविर आयोजित करता है। इसके लिए श्री बोहराजी के आर्थिक सहयोग से श्री प्रेमराज गणपतराज बोहरा साधुमार्गी जैन धार्मिक शिक्षण शिविर समिति की स्थापना की गई है, जो हजारों छात्रों को प्रशिक्षित कर रही है।

**जीवदया और अहिंसा प्रचार :**

संघ कार्यालय, संघ की महिला समिति और इसके जागरूक सदस्य देश भर में जीवदया और अहिंसा प्रचार में संलग्न हैं। छत्तीसगढ़ में प्राणी-वत्सला श्रीमती विजयादेवी जी सुराणा के प्रयासों की जितनी सराहना की जाय कम है। उनका समर्पित सेवाभाव बेजोड़ है। इसी प्रकार दक्षिण में संघ के सहमंत्री श्री केशरीचन्दजी सेठिया ने भगवान महावीर अहिंसा प्रचार संघ के माध्यम से एवं श्री चुन्नीलालजी ललवाणी जयपुर ने अहिंसा के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किए हैं।

**महिला समिति :**

महिलाओं में जागृति एवं प्रेरणा का संचार करने के लिए संघ के अन्तर्गत ही श्री अ. भा. सा. जैन महिला समिति की स्थापना सं. २०२३ सेठानी श्रीमती आनन्दकंवर बाई पीतलिया के नेतृत्व में की गई, जिससे महिलाओं में अभूतपूर्व उत्साह उत्पन्न हुआ और उन्होंने संघ को सभी कार्यों और क्षेत्रों में भरपूर सहयोग प्रदान किया है। प्रवास हो या पदयात्रा- समिति कभी पीछे नहीं रही। समिति की द्वितीय अध्यक्षा सौ. श्रीमती यशोदादेवीजी बोहरा चुनी गई और श्रीमती शान्ता मेहता मंत्री बनी। उनके बाद अब तक श्रीमती फूलकुमारी कांकरिया, श्रीमती विजयादेवीजी सुराणा, श्रीमती सूरजदेवीजी चोरड़िया समिति की यशस्वी अध्यक्षाएं रह चुकी हैं। इन सबने एक से एक बढ़-चढ़ कर समिति की सेवा की। श्रीमती विजयादेवी सुराणा, श्रीमती शान्ता मेहता, श्रीमती धनकंवर कांकरिया, श्रीमती स्वर्णलता बोथरा और श्रीमती प्रेमलता जैन का मंत्राणी पद पर समर्पित सेवा भाव महिला समाज को सदा प्रेरणा देता रहेगा। इन महिला अध्यक्ष और मंत्री का योगदान कभी नहीं भुलाया जा सकता। अभी श्रीमती अचलादेवीजी तालेरा समिति अध्यक्षा हैं, जो सरलमना श्री कन्हैयालालजी तालेरा पूना की विदुषी धर्मपत्नी हैं। आचार्य श्री के पूना विचरण के समय की गई तालेरा परिवार की सेवाएं सदैव स्मरणीय रहेंगी। समिति मंत्री श्रीमती कमला बाई बैद जयपुर है, जो आचार्य श्री की अनन्य भक्त और बड़ी सजग व कर्मठ कार्यकर्त्री हैं।

समिति द्वारा जीवदया, छात्रवृत्ति. धार्मिक शिक्षण शिविर आयोजन और महिला जागृति के अनेक कार्य किए जाते हैं। महिला स्वावलंबन के क्षेत्र में रतलाम का महिला उद्योग मंदिर, महिला समिति की यशोगाथा का गान कर रहा है। इस उद्योग मन्दिर द्वारा बहिनों को स्वाभिमान और स्वावलम्बन के साथ जीवन-यापन की सुविधाएं जुटाई जा रही हैं। अब उद्यो

मन्दिर अपने निजी भवन में चल रहा है। समिति को निजी भवन उपलब्ध कराने में सर्वश्री दीपचन्दजी कांकरिया, पारसमलजी कांकरिया और श्री पूर्णमलजी कांकरिया का विशेष योगदान रहा है। नया भवन का नाम **श्रीमती जीवनीदेवी कांकरिया महिला उद्योग मन्दिर** रखा गया है। इसका उद्घाटन श्रीमती अचलादेवीजी तालेरा समिति अध्यक्षा के कर कमलों से हुआ। श्री गणपतराजजी बोहरा और श्री चुन्नीलालजी मेहता के आर्थिक अनुदान से उद्योग मन्दिर लाभान्वित हुआ है। रतलाम की बहिनें उद्योग मन्दिर की संचालिका श्रीमती शान्ता मेहता के नेतृत्व में इस कार्य को यशस्वी बना रही हैं। समिति के बने पेटीकोट और जीरावण देश भर में लोकप्रिय हैं। श्री पीरदानजी पारख के उत्साह व जोश के कारण भवन अपने निश्चित समय में बनकर पूर्ण हो गया।

समिति की अन्य कर्मठ कार्यकर्त्ता बहिनों में श्रीमती रत्ना ओस्तवाल राजनांदगांव, नीलम बहिन रतलाम, श्रीमती शांता मिन्नी, श्रीमती विमला बैद कलकत्ता, श्रीमती भंवरीबाई मूथा और श्रीमती घीसीबाई आच्छा रायपुर, श्रीमती कान्ता बोहरा और श्रीमती सोहनबाई मेहता इन्दौर, श्रीमती शान्ता भानावत, श्रीमती प्रेमलता गोलछा जयपुर, श्रीमती कंचनदेवी सेठिया बीकानेर, श्रीमती शैलादेवी बोहरा अहमदाबाद बहुत सक्रिय हैं। बुजुर्ग बहिनों में श्रीमती सौरभकंवर मेहता ब्यावर, डॉ. श्रीमती हीरा बहिन बोरदिया इन्दौर, श्रीमती कोमल मूणत रतलाम, श्रीमती लाड बाई ढ़ढ्ढ़ा जयपुर, श्रीमती कंचनदेवीजी मेहता मन्दसौर आदि का योगदान सराहनीय है।

**समता युवा संघ :**

संघ ने युवा शक्ति को सृजनात्मक कार्यों में जुटाने के लिए समता युवा संघ की स्थापना की है और श्री भंवरलालजी कोठारी, श्री हस्तीमलजी नाहटा के बाद अब श्री गजेन्द्र सूर्या इन्दौर की अध्यक्षता तथा श्री मणिलाल घोटा रतलाम के मंत्रीत्व में यह संघ प्रगति पथ पर है। युवा हृदय स्व. श्री पारसराजजी सा. बोहरा की अध्यक्षता में युवासंघ की प्रगति हेतु बड़े जोश से कार्य किया गया था। सर्वश्री मदनलाल कटारिया रतलाम, सुगनचंद धोका, प्रेमचन्द बोथरा मद्रास, गौतम पारख राजनांदगांव, हंसराज सुखलेचा और जयचन्दलाल सुखाणी बीकानेर जैसे सैकड़ों युवा कार्यकर्त्ता इस संघ के सेवा प्रकल्पों में कार्यरत हैं। युवक ही समाज की भावी आशा है। हमारे उत्साही युवकों में संघ का उज्ज्वल भविष्य झांक रहा है।

**श्री अ. भा. समता बालक मण्डली**–भी संघ की एक नई रचना है, जो बालक–बालिकाओं में सुसंस्कार स्थापित करने और सेवा भाव जगाने में संलग्न है। मंडली के प्रथम अध्यक्ष श्री कपूर कोठारी का संगठन कौशल और वर्त्तमान अध्यक्ष श्रीश्रीमाल का धर्म उत्साह सराहनीय है। वैसे इसके विधिवत् गठन से पूर्व बीकानेर-नोखा आदि अनेक क्षेत्रों में श्री जयचंद–लालजी सुखाणी ने बालक-बालिकाओं में अद्भुत धार्मिक जागृति का कार्य इस मंडली के माध्यम से किया था। श्री जम्बूकुमारजी बाफणा भी कुन्नूर में इसी प्रकार सेवारत हैं।

**भागवती दीक्षाएं :**

जिन शासन प्रद्योतक आचार्य प्रवर श्री नानालालजी म. सा. की नेश्राय में अब तक करीब २३३ भागवती दीक्षाएं हो चुकी हैं। आपश्री की नेश्राय में दलौदा के सांड परिवार से

एक साथ चार, बीकानेर के सोनावत परिवार से भी एक साथ ४ दीक्षा और पीपलियामंडी के पूरे पामेचा परिवार की एक साथ दीक्षाएं होना संघ और समाज का गौरव है। परिवार के परिवार दीक्षित होने से प्रभु महावीर के काल का स्मरण हो आता है। रतलाम में २५ दीक्षाओं के सामूहिक आयोजन से सैंकड़ों वर्षों के स्थानकवासी समाज के इतिहास में एक जगमगाती ज्योति-शलाका स्थापित हो गई है। यह आचार्य-प्रवर का अतिशय और संघ का अनन्य श्रद्धाभाव है जो समाज और राष्ट्र को प्रदीप्त कर रहा है।

आपश्री के आज्ञानुवर्त्ती सन्त-सती वृन्द ने प्रायः भारत के अधिकांश प्रान्तों में अपनी प्रतिभा, समाचारी और ज्ञान साधना से धर्मोद्योत किया है। इन सन्तों की समाचारी का अद्भुत प्रभाव अखिल भारत में दिखाई दे रहा है। अन्य सन्तों पर भी इन दृढ़ चारित्रिक क्रियाओं का प्रभाव पड़ रहा है। आपश्री का आज्ञानुवर्त्ती संत-सती मंडल बहुत अनुशासित और विनीत है तथा भगवान महावीर की पवित्र संस्कृति की रक्षा करते हुए विचरण कर रहा है। लगभग ५० सन्तों और सतियों ने रत्नाकर की परीक्षा उत्तीर्ण की जो एम.एम. के समकक्ष है।

आचार्य-प्रवर की शांतमुद्रा, विद्वत्ता, प्रश्नों के सहज-सरल समाधान की शैली और परम सन्तोषमयी समता दृष्टि से भौतिक चकाचौंध के इस युग में भी आध्यात्मिक वातावरण प्रभावना निरन्तर बढ़ रही है।

एक आचार्य की नेश्राय में शिक्षा-दीक्षा, प्रायश्चित्त और चातुर्मास की व्यवस्था देखने योग्य है। काश ! ऐसी ही भावना और वातावरण अन्य श्रमण-श्रमणियों में हो तो भव्य और आनन्दमय वातावरण बन जाय।

**संघ-अध्यक्षों एवं मंत्रियों की गौरवमयी परम्परा :**

संघ के प्रथम अध्यक्ष श्री छगनलालजी वैद भीनासर हाल कलकत्ता ने अपने ३ वर्ष के कार्यकाल में अपनी मृदुभाषिता, सादगी और सरलता तथा भव्य व्यक्तित्व से समाज का मन मोहा और उसे नेतृत्व प्रदान किया। श्री गणपतराजजी बोहरा के ३ वर्षीय कार्यकाल पर ज्योतिर्धर आचार्य जवाहरलालजी म. सा. की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। हिन्दी भाषा, स्वदेशी वस्त्र और खादी तथा राष्ट्र भक्ति की भावनाओं से ओत-प्रोत रहा उनका कार्यकाल। श्री बोहरा की कथनी करनी की एकता और ऋजुता ने संघ को समाज और राष्ट्र के धरातल पर आ[illegible] प्रदान किया। श्री वैद और श्री बोहरा जी दोनों अध्यक्षों के कार्यकाल में संघ मंत्री श्री जुगराज सेठिया की निष्काम सेवाएं प्राप्त रहीं और सहमंत्री श्री सुन्दरलालजी तातेड़ की संगठन कुशलता ने सघ कार्य को तेजी से आगे बढ़ाया। श्री बोहराजी के बाद श्री पारसमलजी कांकरिया कलकत्ता ने अध्यक्ष पद सम्हाला। सरल हृदयी, उदारचेता और आचार्य श्री जी के अनन्य भक्त श्री कांकरियाजी के ३ वर्ष के कार्यकाल में संघ ने बहुमुखी प्रगति की। संघमंत्री श्री जुगराज सेठिया और सहमंत्री श्री सुन्दरलालजी तातेड़ की सेवाएं यथापूर्व मिलती रहीं जो अविस्मरणीय हैं। संघ के चौथे अध्यक्ष खाचरौद-मालवा के सुप्रसिद्ध सेठ श्री हीरालालजी नांदेचा के भव्य तथा सुलम्ब देहाकृति और मालवी पगड़ी से सुशोभित उन्नत ललाट और मित भाषी दृढ़ अनुशासन के पक्षधर श्री नांदेचा ने अपने २ वर्ष के कार्यकाल में साहस पूर्वक आचार्य हुक्मीचन्दजी म. सा. की सम्प्रदाय के प्रति अपनी युवाकाल से चली आ रही निष्ठा के अ[illegible]

संघ का नेतृत्व किया। सूझ-बूझ के धनी श्री जुगराजजी सेठिया मंत्री रूप में अनवरत सेवा प्रदान करते रहे।

इसके बाद आदर्श त्यागी, सुश्रावक युवा हृदय श्री गुमानमलजी चोरड़िया जयपुर संघ अध्यक्ष बने। आपने ३१ वर्ष की वय में शीलव्रत धारण किया, ८ द्रव्यों की मर्यादा है और विभिन्न प्रकार के व्रत-तप करते रहते हैं। सरलता की प्रतिमूर्त्ति और दृढ़ अनुशासन पालक हैं। आपके ४ वर्षीय कार्यकाल में १ वर्ष श्री जुगराजजी सेठिया तथा ३ वर्ष श्री भंवरलालजी कोठारी मंत्री बने। श्री चोरड़ियाजी और श्री कोठारीजी की जोड़ी बहुत अच्छी जमी और इस कार्यकाल में संघ में अपूर्व जोश आया तथा प्रवास—पदयात्रा का जोर रहा और नई-नई प्रवृत्तियां प्रारंभ हुईं। श्री कोठारीजी ने संघ के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भाग लिया और स्वयं अपने जीवन में भी अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्यख्यान धारण किए।

संघ के ६ ठे अध्यक्ष पद पर शांत स्वभावी श्री पी. सी. चौपड़ा रतलाम आसीन हुए। आपकी सक्रियता बेजोड़ रही। आपकी निर्णय क्षमता और संगठन कुशलता ने रतलाम जैसे वृहद् संघ को एक सूत्र में बांधे रखा और २५ दीक्षाओं के भव्य आयोजन पूर्वक संघ और शासन की शोभा में चार चांद लगाए। संघ-प्रवासों का नया कीर्त्तिमान स्थापित हुआ, संघ-सम्पत्ति की वृद्धि हुई और संघ अर्थ के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ा। श्री चौपड़ा के साथ एक वर्ष श्री भंवरलालजी कोठारी तथा दो वर्ष मैं मंत्री पद पर रहा। संघ को आर्थिक सुदृढ़ता प्रदान करने वाली मूथा योजना एवं मद्रास में संघ संपत्ति का निर्माण इसी समय हुआ। श्री चौपड़ाजी के बाद संघ के जाने-पहिचाने श्री जुगराजजी सेठिया अध्यक्ष और श्री पीरदानजी पारख, अहमदाबाद मंत्री बने। श्री सेठियाजी के तपे-तपाए नेतृत्व में अद्भुत क्षमता के धनी श्री पारख का उत्साह अहमदाबाद भावनगर चातुर्मास और दीक्षा के समय देखने योग्य था। श्री सेठियाजी के बाद श्री दीपचन्दजी भूरा संघ अध्यक्ष बने। पूर्वांचल का बेमिसाल प्रवास और २५ दीक्षाएं आपके कार्यकाल की स्वर्णिम घटना है। आप अनन्य गुरुभक्त हैं। आपके ३ वर्ष के कार्यकाल में २ वर्ष श्री पारख व १ वर्ष श्री धनराजजी बेताला मंत्री रहे। श्री बेताला अभी भी मंत्री हैं, सरल स्वभावी, सौम्य एवं सर्वप्रिय हैं।

अभी श्री चुन्नीलालजी मेहता बम्बई संघ अध्यक्ष हैं। आप उदार हृदय, धर्मप्रेमी और अनथक व कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं। समाजसेवा में आपकी गहन रूचि है। आपका अतिथि प्रेम बेजोड़ है। देश में स्थान-स्थान पर समता-भवन बनाने में आपने दिल खोलकर दान दिया है। संघ की सभी प्रवृत्तियों में आप सदैव अर्थ सहयोगी रहते हैं। शिक्षा से आपको गहरा लगाव है। जिस संघ में इस प्रकार के अप्रमत्त और उदरमना नेता हों, वह संघ निश्चित रूपेण सौभाग्यशाली है।

श्री चम्पालालजी डागा विगत सोलह वर्ष से सहमंत्री एवं कोषाध्यक्ष के रूप में संघ के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री गुमानमलजी चोरड़िया, श्री पी. सी. चौपड़ा, श्री जुगराजजी सेठिया, श्री दीपचन्दजी भूरा तथा वर्तमान अध्यक्ष श्री चुन्नीलालजी मेहता के साथ संघ सेवा में तन-मन-धन से लीन हैं। संघ प्रवृत्तियों, कार्यालय एवं प्रेस के कुशलता पूर्वक संचालन में आप जो अप्रतिहत एवं अव्याहत रूप से निरन्तर सेवाएं दे रहे हैं, वे असाधारण एवं अद्वितीय हैं।

**प्रगति-पथ :**

आचार्य-प्रवर के प्रगतिशील कदमों के साथ-साथ संघ भी प्रगति पथ पर बढ़ता चला जा रहा है। उदयपुर के बाद आचार्य श्री के चातुर्मास क्रमशः अहमदावाद, भावनगर, बोरीवली, घाटकोपर और जलगांव में हुए और सर्वत्र धर्म की प्रभावना हुई। संघ कार्य प्रखर के शिखर पर आरूढ़ होता चला गया। गुजरात में दरियापुर सम्प्रदाय के साथ प्रेम संबंध के और बोरीवली तथा घाटकोपर चातुर्मासों से संघ को श्री चुन्नीलालजी मेहता जैसे दानवीर अध्यक्ष और श्री सुन्दरलालजी कोठारी जैसे कुशल संघटक उपाध्यक्ष के रूप में प्राप्त हुए।

जैन दर्शन के अनेक उद्भट एवं ख्याति प्राप्त विद्वानों डॉ. सागरमल जैन, डॉ. कमलचन्द सौगानी, डॉ. नरेन्द्र भानावत, डॉ. प्रेमसुमन जैन आदि का भी सहयोग इस संघ को सदैव प्राप्त होता रहा है और भविष्य में भी उपलब्ध रहेगा, ऐसा विश्वास है। संघ के विशिष्ट कार्यों के सम्पादन, और संयोजन हेतु नेपथ्य में रहकर श्री भूपराजजी जैन ने जो सेवाएं दी हैं तथा कार्यालय सचिव के रूप में उन्होंने जैसी शासन सेवा की है, वह प्रेरक और सराहनीय है। वर्त्तमान में कार्यालय सचिव श्री नाथूलालजी जारोली कुशलता पूर्वक लगन के साथ संघ को सेवायें दे रहे हैं। आज संघ कार्यसमिति के १५० सदस्य हैं और २०० शाखा संयोजक हैं। संघ कार्यकर्त्ताओं का जाल देश भर में फैला हुआ है। संघ नित्य नवीन लोक कल्याणकारी प्रवृत्तियों का शुभारंभ करता है और प्रत्येक क्षेत्र में उसे सफलता मिलती है। रजत जयन्ती वर्ष के उपलक्ष्य में प्रकाश्य श्रमणोपासक विशेषांक को लगभग ७ लाख रुपयों के विज्ञापन प्राप्त हो चुके हैं, जो कि एक कीर्त्तिमान है। संघ ने **समता पुरस्कार** के रूप में समाज को गुणपूजा की ओर प्रवृत्त करने का प्रयास किया है। इक्कीस हजार रुपयों का प्रथम समता पुरस्कार तीर्थंकर मासिक पत्रिका के सम्पादक डॉ. नेमीचन्दजी जैन, इन्दौर को रजत जयन्ती समारोह में प्रदान किया जायेगा।

आज जब मैं नजर उठाकर देखता हूं संघ अधिवेशनों को, संघ प्रवासों को, युवकों की रैलियों, महिलाओं की स्वाभिमानयुक्त रचनाधर्मिता को, बालकों के संस्कार शिविरों को, प्रौढ़ों की स्वाध्याय साधना को और इस चतुर्विध संघ के अंगीभूत संत-सती वृन्द के तप, ज्ञान, वैराग्य और दर्शन को तो मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। २५ वर्ष पूर्व आज ही के दिन मेरी साक्षी में मेरे विनम्र योगदान से, मेरी जिज्ञासा एवं उत्साह से जिस बीज का इस संघ के मौन-मूक समाज चिन्तकों, साधकों और सेवाधर्मियों ने आरोपण किया था, उसे विशालकाय वृक्ष के रूप में देखकर, उसी की छाया में खड़े होकर, सच कहूं तो उसी की काया बनकर आज जिस हर्ष और आत्म गौरव की अनुभूति मैं कर रहा हूं, वह इस संघ के हजारों-हजार सदस्यों का गौरव है, देश-विदेश में फैले, अनजान क्षितिज में छिपे हुए, प्रत्येक कर्मयोगी का मूर्तिमन्त स्वरूप है।

आइये ! हर्ष के इस अवसर पर अपने इस प्रिय संघ के विजय रथ को स्वर्णिम भविष्य की ओर बढ़ाने में फिर जुट जाएं।

सच ! अभी थकने का समय नहीं आया है। उपनिषद वाक्य की तरह चरैवेति चरैवेति, चलते रहो-चलते रहो को हम महावीर वाणी-अप्रमत्त भाव को दृष्टिगत रखकर सार्थक करें।

प्रस्तुति-जानकी नारायण श्रीमाली
२-ए, विवन्स पार्क, बालीगंज, कलकत्ता

# समाज सुधार हेतु कुछ क्रान्तिकारी कदम

△ चुन्नीलाल एच. मेहता

**अध्यक्ष, श्री. अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ**

मेरी धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में रुचि जागृत करने का सम्पूर्ण श्रेय श्रद्धेय आचार्य श्री नानालाल जी म. सा. को ही है। अहमदाबाद दीक्षा प्रसंग पर जब आचार्य श्री की सेवा का अवसर मिला तब गुरुदेव की अमृतमय वाणी को सुनकर मेरे जीवन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि मेरे नास्तिक जीवन को आस्तिकता में परिवर्तित कर दिया। साथ ही राह भटकते पथिक को सन्मार्ग की राह दर्शायी व धर्म के प्रति रुचि जागृत कर मानव-समाज की सेवा का वोध कराया। गुरुदेव के एक ही प्रवचन से मेरे जीवन में इतना परिवर्तन आ जायेगा इसकी मैंने कभी कल्पना तक नहीं की थी। मुझे कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान कराकर मेरे ऊपर अनंत कृपा की, जिससे प्रेरित होकर मैंने अपने जीवन में सिर्फ एक मानव सेवा का ही कार्य करने का निर्णय कर लिया है !

श्री अ. भा. सा. जैन संघ अपने २५ वर्ष का रजत-जयन्ती काल पूर्ण कर २६ वें वर्ष में प्रवेश करने जा रहा है। विगत २५ वर्षों में हुई प्रगति रूप विशालकाय संस्था को देखकर हम गौरव का अनुभव करते हैं। जो अपने विविध आयामों के माध्यम से सम्पूर्ण मानव-समाज को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सेवाएं प्रदान कर रही है। और योग्य कार्यकर्त्ताओं के संरक्षण में विकास मार्ग पर अग्रसर है। हम संस्था की एक-एक प्रवृति पर दृष्टिपात करें तो हमारा मन प्रफुल्लित एवं गद्गद् होने लगता है। संस्था की प्रगति का श्रेय उन सभी सदस्यों को है जिन्होंने तन, मन व धन से समर्पित होकर अहर्निश इसके क्रिया-कलापों को गतिशील बनाने में सक्रिय सहयोग प्रदान किया है। योग्य मार्ग-दर्शकों व गुरुदेव के शुभाशीर्वाद से संस्था सदैव फलती-फूलती रही है। संस्था द्वारा की जाने वाली सेवाएं हमेशा श्लाघनीय रही हैं। गुरुदेव की असीम कृपा से हमारी यह संस्था मानव सेवा में संलग्न रहती हुई विकसित होती रहे, संस्था को समाज के कर्मठ, उत्साही, दानवीरों व योग्य मार्गदर्शकों का सक्रिय सहयोग सदैव मिलता रहे, यही मैं जिनशासन से हार्दिक इच्छा प्रकट करते हुए मंगलकामना करता हूं।

इन्दौर में १९ जुलाई ८७ को संघ के विशेष वार्षिक अधिवेशन में मेरे भूतकालीन अध्यक्षीय कार्यकाल की प्रशंसा एवं सराहना की तथा सम्पूर्ण संघ ने अद्भुत स्नेह दर्शाकर मेरा अध्यक्षीय कार्यकाल आगामी वर्ष के लिए बढ़ाकर सम्पूर्ण जैन समाज की सेवा का मुझे स्वर्ण अवसर प्रदान किया इसके लिए मैं सम्पूर्ण जैन संघ का तहेदिल से आभारी हूं।

यद्यपि विगत कार्यकाल में मैं समाज की सेवा का विशेष कोई कार्य नहीं कर पाया। मेरी जो आकांक्षाएं थीं वह मात्र आकांक्षाओं के रूप में ही रह गई थी क्योंकि जब से संघ ने मुझे इस पद पर आसीन किया तब से ५-६ माह

तो मात्र गतिविधियों से अवगत होने में लगे तथा ६-७ माह से मैं अस्वस्थ हूं। स्वास्थ्य लाभ के पश्चात् अब शीघ्र ही संस्था व समाज के हितार्थ कुछ क्रांतिकारी व चिरस्मरणीय कार्य करने की मेरी इच्छा है, जो कि मेरे मन में पूर्व में भी थी मगर परिस्थितियों ने मुझे विवश कर दिया था। अब उन्हें शीघ्र ही क्रियान्वित करना चाहता हूं जिसके लिए संस्था व समाज के समस्त कर्मठ, सेवाभावी, उत्साही तथा तन, मन व धन से सक्रिय सहयोग प्रदान करने वालों का सहयोग अपेक्षित है।

**१. संस्था का स्थायी फंड :**—श्री अ. भा. सा. जैन संघ हमारे समाज की बहुत बड़ी संस्था है जिसके द्वारा संचालित अनेक प्रवृत्तियां समाज सेवा में संलग्न हैं। मगर खेद की बात यह है कि संस्था की समस्त गतिविधियों को सुचारु रूप से चलाने के लिए संस्था को पर्याप्त मात्रा में स्थाई फंड के अभाव में मीटिंगों के माध्यम से धन डॉनेशन द्वारा जुटाना पड़ता है जो कि हमारी संस्था की सबसे बड़ी कमी है अतः अब मेरी ऐसी हार्दिक इच्छा है कि संस्था का पर्याप्त स्थाई फंड बनाकर इसे स्वाश्रित बनाई जाय। जिससे भविष्य में होने वाली जरुरतों की पूर्ति हेतु पराश्रित नहीं रहना पड़े अतः संस्था के समस्त अधिकारीगण से नम्र निवेदन है कि इस बिन्दु पर विचार कर संस्था को स्वाश्रित बनाने में सहयोग प्रदान करावें।

**२. दहेज प्रथा पर रोक के प्रयास :**—इस मशीनरी युग में आदमी मशीन की तरह दिन-रात काम करता है मगर बदले में उसे जीवनोपयोगी साधनों की उपलब्धता औसत से भी कम होती है! निम्न वर्ग की स्थिति चक्की के दोनों पाटों के बीच जैसी बनी हुई है। ऐसे समय पर उसे यदि अपनी पुत्री के विवाह प्रसंग पर दहेज देने की स्थिति बने तो इसका अन्दाज आप खुद लगा सकते हैं कि उसके क्या हालात बनेंगे। परिस्थिति मजबूरियों में परिवर्तित हो जायेगी और परिवर्तित परिस्थिति अन्त में घातक रूप भी ले सकती है जिन्हें हम प्रतिदिन प्रकाशित होने वाले पत्र-पत्रिकाओं से घटनाओं के रूप में पढ़ते हैं। उन्हें पढ़कर दूसरों को एहसास हो या न हो, दिल को ठेस पहुंचे या न पहुंचे मगर मेरे दिल को भयंकर ठेस पहुंचाती है। दहेज के लोभियों से ग्लानि होने लगती है। विचारों में तूफान उठने लगता है कि जो समाज सारे राष्ट्र की सेवा में तत्पर है वह अपने ही घर में बैठे इस दहेज रूपी विषैले सर्प को बाहर नहीं निकाल सका। अब हमें समाज की सेवा का कोई भी कार्य करना है तो सर्व प्रथम इस कुरीति को समूल नष्ट करना है जो कि आज विशालरूप धारण कर समाज में घुस बैठी है। इस हेतु आज की युवा पीढ़ी यदि हमें सहयोग प्रदान करे तो सहज ही में यह दहेज रूपी नाग हमेशा के लिये हमारे देश से पलायन कर जायेगा।

**३. सामूहिक विवाह :**—आज की परिस्थितियों व काल को देखकर सामूहिक विवाह के कार्यक्रम हमारे समाज में शीघ्र ही आरम्भ करने चाहिये जिससे दहेज रूपी कुरीति को सदैव के लिये विश्रान्ति मिलेगी। इस प्रकार की विवाह पद्धति से निम्न व मध्यमवर्गी लोगों को सहज ही राहत मिल सकेगी। आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से भी उन्हें बहुत ही सहायता व राहत मिलेगी। अतः इस कार्य की ओर मैं समूचे जैन समाज का ध्यान आकर्षित कर इसे क्रियान्वित करवाना चाहता हूं। आशा है समस्त जैन समाज के संघ प्रमुख अपने क्षेत्र में सामूहिक विवाह समितियों का गठन कर शीघ्र ही क्रियान्वित करवाने में सहयोग प्रदान करेंगे।

# संघ अमर रहे

☐ जुगराज सेठिया

भूतपूर्व अध्यक्ष–श्री अ. भा. सा. जैन संघ

साधुमार्गी जैन संघ से मुझे जोड़ने वालों
प्रमुख श्री सुन्दरलालजी तातेड़ और श्री सर-
मल जी कांकरिया हैं । उदयपुर में संघ
पना के समय श्री छगनमल जी सा. बैद
ासर प्रथम अध्यक्ष चुने गये और मन्त्री पद
देने का निर्णय लिया गया । इस पद पर
नाम की चर्चा ने मुझे विस्मित-सा बना
। अपनी अक्षमता का बोध करते हुए,
स्पष्ट इन्कार कर दिया ।

साथी तुले हुए थे, मगर साथ ही साथ
कथन के औचित्य का ध्यान रखते हुए, मुझे
सहयोग देने का आश्वासन ही नहीं दिया,
अनुभवी, सशक्त सहमन्त्री जो न केवल काम-
में ही मेरा हाथ बंटाता, मगर संघ-संबंधी
व्य जानकारियों से भी मुझे अवगत कराता
। सहमन्त्री, शिक्षक और मंत्री, शिक्षार्थी,
सिलसिला जिस स्नेह से चला, वह आज भी
वत् है ।

संघ स्थापना के समय यह कल्पना नहीं
जा सकती थी कि यह बीज एक दिन वट-
का स्वरूप धारण कर लेगा । संघ के
ल भारतवर्षीय स्वरूप का उपहास किया
था और आंचलिक संघ के रूप में भी अपने
त्व को स्थाई बना सके, इसमें संशय प्रगट
गया ।

संघ के इस विस्तार में व्यक्तियों के सह-
योग और अनुदान की सूची बनाना संभव नहीं,
मगर यह कहना सही होगा कि इसके प्रसार
का सारा श्रेय संघ के प्रत्येक सदस्य का है,
जिसने तन, मन और धन से इसमें खुला
योगदान दिया ।

संघ की उल्लेखनीय प्रवृत्तियां—

(१) धर्मपाल बन्धुओं में चेतना की
जागृति और कुव्यसनों से मुक्ति, (२) सद्-
साहित्य-प्रकाशन (३) एक वृहद् ग्रन्थालय (४)
छात्रावास एवं शोध-संस्थान (५) छात्रवृत्ति
(६) स्वधर्मी-सहयोग (७) धर्मजागरण हेतु
पद-यात्रा (८) महिलाओं के लिये उद्योग केन्द्र
(९) चिकित्सालय (१०) स्वाध्याय मंडल आदि

संघ की यह एक विशेषता रही है कि
जितनी प्रवृत्तियां चालू हुईं, वे सब आज भी
गतिमान हैं । इन प्रवृत्तियों के लिये आर्थिक
साधन जुटाने, श्रम और समय, लगन और
तत्परता की महत्वपूर्ण भूमिकाएं प्रस्तुत करने
वाले बन्धुगण भावी पीढ़ी के प्रेरणा स्रोत रहेंगे ।

श्रमणोपासक :—इतनी प्रचुर, सुरुचिपूर्ण
सामग्री, शास्त्रीय ज्ञान एवं संघ की गतिविधियों
की विशद जानकारी इतनी कम लागत से देने
वाला अपने ढंग का एक मात्र जैन पाक्षिक है ।

संघ में भाई-चारे की जो छवि उभर कर सामने आई है और आती रहती है, वह विरली संस्थाओं में ही दृष्टिगत होती है। यहां पद चाहे नहीं जाते, कर्त्तव्य बोध की भावना से ग्रहण किये जाते हैं। पद, सत्ता का परिचायक नहीं, कर्त्तव्य बोधक है। यह चेप्पों का संघ नहीं, इसमें दरार नहीं, अन्दर से खोखला नहीं, नारंगी का छलावा नहीं, भेद-प्रभेद नहीं, बल्कि सर्वांगीण, सम्पूर्ण है। ठोस आधार पर अवस्थित है।

'नेकी कर और कुंए में डाल,' यह कहावत हातिमताई के लिये मशहूर है। संघ में कई हातिमताई हैं। एक हातिमताई तो इसके लिये धनराशि जुटाने में सदैव सक्रिय रहते हैं। संघ की विभिन्न योजनाओं को सुदृढ़ बनाने और अर्थ की कमी के कारण उन्हें कुम्हलाने नहीं देते। कोथली का मुंह खुलवाने के गुर के गुरु हैं। संघ सजीव है। संघ प्राणवान है। संघ गतिमान है। संघ शक्तिमान है। संघ अमर रहे।

—बीकानेर वूलन प्रेस, बीकानेर
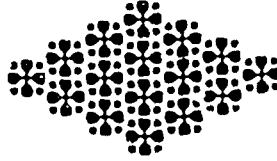
अर्हतर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं :—

आणच्चा जाव–जाव लोएसणा, ताव-ताव वित्तेसणा, जाव-जाव वित्तेसणा ताव-ताव लोएसणा, से लोएसणं च वित्तेसणं च परिण्णाए गो पहेणं गच्छेज्जा णो महापहेणं गच्छेज्जा।

साधक को यह जानना चाहिए जब तक लोकेषणा है तब तक वित्तेषणा है। जब तक वित्तेषणा है तब तक लोकेषणा है। अतः साधक लोकेषणा और वित्तेषणा को परित्याग कर गोपथ से जाए, महापथ से न जाए।

जीवित रहने के अलावा मानव मन की दो तरह की भूख है एक सम्पत्ति की दूसरी ख्याति की। जब तक प्रसिद्धि की कामना है (जिससे कि मुनि भी नहीं बच पाए हैं) तब तक सम्पत्ति की आवश्यकता रहती है (जैसे कि मुनियों के पीछे लाखों का व्यय होता है) अतः साधक को महापथ से नहीं गोपथ से चलना चाहिए।

महापथ वह है जहां अधिक से अधिक अर्जन किया जाता है और अधिक से अधिक खर्च। गोपथ वह जहां सीमित हैं आवश्यकताएं, सीमित हैं साधन। जैन संस्कृति प्रथम सिद्धान्त में विश्वास नहीं करती। कारण जितनी आवश्यकताएं बढ़ाएंगे उतना ही संघर्ष बढ़ेगा, कारण इच्छाएं असीमित हैं साधन सीमित। अतः यदि एक वस्त्र की आवश्यकता है तो दूसरे वस्त्र के लिए प्रयत्न मत करो। यह केवल साधुओं के लिए ही नहीं, गृहस्थों के लिए भी है।

यदि एक मकान से काम चल सकता है तो गृहस्थ दूसरे मकान के लिए प्रयत्न न करे। एक वस्त्र से काम चल सके तो दूसरे के लिए लोभ न करे। इस प्रकार वह शांति को प्राप्त कर सकता है।

# दर्शन, ज्ञान और चारित्र में संघ का योग

□ माणकचन्द रामपुरिया

'संघे शक्तिः कलोयुगे' दर्शन, ज्ञान और चारित्र के संवर्द्धन में, संघ-शक्ति, विशेष सहायक है। भारत जैसे धर्म सापेक्ष-देश में साधुमार्गी संतों एवं साधकों के लिए वही मार्ग श्रेयस्कर है, जिसमें धर्म, ज्ञान, सदाचार, उपकार और सेवा का लक्ष्य हो। 'धाराधरो वर्षति नात्म हेतो, परोपकाराय सतां विभूतयः' अतः समवेत भाव से सेवा, दया, उपकार की मर्यादा को बढ़ाना ही श्री साधुमार्गी जैन संघ का उद्देश्य है। यह संघ सम्प्रति भारत में ही नहीं, अपितु विश्व में धर्म और आचार का "विजय-केतु" फहराने में अग्रसर है।

भगवान् महावीर की महती कृपा से 'संघ' का इतिहास स्वर्णाक्षरों में अंकित है, क्योंकि सम्यक् ज्ञान, दर्शन और चारित्र का जितना बड़ा विश्लेषण, प्रचार और प्रसार संघ द्वारा सहज सम्भव हुआ है, वह अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं चारित्रिक-विकास के लिए 'संघ' का लक्ष्य और उद्देश्य अत्यन्त व्यापक है। इसकी शक्तियां और साधन अनन्त हैं इसके कार्य और कार्य-क्षेत्र भी विस्तृत एवं व्यापक हैं।

धर्म, विद्या, संस्कृति और सदाचार के क्षेत्र में संघ की दूरदर्शिता पूर्ण सेवा सर्वथा प्रेरणाप्रद है। मैं श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ की अनन्त-अशेष उत्तरोत्तर सफलता की मंगल कामनाएं करता हूं।

**"सत्यमेव जयते"**

'श्रमणोपासक', भारतीय जैन-धर्म का निष्काम, धार्मिक-सिद्धान्त एवं दिव्य संदेश का वाहक-हंस-दूत है। यह धर्म का प्रेरणाप्रद संवाद-दाता और समाज का उत्प्रेरक प्रकाश-स्तम्भ है। यह तत्व-सत्य-धर्म वाहक, अपनी साधना-सेवा के पच्चीसवें शुभ वर्ष में प्रवेश कर गया है, इससे समय, इसे 'रजत-जयन्ती' महानुष्ठान का उपहार दे रहा है और समाज, अपने भाव–सुमनों की वृष्टि से इसकी आत्मा को परिपुष्ट कर रहा है।

संत् संकल्प की पूर्णता में मंगल भविष्य के समुज्ज्वल-शाश्वत-कल्याण-कल्पवृक्ष की सी शीतल-सुखद छाया अनिवार्य है। किं कुर्वन्तु ग्रहाः सर्वेयस्य केन्द्रे बृहस्पतिः। मैं साधर्मी-समाज सहृदय सुहृदवर्ग के साथ इसके "रजत-जयन्ती" के उपलक्ष्य में इसकी स्वर्ण एवं हीरक जयन्ती की महती शुभ कामनाएं प्रेषित करता हूं। "श्रमणोपासक", चिर अमर रहकर धर्म और समाज-सेवा-व्रत में संलग्न रहे।

१२-३-८७ ४, मेरेडिथ स्ट्रीट, कलकत्ता

# श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ : अभ्युदय और विकास

☐ धनराज बेताला
मंत्री—श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ

आज से २४ वर्ष पूर्व सं. २०१९ की आश्विन शुक्ला द्वितीया के दिन निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की सुरक्षा एवं संवर्धन के सहयोगियों के अपूर्व जोश एवं उत्साह के साथ श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के रूप में संगठन बना था। साधुमार्गियों का यह संगठन श्रमण संस्कृति की सुरक्षा एवं पवित्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए स्थापित हुआ था। इधर तो संघ का इस रूप में प्रारम्भिक चरण था अतः वह बहुत ही लघु रूप में परिलक्षित होता था किन्तु लक्ष्य बहुत विराट था। ऐसी स्थिति में यह संगठन लक्ष्य की परिणति तक कैसे पहुंच पाएगा, यह लोगों की दृष्टि में संदेहास्पद था। संघ भले ही लघु रूप में रहा हो, पर उसने अपने लक्ष्य के प्रति पूर्ण समर्पित होकर अविराम रूप से गति प्रारम्भ कर दी।

शांत क्रांति के जन्मदाता स्वर्गीय आचार्य प्रवर श्री गणेशीलाल जी म. सा. को विशाल श्रमण संघ का सर्वसत्ता सम्पन्न उपाचार्य चुना गया था। उन्होंने प्रभु महावीर के सिद्धान्तों के धरातल पर संघ का व्यवस्थित रूप से संचालन करना प्रारम्भ किया था। संघ के कतिपय सदस्यों में व्याप्त शिथिलाचार का उन्मूलन करने के लिए आपने अत्यन्त सुन्दर तरीके-जनतन्त्रीय पद्धति के अनुसार अनवरत प्रयास किये, कि[...] जहां सिद्धान्त उपेक्षित एवं पक्ष का आग्रह प्र[...] बन गया, वहां शुद्धाचार की स्थिति सम्भव [...] बन सकी। तब शुद्धाचार के परम हिमा[...] आचार्य प्रवर ने अपने इतने बड़े महान् प[...] त्याग पत्र देकर अपने आपको शिथिलाचार [...] पूर्ण निर्लिप्त कर लिया। साथ ही शुद्धाचार [...] पालकों के संगठन का नायक पंडित रत्न मुनि[...] नानालाल जी म. सा. को बना दिया जो [...]मान में जिनशासन प्रद्योतक, धर्मपाल प्रतिबोधक, समता विभूति, महायोगी, आचार्य प्रवर [...] १००८ श्री नानालाल जी म. सा. के रू[...] समग्र जैन समाज में सुविख्यात हैं।

आप श्री के पावन उपदेशों एवं स[...] सान्निध्य का संबल पाकर हमारा यह संग[...] निरन्तर विकास की ओर बढ़ने लगा। आचा[...] प्रवर ने जब से चतुर्विध संघ की बागडोर संभा[...] तब से ही आप श्री ने जन-जन को जागृत कर[...] के लिए अनवरत विहार प्रारम्भ किया। [...] प्रथम आप श्री ने व्यक्ति से लेकर विश्व त[...] व्याप्त विषमता का उन्मूलन करने के लिए अ[...] नव चिन्तन समता-दर्शन का प्रवर्तन किया। [...] सुनिश्चित है कि विश्व में व्याप्त विषमता [...] विनिवारण और शान्ति का प्रसारण क[...]

के लिए समता दर्शन को अपनाना ही होगा। आचार्य प्रवर ने स्व-कल्याण के साथ ही जन जीवन को नया निर्देश देना प्रारम्भ किया। मध्यप्रदेश के मालवा आंचल में जो निम्नवर्गीय लोग गोरक्षक से गोभक्षक बनने जा रहे थे, उनके बीच जाकर उन्हें व्यसन मुक्त बनाकर आत्म सम्मान पाने के लिये आपने मार्मिक उपदेश दिये। इसके लिए आपने लगातार उन गांवों में अनेक परीषहों को सहते हुए विचरण किया। आपके इस अभियान से उन लोगों में अभिनव जागृति आई और वे व्यसन मुक्त बनकर सुसंस्कारित होने लगे। उनकी संख्या आज करीब एक लाख तक बताई जाती है।

जिस समय आचार्य प्रवर ने पद-भार सम्भाला था उस समय संघ में श्रमण-श्रमणियों की संख्या बहुत कम थी किन्तु आचार्य प्रवर की असीम पुण्यवानी एवं पवित्र उपदेशों से प्रभावित होकर अब तक करीब २३५ भाई व बहिनों ने संयम-जीवन स्वीकार कर लिया है। आज भी अनेक मुमुक्षु आत्माएं इस ओर गतिशील हैं। आचार्य प्रवर के हाथों से ६, ७, ९, १२, १३, १५ और २५ दीक्षाएं एक साथ हुई हैं, जो जैन समाज के लिए महान् प्रभावना रूप हैं।

आचार्य प्रवर का जीवन साधना की जिन ऊंचाइयों तक पहुंचा हुआ है उसकी थाह पाना हमारे वश की बात नहीं है। आज के इस तनाव युक्त जीवन में तनाव मुक्ति के लिए सहज ध्यान के द्वारा सहज जीवन जीने की कला के रूप में 'समीक्षण ध्यान' विधि का परिचय जब समाज के सामने प्रकट हुआ तो सभी तरफ से आश्चर्य मिश्रित प्रतिक्रियाएं होनी स्वाभाविक ही थीं। समीक्षण ध्यान द्वारा यौगिक क्रियाओं का सहज विवरण बौद्धिक वर्ग के लिए उत्सुकता का कारण बना। 'समीक्षण ध्यान' विधाओं के प्रवर्त्तन के साथ जब 'क्रोध समीक्षण' 'मान समीक्षण' इत्यादि उपदेश पुस्तकाकार रूप में समाज के सामने प्रस्तुत हुए तो समीक्षण-ध्यान विद्या के नये आयाम अभ्यासियों के लिए उद्घाटित होने लगे। जिसने भी इसका प्रयोग किया उसने अपने मन को तनाव मुक्त पाकर आत्म साधना के लिए तत्पर होते अनुभव किया।

आचार्य प्रवर के उपदेश अनुभूतिगम्य, विद्वत्तापूर्ण होते हुए भी इतने सरल होते हैं कि सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी लाभान्वित हो उठता है। वर्तमान में आचार्य प्रवर निरन्तर चतुर्विध संघ के उत्थान की ओर गतिशील हैं। आज जैन समाज में आप श्रमण संस्कृति को अक्षुण्ण रूप में निर्वहन करने वाली विरल विभूति हैं।

हमें गौरव है कि हमें ऐसे महान् आचार्य गुरु के रूप में प्राप्त हुए हैं—हमारा संघ आपके पवित्र सान्निध्य को पाकर धन्य-धन्य हो उठा है। आप श्री के उपदेशों को जन-जन तक पहुंचाने के लिए संघ ने अनवरत प्रयास प्रारम्भ कर दिये। आप श्री ने जिस ऐतिहासिक कार्य, धर्मपाल प्रवृति का अभियान चलाया था हमारे संघ ने श्रावकोचित कर्तव्य को लक्ष्य में रखते हुए इसके विकास हेतु धर्मपाल प्रवृति का संगठन कायम किया। इस संगठन को प्रभावी बनाने का महत् कार्य हमारे समाज के उदारमना सेठ श्री गणपतराज जी बोहरा दम्पति ने तन-मन-धन से किया। धर्मपाल वर्ग के बच्चों के उत्थान हेतु रतलाम के ही उपनगर दिलीपनगर में एक छात्रावास कायम कर उन्हें उच्च शिक्षा दिलाने का महत्वपूर्ण कार्य चल रहा है। धर्मपाल जैनों के उत्थान व समाज में उचित स्थान दिलाने के प्रयत्न स्वरूप उन क्षेत्रों में व्यसन मुक्ति हेतु पद-

यात्राएं, स्वास्थ्य परीक्षण शिविर समय-समय पर आयोजित किये गये व किये जा रहे हैं। धर्मपाल क्षेत्रों में स्थान-स्थान पर धर्मसाधना, संस्कार निर्माण हेतु समता भवन स्थापित किये गये हैं। आज यह प्रवृति स्वालम्बन की तरफ तेजी से अग्रसर है।

इस प्रवृति के प्रारम्भ में स्व. श्री गेंदालालजी नाहर का योगदान अविस्मरणीय है। इस प्रवृत्ति को पुष्पित, पल्लवित, फलित करने में अनेकानेक संघनिष्ठ, संघ के पूर्व पदाधिकारीगण व समाजसेवी व्यक्तियों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। इसके अलावा संघ द्वारा अनेक जन-कल्याणकारी प्रवृत्तियां भी धर्मपाल क्षेत्रों में प्रारम्भ की गई हैं।

संघ द्वारा साहित्य प्रकाशन के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य प्रारम्भ किया गया। आज संघ द्वारा प्रकाशित साहित्य की साहित्य मनीषियों द्वारा प्रशंसा की जा रही है। श्रमण भगवान महावीर के सिद्धान्तों की सरल व्याख्या आचार्य प्रवर द्वारा व्याख्यानों में की जाती है उसे भी लिपिबद्ध करके पुस्तकाकार रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह साहित्य भी प्रचुर मात्रा में है। कथा साहित्य का अपना विशेष आकर्षण है। जैन दर्शन को सुगम रूप से साहित्य के द्वारा प्रस्तुत एवं प्रचारित करने का प्रयास भी प्रगति पर है।

संघ द्वारा धार्मिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से धार्मिक परीक्षा बोर्ड का गठन कर विद्यार्थियों में जैन दर्शन के निष्णात विद्वान् तैयार करने हेतु पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया। आज धार्मिक परीक्षा बोर्ड समाज में प्रामाणिक रूप से कार्य कर रहा है। परीक्षा बोर्ड के तहत ही धार्मिक शिक्षण शालाओं को भी संघ द्वारा अनुदान प्रदान कर संचालित किया जा रहा है।

शिक्षा के क्षेत्र में संघ अपने सीमित साधनों के होते हुए भी प्रतिभावान छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान करता आ रहा है। छात्रों में धार्मिक संस्कारों के साथ वर्तमान शिक्षा की व्यवस्था हेतु व शान्त क्रान्ति के अग्रदूत स्व. आचार्य श्री गणेशीलाल जी म. सा. की पुण्य स्मृति में श्री गणेश जैन छात्रावास, उदयपुर में संचालित है।

जैन सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार हेतु वि[illegible] अनुदान प्रदान कर उदयपुर युनिवर्सिटी में [illegible] चेयर की स्थापना संघ की एक विशेष उपलब्धि है। जिससे प्रतिवर्ष अनेक प्रतिभावान छात्र छात्राएं जैन दर्शन में एम. ए. होकर आ[illegible] हैं, इन्हीं में से विशेष प्रतिभावान छात्रों [illegible] जैन दर्शन पर शोध करने हेतु आगम अहिं[illegible] समता शोध संस्थान की स्थापना श्री गणेश जैन छात्रावास प्रांगण में अलग प्रकोष्ठ के रूप में की है। यहां जैन दर्शन में पी-एच. डी. करने [illegible] लिए विशेष सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। [illegible] विद्यार्थी इस शोध संस्थान से पी-एच. डी. प्राप्त कर चुके हैं व कर रहे हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में ही श्री सुरेन्द्र कुमार सां[illegible] शिक्षा सोसाइटी के उल्लेखनीय कार्यों का अ[illegible]दान विशेष महत्व रखता है।

श्री समता प्रचार संघ उदयपुर, स्वाध्याय के क्षेत्र में विशेष कार्य कर रहा है। प्रति वर्ष ज[illegible] पर पर्युषण पर संत-सतियों के चातुर्मास नहीं हो[illegible] हैं, आराधना हेतु वहां पर्व स्वाध्यायी बन्धुओं [illegible] भेजा जाता है। स्वाध्यायियों को संस्कारित और शिक्षित करने के विशेष कार्यक्रम समय-समय पर आयोजित किये जाते हैं। संघ की इस प्रवृत्ति की बहुत ही सुन्दर छवि समाज के हृदय पर अंकित हुई है।

जीवन साधना एवं संस्कार निर्माण [illegible] उद्देश्यों से संघ ने कुछ वर्षों से विभिन्न क्षेत्रों [illegible]

पदयात्राएं आयोजित की जिसका अनूठा अनुभव जो व्यक्ति सम्मिलित हुए, उन्हें हुआ। उनकी ही प्रेरणा से प्रतिवर्ष पदयात्राओं का आयोजन होता है। पदयात्रा से जहां जन-जन से सम्पर्क साधा जाता है वहां धर्मजागरण व स्वाध्याय साधना का विशिष्ट कार्य भी सम्पन्न होता है।

संघ की सहयोगी संस्था के रूप में नारी जागरण हेतु विशेष रूप से श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन महिला समिति की स्थापना की गई। महिला समिति के द्वारा समाज-सेवा के जो कार्य सम्पन्न किये जा रहे हैं वे अपने आप में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। समिति महिला जैन उद्योग मंदिर, रतलाम के माध्यम से महिलाओं की आत्म निर्भरता और आर्थिक स्वावलम्बन हेतु प्रयत्नशील है। महिला समिति संघ की प्रत्येक गतिविधि में महत्वपूर्ण सहयोगी है। संघ के स्वधर्मी भाई-बहिनों के सहयोग हेतु महिला समिति का विशिष्ट योगदान चल रहा है।

जीवदया की प्रवृत्ति में हमारी महिला समिति ने संघ के साथ किये गये प्रयत्नों से 'पशु पक्षी बलि वध निषेध विधेयक' कई राज्यों में पारित करवाये हैं। इस सम्बन्ध में अहिंसा प्रचार संघ रायपुर व मद्रास के प्रयत्न विशेष रूप से हो रहे हैं।

श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ ने समाज के युवा वर्ग को धार्मिक क्रियाओं की तरफ उन्मुख करने हेतु समता युवा संघ की स्थापना की गई। युवा वर्ग को धार्मिक क्रियाओं की तरफ मोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य तो हमारे समाज के श्रमण एवं श्रमणी वर्ग के सदुपदेशों से हो ही रहा है। समता युवा संघ द्वारा एक पाक्षिक पत्र का प्रकाशन निरन्तर हो रहा है व युवा वर्ग द्वारा कई समाजोपयोगी कार्यक्रम समय-समय पर आयोजित किये जाते हैं।

श्रमणोपासक संघ का मुख-पत्र प्रति मास में दो बार सुज्ञ पाठकों के हाथों पहुंचाया जाता है। श्रमणोपासक के प्रकाशन व संघ साहित्य के प्रकाशन की व्यवस्था संघ के ही जैन आर्ट प्रेस, बीकानेर के द्वारा की जाती है। जैन आर्ट प्रेस में प्रकाशन की गति एवं स्तर बीकानेर के सभी प्रिंटिंग प्रेसों से बेहतर है।

प्रारम्भ में तो अनेक विपदाएं सामने आईं पर अनवरत पुरुषार्थ एवं दृढ संकल्प के साथ वे दूर होती चली गईं। आज संघ गत पच्चीस वर्ष की यात्रा पूरी कर जवानी में प्रवेश कर चुका है। इन पच्चीस वर्षों में संघ ने आश्चर्यजनक प्रगति की है।

हम जिन लक्ष्यों को लेकर चले थे आज भी हम उसी की ओर गतिशील हैं। श्रमण-संस्कृति के प्रेमियों से यही निवेदन है कि संघ की गतिविधियों में उत्साह के साथ भाग लें और उसके संरक्षण, संवर्धन में अपने महत्वपूर्ण परामर्श देते रहें। आपका यह सहयोग निश्चित ही श्रमण संस्कृति के उन्नयन एवं विकास में सहायक सिद्ध होगा। हमें इस संघ के रजत-जयन्ती वर्ष के साथ यह संकल्प करना है कि हमारे आगामी चरण दृढ़ता के साथ बढ़ते जाएं। □
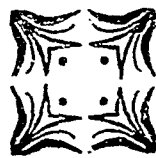
# जैन धर्म की सार्वभौमिकता

☐ दीपचन्द भूरा
भूतपूर्व अध्यक्ष, श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ

जैन धर्म एक सार्वभौम धर्म है। इसके मूल तत्व सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आज भी शाश्वत हैं। जैन धर्म के त्रिरत्नों—सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र मानव मात्र के कल्याण के लिए अपना महत्व रखते हैं। यह धर्म समस्त प्राणियों के उत्थान, कल्याण व सुखी बनाने वाले सिद्धांतों पर आधारित है। भौतिकवादी भटकाव से त्रस्त मानव को सुगम, सही और सुखद मार्ग दर्शन के लिए जैन धर्म के उपदेश दीपक की तरह आलोकित हैं। जिसकी जैन धर्म के सिद्धान्तों में आस्था है जो उनका अनुशीलन करता है, अनुकरण करता है, वही जैन है। जिसने राग, द्वेष, विषय-वासना आदि आंतरिक विकारों पर विजय प्राप्त कर ली है, वही "जिन" है तथा ऐसे जिन भगवान की उपासना करने वाला जैन है। जैन धर्म में कोई देश, काल की सीमा नहीं है, जाति और वर्ण के आधार पर कोई भेदभाव नहीं है। इसमें अंध-श्रद्धा और व्यक्तिपूजा को कोई स्थान नहीं है। यह धर्म गुण पूजा में विश्वास रखता है, गुरु पूजा ही गुण पूजा है। रत्नत्रय—अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह में आस्था रखने वाला ही सही अर्थों में जैन है।

जैन धर्म के सिद्धान्तों का प्रमुख स्तम्भ अहिंसा है। जैन धर्म और अहिंसा तो एक दूसरे से अभिन्न हैं। सभी धर्मों में अहिंसा को मान्यता दी गई है परन्तु जैन धर्म के अहिंसा सिद्धान्त सूक्ष्मतम प्राणियों तक व्यापक हैं। छोटे-छोटे कीड़े, मकोड़े, पंतगे, पशुपक्षी तक में सुख-दुःख की संवेदना है। वे भी सुख से रहना चाहते हैं और दुःख के कारणों से बचना चाहते हैं। भगवान् महावीर ने कहा है—

सव्वे जीवावि इच्छन्ति जीविउं न मरिज्जिउं।

सभी प्राणियों को सुख पूर्वक जीने की कामना रहती है। दुःख और मृत्यु सभी को अप्रिय लगती है। प्राणियों को सुख से जीने के अधिकार को छीनना हिंसा है। समस्त जीवधारियों और वनस्पति तक में सुख पूर्वक जीने की इच्छा का हनन हिंसा है।

अहिंसा के मूल में जैन धर्म की यह भावना रही है कि संसार में अशान्ति, दुःख का कारण हिंसा है। मनुष्य अपने लिए सुख प्राप्ति के प्रयत्नों में दूसरों से विरोध और संघर्ष के लिए तैयार हो जाता है, यही हिंसा का आरम्भ है। अपनी सुख-सुविधा के लिए दूसरे को दुःख देना छोड़ने से स्वयं के दुःख स्वतः ही समाप्त होने लगते हैं। जैन धर्म के सिद्धान्तों में सुख प्राप्ति के लिए अहिंसा की आराधना आवश्यक है। सभी आत्माओं को समान समझो, किसी को भी मन, वचन और कर्म से कष्ट मत पहुंचाओ। यदि सुख चाहते हो तो दूसरों को सुखी बनने में मदद करो। अहिंसा से समता की भावना को बल मिलता है। हिंसा से तो असमानता, विद्वेष, संघर्ष की भावना भड़कती है जिसे अहिंसा के शीतल छींटे ही शांत कर सकते हैं। विश्व में आज अहिंसा

सिद्धान्तों की अत्यन्त आवश्यकता है। इन्हीं सिद्धान्तों के लिए जैन धर्म में क्षमा का बड़ा महत्व है तथा क्षमा पर्व मनाया जाता है। क्षमा से अहं का त्याग होता है जो सभी झगड़ों की जड़ है। क्षमा से नम्रता का उदय होता है। क्षमा से अपनी भूलों को स्वीकारने और प्रायश्चित करने से बदले की भावना, आक्रोश, हिंसा की भावना समाप्त होकर अहिंसा का उदय होता है।

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे ।
मिति मे सव्वे भूएषु, वैरं मज्झं न केणई ।।

जैन धर्म का दूसरा प्रमुख सिद्धान्त है अनेकांत। अनेकान्त का सरल अर्थ है—विचारों में किसी भी प्रकार का एकान्तिक आग्रह नहीं होना चाहिए। इसे हम वैचारिक अहिंसा कह सकते हैं। जैन धर्म के अनुसार 'मैं कहता हूं, वही सही है' का आग्रह छोड़ना होगा। हो सकता है आपके अतिरिक्त विचारकों के सिद्धान्त भी देशकाल, परिस्थिति के अनुसार सही हों। अतः अपने-अपने धार्मिक सिद्धांतों पर आस्था रखो परन्तु दूसरों के धर्मों की आलोचना मत करो। उनकी अच्छी बातों का आदर करो, उन्हें भी ग्रहण करो। इस अनेकान्त सिद्धांत के अनुसार 'मेरा है सो सत्य है' का आग्रह छोड़ना होगा तथा 'सत्य है सो मेरा है' स्वीकारना होगा। यदि सभी धर्मावलम्बी एवं नेता इस सिद्धांत पर चलना प्रारम्भ कर दें तो सारे धार्मिक मतभेद, विद्वेष, हठपूर्ण आग्रह स्वतः ही समाप्त हो जायेंगे और विश्व कल्याण एवं बन्धुत्व की भावना सुदृढ़ होगी।

जैन धर्म का तीसरा रत्न है—अपरिग्रह। संसार के समस्त भौतिक पदार्थों के प्रति अनासक्ति, संग्रह करने की वृत्ति का त्याग। सांसारिक दुःखों के मूल में अर्थ भी एक कारण है। आर्थिक विषमता संघर्ष को जन्म देती है। मनुष्य के जीवन में जब तक अमर्यादित लोभ, लालच, तृष्णा का स्थान रहेगा, उसे शांति प्राप्त नहीं हो सकती। अपना निर्वाह करने लायक अर्थ प्राप्ति करने पर ही अतिरिक्त सम्पत्ति गरीबों, असहायों, अपंगों और अनाथों की सेवा में लगाई जा सकती है। अर्जित धन का उपयोग दीन-दुखियों की सेवा में करने से ही सादा जीवन उच्च विचार की भावना को बल मिलेगा, सर्वत्र सुख शांति का साम्राज्य स्थापित होगा। इस प्रकार जैन धर्म के रत्नत्रय—अहिंसा, अनेकांत और अपरिग्रह इस धर्म की मौलिकता को सिद्ध करते हैं। इनके समुचित पालन से विश्व की अनेक समस्याओं का समाधान खोजा जा सकता है।

किसी जैनाचार्य का कथन है—

'जहां विभिन्न पहलुओं पर विचार कर सम्पूर्ण सत्य की खोज की गई है, खंडित सत्यांशों को अखण्ड स्वरूप प्रदान किया गया है, जहां किसी प्रकार के पक्षपात को स्थान नहीं हैं, केवल सत्य का ही अनुसरण है। जहां किसी भी प्राणी को पीड़ा पहुंचाना पाप माना जाता है, वही जैन धर्म हैं।'

इन तीन सिद्धांतों के अतिरिक्त जैन धर्म आत्मा, परमात्मा, पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक में भी विश्वास रख व्याख्या करता है। आत्मा ही परम उच्च अवस्था पाकर परमात्मा बन जाती है जो सर्वज्ञ, सर्वदृष्टा, ज्ञानानन्द स्वरूप परम वीतराग होती है। प्रत्येक आत्मा साधना द्वारा आंतरिक मोह, माया, क्रोधादि शत्रुओं पर विजयी होकर परमात्मा बन सकती है। जैन धर्म की मान्यता है कि प्रत्येक प्राणी स्वयं सुख-दुःख का कर्ता एवं भोक्ता है। प्रत्येक युग में नई चेतना (आत्मा) जन्म लेकर जन-मानस को सही मार्ग बता कर मुक्ति (मोक्ष) को प्राप्त होती है। मुक्ति के पश्चात् आत्मा पुनः लौटकर नहीं आती। सृष्टि अनादि है, अनन्त है।

जैन धर्म के अनुसार मुक्ति मार्ग के लिए सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र आवश्यक है। साधना के मार्ग में हित-अहित का विवेक, आत्मा के उत्थान-पतन का सही बोध सम्यक् ज्ञान है। आत्मा-परमात्मा, पुण्य-पाप आदि तत्वों पर सच्चा विश्वास, शुद्ध निष्ठा, श्रद्धा ही सम्यक् दर्शन है। आत्म-साधना के मार्ग पर बढ़ते रहने के लिए सही और शुद्ध आचरण ही सम्यक् चारित्र है। आज इन सिद्धांतों की व्यापकता और प्रभाव नितान्त प्रासंगिक है।

जैन धर्म के सिद्धांतों की व्यापकता को समझने के लिए उसके वन्दना मंत्र पर भी विचार करना आवश्यक हो जाता है। इसमें 'गुणिनो सर्वत्र पूज्यन्ते' का सिद्धांत समाहित है।

**णमो अरिहंताणं**—उन सभी महान् आत्माओं को नमस्कार जिन्होंने राग, द्वेष, काम, क्रोधादि समस्त विकारों पर विजय प्राप्त कर वीतरागता प्राप्त कर ली है। **णमो सिद्धाणं**—उन सभी महान् चेतनाओं को नमस्कार जो महाव्रतादि नियमों की आराधनापूर्वक विशिष्ट साधनारत रहते हुए साधक समुदाय के प्रति सजगता का मार्ग दर्शन देते हैं। **णमो आयरियाणं**—उन सतत जागरूक आत्माओं को नमस्कार जो पंचाचार का पालन करते हैं तथा अ साधकों को भी मर्यादा में रहने का संकेत करते हैं। **णमो उवज्झायाणं**—उन महापुरुषों को नम जो साध्वोचित मर्यादाओं का पालन करते वीतराग निर्देशित शास्त्रों के अध्ययन, अ में लीन रहकर गूढ़ तत्वों को सुगम बना साधकों को परिबोध कराते हैं। **णमो लोए साहूणं**—सम्पूर्ण लोक में विद्यमान उन सभी साधु को नमस्कार जो साधुत्व का निर्वाह कर महा साधना में संलग्न रहते हैं।

यह नमस्कार महामन्त्र जैन धर्म के दृष्टिकोण को परिभाषित करता है। धर्म के सिद्धांतों का सही रूप से पाल व्यवहार में निष्ठा के साथ काम में लेने से बन्धुत्व और कल्याण की भावना को शांति और सद्भाव को प्राप्त किया जा है। इस प्रकार जैन धर्म एक सार्वभौमिक की प्रतिष्ठा करता है।

देशनोक, जिला-बीकानेर

❀

कोई मनुष्य ऐसा हो नहीं सकता जिससे घृणा की जाय या जिसे छूने से छूत लगती हो। सभी प्राणियों की आत्मा परमात्मा के समान है और शरीर की बनावट के लिहाज से मनुष्य मनुष्य में कोई अन्तर नहीं है।

जो गन्दगी फैलाता है वह दोषी नहीं और जो हरिजन गन्दगी साफ करता है वह दोषी कहलाये—नीच गिना जाय, यह कहां का अनोखा न्याय है?

—श्रीमद् जवाहराचार्य

# संघ : उत्साही रचनात्मक संस्था

● सौभाग्यमल जैन, एडवोकेट

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ इस वर्ष अपनी [र]जत-जयन्ती प्रेरक वर्ष के रूप में मना रहा है। [उप]रोक्त संस्था जैन समाज ( विशेषकर स्थानक[वासी] [जै]न समाज ) में कार्यरत एक उत्साही रचनात्मक [सं]स्था है। अपने २४ वर्षीय कार्यकाल में उसने [अ]पने समर्पित कार्यकर्ता तथा नेतागण के द्वारा [म]हत्वपूर्ण कार्य किया है। रजत-जयन्ती वर्ष [(]प्रेरक वर्ष) में बहुआयामी कार्यक्रम (२५ सूत्र) [क]ा लक्ष्य तय करके उसके क्रियान्वयन की योजना [नि]र्धारित की जा रही है। संस्था के कार्यकर्ता [त]था नेतागण अपने निर्धारित कार्य को पूरा करने [में] उत्साही तथा लगनशील हैं।

मैंने उपरोक्त बहुआयामी कार्य एवं उसके [सू]त्रों को ध्यानपूर्वक देखा है। जो मुख्य रूप से [च]ार विभागों में विभाजित किये जा सकते हैं:—

(१) संस्कार निर्माण, व्यसनमुक्ति, जीवन [नि]र्माण तथा समाजोत्थान मूलक विषयों पर [वि]भिन्न माध्यम से प्रयत्न (२) कुरूढ़ि उन्मूलन (३) आर्थिक सहायता (४) पशु-हिंसा की रोक [क]ा प्रयत्न।

मुझे विश्वास है कि उपरोक्त विन्दुओं पर उत्साह तथा लगन से लक्ष्य पूर्ति की ओर यथा-[स]म्भव प्रयत्न किया जावेगा।

इस दिशा में सक्रिय प्रयत्न करने के लिये संघ का मुख-पत्र श्रमणोपासक सशक्त रूप से वातावरण निर्माण करेगा। इस अवसर पर मैं एक विशेष दृष्टिकोण पर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं वह यह कि देश तथा समाज में गत कुछ वर्षों में अर्थ प्रभुत्व अथवा अर्थ प्राधान्यता की मानसिकता तेजी से बढ़ी है। यह तथ्य विवाद से परे है कि इस मनोवृत्ति ने देश तथा समाज में कई विकृतियों को जन्म दिया है। सताभिमुखता तथा अर्थ प्राधान्यता की मानसिकता का उपचार यदि समय रहते नहीं किया गया तो परिणाम भयंकर होंगे जिसके लक्षण कुछ सीमा तक आज भी दृष्टिगोचार होते हैं।

यह एक सुखद संयोग है कि यह वर्ष आचार्य श्री नानेश के आचार्य पद, संघ तथा मुख-पत्र श्रमणोपासक का भी रजत-जयन्ती वर्ष है। आचार्य प्रवर स्थानकवासी समाज के प्रभावशाली आचार्य हैं। श्रद्धेय आचार्य प्रवर से भी मैं नम्र निवेदन करना चाहता हूं कि त्रिवेणी-संगम—संघ, श्रमणोपासक, (श्रावक तथा श्रमण) वर्ष में इस दिशा में प्रभावोत्पादक कार्यक्रम के लिये प्रेरणा प्रदान करें।

इस त्रिवेणी संगम वर्ष में संघ की लक्ष्य पूर्ति की शुभ-कामना करता हूं।

—शुजालपुर मण्डी, (म. प्र.)

५-९-८७

□

# संघ और हम

□ चम्पालाल डागा

सहमन्त्री—श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ

आज श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ के विगत २५ वर्षों के कार्यकाल पर दृष्टिपात करते हैं तो कई बातें उभर कर सामने प्रकट होती हैं। इतने कम अर्से में इस संघ ने स्थानकवासी समाज या यों कहें कि जैन समाज में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। संघ के कार्यकलापों में जैन समाज के सच्चे विशिष्ट स्वरूप का प्रतिनिधित्व निहित है। संघ द्वारा सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्तर के तथा जन-कल्याण के जो कार्य सम्पन्न किये जा रहे हैं उनसे संघ ही नहीं जैन समाज का गौरव दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इसके पीछे है संघ प्रमुखों व संघ कार्यकर्ताओं का आपसी स्नेह। आज संघ में जितने भी प्रमुख व्यक्ति व कार्यकर्ता हैं, वे सभी अपने आपको जिम्मेवार समझकर अपना कार्य निभाते हैं। जब हम कहीं भी प्रसंगवश मिल जाते हैं तो भाईचारे का वह स्नेह उमड़ता है जो कि प्रायः सगे भाइयों में भी देखने को नहीं मिलता है। किसी भी गांव या शहर में अपने व्यक्तिगत व्यापारवश भी जाना हो तो वहां के कार्यकर्ता से मिलकर आना ही पड़ता है, उनका आत्मीय स्नेह बरबस खींच लेता है।

जहां अन्य संघ व संस्थाओं में व्यक्ति पद प्राप्त करने हेतु एड़ी-चोटी का जोर लगाकर व साधु सन्तों से सिफारिश कराने की अनधिकृत चेष्ठा करता है, वहीं इस संघ में सभी पदाधिकारियों को संघ प्रमुख जबरदस्ती पद ग्रहण कराते हैं। आज तक कभी चुनाव-विवाद नहीं हुआ। आचार्य-प्रवर, सन्त मुनिराज व महासतियांजी म. सा. का हस्तक्षेप तो दूर रहा कभी पूछते तक नहीं कि कौन-कौन पदाधिकारी बने। उन्हें कोई श्रावक बता देता है तो पता चल जाता हैं या श्रमणोपासक पत्रिका के माध्यम से मालूम पड़ जाता है, वह अलग बात है।

इस संघ में स्नेह व प्रेम कितना है इसका पता इस बात से लग जाता है कि मंत्री परिषद की मीटिंग-कार्यकारिणी का रूप ले लेती है तथा कार्यकारिणी की मीटिंग, साधारण सभा का रूप ले लेती है। सबके मन में जिज्ञासा रहती है। अनुशासन इतना कि सब कार्यवाही सुनते रहते हैं, बीच में कभी व्यवधान उपस्थित नहीं करते।

संघ समर्पित महानुभावों की यदि सूची बनाने बैठ जावें तो वह बनती ही जावेगी, शायद ही अन्त आयेगा। श्रीमान् गणपतराजजी बोहरा का तन-मन-धन से मूक समर्पण, श्रीमान् गुमानमलजी चोरड़िया का त्याग व सादगी तथा स्मरण करते ही प्रत्येक विशेष उत्सव पर उपस्थिति, श्रीमान् पी. सी. चौपड़ा हर क्षेत्र में अग्रणी, कार्यकुशल, विवेक सम्पन्न व सबके साथ

समिति का विशेष जोर रहता है। शाकाहार के गुणों और मांसाहार के दोषों के प्रति महिलाओं को अवगत कराना भी समिति का विशेष कार्य रहता है। पशु बलि निषेध और पशु-पक्षियों के पालन-पोषण का भी काम समिति करती है। रायपुर में किया जा रहा जीवदया कार्य इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

**(ब) महिला शिविर :** शिक्षा प्राप्त कर रही बालिकाएं जो कल विवाह कर नये गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट होने वाली है—को धार्मिक शिक्षा देने और उनमें अच्छे संस्कार निर्माण करने का कार्यक्रम समिति लम्बे समय से चलाती आ रही है। इसके लिए एक या दो सप्ताह का शिविर आयोजित किया जाता है। शिविर में आने वाली बालिकाएं एक नये वातावरण में रहकर कुछ सिखाती हैं। इस तरह के शिविर देश के विभिन्न भागों में समय-समय पर लगाये जाते हैं।

**(स) पदयात्रा :** धार्मिक, नैतिक वातावरण बनाने एवं सुसंस्कार निर्माण करने के उद्देश्य से आयोजित होने वाली पदयात्राओं में महिला समिति सक्रिय रूप से भाग लेती है। प्रदेश में या अन्य प्रदेशों में होने वाले ऐसे आयोजनों में महिलाओं की भागीदारी का अच्छा लाभ मिलता है, यह प्रत्यक्ष अनुभव किया गया है। इस दौरान दुर्व्यसन मुक्ति तथा संस्कार निर्माण के काम में भी बहुत सहायता मिलती है। ऐसे आयोजन प्राय: हर साल होली के बाद होते हैं।

**२–सेवा और सहयोग :**

इसके अन्तर्गत महिला समिति मुख्य रूप से निराश्रित बहनों की मदद, असहाय छात्रों को छात्रवृत्ति, विकलांगों को कृत्रिम पांव तथा नेत्र-दान जैसे कार्यक्रमों का संचालन करती है। स्वधर्मी बहनों की जरुरत को देखते हुए उन्हें मदद देना समिति अपना प्रमुख दायित्व मानती है। वर्तमान में ऐसी ४२ बहनों को मदद दी जा रही है। अध्ययनशील छात्रों को छात्रवृत्ति दिलाने तथा विकलांग भाइयों को जयपुर फुट, लगाने में भी मदद करती है। बुक बैंक स्थापित कर पुस्तकों की मदद भी बच्चों को दी जा रही है। इसके अलावा ४६ पाठशालाओं एवं कई पुस्तकालयों का संचालन भी महिला समिति करती है, राजस्थान में ही ऐसे ७ पुस्तकालय समिति चला रही है। ये हैं—चिकारड़ा, मंगलवाड़, रून्डेडा, खाटोड़ा, बिरमावल, गजोडा और छामनार।

**३–स्वालम्बन :**

निराश्रित, बेसहारा अथवा आर्थिक दृष्टि से कमजोर महिलाओं को स्वावलम्बी बनाना महिला समिति का मुख्य उपक्रम है। इसके अन्तर्गत बहनों को विभिन्न उत्पादक कार्यों में संलग्न कर उन्हें आत्म निर्भर बनाने की योजना है।

इस कार्यक्रम का यद्यपि अधिक विस्तार नहीं हो पाया है, लेकिन मध्यप्रदेश के रतलाम नगर में चलाया जा रहा उद्योग मन्दिर एक आदर्श उदाहरण है। यह केन्द्र काफी समय से चल रहा है। यहां बहनों को सिलाई, बुनाई, चर्खा चलाने, पापड़, मंगोडी तथा मसाला बनाने तथा ऐसी ही विभिन्न उत्पादक गतिविधियों से जोड़ा गया है। शुरु में यह केन्द्र किराये के भवन में चलता था, लेकिन बाद में जमीन खरीदकर अपना स्वतन्त्र भवन बना लिया गया। १२ जनवरी ८६ को इस नये भवन "श्रीमती जीवनी देवी कांकरिया महिला उद्योग मन्दिर" का विधिवत उद्घाटन किया गया। आज यह केन्द्र अनेक बहनों को स्वावलम्बी बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

राजस्थान में भी इसी तरह दो सिलाई

# श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन महिला समिति

□ श्रीमती कमला बैद

मंत्री—श्री अ. भा. सा. जैन महिला समिति

श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ की महिला समिति का गठन सन् १९६८ में किया गया था। जिसका उद्देश्य था महिला वर्ग को संघ की गतिविधियों से जोड़ना। चूंकि महिला वर्ग न केवल समग्र समाज का आधा भाग है बल्कि उसकी एक विशिष्ट भूमिका भी है। जिस तरह बच्चे की प्रथम पाठशाला घर और उसकी प्रथम गुरु मां होती है, उसी तरह किसी भी समाज का भावी आधारभूत ढांचा खड़ा करने एवं विकास में महिलाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

समाज की इसी आवश्यकता को देखते हुए महिला समिति का विधिवत् गठन किया गया। बच्चों को सुसंस्कारित करने, उनका चरित्र निर्माण करने और धार्मिक वातावरण निर्माण करने वाली विभिन्न गतिविधियों का संचालन करना समिति का मुख्य उद्देश्य था। यदि यह भी कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भावी पीढ़ी आदर्श रूप में गढ़ने का गुरुत्तर दायित्व इस समिति में निहित किया गया।

यों तो समिति का ध्यान कई प्रकार की गतिविधियों पर केन्द्रित रहा है, लेकिन मुख्य रूप से इसे चार हिस्सों में बांटा जा सकता है:-

१—धार्मिक शिक्षा और संस्कार निर्माण।
२—सेवा और सहयोग।
३—स्वावलम्बन तथा
४— संगठन

**१. धार्मिक शिक्षा और संस्कार निर्माण:-**

इस दृष्टि से समिति ने अहिंसा प्रचार, महिला शिविर, पदयात्रा आदि कार्यक्रमों पर विशेष जोर दिया।

(अ) **अहिंसा-प्रचार** : सौन्दर्य प्रसाधनों में जिस तरह पशुओं की चर्बी तथा अन्य अस्पृश्य वस्तुओं का मिश्रण होता है, उसकी प्रायः महिला समाज को जानकारी नहीं रहती। निरीह पशुओं व पक्षियों (खरगोश, मेंढ़क, सांप, गाय, बछड़ा, सुअर आदि) को क्रूर हिंसा का शिकार बनाकर उनके रक्त, मांस, मज्जा, हड्डी, बाल और चर्म से हमारे तन को सजाने वाले सौन्दर्य प्रसाधन तैयार किये जाते हैं। यह जानकारी सही ढंग से बहनों को दी जाये, तो वे इन प्रसाधनों का परित्याग कर सकती हैं। इसके परित्याग से अधिक बचत और सादगीपूर्ण जीवन की तरफ तो हम बढ़ेंगे ही, निर्दोष और निरीह प्राणियों की हत्या को रोकने में भी अप्रत्यक्ष रूप से मददगार होंगे। महिला समिति इस विषय में सम्मेलन, विचारगोष्ठी, शिविर आदि अवसरों पर बहनों के बीच परिचर्चा आयोजित करती है। सम्बन्धित साहित्य का प्रचार-प्रसार करती है। इसी तरह शाकाहार के प्रचार पर

समिति का विशेष जोर रहता है। शाकाहार के गुणों और मांसाहार के दोषों के प्रति महिलाओं को अवगत कराना भी समिति का विशेष कार्य रहता है। पशु बलि निषेध और पशु-पक्षियों के पालन-पोषण का भी काम समिति करती है। रायपुर में किया जा रहा जीवदया कार्य इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

**(ब) महिला शिविर :** शिक्षा प्राप्त कर रही बालिकाएं जो कल विवाह कर नये गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट होने वाली है–को धार्मिक शिक्षा देने और उनमें अच्छे संस्कार निर्माण करने का कार्यक्रम समिति लम्बे समय से चलाती आ रही है। इसके लिए एक या दो सप्ताह का शिविर आयोजित किया जाता है। शिविर में आने वाली बालिकाएं एक नये वातावरण में रहकर कुछ सिखाती हैं। इस तरह के शिविर देश के विभिन्न भागों में समय-समय पर लगाये जाते हैं।

**(स) पदयात्रा :** धार्मिक, नैतिक वातावरण बनाने एवं सुसंस्कार निर्माण करने के उद्देश्य से आयोजित होने वाली पदयात्राओं में महिला समिति सक्रिय रूप से भाग लेती है। प्रदेश में या अन्य प्रदेशों में होने वाले ऐसे आयोजनों में महिलाओं की भागीदारी का अच्छा लाभ मिलता है, यह प्रत्यक्ष अनुभव किया गया है। इस दौरान दुर्व्यसन मुक्ति तथा संस्कार निर्माण के काम में भी बहुत सहायता मिलती है। ऐसे आयोजन प्रायः हर साल होली के बाद होते हैं।

**२–सेवा और सहयोग :**

इसके अन्तर्गत महिला समिति मुख्य रूप से निराश्रित बहनों की मदद, असहाय छात्रों को छात्रवृत्ति, विकलांगों को कृत्रिम पांव तथा नेत्र-दान जैसे कार्यक्रमों का संचालन करती है। स्वधर्मी बहनों की जरुरत को देखते हुए उन्हें मदद देना समिति अपना प्रमुख दायित्व मानती है। वर्तमान में ऐसी ४२ बहनों को मदद दी जा रही है। अध्ययनशील छात्रों को छात्रवृत्ति दिलाने तथा विकलांग भाइयों को जयपुर फुट, लगाने में भी मदद करती है। बुक बैंक स्थापित कर पुस्तकों की मदद भी बच्चों को दी जा रही है। इसके अलावा ४६ पाठशालाओं एवं कई पुस्तकालयों का संचालन भी महिला समिति करती है, राजस्थान में ही ऐसे ७ पुस्तकालय समिति चला रही है। ये हैं—चिकारड़ा, मंगलवाड़, रून्डेडा, खाटोड़ा, बिरमावल, गजोडा और छामनार।

**३–स्वालम्बन :**

निराश्रित, बेसहारा अथवा आर्थिक दृष्टि से कमजोर महिलाओं को स्वावलम्बी बनाना महिला समिति का मुख्य उपक्रम है। इसके अन्तर्गत बहनों को विभिन्न उत्पादक कार्यों में संलग्न कर उन्हें आत्म निर्भर बनाने की योजना है।

इस कार्यक्रम का यद्यपि अधिक विस्तार नहीं हो पाया है, लेकिन मध्यप्रदेश के रतलाम नगर में चलाया जा रहा उद्योग मन्दिर एक आदर्श उदाहरण है। यह केन्द्र काफी समय से चल रहा है। यहां बहनों को सिलाई, बुनाई, चर्खा चलाने, पापड़, मंगोडी तथा मसाला बनाने तथा ऐसी ही विभिन्न उत्पादक गतिविधियों से जोड़ा गया है। शुरु में यह केन्द्र किराये के भवन में चलता था, लेकिन बाद में जमीन खरीदकर अपना स्वतन्त्र भवन बना लिया गया। १२ जनवरी ८६ को इस नये भवन "श्रीमती जीवनी देवी कांकरिया महिला उद्योग मन्दिर" का विधिवत उद्घाटन किया गया। आज यह केन्द्र अनेक बहनों को स्वावलम्बी बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

राजस्थान में भी इसी तरह दो सिलाई

स्कूल चलाये जा रहे हैं, जहां बहनों को सिलाई कार्य का प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

**४–संगठन :**

संगठन की दृष्टि से भी महिला समिति पूरी तरह सक्रिय है, संघ रजत-जयन्ती वर्ष, समता ',साधना वर्ष में विशेष सदस्यता अभियान चलाया जाकर सदस्य बनाये गये। २५१/– रुपये में बनने वाले आजीवन सदस्यों को "श्रमणोपासक" की प्रति निःशुल्क उपलब्ध कराने का प्रावधान रखा गया, जिससे सदस्यता में वृद्धि हुई। यह वर्ष "साधना वर्ष" के रूप में मनाया जायेगा। इसे सभी जप, तप और त्याग पूर्वक मनावें, इसका प्रयत्न किया जायेगा।

**आभार :**

जिन संघ प्रमुखों ने समिति-स्थापना और प्रोत्साहन हेतु अनथक काम किया, उन श्रद्धेय स्मरणीय सर्व श्री गणपतराज जी बोहरा, सरदारमल जी कांकरिया, गुमानमल जी चोरड़िया, भंवरलाल जी कोठारी, पीरदान जी पारख, मगनलाल जी मेहता व चम्पालालजी डागा के प्रति समिति हृदय से आभारी है।

समिति के प्रारम्भिक कार्य के गुरुतर दायित्व को कार्यालय सचिव के रूप में,श्री सुजानमलजी तालेरा रतलाम ने कुशलता से निभाया। वे साधुवाद के पात्र हैं।

हमें धर्मपाल बहिनों की धर्मनिष्ठा, श्रद्धा और स्नेह से कार्य की बहुत प्रेरणा मिली है।

समिति को शासन नायक आचार्य-प्रवर श्री नानालाल जी म. सा. के महिला जागृति परक जीवनोन्नायक उपदेशों से महान् संबल प्राप्त हुआ है। उन परम आराध्य के आचार और उपदेशों के प्रति समिति और समिति की समस्त सदस्याएं सदैव ऋणी रहेंगी और उनके समता मंत्र को सकल विश्व में फैलाने हेतु समर्पित रहेंगी। आचार्य-प्रवर के आज्ञानुवर्ती सन्त और सतीवृन्द के यशस्वी आचार से हम गौरवान्वित हैं।

आपके आज्ञानुवर्ती सतीवृन्द ने महिला जागरण और उनमें धर्म-प्रभावना का विस्तार करने में जो बेजोड़ भूमिका निभाई है, वह स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है।

समिति पदाधिकारियों का संक्षिप्त उल्लेख भी उनके प्रति आदर की अभिव्यक्ति हेतु प्रस्तुत है।

| संरक्षिका | | कार्यकाल |
|---|---|---|
| श्रीमती सेठानी आनन्द कंवर बाई पितलिया, | रतलाम | सन् १९७३ से १९७५ तक |
| श्रीमती सेठानी लक्ष्मी बाई धाडीवाल, | रायपुर | सन् १९७३ से १९७५ तक |
| श्रीमती केशर बहन जवेरी, | बम्बई | सन् १९७६ से १९८६ तक |
| श्रीमती यशोदा देवी बोहरा, | पिपलियाकलां | सन् १९७६ से निरन्तर |
| श्रीमती उमराव बहिन मूथा, | मद्रास | सन् १९७७ से निरन्तर |

| अध्यक्षा | | |
|---|---|---|
| श्रीमती सेठानी आनन्द कंवर पितलिया, | रतलाम | सन् १९६७ से १९७२ तक |
| श्रीमती यशोदा देवी बोहरा, | पिपलिया कलां | सन् १९७३ से १९७५ तक |
| श्रीमती फूलकंवर बाई कांकरिया, | कलकत्ता | सन् १९७६ से १९७८ तक |

| | | |
|---|---|---|
| श्रीमती विजया देवी सुराना, | रायपुर | सन् १६७६ से १६८१ तक |
| श्रीमती सूरज देवी चोरड़िया, | जयपुर | सन् १६८२ से १६८४ तक |
| श्रीमती अचला देवी के. तालेरा, | पूना | सन् १६८५ से निरन्तर |

## उपाध्यक्षा

| | | |
|---|---|---|
| श्रीमती सेठानी लक्ष्मी बाई धाड़ीवाल, | रायपुर | सन् १६६७ से १६७२ तक |
| श्रीमती सूरज बाई सेठिया, | बीकानेर | सन् १६७३ से १६७५ तक |
| " सम्पत बाई गेलड़ा, | मद्रास | सन् १६७३ से १६७५ तक |
| " विजया देवी सुराना, | रायपुर | सन् १६७३ से १६७५ तक |
| " स्नेहलता ताकड़िया, | उदयपुर | सन् १६७३ से १६७५ तक |
| " धनकंवर बाई कांकरिया, | नाजीरपुर (कलकत्ता) | सन् १६७६ व १६८० से १६८१ तक |
| " भंवरी बहन मूथा, | रायपुर | सन् १६७६ से १६७६ तक |
| " सोहन कंवर मेहता, | इन्दौर | सन् १६७६ से १६७७ तक |
| " झमकु बहन बरड़िया, | सरदारशहर | सन् १६७६ से १६७८ तक |
| " शांता देवी मेहता, | रतलाम | सन् १६७७ से १६७६ व ८२ सेनिरन्तर |
| " नीला बहिन बोहरा, | पिपलिया कलां | सन् १६७८ से ७६ व ८२ से ८३ तक |
| " रसकंवर बाई सूर्या, | उज्जैन | सन् १६७६ से १६८० तक |
| " घूरी बहन पिरोदिया, | रतलाम | सन् १६८० |
| " फूलकंवर चोरड़िया, | नीमच | सन् १६८० |
| " सूरजदेवी चोरड़िया, | जयपुर | सन् १६८१ |
| " चेतन देवी भंसाली, | कलकत्ता | सन् १६८१ |
| " स्वर्णलता बोथरा, | बीकानेर | सन् १६८२ से १६८३ तक |
| " सौरभ देवी मेहता, | ब्यावर | सन् १६८२ से १६८३ तक |
| " मोहनी देवी मेहता, | बम्बई | सन् १६८४ |
| " ताराबाई सेठिया, | मद्रास | सन् १६८४ से १६८५ तक |
| " विमला बाई बैद, | कलकत्ता | सन् १६८४ से १६८५ तक |
| " प्रेमलता जैन, | जलगांव | सन् १६८६ से निरन्तर |
| " प्रेमलता जैन, | अजमेर | सन् १६८७ |
| " शान्ति देवी मिन्नी, | कलकत्ता | सन् १६८७ |

## मंत्री

| | | |
|---|---|---|
| श्रीमती विजया देवी सुराना, | रायपुर | सन् १६७३ |
| श्रीमती शान्ता देवी मेहता, | रतलाम | सन् १६७४ से १६७७ तक |
| श्रीमती सो. धनकंवर बाई कांकरिया, | कलकत्ता | सन् १६७८ से १६८० तक |
| श्रीमती स्वर्णलता बोथरा, | बीकानेर | सन् १६८१ से १६८२ तक |

| | | |
|---|---|---|
| श्रीमती प्रेमलता जैन, | अजमेर | सन् १९८३ से १९८६ तक |
| श्रीमती कमला देवी बैद, | जयपुर | सन् १९८७ |

## सहमन्त्री

| | | |
|---|---|---|
| श्रीमती शान्ता बहन मेहता, | रतलाम | सन् १९६९ से १९७३ तक |
| श्रीमती धन कंवर बाई कांकरिया, | कलकत्ता | सन् १९७४ से १९७६ तक |
| " डॉ. शान्ता बहन भानावत, | जयपुर | सन् १९७४ से ७६ व ८३ से ८४ |
| " रंभा देवी धाड़ीवाल, | रायपुर | सन् १९७४ से १९७६ तक |
| " शकुन्तला देवी कांठेड़, | जावरा | सन् १९७४ से १९७६ तक |
| " स्वर्णलता बोथरा, | बीकानेर | सन् १९७७ से १९८० तक |
| " धूरी बाई पिरोदिया, | रतलाम | सन् १९७७ से १९७८ तक |
| " शान्ती देवी मित्री, | कलकत्ता | सन् १९७७ व १९७८ से १९८४ |
| " सुशोला देवी पालावत, | जयपुर | सन् १९७७ से १९७८ तक |
| " रोशन देवी खाबिया, | रतलाम | सन् १९७८ से ८० व ८२ से ८४ |
| " प्रेमलता वहिन जैन, | अजमेर | सन् १९७९ से १९८२ तक |
| " गायत्री देवी कांकरिया, | कलकत्ता | सन् १९७९ से १९८० व १९८ |
| " मगन देवी सुकलेचा, | बीकानेर | सन् १९८१ से १९८२ व १९८ |
| " कान्ता बोहरा, | इन्दौर | सन् १९८१ व १९८५ से १९८ |
| " नीला बहिन बोहरा, | पिपलिया कलां | सन् १९८१ |
| " तारा देवी सेठिया, | मद्रास | सन् १९८२ |
| " घीसी बाई आच्छा, | रायपुर | सन् १९८३ से १९८४ तक |
| " रत्ना ओस्तवाल, | राजनांदगांव | सन् १९८५ से १९८७ तक |
| " पारस बाई बन्ट, | ब्यावर | सन् १९८५ से १९८६ |
| " कंचन वाई कांकरिया, | जोधपुर | सन् १९८५ से १९८६ तक |
| " नीलम बहिन जैन, | रतलाम | सन् १९८७ |

## कोषाध्यक्ष

| | | |
|---|---|---|
| श्रीमती रोशन बहिन खाबिया, | रतलाम | सन् १९७४ से १९७७ तक |
| श्रीमती शान्ति देवी मित्री, | कलकत्ता | सन् १९७८ से १९८० तक |
| श्रीमती कंचन देवी सेठिया, | बीकानेर | सन् १९८१ से १९८२ तक |
| श्रीमती प्रेमलता गोलेछा, | जयपुर | सन् १९८३ से १९८४ तक |
| श्रीमती कमला देवी बैद, | जयपुर | सन् १९८५ से १९८६ तक |
| श्रीमती गुलाब देवी मूथा, | जयपुर | सन् १९८७ |

卐

# श्री सुरेन्द्रकुमार सांड शिक्षा सोसाइटी, नोखा : एक परिचय

—धनराज बेताला

मंत्री—श्री सु. शिक्षा सोसायटी, नोखा

मानव के लिए शिक्षा कितनी उपयोगी है यह सर्वविदित है, पर उसमें जीवन जीने के शिक्षण का तो कहना है ही क्या ? जैनागम में यह वाक्य 'पढमं नाणं तवोदयं' ने शिक्षा को सर्वोपरि स्थान प्रदान किया। आज जो लौकिक शिक्षण प्राप्त हो रहा है उसमें भी अधिक महत्व सम्यक् शिक्षण का है। जैन दर्शन उसी सम्यग् ज्ञान के शिक्षण के कारण सबसे महत्वपूर्ण स्थान पर है। सम्यक् शिक्षण के प्रसारण के लिए ही श्री सुरेन्द्रकुमार सांड शिक्षा सोसाइटी की स्थापना का विचार प्रस्तुत हुआ।

परम पूज्य आचार्य श्री नानालालजी म.सा. का ब्यावर चातुर्मास सन् १९७१ में चल रहा था। वहां पर दिनांक ११-१०-७१ को एक साथ ८ दीक्षाओं का भव्य प्रसंग बना। विरक्तात्माओं की समुचित शिक्षा की योग्य व्यवस्था करने की योजना स्वरूप उसी दीक्षा कार्यक्रम में दीक्षित होने वाले आदर्श त्यागी श्री सौभाग्यमलजी सांड (वर्तमान में आदर्श त्यागी तपस्वी मुनि श्री सौभाग्यमलजी म. सा.) एवम् उनकी धर्मपत्नी पुत्र व पुत्रियां थीं। श्री सौभाग्यमलजी सांड ने दीक्षा के पूर्व रु. २१००० ) की घोषणा करके समाज के सामने श्री सुरेन्द्र कुमार सांड शिक्षा सोसायटी की नींव रखी व अपनी तरफ से संस्थापक सदस्य मनोनीत किये। श्री सांड जी के विचार का श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ के तत्कालीन पदाधिकारियों ने स्वागत करते हुए ब्यावर में एक मीटिंग की। सम्यक् शिक्षण प्रदान करने के कार्य में उस समय स्व. श्री तोलारामजी भूरा देशनोक ने अत्यधिक उत्साह दिखलाया। इस पर संघ प्राण श्री गणपतराज जी बोहरा, श्री सरदारमल जी कांकरिया ने उपस्थित महानुभावों से सम्पर्क करके इस संस्था की नींव रखी। इस संस्था के प्रथम अध्यक्ष श्री हीरालालजी सा. नांदेचा, खाचरोद, जो कि उस समय श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ के अध्यक्ष थे, मनोनीत किये गये व मंत्री पद पर मुझे, धनराज बेताला नोखा को लिया गया।

ब्यावर में स्थापना होने के पश्चात् संस्था के विधायी कार्य सम्पन्न करने का जिम्मा श्री भंवरलालजी कोठारी व मुझको सुपुर्द किया गया जिसे प्रयत्न करके सम्पन्न किया गया व इस संस्था को आयकर में छूट की सुविधा भी ८०जी में प्राप्त हो गई। विधायी कार्य के साथ इस सोसायटी ने सम्यक् शिक्षण का कार्य प्रारंभ किया। सर्वप्रथम पं. श्री रोशनलालजी चपलोत, पं. श्री पूर्णचन्दजी दक, पं. श्री काशीनाथजी (आचार्य चन्द्रमौलि) इत्यादि विद्वान सम्यक् शिक्षण के लिए नियोजित किये गये।

शिक्षा सोसायटी के इस पुनीत कार्य में स्व. सेठ श्री भीखमचन्दजी भूरा का अपूर्व योगदान रहा। स्वर्गीय सेठ श्री जेसराजजी वैद ने विशिष्ट योगदान प्रदान किया। साथ ही सेठिया पारमार्थिक संस्था बीकानेर के सुयोग्य विद्वानों

को संस्था से संलग्न कर समाज के त्यागी वर्ग के ज्ञान के प्रकाश के महत्वपूर्ण कार्य में शिक्षा सोसाइटी प्रगति करती गई ।

शिक्षा सोसाइटी का कार्य क्षेत्र विशाल था। जहां-जहां सन्त-सतियों का विचरण होता उन सिंघाड़ों के साथ के विद्यार्थी त्यागी समुदाय के सम्यग् शिक्षण हेतु अध्यापकों को उन क्षेत्रों में भेजकर शिक्षण का कार्य कराया जाना काफी श्रमसाध्य एवम् व्यय साध्य कार्य था । लेकिन अपने उद्देश्यों के अनुसार शिक्षा सोसाइटी इस कार्य को सम्पन्न करती रही । समाज से आर्थिक सहयोग प्राप्त कर ऐसी संस्था का निरन्तर गतिशीलता पूर्वक कार्य करते रहना अपने आप में एक विशिष्ट उपलब्धि है । इस सस्था के कार्य व उपलब्धियों को ध्यान में रख कर अनेकानेक सहयोगी बन्धुओं ने सहयोग प्रदान करने की आवश्यकतानुसार तत्परता बताई । इस संस्था की कई सज्जनों ने बिना मांगे ही मुक्तहस्त से आवश्यकता की पूर्ति की । संघ प्राण श्री सरदारमलजी कांकरिया जो कि संघ संचालन में दक्ष व्यक्ति हैं, ने कई बार कहा कि हमें श्री सुरेन्द्र कुमार सांड शिक्षा सोसाइटी के लिए मात्र अपील पर वांछित आर्थिक सहयोग प्राप्त होता रहा है इसी से इसकी उपयोगिता स्वयं सिद्ध है ।

इस संस्था में जो प्राध्यापक कार्य करते थे, उन्हें भी अपने कार्य पर गर्व रहा है। उनके द्वारा सम्पन्न कराये गये अध्यापन कार्य के फल स्वरूप आज जैन समाज में कई मूर्धन्य मनीषी जैन दर्शन के निष्णात, विद्वद्वर्य सन्त एवम् महासतियांजी म. सा. हैं जो अपनी विद्वता के फल स्वरूप सर्वत्र विशेष छाप छोड़ रहे हैं, जिनकी यथेष्ठ संख्या सभी को प्रफुल्लित करने वाली है।

शिक्षा सोसायटी के मुख्य पदाधिकारियों का कार्यकल निम्नानुसार रहा है—

| पद | नाम | कार्यकाल |
|---|---|---|
| अध्यक्ष | श्री हीरालालजी नांदेचा, खाचरौद | २-११-७१ से २८-६-७३ तक |
| | श्री दीपचन्दजी भूरा, देशनोक | २६-६-७३ से २२-६-७६ तक |
| | श्री हिम्मतसिंहजी सरूपरिया, उदयपुर | २३-६-७६ से २०-१०-८२ तक |
| | श्री भंवरलालजी कोठारी, बीकानेर | २१-१०-८२ से निरन्तर |
| उपाध्यक्ष | श्री पुखराजजी छल्लानी, मद्रास | २६-६-७३ से २७-६-७६ तक |
| | श्री हिम्मतसिंहजी सरूपरिया, उदयपुर | २८-६-७६ से २३-६-७६ तक |
| | श्री भंवरलालजी कोठारी, बीकानेर | २४-६-७६ से २०-१०-८२ तक |
| | श्री मोहनलालजी मूथा, जयपुर | २३-६-७६ से निरन्तर |
| | श्री करनीदानजी लूणिया, देशनोक | २०-१०-८२ से निरन्तर |
| मन्त्री | श्री धनराज बेताला, नोखा | प्रारंभ से अभी तक |
| सहमन्त्री | श्री जयचन्दलालजी सुखानी, बीकानेर | प्रारंभ से अभी तक |
| कोषाध्यक्ष | श्री मोतीलालजी मालू, अहमदाबाद | प्रारंभ से अभी तक |

प्राध्यापकों के सहयोग का स्मरण भी फुरणा पैदा करता है । स्व. श्री हिम्मतसिंहजी रूपरिया उदयपुर निवासी जैनागमों के प्रकाण्ड विद्वान् थे एवं सरकार के वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी थे । अपने सेवाकाल से निवृत होने के पश्चात् आपने अपने आपको शिक्षा सोसायटी को लगभग समर्पित कर दिया । शिक्षा सोसायटी की आवश्यकतानुसार शिक्षण के लिए आप कई स्थानों पर जाते रहे । आपने शिक्षा सोसायटी के अन्तर्गत निःस्वार्थ सेवा कार्य किया । यहां तक कि प्रवास आदि का व्यय भी स्वयं वहन करते थे । उनकी ऐसी विशिष्ट सेवा को ध्यान में रख कर ही शिक्षा सोसायटी ने आपको अध्यक्ष मनोनीत किया था । आपकी स्मृति अक्षुण्ण है । शिक्षा के क्षेत्र में आप द्वारा किये गये कार्य से शिक्षा सोसायटी ऋणी है ।

आज परम पूज्य आचार्य श्री नानेश शासन में समर्पित अधिकांश मूर्धन्य विद्वान सन्त व महासतियांजी के अध्यापन कार्य में शिक्षा सोसाइटी ने अपना योग प्रदान किया, जिसके फल स्वरूप अनेक विद्वान सन्त एवं अधिकांश सिंघाड़े विदुषी महासतियांजी, नव-दीक्षितों को ज्ञान प्रदान करने में यथेष्ट सक्षम हैं । जो भी इन त्यागी आत्माओं के सान्निध्य में उपस्थित हुआ है, वह उनके विशिष्ट ज्ञान एवं साधनाशील जीवन से अभिभूत हुए बिना नहीं रह सका ।

वर्तमान में शिक्षा सोसाइटी के अन्तर्गत जैन दर्शन के विद्वान पं. श्री कन्हैयालालजी दक, संस्कृत के प्रकाण्ड पं. श्री काशीनाथजी, पंडित श्री हरिवल्लभजी उदयपुर आदि के सतत प्रयास से शिक्षा सोसाइटी अपने उद्देश्यों को प्राप्ति की तरफ गतिमान है ।

पूर्व में जिन विशिष्ट विद्वानों की सेवाएं शिक्षा सोसाइटी को प्राप्त हुई उनके पुण्य स्मरण के बिना यह परिचय पूरा नहीं हो सकता । स्व. पं. श्री पूर्णचन्दजी दक कानोड़, स्वर्गीय पं. श्री श्यामलालजी ओझा बीकानेर (श्री सेठिया धार्मिक परमार्थिक संस्था बीकानेर), स्वर्गीय पंडित श्री रोशनलालजी चपलोत उदयपुर, स्वर्गीय पंडित श्री रतनलालजी सिंघवी छोटी सादड़ी इत्यादि विद्वान् अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक ज्ञान-दान की दिशा में कार्य करते रहे । इनके अलावा समय-समम पर अनेकानेक विद्वानों का सहयोग प्राप्त हुआ है एवं हो रहा है ।

श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ की ही शाखा लेकिन अपने आप में स्वायत्तता प्राप्त इस संस्था की उपलब्धि को ध्यान में रखते हुए संघ की एक और विशिष्ट प्रवृत्ति का कार्य इसके अधीन रखा गया । वह विशिष्ट प्रवृत्ति है समता प्रचार संघ, उदयपुर । जिसके संयोजक हैं समाज के अनुभवी व्यक्ति श्री गणेशीलाल जी बया, उदयपुर । श्री बयाजी समर्पण भाव से कार्य करने के कारण समता प्रचार संघ, उदयपुर स्वाध्यायियों को नियोजित कर समाज की विशिष्ट सेवा कर रहा है । चातुर्मास काल में सुदूर प्रदेशों में पर्युषण पर्व के आठ दिनों में स्वाध्यायियों को भेजा जाता है । समय पर शिविर आयोजित कर स्वाध्यायियों के प्रशिक्षण का कार्य किया जाता है । इस प्रवृत्ति से संघ एवं समाज को बहुत आशाएं हैं ।

शिक्षा सोसाइटी अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विद्वानों की उपलब्धि के लिए प्रयत्नशील रहती है । आगम-अहिंसा समता एवं प्राकृत शोध संस्थान, उदयपुर में जैनागमों व प्राकृत साहित्य पर जो विद्यार्थी शोध कार्य कर रहे हैं उसको अग्रसर करने हेतु भी शिक्षा सोसाइटी प्रति वर्ष अनुदान प्रदान करती रही है ।

कार्य क्षेत्र विशाल है, शिक्षा के क्षेत्र में जितना भी कार्य किया जाय, कम है । सभी से विनम्र निवेदन है कि ज्ञान प्रदान करने की दिशा में आप सभी सहभागी बनें । यह सबसे उत्तम कार्य है ।

# समता युवा संघ : एक झलक

आज के इस भौतिक युग में जहां विषमताएं बढ़ रही हैं। भौतिकता की चकाचौंध में व्यक्ति न्याय-अन्याय, सुख-दुःख, हित-अहित, अनुकूल-प्रतिकूल, धर्म-अधर्म आदि बातों की ओर ध्यान नहीं देकर सिर्फ स्वयं की स्वार्थ लिप्सा में ग्रसित रहता है वहां उसी युवा शक्ति को एकत्रित कर, संगठित कर समाज सेवा के विभिन्न कार्यों में लगाने हेतु श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन समता युवा संघ की दि ४ नवम्बर १९७९ को अजमेर में स्थापना हुई। स्थापना के बाद विगत कुछ वर्षों में ही युवा संघ की शाखाएं पूरे भारतवर्ष में स्थापित हो गईं। युवक साथी अपनी पारिवारिक जवाबदारी को सम्हालते हुए भी समाज की सेवा में अग्रणी हुए हैं और हो रहे हैं, यह गौरव की बात है।

केन्द्रीय समता युवा संघ समाज की विभिन्न प्रवृत्तियों से भी जुड़ा हुआ है, जिसका उद्देश्य अलग-अलग क्षेत्रों में युवा संघों को सक्रिय करना, मार्ग दर्शन देना एवं धार्मिक-नैतिक शिक्षण देकर राष्ट्रीय, धार्मिक एवं सामाजिक दायित्व के प्रति युवा शक्ति को सही दिशा प्रदान करना है। संघ की अभी वर्तमान में जो प्रवृत्तियां चल रही हैं, उन्हें प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता है—

**समता युवा सन्देश:—**

यह युवा संघ का पाक्षिक समाचार-पत्र है जिसमें जन-जन की भावना के अनुरूप समता विभूति आचार्य श्री नानेश एवं मुनिराजों एवं महासतियांजी म. सा. के विचरण, स्वास्थ्य एवं चातुर्मास आदि की जानकारी त्वरित गति से प्रकाशित होती है।

यह पत्र भारत भर में निःशुल्क भेजा जाता है। इसके प्रकाशन में प्रमुख सहयोगी संघ अध्यक्ष श्री चुन्नीलालजी मेहता बम्बई हैं।

**चिकित्सा शिविरों का आयोजन:—**

इस परिप्रेक्ष्य में युवा संघ मानवीय सेवा के कार्य में भी संलग्न रहा है। कई स्थानों पर चिकित्सा शिविरों के आयोजन हुए तथा हो रहे हैं। केन्द्रीय युवा संघ में भी नेत्र तथा अन्य चिकित्सा शिविरों के लिये प्रावधान है। संघ के मक्षी शिविर की स्मृति तो आज भी समाज में जीवन्त है।

**समता समाज रचना:—**

रजत जयन्ती वर्ष के उपलक्ष्य में युवा संघ ने समता समाज रचना हेतु २५०० युवकों का एक संगठन तैयार करने का निश्चय किया है। अनेक युवा साथी इसके सदस्य बन चुके हैं। प्रति सदस्य रुपये १०-०० इसका शुल्क है। इसमें सभी युवा साथियों का सहयोग अपेक्षित है।

**धार्मिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार:—**

युवा संघ ने यह विशेष कार्य गत वर्ष प्रारम्भ किया है। इसके अन्तर्गत जिन-जिन स्थानों पर सन्त एवं सतियांजी म. सा. के चातुर्मास हैं उन स्थानों पर सामायिक सूत्र, प्रतिक्रमण, भक्तामर पच्चीस बोल, श्रावक के बारह व्रत, चवदह नियम आदि पुस्तकें ज्ञानार्जन हेतु निःशु

भेजी जा रही हैं, इससे अत्यधिक ज्ञानार्जन की सम्भावना है। इसके साथ ही युवा संघ ने गत वर्ष 'सामायिक सूत्र, भक्तामर स्तोत्र', नामक पुस्तक का प्रकाशन किया था और इस वर्ष 'तत्व का ताला : ज्ञान की कुन्जी', नामक पुस्तक का प्रकाशन किया गया है। इस पुस्तक में छोटे-बड़े बहुत से थोकड़ों एवं बोलों का संग्रह है, जो सामान्य जनमानस के जीवनोपयोगी होने के साथ ही विशेष ज्ञान में भी लाभदायक है।

युवा संघ की यह एक कल्याणकारी योजना है, इसका अधिक से अधिक लाभ उठाना सभी का कर्त्तव्य है। धार्मिक स्थलों में तथा संघों में जहां भी इन पुस्तकों की आवश्यकता हो, वे कार्यालय से सम्पर्क कर सकते हैं।

छात्र–वृत्तिः—

युवा संघ की छात्रवृत्ति योजना में प्रति–भावान, जागरूक व जरूरतमन्द छात्र-छात्राओं को छात्रवृत्ति दी जाती हैं। जो युवक-युवती इसका लाभ उठाना चाहें, वे आवेदन कर सकते हैं।

रोजगार के अवसरः—

प्रायः यह देखा गया है कि हमारे समाज के कई युवा साथी पढ़े-लिखे होने के बाद भी रोजगार के साधन प्राप्त नहीं कर पाते हैं, इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखते हुए युवा संघ ने उद्योग-पतियों, व्यवसायियों, चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट एवं बैंकिग योजनाओं से सम्बन्धित जानकारी एकत्रित की है, यदि कोई युवा साथी इस योजना का लाभ उठाना चाहे तो अपनी रुचि के अनुसार कार्य के लिये संपर्क स्थापित कर सकते हैं, जिससे उन्हें सहयोग एवं मार्गदर्शन दिया जा सके।

सदस्यों की सूचीः –

हमारे समाज में कई ऐसे युवक हैं जो निःस्वार्थ भाव से बहुत अच्छी सेवा कर रहे हैं अथवा करने की इच्छा रखते हैं, परन्तु पर्याप्त जानकारी के अभाव में उनके चहुंमुखी व्यक्तित्व का लाभ समाज को नहीं मिल रहा है, अतः युवा संघ ने पूरे भारत में फैले हुए निष्ठावान एवं उत्साही कार्यकर्ताओं को रजत-जयन्ती वर्ष में सदस्य बनाने का निश्चय किया है।

युवा संघ का एक और लक्ष्य है : 'स्व-पर कल्याण' इसमें युवकों के अपने स्वयं के जीवन में शांति का संचार करने, समता भाव को जगाने एवं जीवन की मलिनता को धोने के लिये अपने सदस्यों को कम से कम सामायिक सूत्र, भक्तामर स्तोत्र के ज्ञान एवं साधना में संलग्न करने का भी निश्चय किया गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में युवा संघ ने 'सामायिक सूत्र, भक्तामर स्तोत्र' नामक पुस्तक का प्रकाशन दिनांक १५ अगस्त १९८६ को किया है जो अपने आप में एक अच्छा संकलन है। हमारा यह प्रयास है कि युवा साथी कम से कम सामायिक ज्ञान तथा साधना में संलग्न होकर अपने आत्मिक लक्ष्य को प्राप्त करें।

यह वर्ष आचार्य श्री नानेश के आचार्य पद का २५ वां वर्ष है। आचार्य श्री नानेश ने व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र तथा राष्ट्र से विश्व शान्ति तक की बहु-आयामी विवेचना कर एक व्यावहारिक व्याख्या दी है, लेकिन महापुरुष तो उपदेश ही दे सकते हैं। इसे जन-जन तक पहुंचाना यह हमारा परम कर्त्तव्य है। विश्वशांति समता में ही सन्निहित है। अतः हमने आचार्य श्री नानेश के सर्वतोमुखी एवं बहुआयामी व्यक्तित्व को जन-जन तक पहुंचाने का संकल्प पूर्वक निर्णय लिया है।

समता विद्यालयः—

आज समाज का अधिकांश युवावर्ग कुव्य-सनों की राह पर जा रहा है। लोग कहते हैं

कि जैन युव। गलत राह पर जा रहा है। यह वास्तव में कुछ अंशों में सही भी है, किन्तु इसका दायित्व किस पर है ? यह सोचना नितांत आवश्यक है। आज की शिक्षा पद्धति एवं बचपन के स्कूली संस्कार ही उसके कारण माने जा सकते हैं। सामान्य रूप से व्यक्ति यह सोचता है कि हमारा बच्चा डाक्टर, इन्जीनियर या उद्योगपति बने, वह अपने जीवन में चहुंमुखी विकास करे और इस हेतु वह अपने बच्चों को कान्वेन्ट स्कूलों में दाखिला दिलाता है। उन स्कूलों में शाकाहारी एवं मांसाहारी परिवारों के बच्चे एक साथ पढ़ते हैं, एक जैन परिवार का बच्चा जो अभी समझ से परे है, मांसाहारी बच्चे के साथ बैठ कर अपने टिफिन का भोजन करता है एवं अपने साथी बच्चे को अण्डा या अन्य वस्तु खाते देखता है तो स्वाभाविक रूप से उसके मन से उस वस्तु के प्रति घृणा निकल जाती है और वह भी उस प्राथमिक स्तर पर उसे अभक्ष्य नहीं मानता और वही बच्चा आगे जाकर उन वस्तुओं का सेवन करता है जो लोग उस पर अंगुली उठाते हैं, किन्तु इसका दायित्व समाज के पालकों, प्रबुद्धजीवियों तथा कर्णधारों पर है।

युवा संघ ने आने वाली पीढ़ी को संस्कारित एवं सुशिक्षित करने हेतु कान्वेन्ट पद्धति के माध्यम से विभिन्न स्थानों पर समता विद्यालयों को खोलने की महती योजना समाज के समक्ष रखी है जो कि अपने आप में एक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक कदम है।

शिक्षा संस्थान का कार्य एक सामान्य काम नहीं है। उसका प्रारम्भिक व्यय बहुत अधिक होता है। शिक्षा का दान महान है, साथ ही संस्कारित जीवन सहित शिक्षा का दान समाज में एक अपूर्व देन होगी।

मेरा सभी युवा साथियों एवं दानवीर महानुभावों तथा बुद्धिजीवियों से विनम्र आ[illegible] है कि वे तन मन-धन से जुट जायें एवं आ[illegible] अपने ही बच्चों को संस्कारित करने के लि[illegible] ठोस कदम उठायें।

यदि हमने इस ओर ध्यान नहीं दिया तो आगामी समय में यह स्तर इतना गिर जायेगा कि हमारी जैन संस्कृति ही संकट में पड़ जायेगी।

संगठनः—

वर्तमान में भारत के विभिन्न स्थानों प[illegible] युवा संघ सक्रिय होकर कार्य कर रहा है जिनमें प्रमुख निम्न हैं—

समता युवा संघ, इन्दौर, छत्तीसगढ़ क्षेत्रि[illegible] युवा संघ, दक्षिण भारतीय समता युवा सं[illegible] समता युवा संघ बम्बई, समता युवा संघ नन्दुरबा[illegible] समता युवा संघ राजगुरु नगर, समता युवा सं[illegible] पीपलिया मंडी, समता युवा संघ बीकानेर, सम[illegible] युवा संघ रतलाम, नोखा आदि।

इसके अलावा भी जावरा, मन्दसौर, जाव[illegible] उदयपुर, भीलवाड़ा, राजनांदगांव, रायपुर, दु[illegible] मद्रास, हुबली आदि कई स्थानों पर युवा सं[illegible] कार्य कर रहे हैं तथा कई स्थानों पर युवा सं[illegible] स्थापित नहीं हैं, वहां के युवा साथी स्थाप[illegible] करने में जुटे हुए हैं। यह उनकी, आचार्य प्रव[illegible] के प्रति निष्ठा एवं धार्मिक भावनाओं का परि[illegible]चायक हैं।

युवा संघ के विकास का श्रेय समाज [illegible] उन संघ-निष्ठ महानुभावों को जाता है जिन्होंने हमें तन, मन, धन से सहयोग दिया है।

यह वर्ष आचार्य श्री नानेश के आचार्य प[illegible] का २५ वां वर्ष है। विगत वर्षों में आपश्री [illegible] मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, गुजरात, महारा[illegible] उड़ीसा आदि कई क्षेत्रों में विचरण कर धर्म [illegible] शंखनाद किया है। आपने अन्तर्ज्ञान से ऐसे [illegible] सिद्धांतों को निरुपित किया है जिससे आज [illegible]

तनावग्रस्त मानव शांति की राह पर चल सके। उन सिद्धांतों में समता दर्शन, समीक्षण ध्यान प्रमुख हैं।

युवा संघ के प्रत्येक सदस्य की यह हार्दिक भावना है कि आपश्री का सान्निध्य एवं मार्ग दर्शन हमें युगों-युगों तक मिलता रहे।

इसके साथ ही यह वर्ष श्री अ. भा. सा. जैन संघ का २५ वां वर्ष है। विगत वर्षों में इस संघ ने समाज की विभिन्न लोकोपकारी प्रवृत्तियों के माध्यम से पूरे भारतवर्ष में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। संघ के निष्ठावान महानुभाव सदैव संघ सेवा के कार्यों में तत्पर रहते हैं। यह संघ दिन-दुनी रात-चौगुनी प्रगति करे एवं अपने उद्देश्यों को पूर्ण करने में सफल हो, ऐसी हमारी शुभ कामनाएं हैं।

इन्ही शुभ भावनाओं के साथ—

गजेन्द्र सूर्या
अध्यक्ष

मणीलाल घोटा
मन्त्री

श्री अ. भा. सा. जैन समता युवा संघ, रतलाम

---
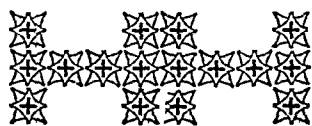
तृण, ठूंठ, कंटीली लता, छायादार वृक्ष और लता - वितान की भांति ही विभिन्न तरह का होता है मानव हृदय। तृण क्षुद्र है वह किसी को छाया नहीं दे सकता पर उस पर चलने वाले को वह ताप भी नहीं देता। इसी प्रकार जो क्षुद्र हृदयी हैं वह किसी को न छाया दे पाता है न ताप। कारण उसमें ताप देने की शक्ति ही नहीं है। ऐसे मनुष्य न किसी का भला कर सकते हैं न बुरा।

ठूंठ में पत्र ही नहीं होते अतः वृक्ष होने पर भी किसी को छाया नहीं दे पाता कारण उसके पत्र झर चुके हैं। इसी भांति के व्यक्ति जो छाया दे तो सकते हैं किन्तु हृदय में स्नेह के अभाव में वे किसी का भला नहीं कर पाते।

कंटीली लताओं ने पत्रों की सम्पदा तो पायी है किन्तु पत्रों के विरल होने के कारण आश्रय चाहने वालों को छाया नहीं दे सकती बल्कि चुभन ही देती है। इस प्रकार के व्यक्ति दूसरों का भला करना तो दूर दूसरों को कष्ट ही देते हैं।

छायादार वृक्ष पत्रों से भरे होने के कारण दूसरों को छाया तो देते हैं पर फूलों की महक नहीं दे पाते। इस भांति के मनुष्य दूसरे का भला तो करते हैं किन्तु उनके जीवन को मधुर नहीं बना पाते।

लता-वितान छाया के साथ-साथ पुष्पों की महक भी देती है। इस प्रकार के मनुष्य दूसरों का भला तो करते ही हैं उसके जीवन को माधुर्य-मंडित भी कर देते हैं।

---

# अखिल भारतीय समता बालक मण्डली

बच्चों में धार्मिक एवं नैतिक संस्कार उत्पन्न करने और सामाजिक नव चेतना जागृत करने हेतु अहमदाबाद में दिनांक २० अक्टूबर मंगलवार आषाढ़ सुदी दूज को श्री दीपचन्द जी भूरा, अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के पूर्व अध्यक्ष एवं भंवरलालजी कोठारी के मुख्य आतिथ्य एवं अध्यक्षता में अखिल भारतीय स्तर पर समाज बालकों के इस संगठन की स्थापना हुई। साथ ही रतलाम बालक मण्डली की प्रार्थना एवं साधना पुस्तक का विमोचन भी हुआ। श्री कपूर जी कोठारी को उसी समय अखिल भा. स. बा. मण्डली का सर्वानुमति से अध्यक्ष चुना गया एवं अन्य पदाधिकारियों की भी घोषणाएं हुईं। संस्था ने उसी समय निम्न प्रस्ताव पास किये—

(१) संस्था के आगामी वर्ष को संगठनात्मक वर्ष घोषित करना।

(२) दिल्ली के पास देवनार में खुलने वाले बूचड़खाने का तीव्र विरोध।

(३) चित्तौड़ के पास सादूलखेड़ा में तीन जैन साध्वियों के साथ हुए अभद्र व्यवहार पर निन्दा प्रस्ताव पास किया एवं विरोध पत्र भेजा।

**प्रथम वार्षिक रिपोर्ट :**

संस्था अध्यक्ष द्वारा अहमदाबाद में अध्यक्ष बनने के बाद रतलाम से बीकानेर तक पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के जन्म दिवस एवं ज्ञान पंचमी के शुभ अवसर पर संगठनात्मक सप्ताह के अन्तर्गत कई क्षेत्रों में संगठन की रू रेखा बनाने का प्रयास किया एवं जगह-जगह पर धार्मिक पाठशालाएं खुलवाई गईं। इससे बालकों एवं बालिकाओं में धार्मिक एवं सामाजिक जागृति का आभास हुआ तथा संगठन द्वारा दिल्ली के पास देवनार में खुलने वाले बूचड़खाने का तीव्र विरोध कर राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, राज्य पाल, मुख्यमंत्री, गृहमंत्री आदि को ज्ञापन जगह जगह से भिजवाये गये। इसी तरह चित्तौड़ के पास सादुलखेड़ा में जैन साध्वियों के साथ हुए अभद्र व्यवहार का विरोध ज्ञापन, जुलूस एवं हड़ताल के माध्यम से किया गया।

संस्था का वार्षिक अधिवेशन भावनगर में श्री भंवरलाल जी कोठारी एवं श्री जसकरण जी बोथरा के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुआ। जिसमें निम्न प्रस्ताव पास किये गये—

(१) श्री प्रेमराज बोहरा शिविर समिति के माध्यम से बालकों का धार्मिक शिक्षण शिविर लगाना।

(२) संस्था को तीव्र गति प्रदान करने हेतु चार क्षेत्रीय सम्मेलन कर बालकों में धार्मिक जागृति पैदा करना।

(३) धार्मिक स्कूलों को खुलवाना एवं धार्मिक परीक्षा देने हेतु प्रेरित करना।

(४) क्षेत्रीय प्रवास कर संगठन की इका इयों को सुदृढ़ एवं व्यवस्थित करना एवं नई इकाइयों की स्थापना करना।

**द्वितीय एवं तृतीय वार्षिक रिपोर्ट :**

प्रथम अधिवेशन के प्रस्तावों को मूर्त्त रूप देने के उद्देश्य से चित्तौड़ में तीन जून ८४ से १६ जून ८४ तक बालकों का धार्मिक शिक्षण शिविर संस्था द्वारा प्रेमराज बोहरा शिविर समिति के सहयोग से श्री दीपचन्द जी भूरा एवं श्री गणपतराज जी बोहरा और श्रीमती यशोदा-देवी जी वोहरा के मुख्य आतिथ्य में आयोजित किया गया। जिसका समापन श्री पी. सी. चौपड़ा एवं सुजानमल जी मारू के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुआ।

चित्तौड़ में ही दस जून ८४ को मेवाड़ क्षेत्रीय बालकों का सम्मेलन भी सम्पन्न हुआ। जिसमें संगठन की अनेक योजनाओं को मूर्त्त रूप दिया गया। इसी तरह बीकानेर में भी संस्था का द्वितीय क्षेत्रीय सम्मेलन २ दिसम्बर ८४ रविवार को कोठारी पंचायती भवन में श्री चुन्नी-लालजी मेहता एवं श्री भंवरलाल जी कोठारी के मुख्य आतिथ्य एवं श्री माणकचन्दजी रामपुरिया की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ, जिसमें निम्न प्रस्ताव पास किये गये—

(१) श्री संघ में एकरूपता लाने की दृष्टि से संस्था का नाम अखिल भारतीय नाना बालक मण्डली की जगह, अखिल भारतीय समता बालक मण्डली रखा गया।

(२) बालकों में धार्मिक ज्ञान की अभि-वृद्धि हेतु ५ धार्मिक शिक्षण शिविर लगाने का निर्णय किया।

(३) बालकों में बौद्धिक ज्ञान वृद्धि हेतु एक निबन्ध प्रतियोगिता आयोजित करने का निर्णय किया गया।

संस्था द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर एक निबन्ध प्रतियोगिता "बालकों में चरित्र निर्माण की समस्या, कारण एवं समाधन" विषय पर आयोजित की गई। ३५ निबन्ध संस्था को प्राप्त हुए जिनमें १० निबन्धों को श्रेष्ठ घोषित कर पुरस्कृत किया गया। संस्था द्वारा मालवा मेवाड़, मारवाड़ एवं छत्तीसगढ़ क्षेत्र हेतु क्षेत्रीय संयोजकों की नियुक्ति भी की गई।

संस्था का यह वर्ष शिविरों की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जावेगा। संस्था द्वारा मलकान-गिरी (उड़ीसा), गीदम (बस्तर) क्षेत्र में भाई श्री दिनेश-महेश नाहटा सह-सचिव एवं क्षेत्रीय संयोजक के सहयोग से ग्रीष्मावकाश में दो शिविर उत्साह पूर्वक सम्पन्न हुए। मलकानगिरी एवं गीदम के शिविरों के पश्चात् नगरी जिला मन्द-सौर में भी मालवा क्षेत्र के बालकों का धार्मिक शिक्षण शिविर सम्पन्न हुआ।

दीपावली अवकाश में भी संस्था द्वारा कालियास एवं गंगाशहर-भीनासर में दो धार्मिक शिक्षण शिविर आयोजित किये गये जिनमें पूर्ण सफलता मिली।

संस्था के विकास के रथ को आगे बढ़ाते हुए संस्था अध्यक्ष श्री कपूर जी कोठारी ने अपने सहयोगियों के साथ २५ सितम्बर से ३ अक्टूबर तक मालवा, मेवाड़, मारवाड़ क्षेत्र का ६ दिवसीय सघन तूफानी दौरा कर संगठन की इकाइयों को मजबूत करते हुए धार्मिक स्कूलों की स्थापना का कार्य किया। फलत: करीब ४५ स्थानों पर बालक-बालिका मण्डलियों की स्थापना हुई।

**चतुर्थ वार्षिक रिपोर्ट :**

बम्बई अधिवेशन में संस्था की गतिविधि को पेश करते हुए भावी रूप-रेखाओं का निश्चय श्री चम्पालाल जी जैन ब्यावर एवं श्री दीपचन्द जी भूरा के सान्निध्य में किया गया, जिसमें

संस्था अध्यक्ष श्री कपूर जी कोठारी ने संस्था की तीन वर्षों की गतिविधियों को संक्षिप्त में पेश कर संस्था की बागडोर व्यावर के उत्साही कार्यकर्त्ता भाई श्री प्रकाश जी श्रीश्रीमाल को सौंपी। उसी समय संस्था के तीन वर्ष के कार्यकाल की झलक के रूप में "स्मृति" स्मारिका का विमोचन श्री चम्पालाल जी जैन के द्वारा किया गया। संस्था से विदाई लेते हुए श्री कपूर कोठारी ने संस्था के नवीन पदाधिकारियों का स्वागत कर नव उत्साह एवं उमंग के साथ संस्था को गतिशील करने का आह्वान किया। साथ ही संघ प्रमुखों ने संस्था को जो सहयोग दिया उसके लिये आभार माना एवं संघ प्रमुखों से संस्था को हमेशा मार्गदर्शन सहयोग एवं आशीर्वाद मिलता रहे, ऐसी कामना की। इस अवसर पर नये पदाधिकारियों का चयन एवं प्रकाशजी श्रीश्रीमाल का स्वागत भी किया गया।

**पंचम वार्षिक रिपार्ट :**

वम्बई अधिवेशन में नियुक्त नवीन पदाधिकारियों ने अनुभव की दृष्टि से नए होते हुए भी अपने अध्यक्ष श्री प्रकाशजी श्रीश्रीमाल के नेतृत्व में चिकारड़ा क्षेत्र में बालकों का एक धार्मिक शिक्षण शिविर आयोजित किया जिसका उद्घाटन श्री समीरमल जी कांठेड़ के मुख्य आतिथ्य में हुआ। शिविर में अनेक गणमान्य महानुभावों के साथ संघ अध्यक्ष श्री चुन्नीलाल जी मेहता भी वालकों के उत्साह को वढ़ाने एवं आशीर्वाद देने हेतु पधारे और शिविर से बहुत प्रभावित हुए। शिविर वस्तुतः वहुत लाभदायक रहा। शिविर का समापन संस्था के पूर्व अध्यक्ष एवं परामर्श दाता श्री कपूर जी कोठारी के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुआ।

संस्था संगठन की दृष्टि से इस वर्ष नन्दुरबार, मनमाड़, ब्यावर एवं अजमेर में बालक एवं बालिका मण्डली की स्थापना कर पाई है। संस्था द्वारा इसी वर्ष सुव्यवस्थित हिसाब-किताब की दृष्टि से बैंक में अकाउन्ट भी खोला गया। संस्था का वार्षिक अधिवेशन जलगांव (महाराष्ट्र) में श्री चम्पालाल जी जैन एवं समाजसेवी मानव मुनिजी के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुआ। जिसमें संस्था अध्यक्ष श्री प्रकाशजी श्री श्रीमाल एवं विनोद जी लुणिया द्वारा संस्था की गतिविधियों को पेश किया गया एवं भाई श्री राजेश जी बोहरा द्वारा संस्था का वार्षिक बजट पेश किया गया।

जलगांव अधिवेशन के प्रस्तावों को मद्देनजर रखते हुए संस्था के कार्यकर्त्ता संस्था को गतिशील बनाये रखने के लिये निरन्तर प्रयासरत हैं। समाज के वर्तमान स्वरूप को वदलने हेतु संस्था समय-समय पर धार्मिक स्कूलों की स्थापना, बौद्धिक प्रतियोगिताओं एवं धार्मिक शिविरों का आयोजन कर बालकों में धार्मिक एवं नैतिक ज्ञान की अभिवृद्धि करने का प्रयास कर रही है।

आवश्यकता है समाज के प्रमुखों द्वारा इस फुलवाड़ी को सम्हालने, संवारने एवं सजाने की। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यह संस्था संघ प्रमुखों के मार्गदर्शन एवं आशीर्वादों से निरन्तर गतिशील होती रहेगी।

प्रकाश श्रीश्रीमाल
अध्यक्ष

विनोद लूणिया
मंत्री
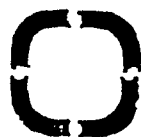
# श्री समता प्रचार संघ, उदयपुर

श्री समता प्रचार संघ, उदयपुर की स्थापना समता दर्शन प्रणेता धर्मपाल प्रतिबोधक, बाल ब्रह्मचारी, समीक्षण ध्यानयोगी आचार्य-प्रवर १००८ श्री नानालाल जी म. सा. की सद्प्रेरणा से निम्न उद्देश्यों के लिये सन् १९७८ के १७ अक्टूबर को उदयपुर में प्रसिद्ध उद्योगपति श्रीमान् गणपतराज जी बोहरा के कर कमलों से हुई।

**संघ के उद्देश्य :**

(१) शिविरों के माध्यम से स्वाध्यायी तैयार करना, उन्हें धार्मिक अध्ययन कराना। यह शिविर वर्ष में ३ बार लगाए जाते हैं पर कभी-कभी अधिक भी लगाए जाते हैं।

(२) पत्राचार पाठ्यक्रम द्वारा स्वाध्यायियों में ज्ञान वृद्धि कराना।

(३) समता का प्रचार-प्रसार करना।

(४) पर्युषण पर्वाधिराज में जहां संत-सतियों के चातुर्मास का सुयोग नहीं बैठा हो वहां स्वाध्यायियों को धर्माराधन कराने हेतु निःशुल्क भेजना।

(५) बालक-बालिकाओं व युवा-युवतियों में धर्म के प्रति जागृति हेतु विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन करना।

(६) सत्-साहित्य प्रदान कराना।

जब से इस संघ की स्थापना हुई तब से ही निरन्तर वृद्धि होकर संघ आगे बढ़ रहा है। हर वर्ष स्वाध्यायियों के प्रशिक्षण हेतु तीन शिविर लगाए जाते हैं, उनमें स्वाध्यायियों को पर्युषण सम्बन्धी साहित्य भी निःशुल्क वितरित किया जाता है। अब तक ३० शिविर लग चुके हैं।

संघ के अब तक ६२४ सदस्य बन चुके हैं जिनमें ५० के लगभग महिला सदस्य भी हैं। इन सदस्यों में लॉ कॉलेज के प्रिन्सीपल, प्रोफेसर, प्रधान अध्यापक, अध्यापक, अध्यापिकाएं. सी. ए., एडवोकेट, इन्जीनियर, उद्योगपति, अच्छे व्यवसायी, छात्र, छात्राएं विद्वान, त्यागी, तपस्वी भी हैं।

संघ के सदस्यों में से अनेक ने अपने त्याग-तप और स्वाध्याय से संघ का गौरव बढ़ाया है, जिनमें से कुछ का प्रतीकात्मक उल्लेख करना उचित होगा। श्री उदयलाल जी जारोली लॉ कॉलेज नीमच, म. प्र. के प्राचार्य पद पर रहते हुए संघ सेवा देते रहे। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती स्मृति रेखा भी संघ सदस्या हैं। अजमेर के श्री रतनलाल जी मांडोत स्वदेशी के उपासक, सरल व अनुशासन प्रिय तथा विद्वान स्वाध्यायी शिक्षक हैं।

बड़ी सादड़ी निवासी श्री अशोक कुमारजी मुणोत ने मात्र २० वर्ष की वय में स्वाध्याय के इस दुरूह पथ का वरण किया है, इस वर्ष सिलचर में आपकी पर्युषण सेवा बहुत प्रभावशाली रही। मेणार निवासी श्री दिनेश कुमार जी जैन मात्र २३ वर्ष की उम्र में १५ तक तपस्या कर चुके हैं और चाय तक नहीं पीते। श्री धनपत कुमार जी बम्ब, दुर्ग निवासी भी युवा-उत्साही

हैं । श्री शंकरलालजी डूंगरवाल चपलाना (म.प्र.) निवासी अच्छे त्यागी व तपस्वी हैं, साधुता ग्रहण करने के भाव हैं । हमारे १६ स्त्री-पुरुष स्वाध्यायी दीक्षा ग्रहण कर चुके हैं तथा अनेक अभी भी इस पथ के पथिक बनने को उत्सुक हैं जिनमें श्री अशोक कुमार जी पामेचा संजीत (म. प्र.), मदनलाल जी सरुपरिया भदेसर, गुलाबचन्द जी भणावत कानोड़, श्रीमती विजयादेवी जी सुराणा रायपुर के नाम उल्लेखनीय हैं ।

श्री अ. भा. सा. जैन संघ के पूर्व अध्यक्ष श्री गणपतराज जी बोहरा, श्री पी. सी. चौपड़ा और पूर्व मंत्री श्री भंवरलाल जी कोठारी ने पर्युषण सेवा प्रदान करके संघ और समाज के समक्ष श्रेष्ठ आदर्श स्थापित किया है। श्री बोहरा जी का उदार अर्थ सहयोग और उनकी दृढ़धर्मिता अनुकरणीय है, इस वर्ष वे जावद पर्वाराधना हेतु गए थे । इसी बीच उनके दोहिते का निधन हो गया, पर वे संवत्सरी से पूर्व हिले भी नहीं । वे धन्य हैं । हमें ऐसे सदस्यों पर गर्व है ।

संघ के संयोजक और इसके कुशल शिल्पी श्री गणेशलाल जी बया ने संघ सेवा के साथ ही राजस्थान गो सेवा संघ के माध्यम से गो सेवा में जबरदस्त सहयोग दिया । उज्जैन की श्रीमती सुगन देवी जी कोठारी ने भी वृद्ध होते हुए संघ और गो सेवा में अपना सहयोग दिया है । युवा बन्धु श्री दिनेश-महेश नाहटा ने छत्तीसगढ़ क्षेत्र में सामाजिक-धार्मिक जागृति लाने में अपूर्व सहयोग दिया है ।

श्री सज्जन सिंहजी मेहता कानोड़, श्री सुजानमल जी मारू बड़ी सादड़ी, श्री मोतीलाल जी चण्डालिया इस संघ के स्तम्भ हैं । इनकी सेवा, कार्य क्षमता और समर्पण इस संघ के इतिहास में गौरवपूर्वक सदा याद किया जायगा ।

संघ की रतलाम छत्तीसगढ़, सवाईमाधोपुर और ब्यावर में चार सक्रिय शाखाएं हैं, जिनमें छत्तीसगढ़ का कार्य सर्वाधिक सराहनीय है। संघ ने पूर्व में धर्मपाल जैन छात्रावास में धर्मपाल शिविर आयोजन और स्वाध्यायी प्रेषित कर सेवा दी है ।

संघ ने रजत-जयन्ती वर्ष के उपलक्ष में २५० नए स्वाध्यायी बनाने व १०० स्थानों पर पर्युषणों में धर्म-ध्यान हेतु स्वाध्यायी भेजने के प्रतियोगिता पूर्वक प्रयास किए । संघ ने अब तक राजस्थान, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल व आसाम में पर्युषण-पर्वाराधन हेतु निःशुल्क स्वाध्यायी भेजे हैं । आगे नेपाल से भी मांग प्राप्त होने की संभावना है ।

घोर तपस्वी श्री पंकज मुनि जी, धीरज मुनि जी व राजेश मुनि जी भी संघ के सदस्य रह चुके हैं ।

सन् १९७९ से संघ द्वारा पर्युषणों में निम्नानुसार सेवा दी जा रही है ।

| वर्ष | स्थान | स्वाध्यायी संख्या |
|---|---|---|
| १९७९ | १३ | ३० |
| १९८० | ३८ | ७७ |
| १९८१ | ३६ | ७७ |
| १९८२ | ४७ | ९० |
| १९८३ | ५५ | १०९ |
| १९८४ | ६४ | ११२ |
| १९८५ | ६५ | १३० |
| १९८६ | ६७ | १३९ |
| | ३८५ | ७६४ |

रजत - जयन्ती वर्ष के कार्यक्रम से प्रभावित होकर श्री माणकचन्द जी सांड, इन्दौर ने अपनी ओर से इन्दौर शिविर लगाने के

आग्रह किया जो स्वीकार किया जाकर ता. १४ से २६ जून तक बालकों का व तारीख २३ से २६ जून तक आचार्य श्री नानेश के सान्निध्य में स्वाध्यायियों का शिविर लगाया गया। इन शिविरों को अपूर्व सफलता मिली।

वर्ष १६८५ में कर्म सिद्धान्त की उपयोगिता के विषय में निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें १२ व्यक्तियों (युवक-युवतियां व एडवोकेट आदि ने भाग लिया। उनमें प्रथम को १५१-०० रु., द्वितीय को १०१रु. व पांच को सांत्वना पुरस्कार ५१-०० नकद व शेष को समता स्तवन संग्रह पुस्तकें भेंट स्वरूप "दान की।

संघ की यह भी योजना है कि जो स्वाध्यायी ५ वर्ष तक पर्युषणों में सेवा दे चुके उनको शाल ओढ़ा कर सम्मानित किया जाय। वर्ष १६८४ में रतलाम में दीक्षा के प्रसंग पर उन्नीस स्वाध्यायियों को सम्मानित किया गया।

स्वाध्यायियों के लिये अध्ययन केन्द्र स्थापित करने की योजना भी विचाराधीन है।

आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यह संघ निरन्तर आगे बढ़ता रहेगा।

—गणेशलाल बया

संयोजक – समता प्रचार संघ, उदयपुर

△

## मैत्री

"मेत्ति भूयेसु कप्पए।"—"प्राणियों से मैत्री करो।" संसार में अनेक विचारों के व्यक्ति हैं। सबके विश्वास भिन्न-भिन्न होते हैं। रहन-सहन के प्रकार भी एक तरह के नहीं होते। भाषा, व्यवहार, सम्प्रदाय आदि भी भिन्न-भिन्न होते हैं। जब व्यक्ति अपने विचारों को प्रधानता देकर अन्य के विचारों का प्रतिरोध करता है, तब हृदयों में दुराव का भाव उत्पन्न होता है। आत्मा का सहज स्वभाव मैत्री तब खंड़ित हो जाती है। प्रत्येक को चाहिए कि स्वयं के विश्वास, रहन-सहन के प्रकार, भाषा, व्यवहार तथा सम्प्रदाय आदि को ही अन्तिम मानकर आग्रह शील न बने। उस समय ही मैत्री फलित हो सकती है।

व्यक्ति दूसरों से अपने प्रति अच्छा व्यवहार चाहता है किन्तु दूसरों के प्रति अच्छा व्यवहार करने में कृपणता दिखलाता है वह यह भूल जाता है—"आयतुले पयासु"—सबको अपने तुल्य समझो। अपने तरह की अनुभूति जब दूसरों के साथ होती है तब दुराव घटता है और समीपता बढ़ती है। दो हृदयों की दूरी समाप्त होकर जब निकटता में अभिवृद्धि होती है तभी मैत्री साकार होती है। जो क्षुद्र रेखायें विभाजक बनती हैं, उन्हें समाप्त किया जाता है। उस समय तब मम तेरे-मेरे की अनुभूति नहीं रहती। सब हम ही हैं। यह सारा संसार एक परिवार है और सभी व्यक्ति उसके छोटे-बड़े सदस्य हैं, यही चिन्तन क्रियान्वित होता है।

मैत्री में छोटी-छोटी इकाइयां नहीं होतीं। जो कुछ होता है, वह सर्व के लिए होता है। यदि छोटी-छोटी इकाइयां अवस्थित रहती हैं, तो मैत्री का नाम हो सकता। पर उसका फलितार्थ नहीं।

# श्रीमद् जवाहराचार्य स्मृति व्याख्यानमाला

☐ डॉ. नरेन्द्र भानावत, संयोजक

श्रीमद् जवाहराचार्य भारत की आध्यात्मिक क्रांति और सामाजिक संचेतना के संगम रूप महान् अनुशास्ता थे। आपका जन्म आज से ११२ वर्ष पूर्व वि. सं. १९३२ में कार्तिक शुक्ला चतुर्थी को थांदला मध्यप्रदेश में हुआ था। १६ वर्ष की अवस्था में आपने जैन भागवती दीक्षा अंगीकृत की और संवत् १९७७ में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। सं. २००० में आषाढ़ शुक्ला अष्टमी को भीनासर ( बीकानेर ) में आपका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य श्री का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक और प्रभावशाली था। आपकी दृष्टि बड़ी उदार तथा विचार विश्व मैत्री भाव व स्वातन्त्र्य चेतना से ओत-प्रोत थे। आपने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के सत्याग्रह, अहिंसक प्रतिरोध, खादी धारण, गोपालन, अछूतोद्धार, व्यसनमुक्ति जैसे रचनात्मक कार्यक्रमों में सहयोग पूर्ण भूमिका निभाने की जनमानस को प्रेरणा दी और दहेज तथा वाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, मृत्युभोज, सूद–खोरी जैसी कुप्रथाओं के खिलाफ लोकमानस को जागृत किया। लोकमान्य तिलक राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, पंडित नेहरू, सरदार पटेल जैसे राष्ट्रीय नेता आपको श्रद्धा व सम्मान की दृष्टि से देखते थे तथा आपसे विचार-विमर्श करने में प्रसन्नता अनुभव करते थे।

आप प्रखर वक्ता और असाधारण वाग्मी महापुरुष थे। जवाहर किरणावली नाम से ३५ भागों में प्रकाशित आपका प्रेरणादायी विशाल प्रवचन साहित्य विश्व की अमूल्य निधि है। वह आज शक्ति और संस्कार निर्माण का जीवन्त साहित्य है। इस साहित्य से प्रेरणा पाकर हजारों लोगों ने जीवन का उत्थान किया है।

ऐसे महान् ज्योतिर्धर आचार्य का जन्म शताब्दी महोत्सव राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित किया गया। इस महोत्सव के अन्तर्गत कई रचनात्मक एवं ऐतिहासिक कार्यक्रमों का शुभारम्भ किया गया। इन कार्यक्रमों में एक प्रमुख कार्यक्रम है—श्रीमद् जवाहराचार्य स्मृति व्याख्यान माला।' इस व्याख्यान माला का प्रमुख उद्देश्य भारतीय धर्म, दर्शन, इतिहास, संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में जैन दर्शन और जैन विद्या के विचार तत्त्व को जैन-जैनेतर बौद्धिक वर्ग तक पहुंचाना। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये जहां तक सम्भव हो, इस व्याख्यान माला का आयोजन इस ढंग से किया जाता है कि इसमें अधिकाधिक ऐसे लोग सम्मिलित हो सकें जो ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं और सार्वजनिक जीवन के सामाजिक, धार्मिक एवं नैतिक कार्य क्षेत्र से जुड़े हुए हों।

अब तक इस व्याख्यान माला के अन्तर्गत देश के विभिन्न स्थानों पर जो व्याख्यान आयोजित किये जा चुके हैं, उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

१. प्रथम व्याख्यान—श्रीमद् जवाहराचार्य जन्म शताब्दी वर्ष में संघ द्वारा उदयपुर विश्व-विद्यालय, उदयपुर में जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग स्थापित करने का निर्णय लिया गया। इस निर्णय को मूर्त रूप देने के लिये २७ फरवरी, १९७७ को उदयपुर विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डॉ. लाम्बा को श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ की ओर से एक विशेष समारोह में २ लाख रुपयों की राशि का ड्राफ्ट प्रदान किया गया। इसी अवसर पर क्रांत द्रष्टा पूज्य आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. की स्मृति व्याख्यान माला का शुभारम्भ हुआ। इसका प्रथम व्याख्यान 'आत्मधर्मी जवाहराचार्य की राष्ट्रधर्मी भूमिका' विषय पर राजस्थान विश्व विद्यालय, जयपुर के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक एवं 'जिनवाणी' के संपादक डॉ. नरेन्द्र भानावत ने दिया और इस समारोह की अध्यक्षता राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष प्रसिद्ध शिक्षाविद् श्री केशरीलालजी बोरदिया ने की।

२. द्वितीय व्याख्यान—इस व्याख्यान माला का द्वितीय व्याख्यान २१ जनवरी, १९७८ को जयपुर के रवीन्द्र मंच पर आयोजित किया गया। व्याख्यानदाता थे—उदयपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष डॉक्टर रामचन्द्र द्विवेदी। व्याख्यान का विषय था—'भारतीय दर्शन में मोक्ष का स्वरूप : जैन दर्शन के विशेष सन्दर्भ में' इस समारोह की अध्यक्षता राज. विश्व विद्यालय के कुलपति एवं राजस्थान उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधिपति श्री वेदपाल त्यागी ने की।

३. तृतीय व्याख्यान—इस शृंखला का तृतीय व्याख्यान २४ दिसम्बर, १९७८ को कलकत्ता में जैन विद्यालय के सभागार में आयोजित किया गया। व्याख्यानदाता थे—जबलपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी के प्रो. डॉ. महावीर सरण जैन। व्याख्यान का विषय था—'भारतीय धर्म-दर्शन में अहिंसा का स्वरूप : जैन दर्शन के सन्दर्भ में' इसकी अध्यक्षता कलकत्ता विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो. कल्याणमल लोढ़ा ने की।

४. चतुर्थ व्याख्यान—यह व्याख्यान १० सितम्बर, १९८१ को मद्रास में आयोजित किया गया। व्याख्यानदाता थे, भारत के ख्याति प्राप्त प्रतिनिधि कवि एवं 'गांधी मार्ग' के सम्पादक श्री भवानी प्रसाद मिश्र। व्याख्यान का विषय था—'समग्र आदमी' इस समारोह की अध्यक्षता मद्रास के पुलिस महानिरीक्षक श्री एस. श्रीपाल ने की।

५. पंचम व्याख्यान—इस व्याख्यान का आयोजन आचार्य श्री नानेश के अहमदाबाद चातुर्मास में संघ के अधिवेशन में १० अक्टूबर, १९८२ को किया गया। व्याख्यान दाता थे—प्रसिद्ध साहित्यकार एवं आकाशवाणी मद्रास के हिन्दी कार्यक्रम अधिकारी डॉ. इन्दरराज वैद। व्याख्यान का विषय था—'धर्म और हम' इस समारोह की अध्यक्षता गुजरात के प्रमुख विचारक श्री यशोधर भाई मेहता ने की। श्री अखिल भारतीय जैन विद्वत् परिषद् जयपुर द्वारा 'श्री चुन्नीलाल मेहता चेरिटेबल ट्रस्ट' बम्बई के अर्थ सौजन्य से परिषद् की ट्रैक्ट योजना के अन्तर्गत पुस्तक सं. ७ के रूप में 'धर्म और हम' नाम से यह व्याख्यान प्रकाशित किया गया है।

६. षष्ठम व्याख्यान इस व्याख्यान का आयोजन जैन विद्यालय के स्वर्ण जयन्ती महोत्सव पर कलकत्ता में दिनांक १४ जनवरी, १९८४ को किया गया। व्याख्यान दाता थे पूर्व सांसद एवं भागलपुर विश्वविद्यालय के गांधी दर्शन विभाग के अध्यक्ष डॉक्टर रामजी सिंह। व्याख्यान का विषय था—'जैन धर्म की प्रासंगिकता'। इस समारोह की अध्यक्षता मध्यप्रदेश के भूतपूर्व मंत्री एवं प्रबुद्ध

विचारक श्री सौभाग्यमल जैन, शुजालपुर ने की। मुख्य अतिथि थे, कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो. कल्याणमल लोढ़ा। इस अवसर पर संघ की ओर से श्री प्रदीप कुमार रामपुरिया स्मृति साहित्य पुरस्कार योजना का द्वितीय साहित्य पुरस्कार भी प्रदान किया गया।

७. **सप्तम व्याख्यान**—यह व्याख्यान १२ जनवरी, १९८६ को रतलाम में आयोजित किया गया। व्याख्यानदाता थे 'तीर्थंकर' के सम्पादक एवं प्रबुद्ध विचारक-लेखक डॉ. नेमीचन्द जैन, इन्दौर। व्याख्यान का विषय था—'जैन धर्म: २१ वीं सदी'। इस समारोह की अध्यक्षता अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के अध्यक्ष श्री चुन्नीलाल मेहता, बम्बई ने की। मुख्य अतिथि थे उज्जैन के सेशन एवं जिला सत्र न्यायाधीश श्री मुरारीलाल तिवारी।

८. **अष्टम व्याख्यान**—यह व्याख्यान आचार्य श्री नानेश के जलगांव चातुर्मास के समापन पर १५ नवम्बर, १९८६ को आयोजित किया गया। व्याख्यानदाता थे राजस्थान विश्वविद्यालय के कला संकाय के अधिष्ठाता डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद शर्मा। व्याख्यान का विषय था—'जीवन, साहित्य और संस्कृति'। इस समारोह की अध्यक्षता की अशोक नगर दिल्ली जैन संघ के अध्यक्ष एवं प्रमुख विचारक श्री रिखवचन्द जैन ने।

९. **नवम व्याख्यान**—इस व्याख्यान का आयोजन टाउन हाल नगर परिषद् उदयपुर में १० जनवरी, १९८७ को किया गया। व्याख्यानदाता थे पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान वाराणसी के निदेशक डॉ. सागरमल जैन। व्याख्यान का विषय था—'जैन धर्म के परिप्रेक्ष्य में धार्मिक सहिष्णुता और राष्ट्रीय एकता'। समारोह की अध्यक्षता सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर के कुलपति डॉ. के. एन. नाग ने की। मुख्य अतिथि थे राजस्थान के ऊर्जा एवं परिवहन मंत्री श्री हीरालाल देवपुरा। इस अवसर पर संघ की ओर से श्री प्रदीप कुमार रामपुरिया स्मृति साहित्य पुरस्कार योजना का तृतीय साहित्य पुरस्कार भी प्रदान किया गया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस व्याख्यान माला का फलक काफी व्यापक रहा है। व्याख्यान के विषय शाश्वत जीवन मूल्यों के साथ-साथ सामाजिक सन्दर्भों से भी जुड़े हुए हैं। व्याख्यानदाता अपने-अपने क्षेत्रों के अधिका[री] विद्वान् और प्रबुद्ध विचारक हैं। इस व्याख्या[न] माला से सामान्य रूप से मानवीय मूल्यों अ[ौर] विशेष रूप से जैन धर्म, दर्शन के विचार त[त्त्व] को सार्वजनिक रूप से प्रसारित करने में सहाय[ता] मिली है और सैद्धान्तिक स्तर पर चिन्तन, म[नन] और मुक्त वातावरण बना है।

उक्त सभी व्याख्यानों का संयोजन व्या[ख्यानमाला] ख्यानमाला के संयोजक डॉ. नरेन्द्र भानावत [ने] किया।

# . श्री प्रदीप कुमार रामपुरिया स्मृति साहित्य पुरस्कार

वीकानेर के कला-संस्कृति और शिक्षा रामपुरिया परिवार में जन्मे श्री और ती के वरद पुत्र श्रीमाणकचन्दजी रामपुरिया ता निवासी सुप्रसिद्ध साहित्यकार और हिंदी ने-माने विद्वान् हैं। आपके इकलौते होन- २२ वर्षीय युवा पुत्र श्री प्रदीप कुमारजी रिया का दांत की एक साधारण शल्य क्रिया वधि में देहावसान हो गया। अभी श्री कुमार के विवाह को दो वर्ष ही बीते थे। असमय काल कवलित हो जाने से राम- ा परिवार पर तो अनभ्र वज्रपात ही हो । अंगड़ाईयां लेते यौवन का वसन्तोत्सव ा ही अवसान को प्राप्त हो गया, छोड़ गया पीछे एक नीरव करुण क्रन्दन। प्रतिभावान, ार और परिवार तथा समाज की आशा— ांक्षाओं का सूर्य अरुणोदय काल में ही अस्तं- हो गया।

कलामर्मज्ञ, साहित्य को समर्पित पिता श्री कचन्दजी रामपुरिया ने पुत्र की स्मृति में रक्त में डुबो-डुबोकर, 'स्मृति रेखा' काव्य के द्वारा, अन्तर के अथाह स्नेह सागर को, न्तक वेदना को, समाज-जीवन हेतु समर्पित ा।

'स्मृति रेखा' लिखकर भी व्याकुल प्राण- ा न पा सके थे। इन्हीं दिनों कलकत्ता में अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ की कार्यसमिति आयोजित थी। श्री माणकचन्दजी ने इस में अपने प्राणप्रिय पुत्र की स्मृति में साहित्य पुरस्कार स्थापित करने का मानस अभिव्यक्त किया। श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ की आगामी अहमदाबाद बैठक में १८-१-८० को श्री रामपुरियाजी के संकल्प ने मूर्त्त रूप लिया। संघ योजनाओं के निपुण शिल्पी श्री सरदारमलजी कांकरिया के प्रोत्साहन और परामर्श से श्री राम- पुरियाजी ने अपने स्वर्गीय पुत्र की स्मृति में २१०००) की स्थायी निधि से प्रतिवर्ष जैन साहित्य के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ पर स्व. श्री प्रदीपकुमार रामपुरिया स्मृति पुरस्कार प्रदान करने की घोषणा की। संघ ने समता भवन, दांता जिला चित्तौड़- गढ़ में आयोजित अपनी कार्यसमिति बैठक में इस घोषणा को मूर्त्त रूप प्रदान करने की योजना बनाई और प्रतिवर्ष २१००) रु. का पुरस्कार देने का निश्चय किया।

अहमदाबाद में समता विभूति आचार्य श्री नानेश के सन् १९८२ के चातुर्मास में स्व. प्रदीप कुमार रामपुरिया स्मृति साहित्य पुरस्कार का प्रथम आयोजन स्वयं में ऐसा भव्य और गरिमा- मय था कि वह भारत के साहित्य जगत में एक चिरस्मरणीय स्वर्णिम अध्याय बन गया। जयपुर के शिक्षक श्री कन्हैयालालजी लोढ़ा को उनकी कृति 'विज्ञान और मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में जैन धर्म और दर्शन' पर प्रदान किया गया। रवीन्द्र नाट्य गृह के भव्य सभा कक्ष में गुजरात विश्व विद्यालय के उपकुलपति के कर-कमलों द्वारा श्री लोढ़ा को यह प्रशस्त सम्मान राशि भेंट की गई। समारोह की अध्यक्षता देश के

जाने-माने जैन विद्वान् एवं प्रोफेसर श्री दलसुख भाई मालवणिया ने की। इस अवसर पर देश के जाने-माने विद्वानों का वहां मेला-सा लगा था। सर्वश्री अम्बालाल नागर, रतुभाई देसाई, कुमारपाल जैसे विशिष्ट विद्वान और श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ के प्रमुख व सदस्य प्रभृति उपस्थित थे। राशि प्रदान से ठीक पूर्व विद्वज्जनों के संकेत को मान देते हुए तत्कालीन संघ अध्यक्ष श्री जुगराज जी सेठिया ने पुरस्कार राशि को द्विगुणित करते हुए २१००) के स्थान पर ४२००) रुपये का पुरस्कार भेंट किया। इस गरिमामय समारोह का सफल संयोजन श्री भूपराजजी जैन ने किया।

राशि वृद्धि—संघ कार्य समिति की पूना बैठक में डॉ. श्री नरेन्द्रजी भानावत ने मौलिक स्रष्टा श्री माणकचन्दजी रामपुरिया की साहित्य सेवाओं का उल्लेख करते हुए कहा कि उनकी रचनाओं पर डेजर्टेसन लिखा जा चुका है और पुरस्कार स्थापित करते समय उनकी आकांक्षा थी कि इसके माध्यम से साहित्यिक परिवेश का विस्तार किया जाय। अतः इस बार हम रचनात्मक साहित्य पर पुरस्कार दें। श्री भानावत का यह भी मत था कि पुरस्कृत रचना ६० प्रतिशत न्यूनतम अंक प्राप्त करें। सदन ने दोनों सुझावों को स्वीकार किया। इसी अवसर पर श्रीसरदारमलजी कांकरिया ने सदन की हर्षध्वनि के बीच श्री माणकचन्दजी रामपुरिया की यह घोषणा सदन में दुहराई कि भविष्य में पुरस्कार ५१००) रुपये का दिया जावेगा और इसके लिए २१००० की स्थायी जमा को बढ़ाकर ५१०००) रु. की राशि कर दिया गया है। सदन ने श्री रामपुरियाजी की उदारता के प्रति कृतज्ञता और साधुवाद ज्ञापित किया।

कलकत्ता में सन् १९८४ की १४ जनवरी को स्वयं श्री माणकचन्दजी रामपुरिया के सान्निध्य में कलकत्ता विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो. कल्याणमलजी लोढ़ा की अध्यक्षता में श्री जैन विद्यालय के सभागार में आयोजित भव्य समारोह में श्री मिश्रीलाल जी जैन गुना (म. प्र.) को उनकी काव्यकृति गोम्मटेश्वर तथा कहानी जल की खोज : अमृत की प्राप्ति पर द्वितीय स्व. प्रदीप कुमार रामपुरिया स्मृति पुरस्कार प्रदान किया गया। इस समारोह में कलकत्ता के विद्वज्जन, प्रतिष्ठित व्यक्ति और श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ के प्रमुख व सदस्य उपस्थित थे। पुनः कुशल संयोजन श्री भूपराजजी जैन ने किया।

**उदारता बढ़ती गई**—उदारमना साहित्य मर्मज्ञ श्री माणकचन्दजी रामपुरिया की उदारता बढ़ती ही गई और श्री प्रतापचन्दजी ढ़ढ़ा की कोटड़ी बीकानेर में आयोजित संघ के विशेष अधिवेशन में संघ मंत्री श्री पीरदानजी पारख ने सदन को फिर से हर्षित करने वाला यह शुभ समाचार सुनाया कि उदारमना, यशस्वी श्री रामपुरियाजी ने प्रदीप स्मृति पुरस्कार की राशि ५१०० से बढ़ाकर ७१०० कर दी है। अब ७१०० रुपये की पुरस्कार राशि दी जा सकेगी। श्री पारख ने इस स्वतःस्फूर्त उदारता के लिए श्री रामपुरिया जी का अभिनन्दन करते हुए यह भी आग्रह किया कि राशि बढ़ाकर ७५००० कर दी जावे तो ७५०० रुपये का पुरस्कार दिया जा सकेगा। क्षणार्ध में श्री रामपुरियाजी ने श्री पारख के सुझाव को स्वीकार करते हुए निधि ७५००० करने की स्वीकृति दे दी।

**उदयपुर में** तीसरा प्र. रा. स्मृति पुरस्कार समारोह आयोजित किया गया। संघ कार्यसमिति की बैठक के अवसर पर नगर परिषद के टाउन हॉल में श्री मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर के कुलपति श्री के.एन. नाग की अध्यक्षता

प्रमुख अतिथि राजस्थान के ऊर्जा मंत्री श्री
लालजी देवपुरा के सान्निध्य में प्राकृत विद्या
पर्यावरण गोष्ठी में एकत्र देशभर से आए
नों की उपस्थिति में तृतीय पुरस्कार श्री
सरल जबलपुर की कृति 'श्रावकाचार की
कथाएं' तथा श्री मिश्रीलालजी जैन एडवोकेट
को उनकी कृति प्रीतकर पर प्रदान किया
।

संघ रजत-जयन्ती वर्ष के उपलक्ष्य में इस वर्ष यह पुरस्कार १००००/- रुपये की राशि का दिया जावेगा। इस पुरस्कार की गुणवत्ता और गरिमा से संघगौरव सतत अभिवर्धित है। प्रसन्नता की बात है कि श्री माणकचन्दजी रामपुरिया ने साहित्य पुरस्कार की ध्रुव निधि को ७५०००) रु. से बढ़ाकर एक लाख रु. करने की स्वीकृति प्रदान कर दी है। हार्दिक साधुवाद।

## धार्मिक बनने की नहीं, ख्यापित करने की व्यग्रता

"सोही उज्जुयभूयस्स धम्मों सुद्धस्स चिट्ठई"—सरल तथा पवित्र में धर्म वास करता है। प्रायः मनुष्य शरीर व वस्त्रों की शुद्धि को अत्यधिक महत्त्व देता है, पर मानसिक मलिनता से भरा रहता है। उपासना करते समय वह मलिनता जब-तब बाधा उपस्थित करती रहती है। पारस्परिक व्यवहार में भी वह छद्म विश्वासघात तथा स्वैराचार के रूप में व्यक्त होती रहती है। इसलिए व्यक्ति स्वयं को धर्मात्मा बतलाने का उपक्रम करता है किन्तु यथार्थता में वह धर्मात्मा होता नहीं। धार्मिक स्वयं को किसी भी परिस्थिति में धार्मिक ख्यापित करने का प्रयत्न नहीं करता। उसका तो व्यवहार ही उसकी सूचना दे देता है। जब से धार्मिकों में धार्मिक बनने का नहीं, ख्यापित करने की व्यग्रता हो गई, तभी से उनका जीवन व्यवहार धर्म से कट गया।

मानसिक मलिनता जितनी अधिक बढ़ती है, परिणामों की वह सदोषता सम्मुखीन को भी अवश्य प्रभावित करती है। मैत्री में घुले रहने वाले दो हृदयों के बीच तब स्वतः दुराव तथा खींचाव आरम्भ हो जाता है। मधुर सम्बन्ध टूट जाते हैं और विरोध का आविर्भाव हो जाता है। धर्म को प्रधानता देकर चलने वाले दो सम्प्रदायों के बीच की दूरी कम होनी चाहिए थी, पर वह खाई प्रतिदिन बढ़ती हुई दृष्टिगत हो रही है। कारण स्पष्ट है सम्प्रदायवादियों ने धर्म की जितनी अवहेलना की है, अन्य किसी व्यक्ति ने नहीं की। दो विरोधी विचारधारा के राजनयिक, जो कूटनीति में ही प्रतिक्षण घुले रहते हैं। परस्पर एक स्थान पर मिलकर चर्चाएं कर सकते हैं पर साम्प्रदायिक नहीं। तात्पर्य है धर्म का मुखौटा लगाने वालों ने ही धर्म की सबसे बड़ी अवहेलना की है। ये एक दूसरे के निकट नहीं बैठ सकते। उन्होंने आत्मा की सरलता तथा पवित्रता को कोई महत्त्व नहीं दिया।

# जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग

## सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

△ डा० प्रेमसुमन जैन, विभागाध्यक्ष

**स्थापना :**

श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर एवं राजस्थान सरकार के सहयोग से ज्योतिर्धर श्रीमद् जवाहराचार्य शताब्दी वर्ष १९७७ में जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग की स्थापना सुखाड़िया विश्वविद्यालय में की गई थी। उदारमना श्रीगणपतराजजी बोहरा पीपलियाकलां और सुश्री शिक्षा सोसाइटी नोखा के अर्थ सहयोग से फरवरी, १९७८ में इस विभाग का शुभारम्भ हुआ। विभाग में डॉ. प्रेमसुमन जैन की सहआचार्य एवं अध्यक्ष के पद पर नियुक्ति हुई। विश्वविद्यालय प्रशासन, राज्य सरकार एवं समाज की विभिन्न संस्थाओं और व्यक्तियों का सहयोग इस विभाग को प्राप्त है। प्रारंभ के ५ वर्ष तक एक प्राकृत प्राध्यापक का व्यय संघ द्वारा वहन किया गया।

**उद्देश्य और प्रवृत्तियां :**

संस्थापक अनुदाता एवं विश्वविद्यालय के साथ हुए अनुबंध में विभाग के विभिन्न उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया है। उनमें प्राकृत एवं जैन विद्या के विभिन्न स्तरों पर शिक्षण, अध्ययन, सम्पादन, शोध, सगोष्ठो, व्याख्यान, प्रकाशन आदि कार्यों को आयोजित करने की प्रमुखता है। इसकी प्रमुख प्रवृत्तियां इस प्रकार है :

(क) शिक्षणः—जैन विद्या एवं प्राकृत के शिक्षण के क्षेत्र में बी. ए., एम. ए., एम. फिल., डिप्लोमा एवं सर्टिफिकेट स्तर के पाठ्यक्रमों को संचालित किया गया है। इन पाठ्यक्रमों में अब तक लगभग १०० विद्यार्थियों ने सफलता पूर्वक शिक्षण प्राप्त किया है। पाण्डुलिपि-सम्पादन का प्रशिक्षण भी छात्रों को प्रदान किया जाता है।

(ख) शोधकार्यः—जैनविद्या एवं प्राकृत में तीन शोध छात्रों ने विभागाध्यक्ष के निर्देशन में कार्य कर पी.-एच. डी. की उपाधि प्राप्त कर ली है। ये तीनों शोध-कार्य प्राकृत ग्रंथों एवं जैनधर्म पर हुए हैं। पी. एच. डी. के लिये चार शोध-छात्र विभागीय शोधकार्य में संलग्न हैं। एम० फिल० पाठ्यक्रमों में भी लघु शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किये गये हैं।

विभाग की शोध-योजनाओं को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, दिल्ली, एवं समाज की अन्य अनुदाता संस्थाओं का सहयोग भी उपलब्ध है।

(ग) **संगोष्ठो, सम्मेलनों में प्रतिनिधित्व :**

१—विभाग के स्टॉफ द्वारा अ. भा. प्राच्य विद्या सम्मेलन, यू. जी. सी., जैन-विद्या सेमिनार, आई. सी एच. आर. सेमिनार, अन्तर्राष्ट्रीय जैन सम्मेलन, अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध एवं राष्ट्रीय संस्कृति सम्मेलन दिल्ली, विश्व अहिंसा सम्मेलन दिल्ली, विश्व-धर्म सम्मेलन, अमेरिका आदि लगभग २५ सम्मेलनों में शोधपत्रों को प्रस्तुत कर प्रतिनिधित्व किया गया है।

२—विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के आर्थिक सहयोग से "राष्ट्रीय संस्कृति एवं पर्यावरण संरक्षण में जैन धर्म की भूमिका" विषय पर अ. भा.

संगोष्ठी का ८-११ जनवरी, १९८७ को विभाग द्वारा आयोजन किया गया है। इस अवसर पर "जैन विद्या-स्मारिका" भी प्रकाशित हुई है।

(घ) विस्तार व्याख्यानमाला :

१-विभाग में जैनविद्या के ख्यातिलब्ध विद्वानों के विस्तार-व्याख्यान आयोजित हुए हैं, जिनमें डा. पी. एस. जैनी (अमेरिका), डा. सी. बी. त्रिपाठी (जर्मनी), डॉ. आर. के. चन्द्रा (अहमदाबाद), डा. जी. सी. जैन (वाराणसी), डा. जी. एन. शर्मा (जयपुर), डा. के. सी. जैन (उज्जैन) आदि सम्मिलित हैं। विभाग के विभिन्न आयोजनों में डा. मोहनसिंह मेहता, डा. के. एन. नाग, दादा भाई वोर्दिया, श्री गणपतराज जी बोहरा, डा. के. सी. सोगानी, डा. बी. के. लवाणिया, डा. आर. जी. शर्मा "दिनेश" आदि प्रतिष्ठित महानुभावों ने भी अपने विचार व्यक्त किये हैं।

२-विभाग के स्टाफ द्वारा दिल्ली विश्वविद्यालय, जैन विश्वभारती लाडनूं, मैसूर विश्वविद्यालय, कर्नाटक विश्वविद्यालय आदि स्थानों पर जैनविद्या एवं प्राकृत विषय पर विशेष व्याख्यान दिये गये हैं। विभागाध्यक्ष द्वारा अमेरिका के ग्यारह जैन केन्द्रों पर जैनविद्या-पर व्याख्यान देकर जैनदर्शन का प्रचार-प्रसार किया गया है।

(ङ) शोध-पत्र एवं पुस्तकों का प्रकाशन :

विभाग के स्टाफ द्वारा अब तक लगभग ५० शोध-पत्र प्रकाशित करवाये गये हैं तथा ५-६ पुस्तकें विभिन्न संस्थानों से प्रकाशित कराई गई हैं।

(च) सन्दर्भ-कक्ष एवं पुस्तकालय :

विभाग में जैनसाहित्य का एक समृद्ध पुस्तकालय स्थापित किया गया है, जिसमें विभिन्न संस्थाओं एवं व्यक्तियों के अनुदान से प्राप्त अब तक लगभग ५००० ग्रंथ उपलब्ध हैं। श्रीमती रमारानी जैन सन्दर्भ-कक्ष एवं श्री प्रेमराज गणपतराज बोहरा सन्दर्भ-कक्ष के अतिरिक्त भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रदत्त जैनकला के ५० चित्र भी विभाग में प्रदर्शित किये गये हैं।

(छ) छात्रवृत्ति एवं आर्थिक सहयोग :

विभिन्न संस्थाओं एवं व्यक्तियों के अनुदान से प्राप्त ब्याज द्वारा विश्वविद्यालय विभाग के विद्यार्थियों को यह सुविधा प्रदान करता है।

भावी योजनाएं :

यह विभाग शिक्षण एवं शोध-कार्य के अतिरिक्त जैनविद्या एवं प्राकृत की विभिन्न शोध-योजनाओं को साधन प्राप्त होने पर सम्पन्न करना चाहता है।

# आगम अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर : एक झलक

△ **फतहलाल हिंगर**, मन्त्री

आगम-अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान की स्थापना, श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ द्वारा सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर में जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग की स्थापना के बाद संस्कृति एवं साहित्य विकास की दृष्टि से उठाया गया एक दीर्घ दृष्टि संयुक्त वैचारिक एवं महत्त्वपूर्ण कदम है। यह संस्था राणाप्रतापनगर स्टेशन के सामने संप्रति श्री गणेश जैन छात्रावास, उदयपुर के परिसर में स्थित है।

समता विभूति परमपूज्य आचार्य श्री नानालालजी म. सा. ने अपने सन् १९८१ के उदयपुर वर्षावास में सम्यक् ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की अभिवृद्धि हेतु मार्मिक उद्बोधन दिया, जिसका जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा जिसके फलस्वरूप विश्वविद्यालय के विद्वानों तथा उदयपुर श्री संघ के प्रयत्नों से एक योजना तैयार की गई। इस कार्य में डा. कमलचन्द सौगानी अध्यक्ष दर्शन विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, श्री सरदारमलजी कांकरिया कलकत्ता, स्व. श्री हिम्मतसिंह जी सरूपरिया-अध्यक्ष उदयपुर श्री संघ एवं पूर्वाध्यक्ष एवं मंत्री श्री फतहलालजी हिंगर ने संस्था की स्थापना एवं योजना को मूर्त रूप देने में अपनी मुख्य भूमिका निभायी। श्रीमान् गणपतराजजी बोहरा एवं उदयपुर श्री संघ ने प्राथमिक रूप से एक-एक लाख रु. की राशि ध्रुव फण्ड हेतु प्रदान कर आर्थिक सहयोग दिया। (इस राशि पर अर्जित मात्र ब्याज का ही उपयोग संस्था की गतिविधियों के संचालन में खर्च किया जा रहा है) इसी प्रकार श्री सु. शिक्षा सोसायटी, बीकानेर द्वारा भी प्रतिवर्ष संस्था संचालन हेतु रुपया पन्द्रह हजार (वार्षिक) की राशि प्रदान की जा रही हैं। इसके अतिरिक्त ५० से भी ज्यादा महानुभावों ने संस्था की सदस्यता स्वीकार की है। कतिपय महानुभावों ने संस्था के पुस्तकालय के लिये भी अपना आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। संस्था का पुस्तकालय संप्रति प्रारंभिक स्तर पर है। तथापि इसमें सभी विषयों पर साहित्य उपलब्ध है। जिसमें पांडुलिपियां, प्राचीनग्रन्थ-जैन साहित्य, इतिहास, प्राकृत कोष एवं आगम साहित्य की प्रमुखता है। पुस्तकालय का उपयोग शोधकार्य में किया जा रहा है। इसे अनूठा रूप देने की योजना है। जैन दर्शन एवं धर्म की प्रमुख पत्र पत्रिकाएं संस्थान में मंगाई जा रही हैं जिनका उपयोग भी शोधकर्ता अपने कार्य हेतु करते हैं।

उद्देश्य–संस्था के मुख्य उद्देश्यों का संक्षिप्त विवरण यहां देना सामयिक होगा।

(१) आगम, अहिंसा-समता दर्शन एवं प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी आदि भाषाओं के साहित्य का अध्ययन, शिक्षण एवं अनुसंधान करना और इन विषयों के विद्वान तैयार करना।

(२) आगम विशेषज्ञ तैयार करना एवं जैन साहित्य को आधुनिक शैली में सम्पादित कर प्रकाशित करवाना ।

(३) संस्थान के पुस्तकालय को विभिन्न प्रकार के साहित्य एवं आधुनिक उपकरणों से समृद्ध करना ।

(४) प्राकृत परीक्षाओं में स्वयं पाठी रूप से बैठने वाले विद्यार्थियों को अध्ययन में सुविधाएं प्रदान करना, कराना ।

(५) जैन पुराण, दर्शन, न्याय, आचार और इतिहास पर मौलिक संस्करण तैयार करना ।

(६) दुर्लभ पुस्तकों एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की पाण्डुलिपियों की माइक्रो फिल्म बनवाकर संस्थान में उपलब्ध करवाना ।

(७) जैन विषयों से सम्बन्धित शोध प्रबन्धों को प्रकाशित करना, जैन विषयों पर शोध करने वाले छात्रों को सुविधाएं प्रदान करना एवं संस्थान की पत्रिका का प्रकाशन करना ।

(८) समय-समय पर जैन विद्या पर संगोष्ठियां, भाषण, समारोह आदि आयोजित करना ।

**संस्थान की कार्य प्रणाली :** एक संचालक मण्डल संस्थान के कार्य को दिशा प्रदान करता एवं संस्थान को विश्व विद्यालय अनुदान आयोग से मान्यता प्राप्त कराने हेतु प्रयत्नशील है । या-राजस्थान सोसायटीज रजि. एक्ट १९५८ के अन्तर्गत पंजीकृत है एवं संस्था को अनुदान रूप दी गई धनराशि पर आयकर अधिनियम की धारा ८० जी १२ ए के अन्तर्गत छूट प्राप्त है ।

**प्रगति :** संस्था का कार्य विधिवत् १ जनवरी, १९८३ से प्रारंभ किया गया । चार की अल्पावधि में निम्न कार्य संपादित किया गया है ।

(१) जैन धर्म, दर्शन, साहित्य, कला भाषा संस्कृति एवं इनके अन्य धर्मों के साथ नात्मक अध्ययन पर ५० लेक्चर तैयार किये गये जो पत्राचार के माध्यम से जन सामान्य को धर्म-दर्शन की संक्षिप्त जानकारी प्रदान करते हैं ।

(२) प. पू. आचार्य श्री नानालालजी महाराज साहब के निर्देशन में विद्वद्वर्य पं. नमुनिजी द्वारा संपादित अन्तकृद्दशांग सूत्र की पाण्डुलिपि प्राप्त कर इस ग्रन्थ को जावपूर्ति, प्पण एवं पारिभाषिक शब्दों द्वारा संयोजित किया जाकर पुस्तकाकार एवं पत्राकार रूप में दयपुर में ही छपवाकर श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ द्वारा प्रकाशित किया गया है ।

(३) इसी प्रकार भगवती सूत्र प्रथम भाग को (शतक एक-दो) पाठान्तर, जावपूर्ति पू. आचार्य प्रवर के सारगर्भित विवेचन-सहित संयोजित कर रतलाम में संघ द्वारा छपवाया गया है ।

(४) भगवती सूत्र द्वितीय भाग (शतक तीन, चार, पांच छः) एवं तृतीय भाग (शतक त, आठ, एवं नौ) मूल अनुवाद पाठान्तर जावपूर्ति एवं पू. आचार्य प्रवर के विवेचन सहित यार किये जा चुके हैं ।

उक्त सभी ग्रन्थों का सम्पादन कार्य विद्वद्वर्य पं. श्री ज्ञानमुनिजी म. सा. ने किया है एवं पाण्डुलिपियां श्री गणेश जैन ज्ञान भंडार रतलाम से प्राप्त हुई ।

(५) आचारांग सूत्र पर (प्रथम श्रुत स्कन्ध) मूल, पाठान्तर, जावपूर्ति युक्त कार्य पूर्ण किया जा चुका है ।

(६) उपासक दशांग एवं ज्ञाताधर्म कथा पर मूल भावार्थ, टिप्पण, जावपूर्ति ए पारिभाषिक शब्दों द्वारा संयोजन का कार्य प्रगति पर है ।

डा. सागरमलजी जैन, पी. वी. रिसर्च इन्स्टीट्यूट वाराणसी संस्था के मानद निदेश (१ जनवरी १९८७ से) डा. सुभाष कोठारी शोध अधिकारी एवं श्री सुरेश शिशोदिया, एम. (प्राकृत) शोध सहायक के पद पर कार्यरत हैं ।

**शैक्षिक योगदान :**

(१) संस्थान के विद्वान् समय-समय पर आयोजित विद्वत् संगोष्ठियों में क्षेत्री राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भाग लेते रहे हैं ।

(२) संस्थान द्वारा रजत जयन्ती वर्ष कार्यक्रम के अन्तर्गत जनवरी, १९८७ के ि अहिंसा–समता संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें जैन विद्या के विभिन्न प्रान्तों से प्रख्य ४० विद्वानों ने भाग लिया । इस अवसर पर अहिंसा-समता सम्बन्धित कई शोध लेख पढ़े गये । इन शीघ्र प्रकाशन कराने की योजना है ।

(३) संस्थान के विद्वानों के देश-विदेश की पत्र-पत्रिकाओं में अनेक शोधात्मक ले प्रकाशित हुए हैं । एवं होते रहते हैं ।

(४) अहिंसा-समता संगोष्ठी में हमारे कार्यकर्त्ता क्रमशः डा. सुभाष कोठारी ने म युगीन श्रावकाचार व राष्ट्रीय कर्त्तव्य एवं श्री सुरेश शिशोदिया ने हरिभद्र के ग्रन्थों में व दार्शनिक तत्व पर शोध लेख पढ़े, जिनकी प्रशंसा की गई ।

(५) प्राकृत व्याकरण के सूत्र अपने आप में क्लिष्ट होते हैं इसी कारण सूत्रों रटने की पद्धति बनी हुई है । इन सूत्रों को आधुनिक वैज्ञानिक शैली से संस्था के दोनों कार्यकर्त्ता को पढ़ाने का कार्य संचालक मंडल के सदस्य डा. कमलचन्द सोगानी बहुत ही रुचिपूर्वक कर रहे हैं ।

प्राकृत व्याकरण का इस शैली से अध्ययन करने का लाभ संस्था में चल रहे शोध कार्य संपादन एवं अनुवाद कार्य में अधिक मिलेगा ।

**निरीक्षण :**

संस्थान के कार्यकाल में कई विशिष्ट व्यक्तियों ने संस्थान का निरीक्षण कर कार्य के प्रति संतोष व्यक्त किया है जिनमें डा. दरबारीलाल कोठिया, प्रोफेसर विलास सांगवे कोल्हापुर, डा. दामोदर शास्त्री दिल्ली, डा. दयानन्द भार्गव जोधपुर, डा. गोकुलचन्द जैन वाराणसी, डा. के. आर. चन्द्रा अहमदाबाद, डा. एल. सी. जैन जबलपुर, डा. नरेन्द्र भानावत जयपुर, श्री

लाल मेहता बम्बई, श्री सरदारमल कांकरिया कलकत्ता, म. विनयसागर जयपुर, श्री भंवरलाल कोठारी बीकानेर, पीरदान पारख अहमदाबाद, पण्डित कन्हैयालाल दक, डा. देव कोठारी, डा. आर. पी. भटनागर उदयपुर मुख्य हैं ।

**संस्था का निजी भवन :**

विकास-रत संस्था के अपने निजी भवन की आवश्यकता को ध्यान में लेते हुए ११ जनवरी, १९८७ को श्रीमान् चन्दनमलजी सुखानी कलकत्ता के कर कमलों द्वारा शिलान्यास कराया जा कर योजना को मूर्त रूप प्रदान किया जा चुका है । श्री अ. भा. सा. जैन संघ के अध्यक्ष श्रीमान् चुन्नीलालजी मेहता, पू. अध्यक्ष श्री गणपतराजजी बोहरा, श्री कन्हैयालालजी तालेरा पूना, एवं श्री चन्दनमलजी सुखानी कलकत्ता ने भवन निर्माण योजना में आर्थिक सहयोग प्रदान करने की घोषणा की उसके लिये हार्दिक आभार ।

संस्था में कार्य प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है । इसको शीघ्र पूरा करने हेतु प्राकृत भाषा विद्वानों की नियुक्ति की आवश्यकता अनुभव की जा रही हैं । अर्थाभाव मुख्यरूप से इसमें बाधक है । संस्था की (आठ लाख रुपयों की राशि) प्रारम्भिक योजना में ध्रुव फण्ड की स्थापनार्थ किये गये प्रावधान को पूरा करने हेतु धन की नितान्त आवश्यकता है ।

**संस्थान की सहायता किस रूप में करें :**

(१) एक लाख रुपया या इससे अधिक अनुदान देकर परम संरक्षक सदस्य बनें । सदस्यों का नाम अनुदान तिथि क्रम से संस्थान के लेटर पेड पर दर्शाया जाता है ।

(२) ५१,०००) रुपया देकर संरक्षक सदस्य बनें ।

(३) २५,०००) रुपया देकर हितैषी सदस्य बनें ।

(४) ११,०००) रुपया देकर सहायक सदस्य बनें ।

(५) १,०००) रुपया देकर साधारण सदस्य बनें ।

(६) संघ, ट्रस्ट, बोर्ड, सोसायटी आदि जो संस्था एक साथ २०,०००) रुपये का अनुदान प्रदान करती है, वह संस्थान परिषद् की संस्था सदस्य होगी ।

(७) अपने बुजुर्गों की याद में भवन निर्माण के रूप में व अन्य आवश्यक यंत्रादि के रूप में अनुदान देकर आप इसकी सहायता कर सकते हैं ।

(८) अपने घर पर पड़ी प्राचीन पाण्डुलिपियां, आगम साहित्य व अन्य उपयोगी साहित्य को प्रदान कर सहायता कर सकते हैं । ज्ञान साधना का यह रथ प्रगति पथ पर निरन्तर अग्रसर है ।

# श्री गणेश जैन छात्रावास, उदयपुर (राज०)

● ललित मट्ठा

स्थापना एवं उद्देश्य :

शिक्षा जगत में छात्र के सर्वांगीण विकास की समग्र महत्त्वपूर्ण कड़ियों में छात्रावास भी एक अत्युत्तम, उपयोगी अनिवार्य कड़ी है । इसी सन्दर्भ में स्वर्गीय आचार्य प्रवर १००८ श्री गणेशीलालजी म. सा. ने अपने अमृतोपदेश में फरमाया कि "समाज को धार्मिक, आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से समुन्नत करने हेतु बालकों का समुचित चरित्र निर्माण ही अत्यन्त उपयोगी एवं आवश्यक है। समाज को इस ओर सजग एवं निरन्तर प्रयत्नशील रहना होगा कि इन भावी स्रष्टाओं का जीवन किस भांति सुसंस्कृत, अनुशासित, संस्कारित, सुचारित्रिक, धर्मानुरागी एवं विनय-गुण युक्त बन सके ।" इन्हीं उक्त उद्देश्यों को दृष्टिगत कर स्वर्गीय आचार्य प्रवर की पावन स्मृति में श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर द्वारा स्थापित एवं संचालित यह छात्रावास दि. १ अगस्त, १९६४ ई० से निरन्तर जैन समाज की सेवा में रत है ।

छात्रावासीय पावन-स्थान चयन :

यह इस स्थान 'उदयपुर' का अहोभाग्य है कि स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० की यह पावन जन्म भूमि ही नहीं अपितु दीक्षा स्थली एवं स्वर्गारोहण स्थली भी है । आचार्य श्री की जीवन-लीला के अन्तिम चार रुग्णावस्था-वर्ष यहां व्यतीत होने से स्थानकवासी जैन श्रावक-श्राविकाओं के लिये यह एक तीर्थ स्थल बन गया । अतः सर्वप्रथम १ अगस्त, १९६४ को श्री वर्द्धमान साधुमार्गी जैन श्रावक संघ, उदयपुर के तत्कालीन अध्यक्ष, स्व. श्री कुन्दनसिंह जी, खिमेसरा के कर कमलों द्वारा किराये के भवन में अपूर्व उत्साह, उमंग एवं हर्षोल्लास के वातावरण में छात्रावास का उद्घाटन समारोह सम्पन्न हुआ ।

शिलान्यास :

वर्तमान में चल रहे छात्रावास का शिलान्यास समारोह १ दिसम्बर १९६७ को कलकत्ता निवासी समाज-सेवी एवं शिक्षाप्रेमी पारसमल जी कांकरिया द्वारा अत्यन्त ही आनन्द एवं उमंग भरे वातावरण में सम्पन्न हुआ । इस मांगलिक वेला पर श्रीमान कांकरिया जी द्वारा भवन निर्माण हेतु रु० ११ १११/०० की राशि प्रदान की गई । इस भव्य समारोह की अध्यक्षता पीपलियाकलां निवासी प्रसिद्ध उद्योगपति, उदारमना श्री गणपतराज जी बोहरा ने की जो श्री अ० भा० सा० जैन संघ के तत्कालीन अध्यक्ष थे ।

नूतन भवन उद्घाटन :

इस छात्रावास के भव्य भवन का उद्घाटन समाज-सेवी, उदारमना एवं शिक्षा-प्रेमी श्री गणपत राज जी बोहरा, मद्रास के कर-कमलों द्वारा शुभ मिति ज्येष्ठ शुक्ला १३ शनिवार संवत् २०२९ तदनुसार दि. २४ जून १९७२ को पूर्ण आनन्द एवं हर्ष के साथ सम्पन्न हुआ । इस शुभावसर पर सुदूर प्रान्तों से पधारे समाज के गणमान्य एवं कर्मठ कार्यकर्त्ता, श्री अ. भा. सा. जैन संघ

की कार्यकारिणी के सदस्य महानुभाव एवं पदाधिकारी उपस्थित थे ।

इस छात्रावास भवन में २० एकल एवं १० त्रिछात्र व्यवस्था-कक्ष उपलब्ध हैं । साथ ही एक डाईनिंग हाल, सभा-कक्ष, कार्यालय, मेस-भण्डार एवं रसोई घर भी है । इस समय छात्रावास में ३७ छात्रों की ही आवासीय व्यवस्था है और ३७ अध्ययन रत हैं । कारण कि तीन त्रिछात्र-व्यवस्था कक्षों में आगम अहिंसा संस्थान का शोध कार्य चल रहा है--एक में गृह पति आवास है तथा एक एकल कक्ष में भण्डार है ।

**चर्यानुशासन समिति :**

छात्रावास के आवासीयछात्र अनुशासन बद्ध होकर अपने जीवन के नैतिक मूल्यों को बनाये रखकर उत्तम चारित्रिक गुणों से ओत-प्रोत हो सकें, इस हेतु विज्ञ महानुभावों की निम्नांकित चर्यानुशासन समिति है जो छात्रावास की समूची व्यवस्था एवं संयोजन आदि कार्य में समय समय पर छात्रावास का निरीक्षण कर निरन्तर मार्गदर्शन प्रदान करती रहती है —

श्री सरदारमलजी कांकरिया, कलकत्ता-संयोजक
श्री ललितकुमार मट्ठा (उदयपुर) - सह-संयोजक
श्री फतहलाल जी हींगड़ सदस्य "
श्री संग्रामसिंह जी हिरण " " "
श्री अमृतलाल जी सांखला "
श्री चैनसिंह जी खिमेसरा " "
श्री नरेन्द्रकुमारजी नलवाया " "

इस समिति की मासिक बैठक छात्रावास सुधार, विकास, व्यवस्था एवं मार्ग दर्शनार्थ होती रहती है ।

**गृहपति :**

सन् १९८५-८६ से श्री नाथूलाल चोरडिया एम. ए., बी. एड, सेवा-निवृत्त राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के प्रधानाध्यापक गृहपति पद पर रुचि, निष्ठा एवं सेवाभावना से पूर्ण सन्तोषप्रद सेवा-कार्य कर रहे हैं ।

**प्रवेश :**

छात्रावास में सैकण्डरी, हायरसैकण्डरी, त्रि-वर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम कला-वाणिज्य एवं विज्ञान, तीनों विषयों के छात्रों को योग्यता साक्षात्कार एवं वरीयता के आधार पर प्रवेश दिया जाता है ।

**शुल्क :**

छात्रावास में पूर्व में रु० ५६०)/-प्रवेश समय प्राप्त किये जाते हैं, जो निम्न शुल्क सारिणी के अनुसार है:-

| | | |
|---|---|---|
| (१) | आवेदन एवं नियमावली शुल्क | ५-०० |
| (२) | प्रवेश शुल्क | १०-०० |
| (३) | खेल एवं सांस्कृतिक शुल्क | ५०-०० |
| (४) | विकास-शुल्क | १०-०० |
| (५) | वाचनालय शुल्क | २५-०० |
| (६) | सुरक्षित राशि | १५०-०० |
| (७) | भोजन अग्रिम राशि | २५० ०० |
| (८) | विद्युत चार्ज (त्रैमासिक) | ६०-०० |
| | | ५६०-०० |

**धर्म शिक्षा :**

छात्रों के चारित्रिक विकास एवं सुसंस्कारित बनने हेतु यहां प्रातःकालीन दैनिक प्रार्थना, स्तवन, प्रवचन, सामयिक कथा, अमृतोपदेश, अमृत एवं अनमोल वचन आदि कार्य सम्पादित होते हैं । इसके अतिरिक्त प्रमुख अवसरों पर कई प्रकार की जैन धर्म सम्बन्धी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं का आयोजन भी किया जाता है जिसमें छात्र पूर्ण उत्साह एवं रुचि-पूर्वक भाग लेते हैं । पर्यूषणपर्व-पर एक अन्य महत्व-

पूर्ण महापुरुषों के जन्म दिवस आदि महान् पर्वों पर सन्त-दर्शन, सन्त-वचन एवं व्याख्यान आदि का लाभ भी छात्र प्राप्त करते हैं। छात्र यदा-कदा उपवास, आयम्बिल, प्रतिक्रमण, पौषध एवं दया आदि में भाग लेते रहते हैं।

**मेस-व्यवस्था :**

छात्रों से प्राप्त अग्रिम भोजन शुल्क के आधार पर भोजन की पूर्ण सात्विक व्यवस्था बिना लाभ हानि के सिद्धान्त पर की जाती है।

**क्रीड़ा-कार्यक्रम :**

छात्रों के स्वास्थ्य-लाभ, मनोरंजनार्थ, मानसिक थकान-निवारण तथा भ्रातृ-भावना को विकसित करने हेतु दैनिक खेल-व्यवस्था भी चलती है जिसमें वालीबाल, केरम, बेडमिन्टन एवं क्रिकेट खेल की व्यवस्था है।

इसके अतिरिक्त कबड्डी एवं खो-खो के खेल भी चलते हैं। छात्र उत्साहवर्द्धन हेतु इन खेलों की समय-समय पर प्रतियोगिताएं भी आयोजित की जाती हैं तथा वर्ष में दो बार शैक्षणिक तथा वन भ्रमण कार्यक्रम भी रखा जाता है।

**सांस्कृतिक एवं साहित्यिक प्रवृत्तियां :**

बालकों की भाषा-शुद्धि, अभिव्यक्ति, अभिनय-प्रवृत्ति एवं साहित्यिक रुचि की अभि--वृद्धि हेतु प्रार्थना में दैनिक अभिव्यक्ति के अतिरिक्त समय-समय पर वाद-विवाद, नाटक, कविता-पाठ, अनमोल-वचन, स्तवन, निबन्ध एवं संगीत आदि प्रवृत्तियों की प्रतियोगिताएं भी आयोजित की जाती हैं।

**वाचनालय पुस्तकालय :**

देश-विदेश की घटना आदि की जानकारी एवं सामान्यज्ञान वृद्धि हेतु छात्रावास में प्रमुख दैनिक समाचार-पत्रों, प्रतियोगिता-दर्पण, सर्वोत्तम डाइजेस्ट साप्ताहिक हिन्दुस्तान, आदि पत्रों की व्यवस्था के साथ ही छात्र के ज्ञान-प्राप्ति हेतु पुस्तकालय व्यवस्था भी है।

**वृक्षारोपण :**

छात्रावास की निजी भूमि पर सुनियोजित ढंग से विभिन्न प्रकार के १५० फलदार पौधे इस सत्र में लगाये गये हैं। पानी की समस्या के समाधान हेतु पूर्व निर्मित पक्के कुए की मरमम्त करा ३ हार्स पावर की मोटर लगाई गयी है। वर्तमान में कुए में पानी सूख जाने से मिट्टी निकलवा कर गहरा करवाया जा रहा है।

**भवन व्यवस्था :**

छात्रावास में १२ एकड़ भूमि है जिसमें ३-४ एकड़ भूमि पर छात्रावास भवन अवस्थित हैं, शेष भूमि वृक्षारोपण एवं खेल मैदान के उपयोग में आ रही है।

छात्रावास के पश्चिमी-दक्षिणी किनारे पर आगम अहिंसा--समता एवं प्राकृत संस्थान के कार्यालय-भवन का शिलान्यास अभी हाल ही में श्री चन्दनमल जी सुखानी, कलकत्ता के कर कमलों द्वारा दिनांक १० जनवरी, १९८७ को सानन्द सम्पन्न हुआ, जिसका निर्माण शीघ्र होने की सम्भावना है। इसी भांति छात्रावास के अधूरे गृहपति-भवन के निर्माणार्थ श्री अ० भा० सा० मा० जैन संघ बीकानेर से साठ हजार रुपये की स्वीकृति प्रदान की गयी है। इसके लिये स्थानीय स्थानकवासी जैन श्रावक संघ आभारी है। यह निर्माण कार्य भी सह-संयोजक श्री ललितकुमार जी की देख--रेख में शीघ्र पूर्ण होने की संभावना है।

**विद्युत व्यवस्था :**

पूर्व में सभी कमरों में पूर्ण विद्युत-व्यवस्था कराई गई थी, परन्तु केसिंग सड़ जाने एवं कनेक्शन छिन्न-भिन्न हो जाने से इस सत्र में समूची विद्युत व्यवस्था कन्ड्यूट पाईप में श्री अ० भा० सा० जैन संघ बीकानेर से प्राप्त अनुदान से सम्पूर्ण कराई गई।

**निवेदन :** यहां छात्रों का जीवन अनुशासित है। विश्वास है यह छात्रावास जैन जगत में अपनी कीर्ति अक्षुण्ण रखेगा।

# श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ का द्वितीय वार्षिक अधिवेशन दिनांक ६ व ७ अक्टूबर १९६४ में इन्दौर में सानन्द सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में प्रस्ताव संख्या ४ के अन्तर्गत यह निश्चय किया गया कि नवयुवक समाज में धर्म के प्रति जागृति पैदा करने के लिए धार्मिक परीक्षा बोर्ड की स्थापना की जावे। इसके क्रियान्वयन के लिए पांच सदस्यों की एक समिति बनाई गई। समिति के सहयोग से एक वर्ष में धार्मिक परीक्षा हेतु पाठ्यक्रम निर्धारित करके नियम उपनियम बनाने, कार्यालय स्थापन आदि के बारे में निर्णय करके कार्य प्रारम्भ करने की व्यवस्था करने का निश्चय किया गया। इस समिति के सदस्य निम्नलिखित थे—

(१) श्री नाथूलालजी सेठिया, रतलाम (२) श्री धींगड़मलजी, जोधपुर (३) श्री जुगराजजी सेठिया, बीकानेर (४) श्री रतनलालजी डोसी, सैलाना एवं (५) श्री मगनमलजी मेहता रतलाम।

इसके पश्चात् कार्यालय द्वारा कुछ कार्यवाही भी की गई। तत्पश्चात् श्री अ. भा. सा. जैन संघ का तृतीय वार्षिकोत्सव दि. २६ व २७ सितम्बर १९६५ में रायपुर में सम्पन्न हुआ, जिसमें प्रस्ताव संख्या ११ के अन्तर्गत निम्नलिखित सज्जनों की समिति पुनर्गठित की गई—

(१) श्री जुगराजजी सेठिया, बीकानेर (२) श्री रतनलालजी डोसी सैलाना (३) श्री भंवरलालजी कोठारी, बीकानेर (४) श्री जेठमलजी सेठिया, बीकानेर।

इसके बाद श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ का चतुर्थ अधिवेशन राजनांदगांव में दिनांक १५ व १६ अक्टूबर १९६६ में सम्पन्न हुआ— जिसमें फिर धार्मिक परीक्षा बोर्ड के लिए निम्नलिखित महानुभावों को चार वर्ष की अवधि के लिए चयन किया गया—

(१) पं. श्री पूर्णचन्दजी दक (२) पं. श्री रतनलालजी सिंघवी (३) श्री देवकुमारजी जैन (४) श्री रोशनलालजी चपलोत। इस बोर्ड के संयोजक पं. श्री पूर्णचन्दजी दक को बनाया गया और धार्मिक परीक्षाएं सन् १९६८ से लेना प्रारम्भ करने का निर्देश दिया गया।

बच्चों में धार्मिक संस्कारों को डालने के लिए यह आवश्यक हो गया कि उन के अभिभावकों को भी धार्मिक आचार-विचार का ज्ञान हो ताकि उनके बच्चे भी धार्मिक आचार-विचारों को ग्रहण करने की ओर अग्रसर हों। इसके लिए धार्मिक शिक्षण लेने व देने का प्रयास किया जावे। इस प्रकार धार्मिक परीक्षा बोर्ड ने नियम व उपनियम आदि बनाकर तैयार किए किन्तु परीक्षा १९६९ तक चालू नहीं हो सकी।

सन् १९७० में दिनांक ११ व १२ नवम्बर को श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ का अष्टम वार्षिकोत्सव बड़ीसादड़ी में सम्पन्न हुआ जिसमें फिर से संघ द्वारा संचालित परीक्षा बोर्ड समिति के लिए आगामी चार वर्षों के लिए निम्नलिखित सदस्यों का निर्वाचन किया गया—

(१) श्री जेठमलजी सेठिया (२) पंडित श्री श्यामलालजी ओझा (३) श्री सुन्दरलालजी तातेड़ (४) श्री रोशनलालजी चपलोत (५) श्री देव कुमारजी जैन।

उक्त सदस्यों के मंडल के संयोजक श्री सुन्दरलालजी तातेड़ बीकानेर बनाये गये।

१५ जनवरी १९७० से जैन सिद्धांत परिचय से लेकर शास्त्री परीक्षा तक निर्धारित

पाठ्यक्रमानुसार परीक्षाएं ली जा रही हैं— जिनका विवरण तालिका द्वारा स्पष्ट है ।

सन् १९७० से ही समाज की आशा आकांक्षाओं के प्रतीक देश के भावी कर्णधारों को आध्यात्मिक सांस्कृतिक और साहित्यिक स्तर पर सुशिक्षित करने के पावन उद्देश्य से प्रेरित हमारा श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड सुचारु रीति से कार्य कर रहा है । बोर्ड वैरागी व वैरागिनों तथा साधु-साध्वियों हेतु भी शिक्षा और परीक्षा के उत्तम अवसर सुलभ कराता है । लगभग १२५ सन्त-सतियांजी ने भूषण से लेकर सर्वोच्च रत्नाकर (एम.ए. के समकक्ष) तक की परीक्षाएं अब तक उत्तीर्ण की हैं । उच्च परीक्षाओं में प्राकृत एवं संस्कृत का भी समावेश किया गया है जिससे जैन आगमों का अध्ययन-अध्यापन सरलता पूर्वक सम्भव हो सका है ।

सन् १९८६ का परीक्षा फल ७९.९१ प्रतिशत रहा है । इससे प्रतीत होता है कि धार्मिक परीक्षा का महत्त्व धीरे-धीरे बढ़ रहा है और समाज में धर्म के प्रति जागृति उत्पन्न हो रही है । आशा है दिनोदिन परीक्षार्थियों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि होगी और धर्म के प्रति श्रद्धा भाव अधिक से अधिक बढ़ेगा ।

—पूर्णमल रांका
पंजीयक, श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक
परीक्षा बोर्ड, बीकानेर

## जिन परीक्षार्थियों ने सन् १९७० से १९८६ तक परीक्षाएं उत्तीर्ण की हैं उनकी सूची इस प्रकार है

| वर्ष | परिचय | प्रवेशिका | भूषण | कोविद | विशारद | शास्त्री | रत्नाकर | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १९७० | ८०० | ३०० | ५० | ३० | १७ | × | × | ११९७ |
| १९७१ | ९०० | ३०० | १०० | २० | १० | ५ | × | १३३५ |
| १९७२ | ८०० | ३६६ | १२० | ६५ | २२ | ८ | × | १३८१ |
| १९७३ | ६९९ | ३०७ | ६० | ३३ | ३१ | १२ | × | ११४२ |
| १९७४ | ६५४ | ३०१ | ४४ | २८ | ३२ | १६ | १७ | १०९२ |
| १९७५ | ९९० | ३५० | ६५ | १८ | ३५ | ३० | १२ | १५०० |
| १९७६ | १०७० | ३४९ | ७७ | २१ | ३९ | ३५ | १४ | १६०५ |
| १९७७ | १०९१ | ३७१ | ७७ | २५ | २५ | २४ | २१ | १६३४ |
| १९७८ | १०३८ | ३७० | ५८ | ३५ | ३५ | २१ | १८ | १५७५ |
| १९७९ | ११५० | २६१ | ३३ | १५ | ३६ | १९ | २५ | १५३९ |
| १९८० | ७८९ | ४२० | १२२ | १९ | २५ | ३४ | १८ | १४२७ |
| १९८१ | १०२० | ४४२ | २१ | २२ | ११ | १८ | ९ | १५४३ |
| १९८२ | १३७९ | ५०९ | ५१ | ४२ | ३१ | २९ | २६ | २०६७ |
| १९८३ | ७८७ | ४५० | २७ | १२ | ३० | ११ | १४ | १३३१ |
| १९८४ | ८८० | ४४७ | ६५ | २९ | ४७ | २५ | ३५ | १५२८ |
| १९८५ | १०४७ | ६७२ | ५३ | २८ | ४८ | ४२ | १७ | १९०७ |
| १९८६ | १२४६ | ४३७ | ६४ | १२ | ४८ | ४५ | १४ | १८७६ |
| | | | | | | | | २५५९९ |

# श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार समता भवन रतलाम

श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार परम श्रद्धेय आचार्य पूज्य श्री गणेशीलाल जी म.सा. की दिव्य स्मृति में श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ के अन्तर्गत दिनांक ६-६-७३ से संस्थापित है जिसमें कई हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ, धार्मिक परीक्षोपयोगी पुस्तकें, आगम ग्रन्थ, संस्कृत प्राकृत साहित्य एवं प्रवचन व कथानक साहित्य संग्रहीत किया गया है। गत १४ वर्ष से ज्ञानकोष को भरने और वितरित करने का कार्य अबाध गति से चल रहा है।

इस ज्ञान भण्डार की स्थापना के समय सर्वप्रथम श्रीमान् श्रीचन्दजी कोठारी ने संयोजक के रूप में अक्टूबर ७६ तक इसका कार्यभार काफी उत्साह पूर्वक संभाला और इसकी काफी प्रगति की। इसकी व्यवस्था में श्री मगनलालजी मेहता का भी सक्रिय योगदान रहा। साथ ही साथ श्री मेहताजी ने ३२ आगम (श्री घासीलाल जी म.सा. एवं श्री अमोलकऋषिजी म. सा. कृत) इस भण्डार को भेंट कर शुभारम्भ किया। अतः मेरी ओर से उन्हें हार्दिक धन्यवाद।

विगत साढ़े तीन वर्षों से इस भण्डार का कार्यभार मुझे सौंपा गया अतः मेरा प्रमुख प्रयास भी अधिक से अधिक धार्मिक-साहित्य, हस्त-लिखित शास्त्र ग्रन्थ एवं धार्मिक परीक्षोपयोगी पुस्तकें संग्रहीत करने का रहा। कई स्थानों से धार्मिक साहित्य एवं हस्तलिखित शास्त्रों की भेंट स्वरूप प्राप्ति निरन्तर प्रयास का ही परिणाम है।

प्रति वर्ष जहां सन्त-मुनिराजों का चातुर्मास होता है वहां आस-पास के अलावा दूर के क्षेत्रों में भी मुनिराजों, महासतियांजी म.सा., वैरागी भाई-बहिनों एवं परीक्षार्थियों के लिए धार्मिक पुस्तकें, शास्त्र तथा ग्रन्थ आदि भेजने की व्यवस्था सुचारु रूप से है। स्थानीय सदस्यों की संख्या भी पूर्व की अपेक्षा काफी बढ़ी है जो कि प्रतिदिन पुस्तकें लेते-देते रहते हैं।

ज्ञान भण्डार की स्थापना के आरम्भ के वर्षों में काफी अच्छी संख्या में शास्त्र, आगम-ग्रन्थ एवं धार्मिक साहित्य भेंट करने वाले महानुभावों के प्रति हम आभारी हैं। इन भेंटकर्त्ताओं में सर्व श्री सेठ हीरालालजी नांदेचा खाचरौद, श्री चम्पालालजी संचेती जावरा, श्री गणेश जैन मित्र मण्डल रतलाम, प्रभावक पू. श्री श्रीलालजी म.सा. वाचनालय जावरा, श्री नाथूलालजी सेठिया रतलाम, स्व. श्री सौभाग्यमलजी कस्तूरचन्दजी सिसोदिया रतलाम, श्री हितेच्छु श्रावक मण्डल रतलाम, स्वर्गीय सेठ श्री वर्धमानजी पीतलिया और श्रीमती सेठानी आनन्दकुंवरबाई पीतलिया की स्मृति में श्री मगनलालजी मेहता एवं इनकी पत्नी श्रीमती शान्ता बहिन मेहता रतलाम, पं. श्री लालचन्दजी मुणोत के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

विगत २ वर्षों में जिन महानुभावों ने धार्मिक साहित्य, ग्रन्थ एवं हस्तलिखित शास्त्र भेंट स्वरूप प्रदान किये वे इस प्रकार हैं—

श्री चिमनलालजी झूमरलालजी सिरोहिया उदयपुर, ५२ अनमोल नये मुद्रित ग्रन्थ ।

विगत दो वर्षों में विभिन्न महानुभावों ने धार्मिक साहित्य ग्रन्थ एवं टीकावाले दुर्लभशास्त्रों की फोटू कापियां करवाकर भेंट स्वरूप प्रदान कीं वे इस प्रकार हैं—

(१) श्री साधुमार्गी जैन संघ बम्बई से नन्दी सूत्र मलयागिरी वाली पत्राकार की २२ प्रतियां प्रत्येक की कीमत १२५)रु.(फोटो कापी)

(२) रतनलालजी भंवरलालजी सांखला जेठानावाला की तरफ से रत्नाकर अवतारिका भाग १ की १० प्रतियां, स्थानांग सूत्र टीकावाला की १० प्रतियां(फोटो कापी) प्रत्येक की कीमत २०० रुपये होती है ।

(३)श्री हर्षद भाई भायाणी बम्बई वाले की तरफ से भगवती सूत्र भाग १, २, ३ (फोटो कापी) प्रत्येक भाग की दस प्रतियां । प्रत्येक की कीमत लगभग २००) रुपये ।

(४) श्री गम्भीरमल जी लक्ष्मणदास जी श्रीश्रीमाल जलगांव से अभिधान राजेन्द्र कोष भाग १ से ७ एवं अन्य ९७ प्राचीन पुस्तकें भेंट स्वरूप प्राप्त हुईं । आज ऐसे ग्रन्थ मिलना अत्यन्त दुर्लभ है ।

इस ज्ञान भण्डार का विशेष लक्ष्य यह रहता है कि धार्मिक साहित्य एवं धार्मिक परीक्षोपयोगी साहित्य के लिये परीक्षार्थियों को पुस्तकें उपलब्ध करवाना । इस हेतु धार्मिक परीक्षाबोर्ड द्वारा परीक्षा में रखे गए अनुपलब्ध टीका वाले शास्त्रों की फोटोकापियां विभिन्न सेठ साहुकार एवं श्रीमंतों से भेंट स्वरूप प्राप्त करने का सफल प्रयत्न किया गया ।

उदयपुर से ही श्री फूलचन्दजी, श्री सोहन लालजी वाफना, श्री कालूरामजी सिंगटवाड़िया, पंडित श्री शोभालालजी मेहता मास्टर सा. द्वारा हस्तलिखित शास्त्र भेंट किये गये ।

श्री भंवरलालजी भटेवरा, नगरी द्वारा ३० शास्त्र, श्री अमरचन्दजी लोढ़ा ब्यावर द्वारा ३४० धार्मिक पुस्तकें । श्री अनूपबाई चोरड़िया धर्मपत्नी श्री सुखलालजी चोरड़िया फलौदी (राज.) द्वारा ९९८ पुस्तकें । श्री जैन स्थानक संघ जावद के ३००हस्तलिखित अमूल्य शास्त्र श्रीभंवरलालजी चोपड़ा जावद द्वारा भेंट किये गये ।

श्री श्वे. स्था. जैन नाथूलालजी गोदावत ट्रस्ट, छोटीसादड़ी से ७५७ की संख्या में संस्कृत प्राकृत साहित्य ज्ञानार्जन हेतु प्राप्त किया गया।

इस ज्ञान भण्डार के पास अभी लगभग ४० हजार धार्मिक ग्रन्थ, धार्मिक साहित्य एवं परीक्षोपयोगी साहित्य, संस्कृत-प्राकृत व प्रवचन साहित्य मौजूद है, जो गोदरेज की ५२ आलमारियों में सुरक्षित है और जिसका सूची पत्र तैयार किया जा चुका है । यह सूची पत्र शीघ्र ही सन्त-मुनिराजों की सेवा में भेज रहे हैं। ग्रन्थ संग्रह हेतु अनेकानेक दानी-मानी महानुभावों और विदुषी माताओं ने गोदरेज आलमारियों की प्रभूत भेंट प्रदान की है ।

श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार की प्रगति समाज के स्वाध्याय और शिक्षा क्षेत्र के विकास की कहानी है । हर्ष है कि समाज के सभी वर्गों ने इस कार्य में हमें सर्वतोभावेन सहयोग प्रदान किया है, जिससे सेवा के हमारे संकल्प को बल मिला है । हम संघ व समाज के प्रति आभारी हैं ।

पुनः जिन महानुभावों एवं संस्थाओं ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस ज्ञान भण्डार को अमूल्य शास्त्र, ग्रन्थ एवं धार्मिक साहित्य भेंट स्वरूप प्रदान किया, जिन्होंने आलमारियां भेंट कीं तथा पुस्तकें व ग्रन्थ क्रय करने हेतु नगद धनराशि भेंट कर ज्ञान भण्डार की प्रगति में तन मन धन से सहयोग देकर उदारता का परिचय दिया है उन सभी के लिए हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हुए भविष्य में भी सहयोग की अपेक्षा करता हूं ।

रखबचन्द कटारिया
संयोजक

समता-भवन, ८४, नौलाईपुरा, रतलाम (म.प्र.)

# श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ की साहित्य समिति का प्रतिवेदन

□ गुमानमल चोरड़िया

संयोजक

श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ का मुख्य उद्देश्य सम्यक् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय की साधना करते हुए आत्म-कल्याण एवं लोक-कल्याण का पथ प्रशस्त करना है। इस साधना को सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक स्तर पर परिपुष्ट करने के लिए संघ द्वारा नियमित रूप से साहित्य का निर्माण एवं प्रकाशन होता रहता है। यह कार्य साहित्य समिति के निर्देशन में होता है। वर्तमान में इस समिति के संयोजक श्री गुमानमल चोरड़िया, जयपुर हैं। समिति के अन्य सदस्य हैं:—श्री चुन्नीलाल मेहता, बम्बई, श्री गणपतराज बोहरा पीपलियाकलां, श्री सरदारमल कांकरिया कलकत्ता, श्री पी. सी. चौपड़ा रतलाम, श्री केशरीचन्द जी सेठिया, मद्रास, श्री उमरावमल ढड्ढा जयपुर, श्री भंवरलाल कोठारी बीकानेर, डॉ. नरेन्द्र भानावत जयपुर, श्री मोहनलाल मूथा जयपुर, श्री धनराज [illegible] जयपुर।

संघ की स्थापना से ही धार्मिक एवं [illegible] साहित्य प्रकाशित करने का संघ का [illegible] रहा है। प्रारम्भ में साहित्य प्रकाशन की गति काफी धीमी रही पर विगत १० वर्षों में साहित्य के क्षेत्र में यह प्रगति संतोषजनक रही है। संघ द्वारा अब तक १०० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं।

संघ द्वारा प्रकाशित साहित्य बहु-आयामी और विविध विधामूलक है। संघ की ओर से एक धार्मिक परीक्षा बोर्ड भी संचालित होता है, जिसमें सैकड़ों की संख्या में समाज के भाई-बहिन और साधु-साध्वी परीक्षा देते हैं। परीक्षा में निर्धारित पाठ्य पुस्तकों का लेखन एवं प्रकाशन संघ नियमित रूप से करता रहा है। उसमें विशेष रूप से आगमिक, तात्विक एवं जैन सिद्धान्त से सम्बन्धित पुस्तकें प्रकाशित होती हैं।

संघ द्वारा प्रकाशित साहित्य में प्रवचन साहित्य का विशेष महत्त्व है। प्रवचन सामान्य कथन से विशिष्ट होते हैं। उनमें अनुभूति की गहराई और साधना का बल होता है। आचार्य श्री नानेश के प्रवचनों की पांडुलिपियां श्री गणेश ज्ञान भण्डार, रतलाम से प्राप्त कर संघ ने उन्हें प्रकाशित किया है। जिसमें उल्लेखनीय प्रवचन-संग्रह हैं—"पावस-प्रवचन भाग १ से ५, "ताप और तप", 'प्रवचन पीयूष, ऐसे जीयें' आदि। कथा साहित्य अत्यन्त लोकप्रिय विधा है। संघ ने तत्व दर्शन को सरल, सुबोध शैली में जन-साधारण तक पहुंचाने की दृष्टि से आचार्य श्री नानेश एवं श्री विद्वद् मुनिवरों का [illegible] साहित्य प्रकाशित किया है, जिनमें प्रमुख [illegible] कृतियां हैं—"[illegible]", '[illegible]', 'अखण्ड सौभाग्य' '[illegible] की [illegible]', '[illegible]',

'दो सौ रुपयों का चमत्कार' आदि ।

आचार्य श्री नानेश ने अपने आचार्य-काल में समता दर्शन एवं समीक्षण ध्यान के रूप में समाज और राष्ट्र को बहुत बड़ी देन दी है । इस विषय पर आचार्य श्री अपने प्रवचनों में बड़ा वैज्ञानिक/मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करते रहे हैं । उस के आधार पर संघ द्वारा समता दर्शन और समीक्षण ध्यान सम्बन्धी जो पुस्तकें प्रकाशित की गयी हैं, उनमें मुख्य हैं—'समता दर्शन और व्यवहार', 'समीक्षण-धारा', 'समीक्षण ध्यान एक मनोविज्ञान', 'समीक्षण ध्यानः विधि विज्ञान', 'कषाय-समीक्षण' आदि ।

महापुरुषों की जीवनियां जीवन-उत्थान में बड़ी प्रेरक और मार्गदर्शक होती हैं । इस दृष्टि से संघ की ओर से आचार्य श्री जवाहर लालजी म. सा., आचार्य श्री गणेशीलाल जी म. सा. एवं आचार्य श्री नानेश की जीवनिग्रां प्रकाशित की गयी हैं । इसके साथ ही 'अष्टाचार्य गौरवगंगा' का प्रकाशन संघ का एक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है । जिसमें ८ आचार्यों की जीवन-साधना एवं साधुमार्गी-परम्परा का ऐतिहासिक विवरण दिया गया है ।

"श्रमणोपासक" संघ का मुख पत्र है । इसकी संपादकीय टिप्पणियां विचारोत्प्रेरक रही हैं । चयनित संपादकीय टिप्पणियों का प्रकाशन "जीवन की पगडंडियां" नाम से किया गया है ।

आचार्य श्री के साथ ज्ञान-चर्चा के कई प्रश्नोत्तर होते हैं चयनित प्रश्नोत्तर का एक संग्रह 'उभरते प्रश्न : समाधान के आयाम' से प्रकाशित किया गया हैं ।

काव्य के क्षेत्र में भी संघ ने जहां एक ओर संस्कृत में 'श्री जवाहराचार्य यशोविजयं महाकाव्य' प्रकाशित किया है, वहां हिन्दी में "आदर्श भ्राता" जैसा खण्ड काव्य एवं 'धर्म का धन्ड़िदा', 'समता संगीत सरिता', 'मुक्त दीप' जैसे काव्य संग्रह भी प्रकाशित किये है ।

क्रान्त द्रष्टा श्रीमद् जवाहराचार्य जन्म शताब्दी के अवसर पर संघ ने श्रीमद् जवाहराचार्य सुगम पुस्तक माला' के अन्तर्गत श्रीमद् जवाहराचार्य के समाज, राष्ट्र, धर्म और शिक्षा सम्बन्धी विचारों पर आधारित पुस्तकें प्रकाशित की हैं । इसी प्रकार भगवान् महावीर के २५ सौ वें परिनिर्वाण महोत्सव के अवसर पर हिन्दी में 'भगवान् महावीरः आधुनिक सन्दर्भ' में जैसा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किया और अंग्रेजी में द लार्ड महावीर एण्ड हिज टाइम्स' तथा 'भगवान् महावीर एन्ड हिज रिलीवेन्स इन मोडर्न टाइम्स' नामक दो ग्रन्थ प्रकाशित किये ।

आचार्य श्री नानेश के आचार्य पद के २१ वें वर्ष में समता, साधना सम्बन्धी विशेष ग्रन्थ प्रकाशित किये गये हैं ।

जो महानुभाव १००१/- रु. प्रदान कर संघ की साहित्य सदस्यता स्वीकार कर लेते हैं, उन्हें संघ द्वारा प्रकाशित साहित्य निःशुल्क प्रदान किया जाता है । रियायती मूल्य पर साहित्य पाठकों तक पहुंच सके, इस दृष्टि से साहित्य प्रकाशन में उदारमना सज्जनों से सहयोग लिया जाता है । संघ द्वारा प्रकाशित साहित्य में जिन सज्जनों ने उदार हृदय से अर्थ सहयोग प्रदान किया है, उनमें मुख्य हैं—श्रीमद् जवाहराचार्य स्मृति साहित्य निधि के संस्थापक स्व. श्री जुगराजजी धोका मद्रास, श्री दीपचन्द जी भूरा देशनोक, श्री प्यारेलाल जी भंडारी अली बाग, श्री लूणकरण जी व हीरावत बन्धु देशनोक, श्री पूर्णमलजी कांकरिया कलकत्ता, श्री चुन्नीलाल

जी मेहता बम्बई, श्री कमल सिंहजी शान्तिलाल जी कोठारी कलकत्ता, श्री भंवरलाल जी सेठिया कलकत्ता, श्री साधुमार्गी जैनसंघ बम्बई आदि।

संघ द्वारा प्रकाशित साहित्य के लेखन, सम्पादन एवं प्रकाशन में जिन सज्जनों का एवं साहित्य समिति के सदस्यों का सहयोग मिला है, उन सबके प्रति हम संघ की ओर से आभार प्रकट करते हैं।

## संघ द्वारा अब तक प्रकाशित साहित्य की सूची वर्षानुक्रम से

| पुस्तक का नाम | प्रकाशन वर्ष |
|---|---|
| १. जैन संस्कृति और राजमार्ग | १९६४ |
| २. द्वात्रिंशिका | १९६५ |
| ३. आत्मदर्शन | १९६५ |
| ४. गुण पूजा | १९६५ |
| ५. प्राकृत पाठमाला | १९६५ |
| ६. पांच समिति तीन गुप्ति | १९६६ |
| ७. चंपक माला चरित्र | १९६७ |
| ८. दशवैकालिक सूत्र (द्वितीय संस्करण) | १९६७ |
| ९. लघु दण्डक | १९७० |
| १०. चिन्तन, मनन, अनुशीलन भाग-१ | १९७० |
| ११. चिन्तन, मनन, अनुशीलन भाग-२ | १९७० |
| १२. श्री गणेशाचार्य जीवनी | १९७० |
| १३. पावस प्रवचन भाग-१ | १९७० |
| १४. पावस प्रवचन भाग-२ | १९७१ |
| १५. रत्नाकर पच्चीसी | १९७१ |
| १६. जवाहर ज्योति | १९७१ |
| १७. भगवान महावीरः आधुनिक संदर्भ में | १९७४ |
| १८. पावस प्रवचन भाग-३ | १९७२ |
| १९. समता जीवन प्रश्नोत्तर | १९७२ |
| २०. लार्ड महावीर एण्ड हिज टाइम्स | १९७४ |
| २१. भगवान महावीर एण्ड हिज रिलिवेन्स इन मोडर्न टाइम्स | १९७५ |
| २२. आचार्य श्री नानेश | १९७३ |
| २३. समता दर्शन और व्यवहार | १९७३ |
| २४. सामायिक सूत्र | १९७३ |
| २५. नाप और तप | १९७३ |

| | |
|---|---|
| २६. प्राकृत पाठमाला | १९७४ |
| २७. जैन सिद्धान्त परिचय | १९७४ |
| २८. प्रवेशिका प्रथम खण्ड | १९७४ |
| २९. प्रवेशिका द्वितीय खण्ड भाग–१ | १९७४ |
| ३०. जैन तत्व निर्णय | १९७४ |
| ३१. प्रार्थना | १९७४ |
| ३२. पावस प्रवचन भाग–४ | १९७५ |
| ३३. पावस प्रवचन भाग–५ | १९७५ |
| ३४. समता दर्शन एक दिग्दर्शन (द्वितीय) | १९७५ |
| ३५. जैन तत्व निर्णय भाग-२ | १९७५ |
| ३६. प्रतिक्रमण सूत्र | १९७५ |
| ३७. संकल्प, समता, स्वास्थ्य | १९७५ |
| ३८. सौन्दर्य दर्शन | १९७५ |
| ३९. क्रांत द्रष्टा श्रीमद् जवाहराचार्य | १९७६ |
| ४०. श्रीमद् जवाहराचार्य–समाज | १९७६ |
| ४१. समराइच्चकहा (प्रथम एवं द्वितीय भव] | १९७६ |
| ४२. धर्मपाल बोधमाला | १९७६ |
| ४३. श्रीमद् जवाहराचार्य–सूक्तियां | १९७ |
| ४४. श्रीमद् जवाहराचार्य-शिक्षा | १९७ |
| ४५. श्रीमद् जवाहराचार्य: जीवन और व्यक्तित्व | १९७ |
| ४६. श्रीमद् जवाहराचार्य–राष्ट्र धर्म | १९७ |
| ४७. समता | १९८ |
| ४८. प्रवचन पीयूष | १९८ |
| ४९. संत दर्शन | १९८ |
| ५०. अनुकम्पा विचार भाग–१ | १९८ |
| ५१. श्री जवाहराचार्य जीवनी | १९८ |
| ५२. लगते प्यारे दिव्य सितारे | १९८ |
| ५३. कर्म प्रकृति | १९८ |
| ५४. अन्तर्पथ के यात्री: आचार्य श्री नानेश | १९ |
| ५५. आचार्य श्री नानेश विचार दर्शन | १९ |
| ५६. जैन सिद्धांत प्रवेशिका द्वितीय खण्ड भाग–२ | १९ |
| ५७. हरिश्चन्द्र तारा | १९ |
| ५८. समता स्वाध्याय स्तवन संग्रह | १९ |
| ५९. गुरु वन्दना | |

एक प्रेरक संस्मरण—

# प द या त्रा

□ सूरजमल बच्छावत

कुछ वर्ष पहिले की बात है कि श्री गणपत राज जी बोहरा, श्री गुमानमल जी चोरड़िया, श्री भंवरलाल जी कोठारी कलकत्ता आये हुए थे। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने मुझसे कहा कि चैत्र महीने में पदयात्रा होने जा रही है–धर्मपाल क्षेत्र में। यदि आप श्री विजयसिंह जी नाहर भू. पू. उपमुख्य मन्त्री पश्चिम बंगाल को पदयात्रा में ला सकें तो बहुत अच्छा रहे। मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि मैं पूरी चेष्टा करके उनको पद यात्रा में लाऊंगा। मैं श्री विजयसिंहजी नाहर के पास गया। उन्हें धर्मपाल प्रवृत्ति की सारी बात समझाई और उन्हें चलने के लिए राजी कर लिया लेकिन २ दिन बाद ही उनका फोन आया कि मैं दिल्ली जा रहा हूं, श्रीमती इन्दिरा गांधी ने मुझे बुलवाया है। दिल्ली से मैं आपको चित्तौड़गढ़ में मिल जाऊंगा।

अतः मैं तथा भंवरलाल जी वैद कलकत्ता से रवाना होकर चित्तौड़गढ़ गये। वहां श्री नाहरजी हमारी प्रतीक्षा कर ही रहे थे। वहां से हम लोग भीलवाड़ा गये। रातभर भीलवाड़ा रहे और स्थानीय लोगों ने विचारगोष्ठी रखी। दूसरे दिन सुबह हम लोग जावरा गये, वहीं से पदयात्रा शुरु होने वाली थी। बड़ी धूमधाम थी, लोगों में बड़ा उत्साह था। श्री विजय बाबू ने मेरे से कहा कि प्रचार तो बहुत जोर का है— लेकिन वास्तविक स्थिति क्या है यह जानने के लिये अपन पदयात्रा के साथ न जाकर उसी गांव में पहिले ही चलते हैं ताकि गांव वालों से सारी बात अलग से कर सकें। उनके मुताबिक मैं तथा श्री विजय बाबू गाड़ी में उस गांव की ओर चल दिये। जैसे ही हम उस गांव में पहुंचे गांव वालों ने हमारा जयजिनेन्द्र कह कर स्वागत किया। बच्चे, महिलाएं और सब लोगों ने हमें घेर लिया और अपने घर पर चलने के लिए आग्रह करने लगे। उन लोगों के घर मिट्टी के थे और गोबर से पोते हुए साफ और स्वच्छ थे। हम लोग एक घर के बाहर चौकी पर बैठे और प्रश्नोत्तर होने लगे। विजय बाबू ने उन लोगों से प्रश्न करने शुरू किये कि आपको धर्मपाल प्रवृत्ति में आने के लिये कोई प्रलोभन मिला या स्वेच्छा से आप इस प्रवृति में आये। एक वृद्ध व्यक्ति ने बड़े उत्साह के साथ सारी बात समझाई। वे कहने लगे कि हम लोग बलाई जाति के कसाई हैं और हमसे कोई सीधे मुंह बात भी नहीं करता था। पूज्य श्री नानालाल जी म.सा का चौमासा था। कुछ लोग कहने लगे कि अपने को उनके प्रवचन सुनना चाहिए लेकिन हमारी हिम्मत वहां तक जाने की हुई नहीं। संयोगवश कुछ कार्यकर्ताओं ने हमें प्रवचन में जाने के लिए प्रोत्साहन दिया और धीरे-धीरे उनके प्रवचन सुनते हमारे अन्दर धर्म के प्रति रुचि जागृत होने लगी और हमने [illegible]

की। कहा कि हमारी जाति नीच है, शराबी हैं। हम कसाई का धन्धा करते हैं और सबके सिर पर कर्ज का बोझ है। यदि हम कसाई का धन्धा छोड़ दें तो हमारी रोजी कैसे चलेगी। और सबसे ज्यादा तकलीफ हमें यह है कि हमारे यहां कोई मौत हो जाती है तो हमें मौसर (जीमन) करना पड़ता है और घर बार खेती की जमीन बेचनी पड़ जाती है।

गुरुदेव ने हमें समझाया कि संसार में कोई आदमी जो मेहनत करता है, वह भूखा नहीं मर सकता है। आपके सारे गांव के लोग यहां इकट्ठे हैं और आप मिलकर प्रतिज्ञा करलें कि हम कसाई का धन्धा नहीं करेंगे और मरने के बाद कोई भी मौसर(जीमन) नहीं करेंगे और खेती करेंगे तो आप बहुत खुशहाल हो सकते हैं। हमने उनकी बात मानली और पूरे गांव ने एक-जुट होकर प्रतिज्ञा की कि आज से हम कसाई का धन्धा नहीं करेंगे तथा कोई शराब नहीं पीयेगा और मोसर वगैरे नहीं करेंगे। साहब क्या बतावें आपको थोड़े ही समय में हमारे घरों में अमन-चैन हो गया और जिसके पास २ बीघा जमीन थी उसके पास अब ६ बीघा जमीन है। घर में सुख-शांति है, बच्चे रोज सामायिक प्रति-क्रमण तथा उपवास करते हैं। और गांव वालों ने कई छोटे-छोटे बच्चों को हमारे सामने खड़ा कर दिया। मैं आपसे क्या कहूं इतने शुद्ध उच्चारण से सामायिक की पाटियां उन बच्चों ने हमें सुनाई कि हम दंग रह गये। उसके बाद वे कहने लगे कि साहब अब हमारे घर बड़े-२ लोग आते हैं और हमारे यहां का साधारण भोजन भी करते हैं। खासकर उन्होंने कहा माताजी (श्री गणपत राजजी बोहरा की धर्मपत्नी श्रीमती यशोदादेवी) बराबर हमारे घर आती रहती हैं। पूरा गांव धार्मिक हो गया है और दूसरे गांव वाले जो हमारे रिश्तेदार हैं वे भी हमारी लाइन आ गये हैं उन सबकी बात सुनकर श्री विजयसिंहजी नाहर बहुत ही आनन्दित हुए और कहने लगे कि इतना बड़ा काम बहुत वर्षों बाद हुआ है।

अब गांव वाले श्री विजयबाबू का स्वागत करने के लिए बहुत उत्सुक थे लेकिन विजयबाबू ने कहा कि ऐसा नहीं होगा। स्वागत तो मैं आप सब लोगों का करूंगा।

पदयात्रा करते हुए लोग भी सैकड़ों की संख्या में वहां पहुंच गये थे। जुलूस ने बहुत बड़ी सभा का रूप ले लिया था। उस गांव के समस्त बच्चों, महिलाओं तथा पुरुषों का श्री विजय बाबू ने तिलक लगाकर स्वागत किया। इस काम में सेवा करने वाले समाजसेवी मानव मुनि का बड़ा हाथ रहा। वहां श्री चौपड़ाजी, श्री बोहराजी, श्री चोरड़ियाजी, टी. बी. स्पेश-लिस्ट डॉ. बोरदिया भी उपस्थित थे।

इसके बाद गांव वालों की तरफ से सादगी पूर्ण भोजन की व्यवस्था थी। हम सब ने गांव वालों के साथ बैठकर एक ही पंक्ति में भोजन किया। उस आनन्द की कल्पना नहीं की जा सकती। वहां राजनीति का दिखावा जैसी कोई बात ही नहीं थी। आज यह बड़ी खुशी की बात है कि सैकड़ों गांव धर्मपाल हो गये हैं और उनकी संख्या सुनने में आयी है कि पचास हजार तक पहुंच गई है।

मैं धर्मपाल प्रवृत्ति में कार्य करने वालों को बहुत-बहुत साधुवाद देता हूं जो बड़ी लगन से कार्य कर रहे हैं और आशा ही नहीं पूरा विश्वास है कि यह प्रवृत्ति आगे बढ़ेगी। श्री विजयसिंहजी नाहर ने कलकत्ता में बहुत लोगों के समक्ष इस प्रवृत्ति की चर्चा की और भूरि-२ सराहना की।

अध्यक्ष—श्री श्वे. स्था. जैन सभा
२०, बाल मुकुन्द मक्कर रोड़, कलकत्ता

# धर्मपाल प्रवृत्ति : एक युगान्तकारी क्रांति

**संयोजक—गणपतराज बोहरा**

धम्मे हरए बम्मे शान्ति तित्थे,
अणाविले अन्तपसन्न लेसे ।
जंहि सिणाओ विमलो–विसुद्धो
सुसीइभूओ पण हामि दोषं ।
—उत्तराध्ययन १२/६

धर्म मेरा जलाशय है, ब्रह्मचर्य शांति तीर्थ
ौर कलुष भाव रहित आत्मा प्रसन्नलेश्या है,
मेरा निर्मल घाट है, जहां पर आत्मा स्नान
कर्म रज से मुक्त होती है ।

आज से २४ वर्ष पूर्व समता-दर्शन प्रणेता,
ाल प्रतिबोधक परमपूज्य आचार्य श्री नाना-
जी म. सा. संवत् २०२० का रतलाम चातु-
पूर्ण कर मालवा के वन-बीहड़ों में, दुर्गम
ड़ी और सपाट मैदानों में अपनी पीयूषवर्षिणी
ी से जिन धर्म के उदात्त और शाश्वत मान-
मूल्यों को प्रसारित करते हुए विचरण कर
थे, तभी चैत्र शुक्ला अष्टमी संवत् २०२१
२३ मार्च १९६४ को प्रातःकाल नागदा के
ग्राम गुराड़िया में आपने बलाई बन्धुओं को
जलाशय में स्नान कर धर्म की उपासना
पालना का उपदेश दिया । उन्हें धर्मपाल-
कहकर संबोधित किया और उनसे तदनुसार
उज्ज्वल आचरण धारण करने का अनुरोध
ा । इसी स्वर्णिम दिवस को धर्मपाल प्रवृत्ति
नींव पड़ी । स्थान-स्थान पर धर्मपाल बन्धु
न जीवन जीने को मचल उठे तथा संकल्पित
लगे । श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ ने
ार्य-प्रवर के इन्दौर वर्षावास सं. २०२१ में
पाल प्रवृत्ति के कार्य को व्यवस्थित करने का
य लिया और यहीं पर प्रथम धर्मपाल
ेलन सम्पन्न हुआ ।

संघ की साधारण सभा ने श्री धर्मपाल प्रचार-प्रसार समिति की स्थापना की और इसके गौरवशाली प्रथम संयोजक पद पर श्री गोकुल-चन्दजी सूर्या उज्जैन को नियुक्त किया गया । कालान्तर में श्री गेंदामलजी नाहर को प्रमुख संयोजक बनाया गया और बाद में श्री समीर-मलजी कांठेड़ प्रमुख संयोजक बने । आचार्य श्रीजी के आशीर्वाद और संघ के असीम स्नेह के बीच प्रवृत्ति का कार्य निरन्तर आगे बढ़ता चला गया । धर्मपाल गांवों में धार्मिक शिक्षण पाठशालाएं खोलने का जो क्रम ८ अगस्त १९६४ को नागदा से प्रारम्भ हुआ, वह एक के बाद एक पाठशाला खुलने के साथ बढ़ता गया और वृहत धर्मपाल सम्मेलनों के जलजले ने सम्पूर्ण क्षेत्र में एक विचार-आचार क्रांति को ला खड़ा किया। जयपुर में आयोजित संघ के तीसरे वार्षिक अधिवेशन में श्री गणपतराजजी बोहरा एवं श्रीमती यशोदा बोहरा द्वारा प्रवृत्ति कार्य में विशेष रुचि लेने से प्रवृत्ति में नया मोड़ आया ।

सर्वेक्षण-शिक्षण-प्रशिक्षण-निरीक्षण और पर्यवेक्षण की एक प्रभावी रूपरेखा बनाकर सैकड़ों कार्यकर्ता प्रवृत्ति के कार्य विस्तार हेतु जुट गए । धर्मपाल युवकों का नानेश नवयुवक मंडल गठित हुआ । सर्व श्री गणपतराजजी बोहरा, सुगन-मलजी चोरड़िया, सरदारमलजी कांकरिया, श्री भंवरलालजी कोठारी के प्रयासों ने क्षेत्र में समुद्र मथन का सा दृश्य उपस्थित कर दिया । दौड़-दौड़ कर नए-नए कार्यकर्ता कार्य में आकर जुटने लगे । समाज-सेवी श्री मानवमुनिजी, स्वर्गीय श्री हीरालालजी नांदेचा, श्री पी. सी. चोपड़ा, श्री मगनलालजी मेहता, स्व. बाबू श्री कन्हैया-

लालजी मेहता, श्री वीरेन्द्र कोठारी, उज्जैन का सूर्या परिवार, मामाजी श्री चम्पालालजी पिरोदिया, मामीजी श्रीमती धूरी बाई पिरोदिया, श्री हस्तीमलजी मूणत, श्री मियांचन्दजी कांठेड़, श्री सूरजमलजी बरखेड़ा वाले, धर्मपाल श्री सीताराम जी राठौड़, धुल्लाजी जैन, रघुनाथजी के साथ युवा श्री हीरालालजी मकवाना, रामलालजी सहित सैकड़ों-सैकड़ों कार्यकर्ता दल-बादल की तरह उमड़-घुमड़ कर आ मिले तथा धर्मपाल क्षेत्र एक महासागर की भांति लहरा उठा। कार्य इतना बढ़ गया कि सकल क्षेत्र को ५ भागों उज्जैन, रतलाम, नागदा-खाचरौद मन्दसौर तथा जावरा विभागों में बांट कर संयोजक मनोनीत किए गए। धर्म जागरण पदयात्राओं के दौर प्रारम्भ हुए और सन्त-मुनिराजों तथा महासती वृन्द का विचरण भी क्षेत्र में हुआ। धर्मपाल क्षेत्र धर्ममय हो उठा। सकल सहयोगियों को नमन।

संघ ने धर्मपाल क्षेत्रों में यथावश्यकता कुंए और समता-भवनों आदि के माध्यम से निर्माण कार्य प्रारम्भ किया। देशभर के राजनेताओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं के अन्वेषण दल इस व्यसन-विकार मुक्ति के महाअभियान को देखने-परखने आने लगे।

धर्मपाल समाज की समाज-रचना के नियमों का निर्धारण व प्रमुखों का चुनाव प्रवृत्ति के कार्य में फिर एक क्रांतिकारी मोड़ के रूप में उपस्थित हुआ। धर्मपाल पंचायतों का गठन किया गया। धर्मपाल छात्रों के विकास हेतु श्री प्रेमराज गणपतराज बोहरा धर्मपाल जैन छात्रावास दिलीप नगर, रतलाम का शुभारम्भ हुआ। धर्मपाल छात्रों के कानोड़ छात्रावास में शिक्षण की भी व्यवस्था की गई। क्षेत्र में श्री बोहराजी द्वारा भेंट किए गए श्रीमद् जवाहराचार्य चल चिकित्सालय द्वारा पद्मश्री डॉक्टर नन्दलाल जी बोरदिया के नेतृत्व में चिकित्सा सेवा और चिकित्सा शिविरों के आयोजन हुए। इन चिकित्सा सेवा कार्यों में क्षेत्रीय शासकीय चिकित्सकों का भी पूर्ण सहयोग मिला। धर्मपाल प्रतिवर्ष आचार्य श्री के सान्निध्य में दर्शनार्थ उपस्थित होकर प्रेरणा प्राप्त करते रहे। इसी बीच आराध्य आचार्य प्रवर सन् ८४ में रतलाम चातुर्मास हेतु पधारे, धर्मपालों में अपार उत्साह छा गया। प्रवृत्ति देश-विदेश में चर्चित हो चुकी है।

आचार्य-प्रवर के पुनः इन्दौर चातुर्मास से धर्मपाल संगठन में आशा की नई किरण जागी है। धर्मपाल क्षेत्र के कार्य में महिलाओं का योगदान विस्मय और आह्लादकारी है। श्रीमती यशोदादेवी जी बोहरा, श्रीमती शान्ता मेहता, श्रीमती रोशन खाबिया, स्वर्गीय श्रीमती कमला चौपड़ा, श्रीमती फूल कुमारी कांकरिया, श्रीमती कंचन बाई मेहता, श्रीमती शकुन्तला कांठेड़, श्रीमती रसकुंवर सूर्या महिला समिति की समस्त पदाधिकारियों और शत-शत बहिनों ने अपने आत्मीय व्यवहार से धर्मपालों का कायाकल्प करने में जो महती भूमिका निभाई है, वह आने वाले युग-शोधकों का स्वर्णिम इतिहास होगा। इस सनाम-अनाम मातृशक्ति को शत-शत वन्दन।

आज स्वयं धर्मपाल जाग उठे हैं। उनका धर्म पालन और गृहीत संकल्पों के प्रति प्राणपण से किया गया समर्पण भारतीय समाज के गौरवमय इतिहास की रचना कर रहा है। मानापमान के विष घूंट पीकर एक विशाल समाज का कायापलट करने को संकल्पित धर्मपाल कार्यकर्त्ताओं को श्रद्धासहित प्रणाम।

□

# धर्म जागरण, जीवन साधना और संस्कार निर्माण पदयात्रा

□ भंवरलाल कोठारी

श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ द्वारा भगवान् महावीर के २५०० वें निर्वाण वर्ष को समता-साधना वर्ष के रूप में साधने का संकल्प लिया गया था और पदयात्रा के रूप में उस दिशा में एक सार्थक पहल भी उसी वर्ष कर दी गई। यह पदयात्रा जीवन साधना का एक पूर्वाभ्यास थी। पदयात्रा जिनशासन प्रद्योतक धर्मपाल प्रतिबोधक आचार्य श्री नानेश की भावधारा के अनुरूप ममत्व से समत्व, असमानता से समानता और विषमता से समता की ओर प्रयाण कर समता समाज रचना के शाश्वत उद्देश्य को साकार करने की दिशा में भी यह एक प्रारंभिक कदम थी। संघ की प्रथम पदयात्रा कितनी सफल थी इसका अनुमान पश्चिम बंगाल के पूर्व उप मुख्यमंत्री बाबू श्री विजयसिंहजी नाहर के इन शब्दों से लगाया जा सकता है कि "यह पदयात्रा एक महान् धार्मिक क्रांति की पूर्व सूचना है।"

जीवन को साधते हुए धर्म जाग्रति की ज्योति जलाने के महत् उद्देश्य से आयोजित धर्मपाल पारिणी मालवा की धर्म-प्रवण धरती पर संघ के क्रियाशील कार्यकर्त्ताओं की पदयात्रा मानो समुद्र मंथन कर रत्न प्राप्ति का एक अनूठा उपक्रम थी। इस प्रथम पदयात्रा के संक्षिप्त दिग्दर्शन से हमें पदयात्रा की भावभूमि, [illegible] और सार्थकता का बोध मिल सकेगा।

उद्देश्य-संघ ने पदयात्रा के ४ पावन उद्देश्यों का निर्धारण करते हुए इसे (१) संयम, नियम, मर्यादा पूर्वक अनुशासन पालन करते हुए जीवन साधना का अभ्यास करना, (२) नियमित स्वाध्याय के माध्यम से अपने अन्तर में झांक कर अपने आपको समझने, स्वयं का अध्ययन करने का प्रयत्न करना (३) सादगीयुक्त, श्रमनिष्ठ, स्वावलंबी शिविर जीवन की अनुभूति करते हुए निःस्वार्थ सेवाभाव को जीवन का सहज स्वभाव बनाना और (४) व्यसन विकारों से मुक्त होने का संकल्प कर धर्मपालना के लिए उन्मुख धर्मपाल भाई-बहिनों, युवक-युवतियों एवं बालक-बालिकाओं से सम्पर्क साधते हुए उनके परिवर्तित जीवन से प्रेरणा प्राप्त करना और उन प्रेरक प्रसंगों को सही स्वरूप में प्रस्तुत कर सर्वत्र धर्मजागरण का वातावरण सृजित करना सुनिश्चित किए गए।

**दिनचर्या-कार्यक्रम संरचना-**

पदयात्रा के लिए दिनचर्या एवं कार्यक्रमों की संरचना लक्ष्य साधक रखी गई। प्रातःकाल साढ़े-चार बजे जागरण, सामायिक, समभाव की साधनापूर्वक सामूहिक प्रार्थना, ६।। बजे से ५-६ मील की प्रातःकालीन पदयात्रा जनसम्पर्क एवं धर्मसभा, मध्याह्न २।। बजे से ५ बजे तक सामायिक पूर्वक सामूहिक स्वाध्याय जिसमें विद्वानों के विचार प्रेरक व्याख्यान तथा आगम ग्रन्थों का वाचन, सायंकाल ५।। बजे से पुनः ३-४ मील की पदयात्रा, सामायिकपूर्वक सामूहिक प्रतिक्रमण अन्तरावलोकन करके आत्मशुद्धि का प्रयास, रात्रि ८।। से ११-१२ बजे तक धर्म सभा

एवं सबको भावविभोर तन्मय करने वाले भाव-पूर्ण भजन एवं संगीत के कार्यक्रम मध्याह्न एक समय का सात्विक भोजन एवं प्रात: नवकारसी, के पश्चात् तथा सायंकाल सूर्यास्त से पूर्व अल्पाहार, साधना परक दिनचर्या शरीर व मन को रोग मुक्त रखने में सहायक सिद्ध हुए।

दिनचर्या व कार्यक्रमों को संचालित करने वाले महानुभावों का जीवन अनकहे ही सारी बात कह देता था और साधना की छाप छोड़ता था।

**उपलब्धियां :**

इस प्रथम पदयात्रा की उपलब्धियां अविस्मरणीय एवं अनूठी हैं। प्रवृत्ति में फंसे जनों ने निवृत्ति का आनन्द चखा। सभी श्रम-निष्ठ, कर्मनिष्ठ बने। दूसरों के प्रति गुण दृष्टि जगी, दोष दृष्टि मिटी। सभी को एक अपूर्व सात्विक आनन्द की अनुभूति हुई। कर्मजात धर्मपाल जैनों के सरल सात्विक श्रद्धा से जन्म जात जैन श्रावकों को नई प्रेरणा प्राप्त हुई। यात्राकाल में स्व. पद्मश्री डॉ. नंदलालजी बोरदिया की चिकित्सा सेवा ने भविष्य में धर्मपाल क्षेत्रों में चल चिकित्सालय वाहन तथा चिकित्सा शिविरों के माध्यम से सेवा के नए आयाम का सृजन किया।

गांव-गांव को स्पर्श कर बहने वाली इस धर्म गंगा ने धर्मपालों एवं सभी ग्रामवासियों के जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया। धर्म के नाम पर पल रहे ढोंग के कारण धर्म विमुख बने युवकों में भी इस विशुद्ध धर्मसाधना परक जीवन का सात्विक प्रभाव पड़ा। विकार मुक्ति के वातावरण को गति मिली।

**पदयात्राओं के दौर :**

इस प्रकार संघ द्वारा सं. २०३१ में आयोजित प्रथम पदयात्रा ने देश भर में एक धार्मिक-नैतिक वातावरण का सृजन किया और फिर तो प्रतिवर्ष पदयात्राओं के दौर होने लगे। इन चल समारोहों में भाग लेने के लिए देश के कोने-कोने से धर्मानुरागी उमड़ पड़ते थे। धर्मपाल क्षेत्रों में पदयात्राओं की अपूर्व सफलता ने संघ-क्षेत्रों में पदयात्राओं के आयोजन का मार्ग प्रशस्त किया और मेवाड़ क्षेत्रीय पदयात्रा के साथ संघ में अप्रतिम उत्साह का सृजन हुआ।

पदयात्राएं जीवन की अनुभूति, सहजता, सरलता की साधिकाएं हैं। विश्वास है इनके आयोजन समाज और राष्ट्र जीवन को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य के उदात्त आदर्शों की ओर उन्मुख करेंगे।

# वीर संघ

गुमानमल चोरड़िया, वीरसंघ प्रधान

धर्म प्रधान भारत के आध्यात्मिक आकाश के प्रकाश स्तम्भ, युगद्रष्टा, युगस्रष्टा, युग-प्रवर्तक, ज्योतिर्धर जैनाचार्य स्व. श्री जवाहरलालजी म. सा. ने अपनी उद्बोधक प्रवचन शृंखलाओं में सद्गुणों के प्रचार-प्रसार तथा संयम साधना के निखार हेतु एक महान् योजना प्रस्तुत की थी। भगवान महावीर के साधना मार्ग को प्रशस्त बनाने वाली इस जीवनोन्नायक मध्यम मार्गीय साधनायुक्त प्रचार योजना को श्रीमद् जवाहराचार्य जी की जन्म शताब्दी के पुनीत दिवस कार्तिक शुक्ला चतुर्थी संवत् २०३२ तदनुसार दि. ७. ११. १९७५ शुक्रवार को, उन्हीं के पट्टधर जिन-शासन प्रद्योतक आचार्य श्री नानालाल जी म. सा. के सान्निध्य में मूर्तरूप प्रदान किया गया। आचार्य श्री की अभिनय वाणी की निरन्तर वर्षा ने साधकों को साधना पूर्वक धर्म प्रभावना हेतु संकल्पित होने की अपूर्व प्रेरणा दी।

स्वर्गीय आचार्य श्री साधुत्व को उसके वास्तविक स्वरूप में ही साधना के उच्चस्थ शिखर पर आसीन देखना चाहते थे एवं प्रवृत्ति परक प्रचार कार्यों में गृहस्थ वर्ग का संलग्न रहना ही उपयुक्त मानते थे एवं आचार्य श्री जी के लिए किसी भी साधक को साधना में [illegible] कमी भी असह्य थी। अतः उन्होंने साधुत्व को अक्षुण्ण रखने के उद्देश्य से प्रचार-प्रसार कार्य [illegible] साधु और गृहस्थ के मध्य एक ऐसे वर्ग की [illegible] व्यावहारिक योजना प्रस्तुत की [illegible] संघ ने साकार करने और आगे बढ़ाने को प्रयत्नशील है। वह वीरसंघ योजना (१) निवृत्ति (२) स्वाध्याय (३) साधना और (४) सेवा के चार स्तम्भों पर आधारित है और साधना के स्तर पर इसके (१) उपासक (२) साधक और (३) मुमुक्षु तीन श्रेणियों के सदस्य हैं। ये श्रेणियां निवृत्ति, साधना और सेवा की भावनाओं के आधार पर सृजित हैं। मुमुक्षु सदस्य श्रावक वर्ग की उच्चस्थ स्थिति के आदर्श स्वरूप हैं और हमें गर्व है कि हमारा वीरसंघ मुमुक्षु श्रेणी सदस्य भी अपने कलेवर में समेटे है।

वीरसंघ संचालन हेतु दो उप प्रधान, एक-एक व्यवस्था-प्रमुख, साधना प्रमुख, स्वाध्याय प्रमुख और सेवा-प्रमुख होते हैं, इनकी नियुक्ति यथा-संभव साधक और मुमुक्षु सदस्यों की श्रेणी में से ही करने का यत्न किया जाता है। जिस नगर या ग्राम में वीरसंघ की किसी भी श्रेणी के न्यूनतम ५ सदस्य होंगे, वहां वीरसंघ की शाखा स्थापित की जा सकेगी। स्पष्ट है कि वीरसंघ संख्या मूलक नहीं अपितु गुणवत्ता मूलक एक विरल संगठन है, जिसकी प्रकृति को सदस्य बनकर ही आत्मसात् किया जा सकता है, इसलिये वीरसंघ की किसी भी श्रेणी का सदस्य बनने से पूर्व साधक साधिका को [illegible] में परिवीक्षा काल बिताना है।

योगा-सम्मेलन : [illegible]

हुआ। इस सम्मेलन में वीर संघ के दर्शन और विवेचन पर सार्थक संवाद प्रस्तुत किया और इसके आधार पर बाद में 'वीर संघ : दर्शन एवं विवेचन' पुस्तिका तत्कालीन संघ मंत्री श्री भंवरलाल जी कोठारी के प्रयासों से प्रकाशित हुई। श्री कोठारी वीरसंघ योजना के निपुण शिल्पी रहे, उनका योगदान वीरसंघ के लिये सदैव स्मरण रहेगा। इसी क्रम में ज्ञानमंत्री श्री मोहनलाल जी मूथा, श्रीमती उमराव बाई मूथा व बादमें श्री गणेशलाल जी बया श्री सज्जनसिंह जी मेहता, श्री मोतीलाल जी चंडालिया, श्री सुजानमल जी मारु व समता प्रचार संघ के सहयोगियों का उल्लेखनीय सहकार मिला। डॉ० नरेन्द्र भानावत ने वीरसंघ की संचालन समिति के सदस्य के रूप में इसके वैचारिक अधिष्ठान को स्पष्ट करने में प्रशस्त योगदान किया।

**वीरसंघ शिविर और समीक्षण ध्यान** : वीरसंघ ने प्रतिवर्ष परम श्रद्धेय आचार्यश्री जी के सान्निध्य में श्रावण वदी अष्टमी से चतुर्दशी तक स्वाध्याय और साधना शिविर आयोजित करने का संकल्प किया और हमें हर्ष है कि सदस्यों के सहयोग से हमारा यह संकल्प प्रायः नियमित रूप से पूर्ण हो रहा है। वीर संघ का सौभाग्य है कि शासन नायक आचार्य श्रीजी इन शिविरों में संभागियों को प्रभूत मार्गदर्शन प्रदान करते हैं और सदस्यों को जिज्ञासा समाधान का अधिकाधिक अवसर प्रदान करते हैं। वीरसंघ शिविरों में आचार्य-प्रवर ने महती अनुकम्पा करके वीरसंघ सदस्यों को ध्यान-साधना का अभ्यास कराया। इसी अभ्यास क्रम में से समीक्षण ध्यान के साधकों की एक टोली उभर आई। साधकों के अभ्यास-क्रम के साथ-साथ समीक्षण ध्यान के प्रभाव क्षेत्र का विस्तार हुआ। हम परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर की इस महान् अनुकम्पा के लिये हृदय से आभारी हैं।

**वीरसंघ की प्रगति** : मुझे यह कहने में संकोच नहीं है कि वीरसंघ की प्रगति धीमी है। इसका एक प्रबल कारण तो वीरसंघ सदस्यता की कठिन शर्तें और इसके कार्यों की प्रकृति है ही, पर हम कार्यकर्त्ताओं के प्रयासों में अपेक्षित गति का अभाव भी एक अन्य कारण हो सकता है। हमें अपने उप प्रधान, शास्त्र-मर्मज्ञ, विद्यादानी श्रीयुत् हिम्मतसिंह जी सरूपरिया के निधन से उत्पन्न रिक्तता की पूर्ति करनी है। मैं रजत जयन्ती वर्ष की इस पावन वेला में श्री सरूपरिया जी को आदरपूर्वक स्मरण करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूं।

**अनुरोध** : अन्त में समाज की चित्तवृत्ति को संशोधित करने वाली इस महान् योजना की प्रगति हेतु सभी श्रावक-श्राविका से सत् संकल्प पूर्वक दृढ़ और निरन्तर प्रयास करने का अनुरोध करता हूं।

**–जवाहर वाणी–**

मनुष्य बनना सरल है, किन्तु मनुष्यत्व प्राप्त करना कठिन है। अतः मनुष्यत्व प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।

–श्री जवाहराचार्य

# श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

## विश्वस्त मंडल (BOARD OF TRUSTEES)

## BORD OF TRUST

# श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के अध्यक्षों के कार्यकाल की विवरणिका :-

| क्र. सं. | नाम अध्यक्ष | कार्यकाल कब से | कब तक | कुल वर्ष |
|---|---|---|---|---|
| १. | श्रीमान् छगनलालजी सा. बैद, भीनासर | १८-९-६३ से | ५-११-६५ | २ वर्ष |
| २. | ” गणपतराजजी सा. बोहरा, मद्रास | ६-११-६५ से | १९-११-६८ | ३ वर्ष |
| ३. | ” पारसमलजी सा. कांकरिया, कलकत्ता | २०-११-६८ से | २०-९-७१ | ३ वर्ष |
| ४. | ” हीरालालजी सा. नांदेचा, खाचरोद | २१-९-७१ से | २७-९-७३ | २ वर्ष |
| ५. | ” गुमानमलजी सा. चोरड़िया, जयपुर | २८-९-७३ से | १३-१०-७७ | ४ वर्ष |
| ६. | ” पूनमचंदजी सा. चौपड़ा, रतलाम | १४-१०-७७ से | १०-१०-८० | ३ वर्ष |
| ७. | ” जुगराजजी सा. सेठिया, बीकानेर | ११-१०-८० से | १७-१०-८२ | २ वर्ष |
| ८. | ” दीपचन्दजी सा. भूरा, देशनोक | १८-१०-८२ से | १५-११-८५ | ३ वर्ष |
| ९. | ” चुन्नीलालजी सा. मेहता, बम्बई | १६-११-८५ से | निरन्तर | |

## श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के उपाध्यक्षों का विवरण :

| क्र. सं. | नाम | कार्यकाल कब से | कब तक | कुल वर्ष |
|---|---|---|---|---|
| १. | श्रीमान् हीरालालजी नांदेचा, खाचरोद | १८-९-६३ से | १४-१०-६६ | ३ वर्ष |
| २. | ” भागचन्दजी गेलड़ा, मद्रास | १८-९-६३ से | ४-१०-६७ | ४ वर्ष |
| ३. | ” स्वरूपचंदजी चोरड़िया, जयपुर | ६-११-६५ से | १९-११-६८ | ३ वर्ष |
| ४. | ” जयचन्दलालजी रामपुरिया, कलकत्ता | ६-११-६५ से | १९-११-६८ | ३ वर्ष |
| ५. | ” नाथूलालजी सेठिया, रतलाम | १५-१०-६६ से | १९-११-६८ | २ वर्ष |
| ६. | ” तोलारामजी भूरा, देशनोक | ५-१०-६७ से | १०-११-७० | ३ वर्ष |
| ७. | ” जुगराजजी बोथरा, दुर्ग | २०-११-६८ से | १३-१०-६९ | १ वर्ष |
| ८. | ” उमरावमलजी चोरड़िया, जयपुर | २०-११-६८ से | १०-११-७० | २ वर्ष |
| ९. | ” कुन्दनसिंहजी खेमसरा, उदयपुर | २०-११-६८ से | १०-११-७० | २ वर्ष |
| १०. | ” पुखराजजी छल्लाणी, मद्रास | १४-१०-६९ से | ८-१०-७२ | ३ वर्ष |
| ११. | ” जैसराजजी बैद, बीकानेर | ११-११-७० से | ५-१०-७५ | ५ वर्ष |
| १२. | ” गेंदालालजी नाहर, जावरा | ११-११-७० से | ८-१०-७२ | २ वर्ष |
| १३. | ” कन्हैयालालजी मालू, कलकत्ता | ११-११-७० से | ८-१०-७२ | २ वर्ष |
| १४. | ” सुन्दरलालजी तातेड़, बीकानेर | ९-१०-७२ से | ५-१०-७५ | ३ वर्ष |
| १५. | ” सरदारमलजी ढढ्ढा, जयपुर | ९-१०-७२ से | ५-१०-७५ | ३ |
| | | ४-१०-७८ से | १०-१०-८० | २ वर्ष |

| क्र. सं. | नाम | कार्यकाल | कुल वर्ष |
|---|---|---|---|
| २. | श्रीमान् महावीरचन्दजी धाड़ीवाल, रायपुर | १८-९-६३ से १४-१०-६६=३<br>४-१०-७८ से १०-१०-८०=२ | ५ वर्ष |
| ३. | " भंवरलालजी कोठारी, बीकानेर | ६-११ ६५ से ४-१०-६७=२<br>९-१०-७२ से ५-१०-७५=३ | ५ वर्ष |
| ४. | " शुभकरणजी कांकरिया, मद्रास | ६-११-६५ से ४-१०-६७ | २ वर्ष |
| ५. | " उत्तमचन्दजी मूथा, रायपुर | १५-१०-६६ से १९-११-६८ | २ वर्ष |
| ६. | " उगमराजजी मूथा, मद्रास | ५-१०-६७ से ८-१०-७२=५<br>१८-१०-८२ से २८-१२-८४=२ | ७ वर्ष |
| ७. | " पीरदानजी पारख, अहमदाबाद | ५-१०-६७ से १०-११-७०=३<br>११-१०-८२ से १७-१०-८२=२ | ५ वर्ष |
| ८. | " मोतीलालजी मालू, कलकत्ता | २०-११-६८ से १०-११-७० | २ वर्ष |
| ९. | " जसकरणजी बोथरा, गंगाशहर | ११-११-७० से ८-१०-७२ | २ वर्ष |
| १०. | " पृथ्वीराजजी पारख, दुर्ग | ११-११-७० से ५-१०-७५ | ५ वर्ष |
| ११. | " कालूरामजी छाजेड़, उदयपुर | १७-१०-७४ से २४-९-७६ | २ वर्ष |
| १२. | " चम्पालालजी डागा, गंगाशहर | ९-१०-७२ से ५-१०-७५=३<br>४-१०-७८ से १७-१०-८२=४<br>५-१०-८६ से निरन्तर | ७ वर्ष |
| १३. | " उमरावमलजी ढढ्ढा, जयपुर | ६-१०-७५ से ३-१०-७८=३<br>२९-१२-८४ से ४-१०-८६=२ | ५ वर्ष |
| १४. | " हंसराजजी सुखलेचा, बीकानेर | ६-१०-७५ से ३-१०-७८ | ३ वर्ष |
| १५. | " धनराजजी बेताला, नोखामण्डी | ६-१०-७५ से ३-१०-७८ | ३ वर्ष |
| १६. | " मोहनलालजी श्री श्रीमाल, ब्यावर | २५-९-७६ से ३-१०-७८ | २ वर्ष |
| १७. | " पारसमलजी बोहरा, पीपलियाकलां | ४-१०-७८ से १०-१०-८० | २ वर्ष |
| १८. | " समीरमलजी कांठेड़, जावरा | ११-१०-८० से १७-१०-८२ | २ वर्ष |
| १९. | " हस्तीमलजी नाहटा, अजमेर | १०-१०-८० से २८-१२-८४ | ४ वर्ष |
| २०. | " विनयचन्दजी कांकरिया, अहमदाबाद | १८-१०-८२ से २८-१२-८४ | २ वर्ष |
| २१. | " मगनलालजी मेहता, रतलाम | १८-१०-८२ से २८-१०-८४ | २ वर्ष |
| २२. | " फतहमलजी चोरड़िया, जोधपुर | २९-१२-८४ से निरन्तर | |
| २३. | " प्रेमचन्दजी बोथरा, मद्रास | २९-१२-८४ से ४-१०-८६ | २ वर्ष |
| २४. | " मदनलालजी कटारिया, रतलाम | २९-१२-८४ से निरन्तर | |
| २५. | " केशरीचन्दजी सेठिया मद्रास | ५-१०-८६ से निरन्तर | |

**श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के कोषाध्यक्षों के कार्यकाल का विवरण :**

| क्र. सं. | नाम कोषाध्यक्ष | कार्यकाल कब से | कब तक | कुल वर्ष |
|---|---|---|---|---|
| १. | श्रीमान् सरदारमलजी कांकरिया, कलकत्ता | १८-९-६३ से | १४-१०-६६ | ३ वर्ष |

| | | | |
|---|---|---|---|
| " | गोतमचंदजी गेलड़ा, मद्रास | १५-१०-६६ से १९-११-६८ | २ वर्ष |
| " | भागचन्दजी गेलड़ा, मद्रास | २०-१०-६८ से २०-११-७० | २ वर्ष |
| " | खुशालचन्दजी गेलड़ा, मद्रास | ११-११-७० से १५-१०-७५ | ५ वर्ष |
| " | चम्पालालजी डागा, गंगाशहर | ६-१०-७५ से ३-१०-७८ = ३<br>१८-१०-८२ से ४-१०-८६ = ४ | ७ वर्ष |
| " | जसकरणजी बोथरा, गंगाशहर | ४-१०-७८ से १७-१०-८२ | ४ वर्ष |
| " | भंवरलालजी वडेर, बीकानेर | ५-१०-८६ से निरन्तर | |

## अभिनन्दन सूची

**अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा सम्मानित महानुभावों की सूची :-**

| सं. दिनांक | स्थान | सम्मानित-नाम |
|---|---|---|
| २८-९-७३ | बीकानेर | पद्म विभूषण डा. दौलतसिंहजी कोठारी को अभिनन्दन पत्र |
| ३०-९-७३ | बीकानेर | श्रीमती सेठानीजी आनन्दकंवर बाई पीतलिया |
| ३०-९-७३ | बीकानेर | श्रीमती लक्ष्मीदेवी धाड़ीवाल |
| ६-१०-७५ | देशनोक | पण्डितरत्न विद्यादानी श्रीमान् रोशनलालजी सा. चपलोत उदयपुर |
| २५-९-७६ | नोखामंडी | पंडितरत्न विद्यादानी श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, ब्यावर |
| १४-१०-७७ | गंगाशहर-भीनासर | त्यागमूर्ति, समाजरत्न, सेवाभावी आदर्श सुश्रावक श्रीमान् गुमानमलजी सा. चोरड़िया, जयपुर । |
| १४-१०-७७ | गंगाशहर-भीनासर | समाजरत्न, सेवापरायण, कर्तव्यनिष्ठ प्रशासक श्रीमान् देवेन्द्रराजजी सा. मेहता, जयपुर |
| १४-१०-७७ | गंगाशहर-भीनासर | करुणा-मूर्ति, सेवाव्रती सुश्रावक श्रीमान् चम्पालालजी सा. पिरोदिया, मद्रास |
| १४-१०-७७ | गंगाशहर-भीनासर | आदर्श सुश्राविका महिलारत्न श्रीमती [illegible] पिरोदिया. |
| ५-१०-७८ | जोधपुर (राज.) | समाजरत्न, सेवापरायण, कर्त्तव्यनिष्ठ प्रशासक श्री रणजीतसिंहजी कुमट, जयपुर । |
| ५-१०-७८ | जोधपुर (राज.) | समाजरत्न, विद्यादानी, साहित्य सम्पादक डा. नरेन्द्र भानावत, जयपुर |
| [illegible] | अजमेर | आदर्श सुश्राविका महिलारत्न श्रीमती [illegible] |
| [illegible] | अजमेर | धर्मनिष्ठ सेवाभावी सुश्रावक श्रीमान् [illegible] देशनोक (राज.) |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १२. | २३-९-७९ | अजमेर | श्रीमान् रखबचन्दजी कटारिया, रतलाम (म. प्र.) |
| १३. | २३-९-७९ | अजमेर | धर्मनिष्ठ सेवाभावी सुश्रावक श्रीमान् हंसराजजी सुखलेचा, बीकानेर |
| १३-अ | २३-९-७९ | अजमेर | धर्मनिष्ठ सेवाभावी सुश्रावक श्री प्रतापचन्दजी भूरा गंगाशहर (राज.) |
| १४. | २३-९-७९ | अजमेर | धर्मनिष्ठ सेवाभावी सुश्रावक श्रीमान् जयचन्दलालजी सुखानी, बीकानेर |
| १५. | १०-१०-८० | राणावास | श्रीमती फूलकंवर चोरड़िया नीमच का अ. भा. जैन महिला समिति द्वारा अभिनन्दन |
| १६. | ३०-९-८१ | उदयपुर | श्रीमान् केशरीचंदजी सा. सेठिया, मद्रास |
| १७. | ३०-९-८१ | उदयपुर | श्रीमान् केशरीचंदजी सा. गोलछा, बंगाईगांव |
| १८. | ३०-९-८१ | उदयपुर | श्रीमान् अमृतलालजी सा. मेहता, रायपुर |
| १९. | ३०-९-८१ | उदयपुर | श्रीमान् जुगराजजी सा. सेठिया, बीकानेर |
| | २०-१०-८२ | अहमदाबाद | डा. इन्दरराज बैद, मद्रास |
| | २०-१०-८२ | अहमदाबाद | श्री कालुरामजी छाजेड़, उदयपुर |
| २०. | ३-३-८४ | रतलाम | धर्मपाल पितामह संघ के पूर्व अध्यक्ष उदारमना श्रीमान् गणपतराजजी सा. बोहरा, पीपलियाकलां |
| २१. | ३-३-८४ | रतलाम | धर्मपाल माता महिला रत्न आदर्श समाज सेविका श्रीमती यशोदादेवीजी बोहरा, पीपलियाकलां |

## श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के कार्यकारिणी सदस्यों के कार्यकाल का विवरण पत्र सन् १९६३ से १९८६-८७ तक

| क्र. सं. | नाम सदस्य | स्थान | (वर्ष) कार्यकाल |
|---|---|---|---|
| १. | श्री छगनलालजी बैद | भीनासर | सन् १९६३ से ८६-८७ तक निरन्तर |
| २. | श्री हीरालालजी नांदेचा | खाचरौद | सन् १९६३ से ८१ तक |
| ३. | श्री भागचन्दजी गेलड़ा | मद्रास | सन् १९६३ से ७० तक |
| ४. | श्री जुगराजजी सेठिया | बीकानेर | सन् १९६३ से सन् ८६-८७ निरन्तर |
| ५. | श्री सुन्दरलालजी तातेड़ | बीकानेर | सन् १९६३ से ७५ तक ७७ से ८१ तथा १९८३ से निरन्तर |
| ६. | श्री महावीरचन्दजी धाड़ीवाल | रायपुर (म. प्र.) | सन् १९६३ से ८३ तक |
| ७. | श्री सरदारमलजी कांकरिया | कलकत्ता | सन् १९६३ से निरन्तर |
| ८. | श्री छगनलालजी मूथा | बैंगलोर | सन् १९६३ से ८० तक |
| ९. | श्री जेठमलजी सेठिया | बीकानेर | सन् १९६३ से ६८ तक |

| | | |
|---|---|---|
| १०. श्री नाथूलालजी सेठिया | रतलाम | सन् १९६३ से ७२ तक |
| ११. श्री पुखराजजी छल्लाणी | मैसूर | सन् १९६३ से ६६ तक ६९ से निरन्तर |
| १२. श्री कन्हैयालालजी मेहता | मन्दसौर | सन् १९६३ से ६६ व ७१ से ८४ तक |
| १३. श्री कन्हैयालालजी मालू | कलकत्ता | सन् १९६३ से ६८ व ७० से ७६ तक |
| १४. श्री कानमलजी नाहटा | जोधपुर | सन् १९६३ |
| १५. श्री मदनराजजी मूथा | मद्रास | सन् १९६३ से ६६ व ७० से निरंतर |
| १६. श्रीमती आनन्दकंवरजी पीतलिया | रतलाम | सन् १९६३ से ६५ व ७१ से ७३ तक |
| १७. श्री पं. पूर्णचन्दजी दक | उदयपुर | सन् १९६३ से ७३ तक |
| १८. श्री खेलशंकर भाई जौहरी | जयपुर | सन् १९६३ |
| १९. श्री भंवरलालजी कोठारी | बीकानेर | सन् १९६३ से निरन्तर |
| २०. श्री भंवरलालजी श्री श्रीमाल | बीकानेर | सन् १९६३ से ६४ तक |
| २१. श्री किशनलालजी लूणिया | बेंगलोर | सन् १९६३ से ६५ तक |
| २२. श्री कालूरामजी छाजेड़ | उदयपुर | सन् १९६३ से ६४ व ६६ से निरंतर |
| २३. श्री चांदमलजी नाहर | छोटी सादड़ी | सन् १९६३ से ६४ तक |
| २४. श्री गिरधारीलालजी के. जवेरी | बम्बई | सन् १९६३ से ६४ तक |
| २५. श्री कन्हैयालालजी मूलावत | भीलवाड़ा | सन् १९६३ से ६४ व ७७ से ७८ तक |
| २६. श्री लक्ष्मीलालजी सिरोहिया | उदयपुर | सन् १९६३ से ६७ तक |
| २७. श्री सम्पतलालजी बोहरा | दिल्ली | सन् १९६३ से ६७ व ७० से ७३ तक |
| २८. श्री गुणवंतलालजी गोदावत | बघाना मंडी (नीमच) | सन् १९६३ से ६५ तक ७८ तथा १९८० से ८४ तक |
| ९. श्रीमती नगीना बहिन चोरड़िया | दिल्ली | सन् १९६३ से ६५ तक |
| ०. श्री राजमलजी चोरड़िया | अमरावती | सन् १९६३ से ६६ व ७४ से ७५ तक |
| श्री गोकुलचन्दजी सूर्या | उज्जैन | सन् १९६३ से ६४ तथा १९७६ |
| श्री सुगनराजजी सांड | जोधपुर | सन् १९६४ से ६५ तक |
| श्री ज्ञानचन्दजी चोरड़िया | जयपुर | सन् १९६४ तथा ७१ से ७२ तक |
| श्री सोहनरामजी भूरा | देशनोक | सन् १९६४ तथा ६६ से ७८ तक |
| श्री धनराजजी बेताला | नोखामण्डी | सन् १९६४ से निरन्तर |
| श्री मेघराजजी सुखाणी | बीकानेर | सन् १९६४ से ७३ व ७७ से ७८ तक |
| श्री कन्हैयालालजी मूथा | ब्यावर | सन् १९६४ से ६६ तक |
| श्री माणकचन्दजी सांड | इन्दौर | सन् १९६४ |
| श्री [illegible]लालजी कोठारी | छोटी सादड़ी | सन् १९६४ से [illegible] |
| श्री [illegible]लालजी [illegible] | इन्दौर | सन् १९६[illegible] से [illegible] |
| श्री [illegible]जी [illegible] | बीकानेर | सन् १९६[illegible] |
| श्री [illegible]चन्दजी [illegible] | ब्यावर | सन् १९६[illegible] से [illegible] |
| श्री [illegible]रामजी [illegible] | [illegible] | सन् १९६[illegible] से [illegible] |

| | | |
|---|---|---|
| १२. २३-६-७६ | अजमेर | श्रीमान् रखबचन्दजी कटारिया, रतलाम (म. प्र.) |
| १३. २३-६-७६ | अजमेर | धर्मनिष्ठ सेवाभावी सुश्रावक श्रीमान् हंसराजजी सुखलेचा, बीकानेर |
| १३-अ २३-६-७६ | अजमेर | धर्मनिष्ठ सेवाभावी सुश्रावक श्री प्रतापचन्दजी भूरा गंगाशहर (राज.) |
| १४. २३-६-७६ | अजमेर | धर्मनिष्ठ सेवाभावी सुश्रावक श्रीमान् जयचन्दलालजी सुखानी, बीकानेर |
| १५. १०-१०-८० | राणावास | श्रीमती फूलकंवर चोरड़िया नीमच का अ. भा. जैन महिला समिति द्वारा अभिनन्दन |
| १६. ३०-६-८१ | उदयपुर | श्रीमान् केशरीचंदजी सा. सेठिया, मद्रास |
| १७. ३०-६-८१ | उदयपुर | श्रीमान् केशरीचंदजी सा. गोलछा, बंगाईगांव |
| १८. ३०-६-८१ | उदयपुर | श्रीमान् अमृतलालजी सा. मेहता, रायपुर |
| १९. ३०-६-८१ | उदयपुर | श्रीमान् जुगराजजी सा. सेठिया, बीकानेर |
| २०-१०-८२ | अहमदाबाद | डा. इन्दरराज बैद, मद्रास |
| २०-१०-८२ | अहमदाबाद | श्री कालुरामजी छाजेड़, उदयपुर |
| २०. ३-३-८४ | रतलाम | धर्मपाल पितामह संघ के पूर्व अध्यक्ष उदारमना श्रीमान् गणपतराजजी सा. बोहरा, पीपलियाकलां |
| २१. ३-३-८४ | रतलाम | धर्मपाल माता महिला रत्न आदर्श समाज सेविका श्रीमती यशोदादेवीजी बोहरा, पीपलियाकलां |

## श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के कार्यकारिणी सदस्यों के कार्यकाल का विवरण पत्र सन् १९६३ से १९८६-८७ तक

| क्र. सं. | नाम सदस्य | स्थान | (वर्ष) कार्यकाल |
|---|---|---|---|
| १. | श्री छगनलालजी वैद | भीनासर | सन् १९६३ से ८६-८७ तक निरन्तर |
| २. | श्री हीरालालजी नांदेचा | खाचरौद | सन् १९६३ मे ८१ तक |
| ३. | श्री भागचन्दजी गेलड़ा | मद्रास | सन् १९६३ से ७० तक |
| ४. | श्री जुगराजजी सेठिया | बीकानेर | सन् १९६३ से सन् ८६-८७ निरन्तर |
| ५. | श्री सुन्दरलालजी तातेड़ | बीकानेर | सन् १९६३ से ७५ तक ७७ से ८१ तथा १९८३ से निरन्तर |
| ६. | श्री महावीरचन्दजी धाड़ीवाल | रायपुर (म. प्र.) | सन् १९६३ से ८३ तक |
| ७. | श्री सरदारमलजी कांकरिया | कलकत्ता | सन् १९६३ से निरन्तर |
| ८. | श्री छगनलालजी मूथा | बैंगलोर | सन् १९६३ से ८० तक |
| ९. | श्री जेठमलजी सेठिया | बीकानेर | सन् १९६३ से ६८ तक |

१०. श्री नाथूलालजी सेठिया — रतलाम — सन् १९६३ से ७२ तक

११. श्री पुखराजजी छल्लाणी — मैसूर — सन् १९६३ से ६६ तक ६९ से निरन्तर

१२. श्री कन्हैयालालजी मेहता — मन्दसौर — सन् १९६३ से ६६ व ७१ से ८४ तक

१३. श्री कन्हैयालालजी मालू — कलकत्ता — सन् १९६३ से ६८ व ७० से ७६ तक

१४. श्री कानमलजी नाहटा — जोधपुर — सन् १९६३

१५. श्री मदनराजजी मूथा — मद्रास — सन् १९६३ से ६६ व ७० से निरंतर

१६. श्रीमती आनन्दकंवरजी पीतलिया — रतलाम — सन् १९६३ से ६५ व ७१ से ७३ तक

१७. श्री पं. पूर्णचन्दजी दक — उदयपुर — सन् १९६३ से ७३ तक

१८. श्री खेलशंकर भाई जौहरी — जयपुर — सन् १९६३

१९. श्री भंवरलालजी कोठारी — बीकानेर — सन् १९६३ से निरन्तर

२०. श्री भंवरलालजी श्री श्रीमाल — बीकानेर — सन् १९६३ से ६४ तक

२१. श्री किशनलालजी लूणिया — बेंगलोर — सन् १९६३ से ६५ तक

२२. श्री कालूरामजी छाजेड़ — उदयपुर — सन् १९६३ से ६४ व ६६ से निरंतर

२३. श्री चांदमलजी नाहर — छोटी सादड़ी — सन् १९६३ से ६४ तक

२४. श्री गिरधारीलालजी के. जवेरी — बम्बई — सन् १९६३ से ६४ तक

२५. श्री कन्हैयालालजी मूलावत — भीलवाड़ा — सन् १९६३ से ६४ व ७७ से ७८ तक

२६. श्री लक्ष्मीलालजी सिरोहिया — उदयपुर — सन् १९६३ से ६७ तक

२७. श्री सम्पतलालजी बोहरा — दिल्ली — सन् १९६३ से ६७ व ७० से ७१ तक

२८. श्री गुणवंतलालजी गोदावत — बघाना मंडी (नीमच) — सन् १९६३ से ६५ तक ७८ तथा १९८० से ८४ तक

२९. श्रीमती नगीना बहिन चोरड़िया — दिल्ली — सन् १९६३ से ६५ तक

३०. श्री राजमलजी चोरड़िया — अमरावती — सन् १९६३ से ६६ व ७४ से ७५ तक

३१. श्री गोकुलचन्दजी सूर्या — उज्जैन — सन् १९६३ से ६४ तथा १९७६

३२. श्री सुगनराजजी सांड — जोधपुर — सन् १९६४ से ६५ तक

३३. श्री ज्ञानचन्दजी चोरड़िया — जयपुर — सन् १९६४ तथा ७१ से ७६ [illegible]

३४. श्री तोलारामजी भूरा — देशनोक — सन् १९६४ तथा ६६ से ७६ तक

३५. श्री [illegible]राजजी बेताला — नोखामण्डी — सन् १९६४ से निरन्तर

३६. श्री [illegible]राजजी सुखाणी — बीकानेर — सन् १९६४ से ७१ व [illegible]

३७. श्री कन्हैयालालजी मूथा — ब्यावर — सन् १९६४ से ६६ तक

३८. श्री [illegible]चन्दजी सांड — इन्दौर — सन् १९६[illegible]

३९. श्री [illegible]जी कोठारी — छोटी सादड़ी — सन् १९६[illegible] से [illegible] तक

४०. श्री [illegible]लालजी [illegible] — इन्दौर — सन् १९६[illegible] से [illegible] तक

४१. श्री [illegible]जी [illegible] — बीकानेर — सन् १९६[illegible]

४२. श्री [illegible]जी [illegible] — ब्यावर — सन् १९६[illegible] [illegible]

४३. श्री [illegible]जी [illegible] — [illegible] — सन् १९६[illegible] [illegible]

| | | |
|---|---|---|
| ४४. श्री गणपतराजजी बोहरा | पीपल्याकलां | सन् १९६५ से निरन्तर |
| ४५. श्री स्वरूपचन्दजी चोरड़िया | जयपुर | सन् १९६५ से ६७ तक |
| ४६. श्री जयचन्दलालजी रामपुरिया | कलकत्ता | सन् १९६५ से ६८ तक |
| ४७. श्री शुभकरणजी कांकरिया | मद्रास | सन् १९६५ से ६६ व ७० से ८४ तक |
| ४८. श्री गौतमचन्दजी गेलड़ा | मद्रास | सन् १९६५ से ६८ तथा ८६ से निरंतर |
| ४९. श्री अमरचन्दजी लोढ़ा | ब्यावर | सन् १९६५ से ६९ तथा ७१ तक |
| ५०. श्री पीरदानजी पारख | अहमदाबाद | सन् १९६५ व ६७ से ६९ तक तथा १९७१ से निरन्तर |
| ५१. श्री तोलारामजी हीरावत | देशनोक | सन् १९६५ से ६६ व ७४ से ८३ तक |
| ५२. श्री गेंदालालजी नाहर | जावरा | सन् १९६५ से ६७ व ७० से ७१ तक |
| ५३. श्री उत्तमचन्दजी मूथा | रायपुर | सन् १९६५ से ७३ तक |
| ५४. श्री फूलचन्दजी लूणिया | बैंगलोर | सन् १९६६ से ६८ तक |
| ५५. श्री मोतीलालजी बरड़िया | सरदारशहर | सन् १९६६ से ६७ व ७५ से ८० तक |
| ५६. श्री हुलासमलजी मोदी | रायनांदगांव | सन् १९६६ से ६७ तक |
| ५७. श्री लाभचन्दजी कांठेड़ | इन्दौर | सन् १९६६ से ६८ तक |
| ५८. श्री देशराजजी जैन | केसिंगा | सन् १९६६ से ६७ तक |
| ५९. श्री गोतमचन्दजी भण्डारी | जोधपुर | सन् १९६६ से ७७ व ८१ से निरन्तर |
| ६०. श्री शंकरलालजी श्री श्रीमाल | मद्रास | सन् १९६६ से ६८ तक |
| ६१. श्री उगमराजजी मूथा | मद्रास | सन् १९६७ से ७१ तक तथा ७६ से ७७ व ८२ से निरन्तर |
| ६२. श्री मोतीलालजी मालू | कलकत्ता | सन् १९६७ से ६९ तक व ७१ व १९८० से निरन्तर |
| ६३. श्री लूणकरणजी हीरावत | देशनोक | सन् १९६७ से ७२ व ८१ से निरन्तर |
| ६४. श्री पृथ्वीराजजी पारख | दुर्ग | सन् १९६७ से निरन्तर |
| ६५. श्री हुकमीचन्दजी छल्लाणी | मद्रास | सन् १९६७ |
| ६६. श्री जसकरणजी बोथरा | गंगाशहर | सन् १९६७ से निरन्तर |
| ६७. श्री पारसमलजी कांकरिया | कलकत्ता | सन् १९६८ से निरन्तर |
| ६८. श्री जुगराजजी बोथरा | दुर्ग | सन् १९६८ |
| ६९. श्री उमरावमलजी चोरड़िया | जयपुर | सन् १९६८ से ६९ व ८१ से निरन्तर |
| ७०. श्री कुन्दनसिंहजी खिमेसरा | उदयपुर | सन् १९६८ से ६९ तथा १९८० |
| ७१. श्री ताराचन्दजी मुणोत | अमरावती | सन् १९६८ से ७१ तक |
| ७२. श्री गुलाबचन्दजी सुराणा | बोलारम् | सन् १९६८ |
| ७३. श्री चम्पालालजी सुराणा | रायपुर | सन् १९६८ से ८२ तक |
| ७४. श्री प्रकाशचन्दजी कोठारी | अमरावती | सन् १९६८ |

| | | |
|---|---|---|
| ७५. श्री भूमरमलजी सेठिया | भीनासर | सन् १९६९ से १९८४ तक |
| ७६. श्री चम्पालालजी डागा | गंगाशहर | सन् १९६९ से निरन्तर |
| ७७. श्री भीखमचंदजी भंसाली | कलकत्ता | सन् १९६९ से ८३ तक तथा १९८५ से निरंतर |
| ७८. श्री लक्ष्मीलालजी पामेचा | वड़ीसादड़ी | सन् १९६९ से निरन्तर |
| ७९. श्री मांगीलालजी धोका | मद्रास | सन् १९६९ से निन्तर |
| ८०. श्री सुन्दरलालजी कोठारी | वम्बई | सन् १९६९ से निरंतर |
| ८१. श्री सौभाग्यमलजी पामेचा | मन्दसौर | सन् १९६९ तथा १९८५ |
| ८२. श्री हरिसिंहजी रांका | भीलवाड़ा | सन् १९६९ तथा १९८६ से निरंतर |
| ८३. श्री माणकचन्दजी लोढ़ा | मदुरांतकम | सन् १९६९ से १९७३ तक |
| ८४. श्री जैसराजजी वैद | वीकानेर | सन् १९७० से १९७६ तक |
| ८५. श्री खुशालचन्दजी गेलड़ा | मद्रास | सन् १९७० से १९७४ तक तथा १९७६ से १९८० तक |
| ८६. श्री हीराचन्दजी खीमेसरा | व्यावर | सन् १९७० से १९७५ तक तथा १९७८ से १९८३ तक |
| ८७. श्री फतहसिंहजी चोरड़िया | नीमच | सन् १९७० से ७१ तक |
| ८८. श्री श्री चम्पालालजी सांड | देशनोक | सन् १९७० |
| ८९. श्री श्री गम्भीरमलजी श्रीश्रीमाल | जलगांव | सन् १९७० से १९७७ तक व १९८६ निरन्तर |
| ९०. श्री परमेश्वरलालजी ताकड़िया | उदयपुर | सन् १९७० से १९७८ तक |
| ९१. श्री केशरीचन्दजी सेठिया | वीकानेर | सन् १९७० से १९७४ तक व १९७७ से सन् ७८ तक |
| ९२. श्री उत्तमचन्दजी लोढ़ा | वीकानेर | सन् १९७० से १९७२ तक |
| ९३. श्री फतहचन्दजी मुकीम | वीकानेर | सन् १९७० से १९७१ तक |
| ९४. श्री जसवन्तसिंहजी बावेल | जयपुर | सन् १९७१ से १९७७ तक तथा १९८१ से १९८३ व ८६ से निरन्तर |
| ९५. श्री शांतिलालजी सांड | देशनोक | सन् १९७१ से १९७६ तक तथा |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १०२. | श्री पारसमलजी मेहता | जयपुर | सन् १९७१ |
| १०३. | श्री हिम्मतसिंहजी सरूपरिया | उदयपुर | सन् १९७१ से १९८४ तक |
| १०४. | श्री अम्बालालजी मट्ठा | उदयपुर | सन् १९७१ से १९७२ तक |
| १०५. | श्रीमती यशोदादेवी बोहरा | पीपल्याकलां | सन् १९७१ से १९७६ तक तथा १९८० से निरन्तर |
| १०६. | श्रीमती विजयादेवी सुराणा | रायपुर | सन् १९७१ से १९७६ तक तथा १९८० से निरन्तर |
| १०७. | श्रीमती फूलकंवरबाई कांकरिया | कलकत्ता | सन् १९७१ से १९७६ तक तथा १९८० से निरन्तर |
| १०८. | श्रीमती भंवरीबाई बैद | रायपुर | सन् १९७१ से १९७४ तक |
| १०९. | श्रीमती उमरावबाई मूथा | मद्रास | सन् १९७१ से १९७३ तक व १९७५ से १९७६ तक |
| ११०. | श्री चेनसिंहजी बरला | जयपुर | सन् १९७२ |
| १११. | श्री उदयचन्दजी कोठारी | जयपुर | सन् १९७२ से १९७३ |
| ११२. | श्री गुमानमलजी चोरड़िया | जयपुर | सन् १९७२ से निरन्तर |
| ११३. | श्री शान्तिचन्द्रजी मेहता | चित्तौड़गढ़ | सन् १९७२ से १९८१ तक |
| ११४. | डॉ. नरेन्द्रकुमारजी भानावत | जयपुर | सन् १९७२ से निरन्तर |
| ११५. | श्री नेमीचन्दजी बैद | नोखामण्डी | सन् १९७२ |
| ११६. | श्री पारसराजजी मेहता | जोधपुर | सन् १९७२ से १९७८ तक |
| ११७. | श्री वीरेन्द्रसिंहजी बांठिया | जबलपुर | सन् १९७२ से १९७५ तक |
| ११८. | श्री नोरतनमलजी छल्लाणी | ब्यावर | सन् १९७२ से १९८१ तक व १९८६ से निरन्तर |
| ११९. | श्री चांदमलजी पामेचा | ब्यावर | सन् १९७२ से १९७५ तक |
| १२०. | श्री धूड़चन्दजी बोथरा | गंगाशहर | सन् १९७३ से १९७५ तक |
| १२१. | श्री मोहनलालजी मूथा | जयपुर | सन् १९७३ से निरन्तर |
| १२२. | श्री जयचन्दलालजी सुखाणी | बीकानेर | १९७३ से निरन्तर |
| १२३. | डॉ. मनोहरलालजी दलाल | उज्जैन | सन् १९७३ तथा १९८५ से निरन्तर |
| १२४. | श्री लाभचन्दजी पालावत | जयपुर | सन् १९७३ से १९७७ तक |
| १२५. | श्री ईश्वरचन्दजी बैद | नोखामण्डी | सन् १९७३ तथा १९८६ से निरन्तर |
| १२६. | श्री दीपचन्दजी भूरा | देशनोक | सन् १९७३ से निरन्तर |
| १२७. | श्री कंवरीलालजी कोठारी | नागौर | सन् १९७३ से १९७६ तक |
| १२८. | श्री केशरीचन्दजी सेठिया | मद्रास | सन् १९७३ से निरन्तर |
| १२९. | श्री मूलचन्दजी पारख | नोखा | सन् १९७४ से १९७८ तक |
| १३०. | श्री हसराजजी सुखलेचा | बीकानेर | सन् १९७४ से १९८५ तक |

| | | |
|---|---|---|
| १३१. श्री मोहनलालजी श्रीश्रीमाल | ब्यावर | सन् १९७४ से १९८१ तक तथा १९८३ से निरन्तर |
| १३२. श्री उमरावमलजी ढढ्ढा | जयपुर | सन् १९७४ से १९८४ तक तथा १९८६ से निरन्तर |
| १३३. श्री पारसमलजी नाहर | अजमेर | सन् १९७४ से १९७७ तक |
| १३४. श्री फतहलालजी हिंगर | उदयपुर | सन् १९७४ से निरन्तर |
| १३५. श्री प्रेमचन्दजी कोठारी | बम्बई | सन् १९७४ |
| १३६. श्री पूनमचन्दजी चौपड़ा | रतलाम | सन् १९७४ से निरन्तर |
| १३७. श्रीमती शांता बहिन मेहता | रतलाम | सन् १९७४ से १९७६ तक तथा १९८० से निरन्तर |
| १३८. श्री टी. सुशीलचन्दजी गेलड़ा | मद्रास | सन् १९७५ |
| १३९. श्री दीपचन्दजी कांकरिया | कलकत्ता | सन् १९७५ |
| १४०. श्री मोहनलालजी नाहटा | बीकानेर | सन् १९७५ |
| १४१. श्री शंकरलालजी जैन | भीम | सन् १९७५ से १९८२ तक तथा १९८५ से निरन्तर |
| १४२. श्री फतेहमलजी चोरड़िया | जोधपुर | सन् १९७५ से निरन्तर |
| १४३. श्री उम्मेदमलजी गांधी | जोधपुर | सन् १९७५ से १९७६ तक |
| १४४. श्री रामलालजी रांका | बीकानेर | सन् १९७५ से १९८० तक |
| १४५. श्री देवराजजी बच्छावत | बीकानेर | सन् १९७५ |
| १४६. श्री पूनमचन्दजी बावेल | ब्यावर | सन् १९७५ |
| १४७. श्री बस्तीमलजी तालेरा | पाली | सन् १९७५ से १९७६ |
| [illegible]. श्री राजेन्द्रकुमारजी मांडोत | इन्दौर | सन् १९७५ |
| [illegible]. श्री प्रकाशचन्दजी संचेती | जयपुर | सन् १९७५ से १९७६ |
| [illegible]. डॉ. दौलतसिंहजी कोठारी | दिल्ली | सन् १९७६ से १९७७ तक |
| [illegible]. श्री केसरीलालजी बोदिया | उदयपुर | सन् १९७६ से १९७८ तक |
| [illegible]. डॉ. नन्दलालजी बोदिया | इन्दौर | सन् १९७६ से १९८० तक |
| [illegible]. श्री रणजीतसिंहजी कुम्भट | जयपुर | सन् १९७६ |
| [illegible]. समाजसेवी श्री मानवमुनिजी | इन्दौर | सन् १९७६ से निरन्तर |
| [illegible]. श्री केवलचन्दजी मूथा | रायपुर | सन् १९७६ से निरन्तर |
| [illegible]. श्री जोधराजजी सुराणा | बैंगलोर | सन् १९७६ |
| [illegible]. श्री भूपराज जी जैन | कलकत्ता | सन् १९७६ से १९८२ तक |
| [illegible]. श्री दीपचन्दजी कांकरिया | कलकत्ता | सन् १९७६ से [illegible] तक व १९८५ |
| [illegible]. श्री भंवरलालजी बैद | कलकत्ता | सन् १९७६ से निरन्तर |
| [illegible]. श्री जतनलालजी लूणिया | भीनासर | सन् १९७६ से [illegible] तक व १९८६ से निरन्तर |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १०२. | श्री पारसमलजी मेहता | जयपुर | सन् १९७१ |
| १०३. | श्री हिम्मतसिंहजी सरूपरिया | उदयपुर | सन् १९७१ से १९८४ तक |
| १०४. | श्री अम्बालालजी मट्ठा | उदयपुर | सन् १९७१ से १९७२ तक |
| १०५. | श्रीमती यशोदादेवी बोहरा | पीपल्याकलां | सन् १९७१ से १९७६ तक तथा १९८० से निरन्तर |
| १०६. | श्रीमती विजयादेवी सुराणा | रायपुर | सन् १९७१ से १९७६ तक तथा १९८० से निरन्तर |
| १०७. | श्रीमती फूलकंवरबाई कांकरिया | कलकत्ता | सन् १९७१ से १९७६ तक तथा १९८० से निरन्तर |
| १०८. | श्रीमती भंवरीबाई बैद | रायपुर | सन् १९७१ से १९७४ तक |
| १०९. | श्रीमती उमरावबाई मूथा | मद्रास | सन् १९७१ से १९७३ तक व १९७५ से १९७६ तक |
| ११०. | श्री चेनसिंहजी बरला | जयपुर | सन् १९७२ |
| १११. | श्री उदयचन्दजी कोठारी | जयपुर | सन् १९७२ से १९७३ |
| ११२. | श्री गुमानमलजी चोरड़िया | जयपुर | सन् १९७२ से निरन्तर |
| ११३. | श्री शान्तिचन्द्रजी मेहता | चित्तौड़गढ़ | सन् १९७२ से १९८१ तक |
| ११४. | डॉ. नरेन्द्रकुमारजी भानावत | जयपुर | सन् १९७२ से निरन्तर |
| ११५. | श्री नेमीचन्दजी बैद | नोखामण्डी | सन् १९७२ |
| ११६. | श्री पारसराजजी मेहता | जोधपुर | सन् १९७२ से १९७८ तक |
| ११७. | श्री वीरेन्द्रसिंहजी बांठिया | जबलपुर | सन् १९७२ से १९७५ तक |
| ११८. | श्री नौरतनमलजी छल्लाणी | ब्यावर | सन् १९७२ से १९८१ तक व १९८६ से निरन्तर |
| ११९. | श्री चांदमलजी पामेचा | ब्यावर | सन् १९७२ से १९७५ तक |
| १२०. | श्री धूड़चन्दजी बोथरा | गंगाशहर | सन् १९७३ से १९७५ तक |
| १२१. | श्री मोहनलालजी मूथा | जयपुर | सन् १९७३ से निरन्तर |
| १२२. | श्री जयचन्दलालजी सुखाणी | बीकानेर | १९७३ से निरन्तर |
| १२३. | डॉ. मनोहरलालजी दलाल | उज्जैन | सन् १९७३ तथा १९८५ से निरन्तर |
| १२४. | श्री लाभचन्दजी पालावत | जयपुर | सन् १९७३ से १९७७ तक |
| १२५. | श्री ईश्वरचन्दजी बैद | नोखामण्डी | सन् १९७३ तथा १९८६ से निरन्तर |
| १२६. | श्री दीपचन्दजी भूरा | देशनोक | सन् १९७३ से निरन्तर |
| १२७. | श्री कंवरीलालजी कोठारी | नागौर | सन् १९७३ से १९७६ तक |
| १२८. | श्री केशरीचन्दजी सेठिया | मद्रास | सन् १९७३ से निरन्तर |
| १२९. | श्री मूलचन्दजी पारख | नोखा | सन् १९७४ से १९७८ तक |
| १३०. | श्री हसराजजी सुखलेचा | बीकानेर | सन् १९७४ से १९८५ तक |

| | | |
|---|---|---|
| १३१. श्री मोहनलालजी श्रीश्रीमाल | ब्यावर | सन् १९७४ से १९८१ तक तथा १९८३ से निरन्तर |
| १३२. श्री उमरावमलजी ढढ्ढा | जयपुर | सन् १९७४ से १९८४ तक तथा १९८६ से निरन्तर |
| १३३. श्री पारसमलजी नाहर | अजमेर | सन् १९७४ से १९७७ तक |
| १३४. श्री फतहलालजी हिंगर | उदयपुर | सन् १९७४ से निरन्तर |
| १३५. श्री प्रेमचन्दजी कोठारी | बम्बई | सन् १९७४ |
| १३६. श्री पूनमचन्दजी चौपड़ा | रतलाम | सन् १९७४ से निरन्तर |
| १३७. श्रीमती शांता बहिन मेहता | रतलाम | सन् १९७४ से १९७६ तक तथा १९८० से निरन्तर |
| १३८. श्री टी. सुशीलचन्दजी गेलड़ा | मद्रास | सन् १९७५ |
| १३९. श्री दीपचन्दजी कांकरिया | कलकत्ता | सन् १९७५ |
| १४०. श्री मोहनलालजी नाहटा | बीकानेर | सन् १९७५ |
| १४१. श्री शंकरलालजी जैन | भीम | सन् १९७५ से १९८२ तक तथा १९८५ से निरन्तर |
| १४२. श्री फतेहमलजी चोरड़िया | जोधपुर | सन् १९७५ से निरन्तर |
| १४३. श्री उम्मेदमलजी गांधी | जोधपुर | सन् १९७५ से १९७६ तक |
| १४४. श्री रामलालजी रांका | बीकानेर | सन् १९७५ से १९८० तक |
| १४५. श्री देवराजजी बच्छावत | बीकानेर | सन् १९७५ |
| १४६. श्री पूनमचन्दजी बाबेल | ब्यावर | सन् १९७५ |
| १४७. श्री बस्तीमलजी तालेरा | पाली | सन् १९७५ से १९७६ |
| १४८. श्री राजेन्द्रकुमारजी मांडोत | इन्दौर | सन् १९७५ |
| १४९. श्री प्रकाशचन्दजी संचेती | जयपुर | सन् १९७५ से १९७६ |
| १५०. डॉ. दौलतसिंहजी कोठारी | दिल्ली | सन् १९७६ से १९७७ तक |
| १५१. श्री केसरीलालजी बोर्दिया | उदयपुर | सन् १९७६ से १९७८ तक |
| १५२. डॉ. नन्दलालजी बोर्दिया | इन्दौर | सन् १९७६ से १९८० तक |
| १५३. श्री रणजीतसिंहजी कुम्भट | जयपुर | सन् १९७६ |
| १५४. समाजसेवी श्री मानवमुनिजी | इन्दौर | सन् १९७६ से निरन्तर |
| १५५. श्री केवलचन्दजी मूथा | रायपुर | सन् १९७६ से निरन्तर |
| १५६. श्री जोधराजजी सुराणा | बैंगलोर | सन् १९७६ |
| १५७. श्री भूपराज जी जैन | कलकत्ता | सन् १९७६ से १९८२ तक |
| १५८. श्री दीपचन्दजी कांकरिया | कलकत्ता | सन् १९७६ से १९७७ तक व १९८५ |
| १५९. श्री भंवरलालजी बैद | कलकत्ता | सन् १९७६ से निरन्तर |
| १६०. श्री जतनलालजी लूणिया | भीनासर | सन् १९७६ से १९७७ तक व १९८६ से निरन्तर |

| | | |
|---|---|---|
| १६१. श्री मानमलजी बाबेल | ब्यावर | सन् १९७६ तथा १९८० से १९८४ तक |
| १६२. श्री हस्तीमलजी नाहटा | अजमेर | सन् १९७६ से निरन्तर |
| १६३. श्री नथमलजी सिपानी | सिलचर | सन् १९७६ से १९८० तक |
| १६४. श्री मेघराजजी बोथरा | गंगाशहर | सन् १९७६ से १९७७ तक |
| १६५. श्री गोकुलचन्दजी सिपानी | कडूर | सन् १९७६ निरन्तर |
| १६६. श्री नेमीचन्दजी चौपड़ा | अजमेर | सन् १९७६ से १९७८ तक |
| १६७. श्री नथमलजी सिंघी | बीकानेर | सन् १९७६ से १९७७ तक |
| १६८. श्री मिट्ठालालजी लोढ़ा | ब्यावर | सन् १९७६ से १९८० तक तथा १९८३ से निरन्तर |
| १६९. श्री नवरतनमलजी डेड़िया | ब्यावर | सन् १९७६ से १९८० तक तथा १९८६ से निरन्तर |
| १७०. श्री रामलालजी जैन | दिल्ली | सन् १९७६ से १९७७ तक |
| १७१. श्री प्रकाशचन्दजी सूर्या | इन्दौर | सन् १९७६ तथा १९७८ से निरन्तर |
| १७२. श्री माणकचन्दजी नाहर | मद्रास | सन् १९७६ |
| १७३. श्री अशोककुमारजी नलवाया | मन्दसौर | सन् १९७६ से १९७७ |
| १७४. श्री वीरेन्द्रकुमारजी कोठारी | उज्जैन | सन् १९७६ से निरन्तर |
| १७५. श्री गौतमबाबू गेवा | निम्बाहेड़ा | सन् १९७६ |
| १७६. श्री विजयचन्दजी पारख | बीकानेर | सन् १९७६ से १९७७ तक |
| १७७. श्रीमती रोशन बहिन खाव्या | रतलाम | सन् १९७६ |
| १७८. श्री जबरचन्दजी मेहता | सोजतरोड़ | सन् १९७७ तथा १९८२ से १९८४ त |
| १७९. श्री बालचन्दजी सुखलेचा | भोपाल | सन् १९७७ |
| १८०. श्री समरथमलजी डागरिया | रामपुरा | सन् १९७७ से निरन्तर |
| १८१. श्री तोलारामजी डोसी | देशनोक | सन् १९७७ से निरन्तर |
| १८२. श्री कन्हैयालालजी तालेरा | पूना | सन् १९७७ से निरन्तर |
| १८३. श्री सम्पतराजजी बुर्ड | भीलवाड़ा | सन् १९७७ तथा १९७९ से निरन्त |
| १८४. श्री प्रेमराजजी कांकरिया | अहमदाबाद | सन् १९७७ से १९८४ तक |
| १८५. श्री हुक्मीचन्दजी बोथरा | कवर्धा | सन् १९७७ से १९८३ तक |
| १८६. श्री इन्द्रचन्दजी जैन बैद | राजनान्दगांव | सन् १९७७ से निरन्तर |
| १८७. श्री भूपराजजी नलवाया | इन्दौर | सन् १९७७ से १९८१ तक |
| १८८. श्री पारसराजजी बोहरा | पीपलियाकलां | सन् १९७७ से १९८१ तक |
| १८९. श्री मोहनराजजी बोहरा | बेंगलोर | सन् १९७७ से १९८० तक तथा १९८२ से निरन्तर |
| १९०. श्री भंवरलालजी चौपड़ा | जावद | सन् १९७७ से १९८४ तक तथा १९८६ से निरन्तर |

| | | |
|---|---|---|
| १९१. श्री गेंदालालजी खाबिया | रतलाम | सन् १९७७ से १९८२ तक |
| १९२. श्री हस्तीमलजी मुणोत | रतलाम | सन् १९७७ से १९७८ तक |
| १९३. श्री मोहनलालजी तलेसरा | पाली | सन् १९७७ से १९८० तक |
| १९४. श्री मदनलालजी भंडारी | ब्यावर | सन् १९७४ तथा १९७७ से १९७८ तथा १९८० |
| १९५. श्री कालूरामजी नाहर | ब्यावर | सन् १९७७ से १९७९ तक |
| १९६. श्री रतनलालजी खींचा | ब्यावर | सन् १९७७ |
| १९७. श्री तखतसिंहजी पानगड़िया | उदयपुर | सन् १९७७ से १९७९ तक तथा १९८१ से १९८२ तक |
| १९८. श्री सरदारमलजी धाड़ीवाल | जावरा | सन् १९७७ से १९८० |
| १९९. श्री जीवराजजी कटारिया | हुवली | सन् १९७७ व १९८० से १९८१ |
| २००. श्री राजेन्द्रकुमारजी सेठिया | बीकानेर | सन् १९७७ |
| २०१. श्री टी. आर. सेठिया | दिल्ली | सन् १९७७ |
| २०२. श्री भैरूंलालजी भानावत | कानोड़ | सन् १९७७ से १९७९ तक |
| २०३. श्री मोहनलालजी सेठिया | बीकानेर | सन् १९७७ से १९७९ तथा १९८५ |
| २०४. श्री सोहनलालजी सिपानी | बैंगलोर | सन् १९७८ से निरन्तर |
| २०५. श्री कुबेरसिंहजी सखलेचा | भोपाल | सन् १९७८ से १९८१ तक |
| २०६. श्री उगमराजजी खिंवेसरा | जोधपुर | सन् १९७८ से १९८१ तक |
| २०७. श्री सागरमलजी चपलोत | निम्बाहेड़ा | सन् १९७८ से निरन्तर |
| २०८. श्री सागरमलजी धींग | बड़ीसादड़ी | सन् १९७८ |
| २०९. श्री सुरेन्द्रमोहनजी जैन | दिल्ली | सन् १९७८ से १९८० तक |
| २१०. श्री धर्मचन्दजी गेलड़ा | हैदराबाद | सन् १९७८ से १९८० तक तथा १९८५ |
| २११. श्री सौभागमलजी कोटड़िया | मुंगेली | सन् १९७८ से निरन्तर |
| २१२. श्री डा. प्रेमसुमनजी जैन | उदयपुर | सन् १९७८ से १९८२ तक तथा १९८६ से निरन्तर |
| २१३. श्री भंवरलालजी सेठिया | कलकत्ता | सन् १९७९ से निरन्तर |
| २१४. श्री माणकचंदजी रामपुरिया | कलकत्ता | सन् १९७९ से निरन्तर |
| २१५. श्री शिखरचन्दजी मिन्नी | कलकत्ता | सन् १९७९ से निरन्तर |
| २१६. श्री मदनलालजी कटारिया | रतलाम | सन् १९७९ तथा १९८३ से निरन्तर |
| २१७. श्री धर्मीचन्दजी कोठारी | अजमेर | सन् १९७९ से १९८० तक तथा १९८६ से निरन्तर |
| २१८. श्री हंसराजजी नाहर | अजमेर | सन् १९७९ से १९८१ तक |
| २१९. श्री सम्पतलालजी लोढ़ा | अजमेर | सन् १९७९ से १९८० तक |
| २२०. श्री भौरीलालजी धींग | बड़ीसादड़ी | सन् १९७९ से निरन्तर |
| २२१. श्री हीरालालजी टोडरवाल | ब्यावर | सन् १९७९ से १९८१ तक |

| | | |
|---|---|---|
| २२२. श्री विजयकुमारजी गोलछा | जयपुर | सन् १९७९ से १९८२ तक |
| २२३. श्री राजेन्द्रसिंहजी मेहता | कोटा | सन् १९७९ से १९८२ तक |
| २२४. श्री धर्मचन्दजी पारख | नोखामण्डी | सन् १९७९ से निरन्तर |
| २२५. श्री विनयकुमारजी कांकरिया | अहमदाबाद | सन् १९८० से १९८३ तक तथा १९८५ से निरन्तर |
| २२६. श्री चुन्नीलालजी ललवाणी | जयपुर | सन् १९८० से १९८४ तक |
| २२७. श्री माणकचन्दजी सेठिया | मद्रास | सन् १९८० से १९८१ तक |
| २२८. श्री रिखबदासजी भंसाली | कलकत्ता | सन् १९८० |
| २२९. श्री शांतिलालजी ललवाणी | इन्दौर | सन् १९८० से १९८१ तक |
| २३०. श्री प्यारेलालजी भंडारी | अलीबाग | सन् १९८० से निरन्तर |
| २३१. श्री हंसराजजी कांकरिया | सेवराई | सन् १९८० से १९८३ तक |
| २३२. श्री लालचन्दजी मेहता | अहमदाबाद | सन् १९८० |
| २३३. श्री मंगलचन्दजी गांधी | सोजतरोड़ | सन् १७८० से १९८१ तक |
| २३४. श्रीमती स्वर्णलता बोथरा | बीकानेर | सन् १९८० से १९८२ तक |
| २३५. श्री वृद्धिचन्दजी गोठी | बेतुल | सन् १९८० से १९८२ तक |
| २३६. श्री रिखबचन्दजी कटारिया | रतलाम | सन् १९८१ से निरन्तर |
| २३७. श्री मांगीलालजी पारख | बालेसर दुर्गावता | सन् १९८१ से १९८३ तक |
| २३८. श्री महावीरचन्दजी गेलड़ा | हैदराबाद | सन् १९८१ से निरन्तर |
| २३९. श्री चुन्नीलालजी सांखला | बालेसर सत्ता | सन् १९८१ से निरन्तर |
| २४०. श्री जम्बूकुमारजी मूथा | बैंगलोर | सन् १९८१ से निरन्तर |
| २४१. श्री बाबूलालजी गादिया | उज्जैन | सन् १९८१ |
| २४२. श्रीमती डा. हीरा बहिन बोदिया | इन्दौर | सन् १९८१ से १९८४ तक |
| २४३. श्री भीखमचन्दजी खीमेसरा | बैंगलोर | सन् १९८१ |
| २४४. श्री रेखचन्दजी सांखला | खैरागढ़ | सन् १९८१ से १९८३ तक |
| २४५. श्री प्रेमराजजी सोमावत | अहमदाबाद | सन् १९८१ से १९८२ तक तथा १९८५ से निरन्तर |
| २४६. श्री चन्दनमलजी जैन | देवगढ़ मदारिया | सन् १९८१ तथा ८६ से निरन्तर |
| २४७. श्री रतनलालजी वरड़िया | सरदारशहर | सन् १९८१ से निरन्तर |
| २४८. श्री भंवरलालजी बोरूंदिया | ब्यावर | सन् १९८१ से १९८२ तक १९८६ से निरन्तर |
| २४९. श्री उत्तमचन्दजी गेलड़ा | मद्रास | सन् १९८१ से निरन्तर |
| २५०. श्री हरखचन्दजी खींवेसरा | मद्रास | सन् १९८१ |
| २५१. श्री माणकचन्दजी कोठारी | बगलोर | सन् १९८१ से १९८२ तक |
| २५२. श्री खेमचन्दजी सेठिया | बीकानेर | १९८१ से निरन्तर |
| २५३. श्री कान्तिलालजी कांकरिया | अहमदाबाद | सन् १९८२ से १९८४ तक |

| | | |
|---|---|---|
| २५४. श्री रोशनलालजी मेहता | अहमदाबाद | सन् १९८२ |
| २५५. श्री शान्तिलालजी मेहता | अहमदाबाद | सन् १९८२ |
| २५६. श्री प्रकाशचन्दजी कांकरिया | इन्दौर | सन् १९८२ से १९८५ तक |
| २५७. श्री शीतलचन्दजी नलवाया | इन्दौर | सन् १९८२ से निरन्तर |
| २५८. श्री कानसिंहजी मालू | अजमेर | सन् १९८२ से १९८४ तक |
| २५९. श्रीमती प्रेमलता जैन | अजमेर | सन् १९८२ से निरन्तर |
| २६०. श्री चम्पालजी बुर्ड | ब्यावर | सन् १९८२ से निरन्तर |
| २६१. श्री भंवरलालजी वडेर | बीकानेर | सन् १९८२ तथा १९८४ से निरन्तर |
| २६२. श्री लादूरामजी बिराणी | भीलवाड़ा | सन् १९८२ |
| २६३. श्री हरखलालजी सरूपरिया | चित्तौड़गढ़ | सन् १९८२ |
| २६४. श्री भंवरलालजी भूरा | देशनोक | सन् १९८२ |
| २६५. श्री चम्पालालजी भूरा | देशनोक | सन् १९८२ से १९८३ तक |
| २६६. श्रीमती सूरजदेवी चोरड़िया | जयपुर | सन् १९८२ से निरन्तर |
| २६७. श्री जतनलालजी सांड | कोटा | सन् १९८२ से निरन्तर |
| २६८. श्री अमृतलालजी सांखला | उदयपुर | सन् १९८२ से सन् ८३ तक |
| २६९. श्री प्रेमराजजी चोपड़ा | इन्दौर | सन् १९८३ से ८४ तक |
| २७०. श्री रिखबचन्दजी जैन वैद | दिल्ली | सन् १९८३ से निरन्तर |
| २७१. श्री गजेन्द्रकुमारजी सूर्या | इन्दौर | सन् १९८३ से निरन्तर |
| २७२. श्री सुगनचन्दजी घोका | मद्रास | सन् १९८३ |
| २७३. श्री विजेन्द्रकुमारजी पितलिया | रतलाम | सन् १९८३ से १९८४ तक तथा १९८६ से निरन्तर |
| २७४. श्री हनुमानमलजी सुराणा | गंगाशहर | सन् १९८३ |
| २७५. श्री भंवरलालजी दस्साणी | कलकत्ता | सन् १९८३ से १९८४ तक व १९८६ से निरन्तर |
| २७६. श्री बालचन्दजी सेठिया | भीनासर | सन् १९८३ से १९८५ तक |
| २७७. श्री हरखचन्दजी कांकरिया | अहमदाबाद | सन् १९८३ |
| २७८. श्री भंवरलालजी अभाणी | चित्तौड़गढ़ | सन् १९८३ से निरन्तर |
| २७९. श्री मोतीलालजी दुग्गड़ | देशनोक | सन् १९८३ |
| २८०. श्री घीसूलालजी ढढ्ढा | जयपुर | सन् १९८३ से ८४ तक |
| २८१. श्री बालचन्दजी रांका | मद्रास | सन् १९८३ |
| २८२. श्री किशनसिंहजी सरूपरिया | उदयपुर | सन् १९८३ से निरन्तर |
| २८३. श्री भंवरलालजी जैन | भीलवाड़ा | सन् १९८३ से १९८४ तक |
| २८४. श्री गेहरीलालजी बया | बम्बई | सन् १९८४ |
| २८५. श्री उमरावसिंहजी ओस्तवाल | बम्बई | सन् १९८४ |
| २८६. श्री उत्तमचन्दजी खिवेसरा | बम्बई | सन् १९८४ |

| | | |
|---|---|---|
| २८७. श्री उगमराजजी लोढ़ा | मद्रास | सन् १९८४ से निरन्तर |
| २८८. श्री प्रेमचन्दजी बोथरा | मद्रास | सन् १९८४ से निरन्तर |
| २८९. श्री रतनलालजी हीरावत | दिल्ली | सन् १९८४ से निरन्तर |
| २९०. श्री भूपेन्द्रकुमारजी नांदेचा | खाचरौद | सन् १९८४–८५ |
| २९१. श्री अशोककुमारजी खाबिया | रतलाम | सन् १९८४ तथा १९८६ से निरन्तर |
| २९२. श्री राजेन्द्रकुमारजी मुणोत | बीकानेर | सन् १९८४ से निरन्तर |
| २९३. श्री सुन्दरलालजी बांठिया | बीकानेर | सन् १९८४ से निरन्तर |
| २९४. श्री ललितकुमारजी मट्टा | उदयपुर | सन् १९८४ से निरन्तर |
| २९५. श्री सज्जनसिंहजी कर्णावट | जयपुर | सन् १९८४ |
| २९६. श्री चुन्नीलालजी सोनावत | गंगाशहर | सन् १९८४ |
| २९७. श्री नाथूलालजी जारोली | कानोड़ | सन् १९८४ से निरन्तर |
| २९८. श्री नवलचन्दजी सेठिया | बाड़मेर | सन् १९८४ से निरन्तर |
| २९९. श्री भंवरलालजी सिपानी | मद्रास | सन् १९८४ से निरन्तर |
| ३००. श्री कन्हैयालालजी भूरा | कूचबिहार | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३०१. श्री मणिलालजी घोटा | रतलाम | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३०२. श्री विजयराज नेमीचन्दजी पटवा | पूना | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३०३. श्री धनराजजी कटारिया | राजगुरुनगर | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३०४. श्री रतनलालजी मेहता | बम्बई | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३०५. श्री हुक्मीचन्दजी खिंवेसरा | बम्बई | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३०६. श्री झमकलालजी चोरड़िया | बम्बई | सन् १९८५ |
| ३०७. श्री जयसिंहजी लोढ़ा | ब्यावर | सन् १९८५ |
| ३०८. श्री प्रेमराजजी लोढ़ा | ब्यावर | सन् १९८५ |
| ३०९. श्री गणेशीलालजी बया | उदयपुर | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३१०. श्री शायरचन्दजी कवाड़ | पाली | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३११. श्री चैनराजजी बलाई | सोजत | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३१२. श्री रूपचन्दजी जैन | पाटोदी | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३१३. श्री चम्पालजी कांकरिया | गोहाटी | सन् १९८५ |
| ३१४. श्री जवरीमलजी सुराणा | धूबड़ी | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३१५. श्री केशरीचन्दजी गोलछा | बंगाईगांव | सन् १९८६ से निरन्तर |
| ३१६. श्री थानमलजी पीतलिया | हैदराबाद | सन् १९८६ से निरन्तर |
| ३१७. श्री ईश्वरलालजी ललवाणी | जलगांव | सन् १९८६ " |
| ३१८. श्री दलीचन्दजी चोरड़िया | जलगांव | सन् १९८६ " |
| ३१९. श्री कुन्दनमलजी वैद | कलकत्ता | सन् १९८६ " |
| ३२०. समाजरत्न श्री सुरेशकुमारजी श्रीश्रीमाल | जलगांव | सन् १९८६ " |
| ३२१. श्री चांदमलजी मल्हारा | जलगांव | सन् १९८६ " |

| | | |
|---|---|---|
| ३२२. श्री नैनसुख प्रेमराजजी लूकड़ | जलगांव | सन् १९८६ |
| ३२३. श्री किरणचन्दजी लसोड़ | बम्बई | सन् १९८६ |
| ३२४. श्री मानसिंहजी रिखबचन्दजी डागरिया | जलगांव | सन् १९८६ |
| ३२५. श्री बलवन्तसिंहजी पोखरना | उदयपुर | सन् १९८६ |
| ३२६. श्री अशोककुमारजी सुराना | रायपुर | सन् १९८६ |
| ३२७. श्री पारसमलजी दुगड़ | विल्लुपुरम | सन् १९८६ |
| ३२८. श्री सुरेन्द्रकुमारजी मेहता | मन्दसौर | सन् १९८६ |
| ३२९. श्री मदनलालजी सरूपरिया | चित्तौड़गढ़ | सन् १९८६ |
| ३३०. श्री धनराजजी कोठारी | ब्यावर | सन् १९८६ |
| ३३१. श्री ताराचन्दजी सोनावत | गंगाशहर | सन् १९८६ |
| ३३२. श्री पुखराजजी बोथरा | गोहाटी | सन् १९८६ |
| ३३३. श्री रिखबचन्दजी छल्लाणी | मैसूर | सन् १९८६ |
| ३३४. श्री सम्पतलालजी कोटड़िया | उटी (ऊटकमण्ड) | सन् १९८६ |
| ३३५. श्री गुलाबचन्दजी बोहरा | मद्रास | सन् १९८६ |
| ३३६. श्री नरेन्द्र भाई गुलाबचन्दजी जोन्सा | बम्बई | सन् १९८६ |
| ३३७. श्री मोहनलालजी भटेवरा | कोटा | सन् १९८६ |
| ३३८. श्री प्रकाशचन्दजी सिसोदिया | मन्दसौर | सन् १९८६ |
| ३३९. श्री चन्दनमलजी कटारिया | हुबली | सन् १९८६ |

## शाखा संयोजक—

| क्र.सं. | नाम | स्थान | वर्ष (कार्यकाल) |
|---|---|---|---|
| १. | श्री कन्हैयालालजी मेहता | मन्दसौर | सन् १९६३ तथा १९६६ से ६७ तथा ६९ से १९७१ तक |
| २. | श्री सम्पतराजजी धाड़ीवाल | रायपुर | सन् १९६३ |
| ३. | श्री जीवनसिंहजी कोठारी | उदयपुर | सन् १९६३ व १९६९ से १९७७ तक |
| ४. | श्री अमरचन्दजी लोढ़ा | ब्यावर | सन् १९६३ |
| ५. | श्री रतनललालजी संचेती | अलवर | सन् १९६३ व १९६६ |
| ६. | श्री कन्हैयालालजी मालू | कलकत्ता | सन् १९६३ |
| ७. | श्रीमती नगीना देवीजी चोरड़िया | दिल्ली | सन् १९६३ |
| ८. | श्री सागरमलजी मुणत | रतलाम | सन् १९६३ |
| ९. | श्री रिखबदासजी भन्साली | कलकत्ता | सन् १९६६ से १९६७ तक तथा १९६९ व १९७६ |

| | | |
|---|---|---|
| १०. श्री परमेश्वरलालजी ताकड़िया | उदयपुर | सन् १९६६ से १९६७ तक |
| ११. श्री भूरचन्दजी देशलहरा | रायपुर | सन् १९६६ से १९६७ तक तथा १९६९ से ७३ तक व १९७७ |
| १२. श्री मणिलालजी जैन | रतलाम | सन् १९६६ से ६७ तक तथा १९६९ से ७३ तक |
| १३. श्री उमरावमलजी चोरड़िया | जयपुर | सन् १९६६ |
| १४. श्री उमरावमलजी जैन (बम्ब) (वकील) | टोंक | सन् १९६६ से ६७ व १९६९ से निरन्तर |
| १५. श्री देसराजजी जैन | केसिंगा | सन् १९६७ व १९६९ से १९७७ तक |
| १६. श्री चुन्नीलालजी ललवाणी | जयपुर | सन् १९६७ व १९६९ से ७१ तक व १९७५ |
| १७. श्री शुभकरणजी कांकरिया | मद्रास | सन् १९६७ |
| १८. श्री राजमलजी चोरड़िया | अमरावती | सन् १९६७ |
| १९. श्री कन्हैयालालजी मूथा | ब्यावर | सन् १९६७ व १९६९ |
| २०. श्री हरकलालजी सरूपरिया | चित्तौड़गढ़ | सन् १९६७ व १९६९ १९८१ तक |
| २१. श्री गौतमलजी भण्डारी | जोधपुर | सन् १९६७ व १९७८ से १९८० तक |
| २२. श्री मूलचन्दजी पारख | नोखा मण्डी | सन् १९६७ तथा १९६९ से १९७३ तक |
| २३. श्री दीपचन्दजी भूरा | करीमगंज | सन् १९६७ व १९६९ से १९७४ तक व १९७६ |
| २४. श्री पीरदानजी पारख | अहमदाबाद | सन् १९६७ |
| २५. श्री खूबचन्दजी चण्डालिया | सरदारशहर | सन् १९६७ |
| २६. श्री रिखबदासजी छल्लाणी | मैसूर | सन् १९६७ तथा १९६९ से १९८५ तक |
| २७. श्री अन्नराजजी जैन | बैंगलोर | सन् १९६७ व १९६९ से १९७५ तक तथा १९८० से ८१ तक |
| २८. श्री देवीलालजी बम्ब | मद्रास | १९६९ से १९८४ तक |
| २९. श्री प्रकाशचन्दजी कोठारी | अमरावती | सन् १९६९ से १९७३ व १९७८ से निरन्तर |
| ३०. श्री बिशनराजजी खिवेसरा | जोधपुर | सन् १९६९ से १९७७ तक |
| ३१. श्री करनीदानजी पारख | अहमदाबाद | सन् १९६९ से १९७४ तक |
| ३२. श्री मोतीलालजी बरड़िया | सरदारशहर | सन् १९६९ से १९७४ तक |
| ३३. श्री प्रकाशचन्दजी मांडोत | इन्दौर | सन् १९६९ से १९७१ तक |
| ३४. श्री जीवराजी कोचरमूथा | बेलगांव | सन् १९६९ से निरन्तर |
| ३५. श्री नाहरसिंहजी राठोड़ | नीमच | सन् १९६९ से १९७४ तक |
| ३६. श्री भंवरलालजी वैद | कलकत्ता | सन् १९७० से १९७५ तक |
| ३७. श्री नोरतनमलजी छल्लाणी | ब्यावर | सन् १९७० से १९७१ तक |
| ३८. श्री राणीदानजी भन्साली | डोंडी लोहारा | सन् १९७० से १९७६ तक |

३९. श्री कन्हैयालालजी नन्दावत — भीलवाड़ा — सन् १९७० से १९७१ तक
४०. श्री सुजानमलजी मारू — बड़ी सादड़ी — सन् १९७० से निरन्तर
४१. श्री नाथूलालजी मास्टर साहब — जावद — सन् १९७० से १९७१ तक
४२. श्री बक्षलालजी कोठारी — छोटीसादड़ी — सन् १९७० से ७७ व ७९ से ८३ तक
४३. श्री राजमलजी कंठालिया — बम्बोरा — सन् १९७० से १९८१ तक
४४. श्री मिलापचन्दजी कोठारी — जेठाणा — सन् १९७१ से १९७३ तक व १९७९
४५. श्री भैरूंलालजी छाजेड़ — अजमेर — सन् १९७१
४६. श्री सुखलालजी दुगड़ — विल्लुपुरम — सन् १९७१ से १९७३ तक
४७. श्री सुरेन्द्रकुमारजी मेहता — मन्दसौर — सन् १९७२ से १९७४ तक
४८. श्री भंवरलालजी मूथा — जयपुर — सन् १९७२ से ७४ तक
४९. श्री कालूरामजी नाहर — ब्यावर — सन् १९७२ से १९७६ तक
५०. श्री लाभचन्दजी कांठेड़ — इन्दौर — सन् १९७२ से ७४
५१. श्री कन्हैयालालजी मूलावत — भीलवाड़ा — सन् १९७२ से ७६ तथा ७९ से निरन्तर
५२. श्री मोतीलालजी घींग — कानोड़ — सन् १९७२ से ७४ तक तथा १९८१ से ८३ तक
५३. श्री नेमीचन्दजी चौपड़ा — अजमेर — सन् १९७२
५४. श्री रिखबदासजी बैद — दिल्ली — सन् १९७२
५५. श्री भंवरलालजी पारख — अजमेर — सन् १९७३ से १९७४ तक
५६. श्री तोलारामजी हीरावत — दिल्ली — सन् १९७३
५७. श्री मूलचन्दजी देशलहरा — रायपुर — सन् १९७४
५८. श्री विजयेन्द्रकुमारजी पीतलिया — रतलाम — सन् १९७४
५९. श्री उत्तमचन्दजी कोठारी — अमरावती — सन् १९७४
६०. श्री ईश्वरचन्दजी बैद — नोखा — सन् १९७४ से १९८५ तक
६१. श्री मनोहरलालजी मालिया — जेठाना — सन् १९७४
६२. श्री पारसमलजी दुगड़ — विल्लुपुरम — सन् १९७४ से १९८५ तक
६३. श्री सम्पतराजजी बोहरा — दिल्ली — सन् १९७४ से १९७५ तक
६४. श्री प्रकाशचन्दजी सूर्या — उज्जैन — सन् १९७४ से १९७७ तक
६५. श्री राजेन्द्रकुमारजी लूणावत — अमरावती — सन् १९७५ से १९७७ तक
६६. श्री उदयलालजी जारोली — नीमच — सन् १९७५ से १९७७ तक
६७. श्री ताराचन्दजी सिंघी — पाली — सन् १९७५ से १९८० तक
६८. श्री मांगीलालजी श्रीश्रीमाल — देवगढ़ — सन् १९७५ से १९७६ व १९७८ से ८३ तक
६९. श्री चुन्नीलालजी देशलहरा — भीम — सन् १९७५ से १९७६ तक
७०. श्री रामपालजी पालावत — खरवा — सन् १९७५ से १९७६ तक
७१. श्री भीखमचन्दजी सेतपालिया — बाबरा — सन् १९७५ से १९७६ तक

| | | |
|---|---|---|
| ७२. श्री माणकचन्दजी डेडिया | रास | सन् १९७५ से १९७६ तक |
| ७३. श्री छगनलालजी रांका | सारोठ | सन् १९७५ से सन् ७६ तक |
| ७४. श्री कन्हैयालालजी कोठारी | नागेलाव | सन् १९७५ से १९७७ तक व १९८६ से निरन्तर |
| ७५. श्री सम्पतराजजी भूरा | भीलवाड़ा | सन् १९७५ से ७६ तक |
| ७६. श्री शान्तिलालजी ललवाणी | इन्दौर | सन् १९७५ से ७९ तक |
| ७७. श्री प्रेमराजजी सोमावत | बड़ाखेड़ा | सन् १९७५ से ७८ व ८३ से ८४ तक |
| ७८. श्री नन्दलालजी नाहर | जेठाणा | सन् १९७५ से ७६ तथा १९८० |
| ७९. श्रीमती भंवरी बाई मूथा | रायपुर | सन् १९७५ से १९७६ तक |
| ८०. श्री सम्पतलालजी बरड़िया | सरदारशहर | सन् १९७५ से १९८३ तक |
| ८१. श्री मोतीलालजी मालू | अहमदाबाद | सन् १९७५ से १९७९ तक |
| ८२. श्री भैरूंलालजी भानावत | कानोड़ | सन् १९७५ से १९७६ तक |
| ८३. श्री मदनलालजी पीपाड़ा | अजमेर | सन् १९७५ से ७७ व ८३–८४ |
| ८४. श्री उमरावमलजी लोढ़ा | रतलाम | सन् १९७५ से १९७७ तक |
| ८५. श्री फूसराजजी चोरड़िया | गोगोलाव | सन् १९७५ से १९७६ तक |
| ८६. श्री बच्छराजजी धाड़ीवाल | देशनोक | सन् १९७५ से निरन्तर |
| ८७. श्री प्रकाशचन्दजी सिसोदिया | मन्दसौर | सन् १९७६ से १९७७ व १९८१ से सन् ८३ तक |
| ८८. श्री भंवरलालजी कातरेला | बैंगलोर | सन् १९७६ |
| ८९. श्री प्रतापचन्दजी पालावत | जयपुर | सन् १९७६ से १९७८ तक |
| ९०. श्री कमलचन्दजी लूणिया | बीकानेर | सन् १९७६ से १९७७ तक |
| ९१. श्री शान्तिलालजी कांठेड़ | फतेहनगर | सन् १९७६ से ७७ तथा ७९ से ८३ तक |
| ९२. श्री जीवराजजी सेठिया | सिलचर | सन् १९७६ से १९८३ तक |
| ९३. श्री नवरतनमलजी बोथरा | चांगाटोला | सन् १९७६ |
| ९४. श्री चुन्नीलालजी रामपुरिया | भीनासर | सन् १९७६ |
| ९५. श्री सोहनलालजी डागा | कडूर | सन् १९७६ से १९८२ तक |
| ९६. श्री कंवरीलालजी कोठारी | नागौर | सन् १९७७ से निरन्तर |
| ९७. श्री गेंदालालजी बैद | चांगाटोला | सन् १९७७ तथा ७८ व ८६ से निरन्तर |
| ९८. श्री रोशनलालजी कोठारी | आमेट | सन् १९७७ |
| ९९. श्री धनराजजी भंसाली | डोंडीलोहारा | सन् १९७७ से १९८५ तक |
| १००. श्री मनोहरलालजी जैन | पीपलिया मण्डी | सन् १९७७ से निरन्तर |
| १०१. श्री कस्तूरचन्दजी | कलकत्ता | सन् १९७७ |
| १०२. श्री किशनलालजी भूरा | करीमगंज | सन् १९७७ व १९८१ से निरन्तर |
| १०३. श्री मोहनलालजी कांकरिया | गोगोलाव | सन् १९७७ व १९८२ |
| १०४. श्री मूलचन्दजी सहलोत | निकुंभ | सन् १९७७ से निरन्तर |

| नाम | स्थान | अवधि |
| --- | --- | --- |
| ०५. श्री सागरमलजी चपलोत | निम्बाहेड़ा | सन् १९७७ |
| ०६. श्री जीवनकुमारजी नाहर | वेगूं | सन् १९७७ से निरन्तर |
| ०७. श्री उमरावमलजी चंडालिया | कपासन | सन् १९७७ |
| ०८. श्री हुलासचन्दजी मोदी | राजनान्दगांव | सन् १९७७ से १९८१ तक |
| ०९. श्री पाबूदानजी कांकरिया | दुर्ग | सन् १९७७ |
| १०. श्री मानमलजी बावेल | ब्यावर | सन् १९७७ |
| १. श्री भंवरलालजी विनायकिया | भीलवाड़ा | सन् १९७७ |
| २. श्री प्यारेलालजी पोकरणा | देवगढ़ | सन् १९७७ |
| ३. श्री सज्जनसिंहजी डागा | भोपाल | सन् १९७७ |
| ४. श्री सोहनलालजी गुंदेचा | सोजत रोड़ | सन् १९७७ |
| ५. श्री सुरेशचन्दजी तालेरा | पूना | सन् १९७७ से निरन्तर |
| ६. श्री धनराजजी डागा | बैंगलोर | सन् १९७७ |
| . श्री धर्मीचन्दजी कोठारी | अजमेर | सन् १९७८ व १९८१ |
| . श्री नथमलजी सिंघी | बीकानेर | सन् १९७८ से १९८५ तक |
| . श्री नारायणलालजी मोगरा | भीलवाड़ा | सन् १९७८ |
| . श्री चम्पालालजी सांखला | बालेसर | सन् १९७८ से निरन्तर |
| श्री हुलासचन्दजी वैद | गंगाशहर | सन् १९७८ से ७९ |
| श्री पारसरामजी | बालोतरा | सन् १९७८ से ८४ तक |
| श्री मीट्ठूलालजी सरूपरिया | भदेसर | सन् १९७८ |
| श्री पन्नालालजी लोढ़ा | चिकारड़ा | सन् १९७८ से निरन्तर |
| श्री रिखबचन्दजी बागरेचा | गढ़सिवाणा | सन् १९७८ से १९८१ तक |
| श्री भीखमचन्दजी चोरड़िया | फलोदी | सन् १९७८ से निरन्तर |
| श्री दुलीचन्दजी कांकरिया | गोगोलाव | सन् १९७८ से १९८१ तक |
| श्री मोतीलालजी चण्डालिया | कपासन | सन् १९७८ से निरन्तर |
| श्री शान्तिलालजी नागोरी | बम्बोरा | सन् १९७८ से १९८३ तक |
| श्री मदनलालजी नन्दावत | भीण्डर | सन् १९७८ से निरन्तर |
| श्री राणुलालजी कोटड़िया | लोहावट | सन् १९७८ से १९७९ तक |
| श्री धूलचन्दजी नाहर | जेठाणा | सन् १९७८ से १९७९ व १९८१ से ८३ तक |
| श्री दूलहराजजी रांका | जयनगर | सन् १९७८ से १९८३ तक |
| श्री जतनराजजी मेहता | मेड़ता | सन् १९७८ |
| श्री जबरचन्दजी मेहता | सोजतरोड़ | सन् १९७८ से १९८१ तक |
| ी वीरेन्द्रसिंहजी लोढ़ा | उदयपुर | सन् १९७८ से निरंतर |
| ीमती कमलादेवी खाब्या | भोपाल | सन् १९७८ से निरन्तर |
| ी मोहनलालजी तांतेड़ | बैतूल | सन् १९७८ से १९७९ तक |

| | | |
|---|---|---|
| १३९. श्री चन्दनमलजी बोथरा | दुर्ग | सन् १९७८ |
| १४०. श्री सुरेन्द्रकुमारजी रीयावाले | दमोह | सन् १९७८ |
| १४१. श्री शौकीनलालजी चेलावत | जावद | सन् १९७८ से १९८५ तक |
| १४२. श्री अशोककुमारजी बाफना | खिड़किया | सन् १९७८ से १९८४ तक |
| १४३. श्री निर्मलकुमारजी देशलहरा | कवर्धा | सन् १९७८ से निरन्तर |
| १४४. श्री फकीरचन्दजी पावेचा | जावरा | सन् १९७८ से निरंतर |
| १४५. श्री सौभागमलजी जैन | मनावर | सन् १९७८ से निरन्तर |
| १४६. श्री आनन्दीलालजी कांठेड़ | नागदा जंक. | सन् १९७८ से १९८१ तक |
| १४७. श्री अनराजजी नाहटा | नगरी (रायपुर) | सन् १९७८ से १९८२ तक |
| १४८. श्री अशोककुमारजी नलवाया | मन्दसौर | सन् १९७८ |
| १४९. श्री शान्तिलालजी चौधरी | नीमच | सन् १९६९ से १९७९ तक तथा १९८६ से निरन्तर |
| १५०. श्री सोहनलालजी कोटड़िया | शाहदा | सन् १९७८ से निरन्तर |
| १५१. श्री कन्हैयालालजी बोथरा | रतलाम | सन् १९७८ से निरन्तर |
| १५२. श्री ज्ञानचन्दजी गोलछा | रायपुर | सन् १९७८ से १९८३ तक |
| १५३. श्री गजेन्द्र कुमारजी सूर्या | उज्जैन | सन् १९७८ से १९७९ तक |
| १५४. श्री शान्तिलालजी सांड | बैंगलोर | सन् १९७८ |
| १५५. श्री हीरालालजी कटारिया | हिंगनघाट | सन् १७७८ से १९८३ तक |
| १५६. श्री नवलमलजी पूगलिया | नागपुर | सन् १९७८ |
| १५७. श्री हेमकरणजी सुराणा | यवतमाल | सन् १९७८ से निरन्तर |
| १५८. श्री भंवरलालजी सेठिया | कलकत्ता | सन् १९७८ |
| १५९. श्री लूणकरणजी हीरावत | दिल्ली | सन् १९७८ से १९७९ तक |
| १६०. श्री रामचन्द्रजी जैन | केसिंगा | सन् १९७८ से निरन्तर |
| १६१. श्री बालचन्दजी सेठिया | करीमगंज | सन् १९७८ |
| १६२. श्री अमरचन्दजी लूंकड़ | जगदलपुर | सन् १९७८ से १९८१ तक |
| १६३. श्री उमरावसिंहजी ओस्तवाल | बम्बई | सन् १९७८ से १९८१ तक |
| १६४. श्री धूलचन्दजी कुदाल | कानोड़ | सन् १९७८ से १९७९ तक |
| १६५. श्री देवीलालजी बोहरा | रूण्डेड़ा | सन् १९७८ से निरन्तर |
| १६६. श्री केशरीचन्दजी गोलछा | बंगईगांव | सन् १९७८ से १९८४ तक |
| १६७. श्री शान्तिलालजी धींग | खैरोदा व कानोड़ | १९७८ से निरन्तर |
| १६८. श्री शान्तिलालजी मिन्नी | कलकत्ता | सन् १९७९ |
| १६९. श्री मणिलालजी जैन | बैंगलोर | सन् १९७९ |
| १७०. श्री केवलचन्दजी श्रीश्रीमाल | दुर्ग | सन् १९७९ से १९८३ तक |
| १७१. श्री चांदमलजी पोरवाल | मन्दसौर | सन् १९७९ |
| १७२. श्री तेजमलजी भंडारी | कंजारड़ा | सन् १९७९ से निरन्तर |

७३. श्री चांदमलजी बड़ोला — ब्यावर — सन् १९७९ से १९८१ तक
७४. श्री मदनलालजी सरूपरिया — भदेसर — सन् १९७९ से निरन्तर
७५. श्री पारसचन्दजी धाड़ीवाल — कोटा — सन् १९७९ से १९८२ तक
७६. श्री घीसूलालजी ढढ्ढा — जयपुर — सन् १९७९ से १९८२ तक
७७. श्री मूलचन्दजी पगारिया — मावली — सन् १९७९ से निरन्तर
७८. श्री नेमचन्दजी जैन — चण्डीगढ़ — सन् १९७९ से निरन्तर
७९. श्री जयचन्दलालजी बाफना — कुनूर — सन् १९७९
८०. श्री भंवरलालजी दस्साणी — कलकत्ता — सन् १९८० से १९८२ तक
१. श्री इन्द्रचन्जी नाहटा — अहमदाबाद — सन् १९८० से १९८३ तक
२. श्री प्रकाशचन्दजी सुराणा — बेतुल — सन् १९८० से निरन्तर
३. श्री प्रेमराचजी चौपड़ा — इन्दौर — सन् १९८० से ८२ तथा ८५ से निरन्तर
४. श्री शान्तिलालजी सूर्या — उज्जैन — सन् १९८० से निरन्तर
५. श्री भीखमचन्दजी पीपाड़ा — अजमेर — सन् १९८०
६. श्री भंवरलालजी छाजेड़ — गंगाशहर — सन् १९८०
७. श्री राणुलालजी बुरड़ — लोहावट — सन् १९८० से १९८४ तक
८. श्री जम्बूकुमारजी बाफना — कुनूर — सन् १९८० से निरन्तर
९. श्री मनसुखलालजी कटारिया — राणावास — सन् १९८० से १९८४ तक
०. श्री मानमलजी गन्ना — भीम — सन् १९८० से १९८४ तक
१. श्री चांदमलजी पोखरना — मन्दसौर — सन् १९८०
२. श्री करनीदानजी सुराणा — गंगाशहर — सन् १९८१
३. श्री फतहमलजी पटवा — जोधपुर — सन् १९८१ से १९८२ तक
४. श्री मोहनलालजी तालेड़ा — पाली — सन् १९८१ से निरन्तर
५. श्री रतनलालजी जैन — सवाईमाधोपुर — सन् १९८१ से निरन्तर
६. श्री भंवरलालजी जैन — श्यामपुरा — सन् १९८१ से निरन्तर
७. श्री सुरेशजी मूथा — दिल्ली — सन् १९८१ से १९८२ तक
८. श्री सूरजमलजी कांकरिया — रायगंज — सन् १९८१ से १९८३ तक
९. श्री बाबूलालजी भटेवरा — नगरी (मन्दसौर) — सन् १९८१ से निरन्तर
०. श्री फूलचन्दजी गोलछा — धमतरी — सन् १९८१
१. श्री डॉ. अमृतलालजी चौपड़ा — खैरागढ़ — सन् १९८१ से १९८३ तक
२. श्री भंवरलालजी लूणावत — विलासीपाड़ा — सन् १९८२ से निरन्तर
३. श्री अमानमलजी पारख — धर्मनगर — सन् १९८२ से १९८५ तक
४. श्री मोहनलालजी बोथरा — गोहाटी — सन् १९८२ से निरन्तर
५. श्री हनुमानमलजी सेठिया — खगड़ा — सन् १९८२
६. श्री हनुमानमलजी बोथरा — रामपुरहाट — सन् १९८२ से निरन्तर
७. श्री भीखमचन्दजी चौपड़ा — बेंगलोर — सन् १९८२

| | | |
|---|---|---|
| २०८. श्री तेजमलजी नाहर | बालोद | सन् १९८२ से १९८३ तक |
| २०९. श्री अनराजजी बांठिया | दल्लीराजहरा | सन् १९८२ से निरन्तर |
| २१०. श्री घनराजजी बागमार | डोंडी | सन् १९८२ से निरन्तर |
| २११. श्री अचलचन्दजी कोटड़िया | धमतरी | सन् १९८२ से १९८३ तक |
| २१२. श्री सूरजमलजी चोरड़िया | खाचरौद | सन् १९८२ से १९८३ तक |
| २१३. श्री सिरेमलजी भंसाली | लोहारा | सन् १९८२ से १९८३ तक |
| २१४. श्री सीतारामजी धर्मपाल | नागदा | सन् १९८२ से १९८३ तक |
| २१५. श्री कन्हैयालालजी छींगावत | नारायणगढ़ | सन् १९८२ से निरन्तर |
| २१६. श्री सिरेमलजी देशलहरा | नेवारी कलां | सन् १९८२ से निरन्तर |
| २१७. श्री गौतमचन्दजी पारख | राजनांदगांव | सन् १९८२ से निरन्तर |
| २१८. श्री मदनलालजी कटारिया | रतलाम | सन् १९८२ |
| २१९. श्री विजयकुमारजी कांठेड़ | अहमदनगर | सन् १९८२ से निरन्तर |
| २२०. श्री पन्नालालजी चोरड़िया | बम्बई | सन् १९८२ से निरन्तर |
| २२१. श्री रसिक भाई धोलकिया | खरियार रोड़ | सन् १९८२ से १९८३ तक |
| २२२. श्री भागचन्दजी सिंघी | अजमेर | सन् १९८२ तथा १९८५ |
| २२३. श्री पन्नालालजी सरूपरिया | अरनेड़ | सन् १९८२ से १९८३ तक |
| २२४. श्री मोहनलालजी श्रीश्रीमाल | ब्यावर | सन् १९८२ |
| २२५. श्री उदयलालजी मांगीलालजी भंडारी | बिलोदा | सन् १९८२ से निरन्तर |
| २२६. श्री जुगराजजी नथमलजी गांधी | बुसी | सन् १९८२ से निरन्तर |
| २२७. श्री बंशीलालजी पोखरना | चित्तौड़गढ़ | सन् १९८२ " |
| २२८. श्री महावीरचन्दजी गोखरू | दूनी | सन् १९८२ " |
| २२९. श्री सुन्दरलालजी सिंघवी | गंगापुर | सन् १९८२ " |
| २३०. श्री महेन्द्रकुमारजी मिन्नी | गंगाशहर | सन् १९८२ " |
| २३१. श्री नानालालजी पोखरना | मंगलवाड़ | सन् १९८२ " |
| २३२. श्री हीरालालजी जारोली | मोरवण | सन् १९८२ से निरन्तर |
| २३३. श्री लालचन्दजी कपूरचन्दजी गुगलिया | रड़ावास | सन् १९८२ से निरन्तर |
| २३४. श्री फूसालालजी डागा | सारण | सन् १९८२ से निरन्तर |
| २३५. श्री मंगलचन्दजी गांधी | सोजत रोड़ | सन् १९८२ से निरन्तर |
| २३६. श्री सम्पतकुमारजी कोटड़िया | उटकमण्ड | सन् १९८२ से १९८५ तक |
| २३७. श्री भूपराजजी जैन | कलकत्ता | सन् १९८३ से निरन्तर |
| २३८. श्री उदयचन्दजी बोथरा | खगड़ा | सन् १९८३ से १९८५ तक |
| २३९. श्री कमलचन्दजी डागा | दिल्ली | सन् १९८३ से निरन्तर |
| २४०. श्री मोहनलालजी चौपड़ा | बैंगलोर | सन् १९८३ से निरन्तर |
| २४१. श्री लालचन्दजी डागा | कडूर | सन् १९८३ से निरन्तर |

| | | |
|---|---|---|
| श्री कन्हैयालालजी ललवाणी | इन्दौर | सन् १९८३ से १९८४ तक |
| श्री दिनेश महेश नाहटा | नगरी | सन् १९८३ से निरन्तर |
| श्री फूसराजजी कांकरिया | गोगोलाव | सन् १९८३ से ८५ तक |
| श्री विजयकुमारजी गोलछा | जयपुर | सन् १९८३ से निरन्तर |
| श्री पारसराजजी मेहता | जोधपुर | सन् १९८३ से १९८५ तक |
| श्री राजमलजी पोरवाल | कोटा | सन् १९८३ से निरन्तर |
| श्री सम्पतलालजी सिपानी | सिलचर | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री प्रकाशचन्दजी सोनी | खरियार रोड़ | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री रोशनलालजी मेहता | अहमदाबाद | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री अशोककुमारजी जैन | बगुमुन्डा | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री प्रेमचन्दजी कांकरिया | दुर्ग | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री शंकरलालजी श्रीश्रीमाल | बालोद | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री हजारीमलजी भंसाली | लोहारा | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री मीयाचन्दजो कांठेड़ | नागदा | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री सागरमलजी जैन | मन्दसौर | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री अशोककुमारजी दलाल, वकील | खाचरौद | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री रेखचन्दजी सांखला | खेरागढ़ | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री केशरीमलजी धारीवाल | रायपुर | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री राणीदानजी गोलछा | धमतरी | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री सौभागमलजी डागा | हिंगणघाट | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री मूलचन्दजी कोठारी | जेठाना | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री मोहनलालजी जैन | खेतिया | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री चन्दनमलजी जैन | देवगढ़ मदारिया | सन् १९८४ से १९८५ तक |
| श्री जबरचन्दजी छाजेड़ | धमधा | सन् १९८४ से निरंतर |
| श्री लक्ष्मीलालजी जारोली | बम्बोरा | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री लूणकरनजी सोनी | भिलाई | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री चांदमलजी नाहर | छोटीसादड़ी | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री सोहनलालजी सेठिया | सरदारशहर | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री शान्तिलालजी रांका | जयनगर | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री जसराजजी बोथरा | सम्बलपुर | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री गौतमचन्दजी बैद | जगदलपुर | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री सन्तोषचन्दजी चोरड़िया | चांगाटोला | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री उत्तमचन्दजी कोटड़िया | महासमुन्द | सन् १९८४ से निरन्तर |
| श्री विजयलालजी कोटड़िया | कोंडागांव | सन् १९८४ से निरन्तर |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २७६. | श्री नेमीचन्दजी बोहरा | धुलिया | सन् १९८४ से निरन्तर |
| २७७. | श्री राजमलजी खटोड़ | कुर्ला (बम्बई) | सन् १९८४ " |
| २७८. | श्री भंवरलालजी बोहरा | बोरीवली (बम्बई) | सन् १९८४ से निरन्तर |
| २७९. | श्री हुक्मीचन्दजी खींवेसरा | बम्बई | सन् १९८४ |
| २८०. | श्री भंवरलालजी खींवेसरा | बालेश्वर (बम्बई) | सन् १९८४ से निरन्तर |
| २८१. | श्री नेमीचन्दजी नवलखा (पीथरासरवाले) | जलपाईगुड़ी | सन् १९८४ व ८६ से निरन्तर |
| २८२. | श्री जवरीलालजी देशलहरा | गोरेगांव (बम्बई) | सन् १९८४ |
| २८३. | श्रीमती स्मृतिरेखा जारोली | नीमचकैंट | सन् १९८४ से १९८५ |
| २८४. | श्री अभयकुमारजी देशलहरा | प्रतापगढ़ | सन् १९८४ से निरन्तर |
| २८५. | श्री भंवरलालजी चौपड़ा | बाड़मेर | सन् १९८४ से निरन्तर |
| २८६. | श्री प्रकाशचन्दजो बेताला | बंगाईगांव | सन् १९८५ से निरन्तर |
| २८७. | श्री मोहनलालजी गोलछा | हाबली | सन् १९८५ " |
| २८८. | श्री फूसराजजी ललवाणी | बरपेटारोड़ | सन् १९८५ " |
| २८९. | श्री शान्तिलालजी डोशी | डिबरूगढ़ | सन् १९८५ |
| २९०. | श्री ताराचन्दजी भूरा | बिजनी | सन् १९८५ |
| २९१. | श्री किशनलालजी कांकरिया | टंगला | सन् १९८५ से निरन्तर |
| २९२. | श्री नेमीचन्दजी पींचा | कोकड़ाझाड़ | सन् १९८५ |
| २९३. | श्री नवरतनमलजी भूरा | कूच बिहार | सन् १९८५ से निरन्तर |
| २९४. | श्री चम्पालालजी लल्लाणी | धुबड़ी | सन् १९८५ से निरंतर |
| २९५. | श्री पूरनमलजी बोथरा | गोलकगंज | सन् १९८५ |
| २९६. | श्री रेवन्तमलजी डागा | तूफानगंज | सन् १९८५ से निरन्तर |
| २९७. | श्री मुलतानमलजी गोलछा | फालाकांटा | सन् १९८५ से निरन्तर |
| २९८. | श्री करनीदानजी लूनावत | दीनहटा | सन् १९८५ |
| २९९. | श्री कमलचन्दजी भूरा | बासूगांव | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३००. | श्री उदयचन्दजी डागा | अलीपुरद्वार | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३०१. | श्री करनीदानजी सेठिया | तिनसुखिया | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३०२. | श्री चुन्नीलालजी कटारिया | हुबली | सन् १९८५ |
| ३०३. | श्री हर्षद भाई गेला भाई शाह | अहमदाबाद | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३०४. | श्री घीसूलालजी डागा | ताम्बरम (मद्रास) | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३०५. | श्री तोलारामजी मिन्नी | मद्रास | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३०६. | श्री मोहनलालजी चोरड़िया | मैलापुर (मद्रास) | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३०७. | श्री सुगनचन्दजी धोका | तैयर्नपेट (मद्रास) | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३०८. | श्री शुभकरणजी कांकरिया | हैदराबाद | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३०९. | श्री नेमीचन्दजी जैन | जलपाईगुड़ी | सन् १९८५ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३१०. | श्री शान्तिलालजी ललवानी | धार | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३११. | श्री रेगुमलजी बैद | चांगोटोला | सन् १९८५ |
| ३१२. | श्री ज्ञानचन्दजी चिपड़ | अंजड़ | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३१३. | श्री भंवरलालजी चौपड़ा | लोनसरा | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३१४. | श्री अशोककुमारजी भंडारी | खिड़किया | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३१५. | श्री लक्ष्मणसिंहजी गलुंडिया | भुलेश्वर (बम्बई) | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३१६. | श्री प्रकाशचन्दजी मूथा | राजगुरुनगर | सन् १९८५ ,, |
| ३१७. | श्री सुरेशचन्दजी धींग | घाटकोपर (बम्बई) | सन् १९८५ ,, |
| ३१८. | श्री शान्तिभाई भवानजी बावीसी ,, | ,, | सन् १९८५ |
| ३१९. | श्री नरेन्द्र भाई गुलाब भाई जोन्सा ,, | ,, | सन् १९८५ |
| ३२०. | श्री उत्तमचन्दजी लोढ़ा | | सन् १९८५ |
| ३२१. | श्री छगनलालजी गन्ना | ब्यावर | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३२२. | श्री मांगीलालजी बुरड़ | भीम | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३२३. | श्री पुखराजजी चौपड़ा | लोहावट मारवाड़ | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३२४. | श्री जेठमलजी चोरड़िया | बालोतरा | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३२५. | श्री दौलतराजजी बाघमार | वायतु | सन् १९८५ से निरन्तर |
| ३२६. | श्री सोहनलालजी सोनावत | पाटोदी | सन् १९८५ ,, |
| ३२७. | श्री भंवरलालजी कोठारी | फारबीसगंज | सन् १९८५ ,, |
| ३२८. | श्री रामलालजी बोथरा | किशनगंज | सन् १९८५ ,, |
| ३२९. | श्री हनुमानमलजी डोसी | गोलकगंज | सन् १९८६ ,, |
| ३३०. | श्री घूड़चन्दजी बूच्चा | डिबरूगढ़ | सन् १९८६ ,, |
| ३३१. | श्री भूमरमलजी चोरड़िया | सूरतगढ़ | सन् १९८६ ,, |
| ३३२. | श्री रामलालजी बोथरा | मल्कानगिरी | सन् १९८६ ,, |
| ३३३. | श्री पुखराजजी डागा | दीनहटा | सन् १९८६ ,, |
| ३३४. | श्री हनुमानमलजी पारख | खगड़ा | सन् १९८६ ,, |
| ३३५. | श्री सी. पारसमलजी मूथा | धरमनगर | सन् १९८६ ,, |
| ३३६. | श्री अमरचन्दजी गोलेछा | उटी (उटकमंड) | सन् १९८६ ,, |
| ३३७. | श्री गौतमचन्दजी कटारिया | बिल्लुपुरम | सन् १९८६ ,, |
| ३३८. | श्री पुखराजजी डागलिया | हुबली | सन् १९८६ ,, |
| ३३९. | श्री मोहनलालजी बुर्ड | मैसूर | सन् १९८६ ,, |
| ३४०. | श्री गुलाबचन्दजी | गीदम | सन् १९८६ ,, |
| ३४१. | श्री नेमीचन्दजी छाजेड़ | नारायणपुर | सन् १९८६ ,, |
| ३४२. | श्री अमृतलालजी | साजा | सन् १९८६ ,, |
| ३४३. | श्री अशोककुमारजी सियाल | जावद | सन् १९८६ ,, |
| ३४४. | श्री भंवरलालजी श्रीश्रीमाल | अजमेर | सन् १९८६ ,, |
| | | देवगढ़ मदारिया | सन् १९८६ ,, |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३४५. श्री सायरचन्दजी कोटड़िया | जोधपुर | सन् १९८६ | से निरन्तर |
| ३४६. श्री नेमीचन्दजी कांकरिया | गोगोलाव | सन् १९८५ | " |
| ३४७. श्री हंसराजजी सुखलेचा | बीकानेर | सन् १९८६ | " |
| ३४८. श्री किशनलालजी संचेती | नोखा | सन् १९८६ | " |
| ३४९. श्री श्रेणिकराजजी श्रीश्रीमाल | विरमावल | सन् १९८५ | " |
| ३५०. श्री रामलालजी खटोड़ | विजयवाड़ा | सन् १९८६ | " |
| ३५१. श्री मोहनलालजी बोगावत | आदिलाबाद | सन् १९८६ | " |
| ३५२. श्री अमृतलालजी दुगड़ | सोमेसर | सन् १९८६ | " |
| ३५३. श्री महावीरचन्दजी अलीजार | सिकन्दराबाद | सन् १९८६ | " |
| ३५४. श्री के. गूदरमलजी छाजेड़ | बिल्लूर | सन् १९८६ | " |
| ३५५. श्री डी. मोतीलालजी देवड़ा | त्रिवलूर | सन् १९८६ | " |
| ३५६. श्री पारसमलजी मरलेचा | तिरूतनी | सन् १९८६ | " |
| ३५७. श्री एस. डी. प्रेमचन्दजी लोढ़ा | मदुरान्तकम् | सन् १९८६ | " |
| ३५८. श्री धर्मीचन्दजी सुखलेचा | सिंगापरोमल कोइल | सन् १९८६ | " |
| ३५९. श्री माणकचन्दजी बोहरा | चंगलपेट | सन् १९८६ | " |
| ३६०. श्री अन्नराजजी कोठारी | तिरूकाली किमडरम | सन् १९८६ | " |
| ३६१. श्री अशोककुमारजी मूथा | टिंडीवमम | सन् १९८६ | " |
| ३६२. श्री हुक्मीचन्दजी मूथा | कोयम्बटूर | सन् १९८६ | " |
| ३६३. श्री भंवरलालजी सुराना | कालकुरूची | सन् १९८६ | " |
| ३६४. श्री फूलचन्दजी बांठिया | मूलबागल | सन् १९८६ | " |
| ३६५. श्री लक्ष्मीचन्दजी छल्लानी | कोलार | सन् १९८६ | " |
| ३६६. श्री दीपचन्दजी नाहटा | बागरपेठ | सन् १९८६ | " |
| ३६७. श्री बिरधीचन्दजी गन्ना | टिपट्टुर | सन् १९८६ | " |
| ३६८. श्री सुखलालजी दक | नंजनगुड़ी | सन् १९८६ | " |
| ३६९. श्री निर्मलकुमारजी सेठिया | चिकमंगलूर | सन् १९८६ | " |
| ३७०. श्री मनोहरलालजी गांधी | मांडिया | सन् १९८६ | " |
| ३७१. श्री रोशनलालजी नन्दावत | श्रीरंगपट्टनम | सन् १९८६ | " |
| ३७२. श्री शान्तिलालजी मेहता | पांडवपुर | सन् १९८६ | " |
| ३७३. श्री सम्पतराजजी डागा | रानीबेनूर | सन् १९८६ | " |
| ३७४. श्री नेमीचन्दजी डागा | धारवाड़ | सन् १९८६ | " |
| ३७५. श्री शांतिलालजी मूथा | लक्ष्मेश्वर | सन् १९८६ | " |
| ३७६. श्री मदनलालजी लूंकड़ | गंगावती | सन् १९८६ | " |
| ३७७. श्री कंवरलालजी सुखलेचा | सिद्धनूर | सन् १९८६ | " |
| ३७८. श्री मोहनलालजी सहलोत | अस्सीकेरा | सन् १९८६ | |

| | | |
|---|---|---|
| ३७९. श्री मोहनलालजी मूरणोत | जलगांव | सन् १९८६ |
| ३८०. श्री कुनरणमलजी खींवेसरा | बाबरा | सन् १९८६ |
| ३८१. श्री पारसमलजी डेड़िया | खरवा | सन् १९८६ |
| ३८२. श्री अमरचन्दजी खींचा | लीड़ो | सन् १९८६ |
| ३८३. श्री भीखमचन्दजी मूथा | पीसांगन | सन् १९८६ |
| ३८४. श्री उत्तमचन्दजी सांखला | छुईखदान | सन् १९८६ |
| ३८५. श्री सुभाषजी चौपड़ा | भिलाईनगर | सन् १९८६ |
| ३८६. श्री छगनलालजी बोहरा | देवकर | सन् १९८६ |
| ३८७. श्री सम्पतराजजी बरला | नागपुर | सन् १९८६ |
| ३८८. श्री भंवरलालजी चोरड़िया | अलाय | सन् १९८६ |
| ३८९. श्री नैनसुखजी लूंकड़ | जलगांव | सन् १९८६ |

संसार छोड़कर जब श्रीकृष्ण चैतन्य नीलांचल आए तो उन्हें देखकर राजा प्रतापरुद्र के सभा पण्डित वासुदेव सार्वभौम बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने कहा—तुम सन्यासी हो, तरुण हो, तुम्हें वेदान्त पढ़ना चाहिए। श्री चैतन्य ने कहा कि यदि आप पढ़ाने की कृपा करें तो मैं अवश्य पढ़ूंगा।

वासुदेव सार्वभौम उस समय के जाने माने वेदान्ती थे। वेदान्त पढ़ने के लिए उनके पास दूर-दूर से छात्र आते थे। उन्होंने श्री चैतन्य की बात मान ली और वे उन्हें वेदान्त पढ़ाने लगे। कुछ दिनों तक पढ़ने के पश्चात् उन्होंने श्री चैतन्य से पूछा मैं जो कुछ तुम्हें पढ़ा रहा हूं क्या वह तुम्हें समझ में आ रहा है? कारण तुमने कभी कोई शंका व्यक्त नहीं की। श्री चैतन्य ने प्रत्युत्तर दिया आप जब व्यास रचित सूत्र बताते हैं तो मैं समझ जाता हूं किन्तु जब आप उसकी व्याख्या शंकर भाष्य के अनुरूप करते हैं तो वह धूमिल हो जाता है।

ऐसा ही कुछ अर्हतर्षि वागलचिरि ने कहा था:—

सुत्तमेत्त गति चेव गंतुकामेऽवि सेजहा।
एवं लद्धा विसम्मग्गं सभावाओ अकोविते॥

अर्थात् सूत से बंधा पक्षी उड़ना चाहता है पर वह वहीं तक उड़ पाता है जहां तक सूत उसे ले जाता है।

इसी भांति जो सूत्रों में बंधा रहता है अर्थात् परम्परागत अर्थ से जुड़ा रहता है वह कभी सूत्र के अन्तर्निहित अर्थ को समझ नहीं पाता। फलतः अपने लक्ष्य से भटक जाता है। कहने का तात्पर्य यह है जब तक हम गण, गच्छ, सम्प्रदाय आदि के धागे से बंधे रहेंगे तब तक साधना का सच्चा मार्ग हमें प्राप्त नहीं हो सकता।

# दीप से दीप

साधु-मार्ग की परंपरा अनादि-अविच्छिन्न है । आचार ही साधुत्व की प्रायः सत्ता एवं कसौटी हैं अतः वही साधु-मार्ग की धुरी है । धुरी ध्वस्त हो जाय तो रथ पर झण्डी-पताके सजा कर तथा उसके चक्कों पर पालिश करके कुछ समय के लिए चकाचौंध भले ही उपस्थित कर दी जाय, उसे गतिमान नहीं बनाया जा सकता ।

वन्द्य विभूति आचार्य श्री हुक्मीचंदजी म. सा. ने सम्यक्ज्ञान सम्मत क्रिया का उद्घोष करके आचार की सर्वोपरिता का संदेश दिया । इस आचार क्रान्ति ने जिन शासन-परंपरा में प्राण-ऊर्जा का संचार किया । अगले चरण में ज्योतिर्धर जवाहराचार्य ने आगमिक विवेचन की तैजस् छैनी से कल्पित सिद्धांतों की अवान्तर पर्तों को छील-छांटकर "सम्यक् ज्ञान सम्मत क्रिया" को विशुद्ध-शिल्प में तराश दिया । आगे चलकर गणेशाचार्य ने इस विशुद्ध-शिल्प के साक्ष्य में "शांत क्रांति" का अभियान चलाया ।

समता विभूति आचार्य श्री नानेश के सम्यक् निदेशन में शांत-क्रांति का रथ उत्तरोत्तर आगे बढ रहा है । युग पर आश्वासन की सात्विक आभा फैलती जा रही है । विश्वास हिलकोरें लेने लगा है कि सात्विक साध्वाचार का लोप नहीं होगा । अंधकार छंटता और छूटता जा रहा है । दीप से दीप जलते जा रहे हैं ।
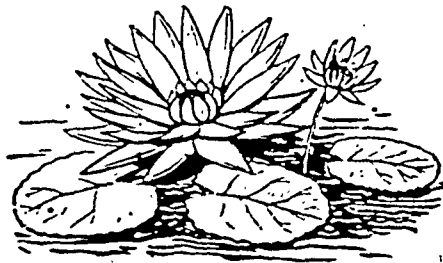
# ी प्रे. ग. बोहरा धर्मपाल जैन छात्रावास, दिलीपनगर, रतलाम

श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ की लितोद्धारक श्री धर्मपाल प्रचार प्रसार समिति अध्यक्ष श्री गणपतराज जी बोहरा के समक्ष से ही धर्मपाल बालकों को संस्कारित करने तु धर्मपाल छात्रावास स्थापन की योजना स्तुत की गई, उन्होंने सहज उदारतापूर्वक दलीपनगर, रतलाम स्थित वर्त्तमान छात्रावास वन एवं भूमि क्रय कर वहां छात्रावास संस्था-न का मार्ग प्रशस्त कर दिया। संघ ने प्राकृतिक रिवेश से शोभित इस रम्य स्थल पर श्री प्रेम-राज गणपतराज बोहरा धर्मपाल जैन छात्रावास का शुभारम्भ दिनांक ७ जुलाई १९७९ मिती आषाढ़ शुक्ला १२ सं. २०३६ शनिवार को वयं उदारमना श्री गणपतराज जी बोहरा के र कमलों से करवाया।

गत ८ वर्षों में यहां ७८ छात्र प्रवेश पा के हैं, जिनमें से अनेक छात्रों ने अनेक सेवाओं सम्मानित स्थान पाकर अपनी प्रतिभा को सिद्ध किया है। वर्त्तमान में १३ गांवों के कक्षा से एम. कॉम तक के २० विद्यार्थी छात्रावास रहकर अध्ययन कर रहे हैं। छात्रों के परीक्षा-फल ८० से १००% के बीच रहता है। उनकी दिनचर्या नियमित है।

छात्रावास में व्यावहारिक शिक्षण के साथ-साथ धार्मिक-नैतिक-शिक्षण की भी समुचित व्यवस्था है। प्रतिदिन सामायिक व प्रार्थना होती है तथा अवकाश के दिन छात्र रतलाम में स्थित सन्त-मुनिराजों व महासती वृन्द के दर्शन प्रवचन का लाभ लेते हैं। विद्यार्थी प्रतिवर्ष श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, बीकानेर द्वारा आयोजित परिचय से लेकर भूषण तक की परीक्षाओं में प्रवेश लेते हैं।

यहां की जलवायु स्वास्थ्य वर्धक है और छात्रों को अन्तःकक्ष तथा मैदानी खेल खेलने के भी पूर्ण अवसर दिए जाते हैं। विद्युत जल तथा ३५ छात्रों के आवास की सभी सुविधाओं से युक्त छात्रावास भवन का परिवेश आकर्षक है।

**धर्मपाल प्रतिबोधक आचार्य श्री नानेश—** के पावन चरण दि. २०-३-८४ को छात्रावास परिसर में पड़े। आचार्य-प्रवर के अपने यशस्वी शिष्य समुदाय सहित पधारने पर छात्र सात्विक आनन्द से झूम उठे। आपश्री के उपदेशामृत का पान कर सभी कृतकृत्य हो उठे। आप श्री की महती अनुकम्पा से महान् त्यागी मुनिराज एवं सती-वृन्द का आवागमन सतत बना रहता है।

**संघ अध्यक्ष श्री चुन्नीलाल जी मेहता** ने अपने दि. १०-८-८५ के छात्रावास प्रवास में पूर्व अध्यक्ष श्री पी. सी. चौपड़ा तथा छात्रावास संचालन समिति के तत्कालीन कर्मठ सदस्य श्री कोमल सिंहजी कूमट के अनुरोध पर छात्रावास के एकमात्र कष्ट-जल के अभाव का निवारण करने हेतु बोअरिंग करवाकर हैंड पम्प लगाने की स्वीकृति दी। तत्काल ही श्री मेहता के कर

कमलों से कार्य का शुभारम्भ भी करवा दिया गया । हैंड पम्प निर्माण कार्य पूर्ण हो गया है और अब जल की पूरी सुविधा हो गई है । श्री मेहता जी ने छात्रों के अनुशासन से प्रभावित होकर छात्रों हेतु कम्बलों व वस्त्रों के वितरण की भी घोषणा की ।

छात्रावास संचालन समिति के सह संयोजक श्री मगनलाल जी मेहता, महिला समिति की रतलाम स्थित सक्रिय बहिनों तथा रतलाम संघ-प्रमुखों का भी छात्रावास को भरपूर सहयोग सदैव उपलब्ध रहता है । छात्रों की अनुशासन पूर्वक सर्वांगीण उन्नति हेतु वयोवृद्ध गृहपति श्री नानालाल जी मठ्ठा अपनी सेवाएं प्रदान कर रहे हैं । छात्रावास का भविष्य उज्ज्वल है ।

**आवश्यकताएं**—छात्रावास के पास पर्याप्त भूमि है पर कमरे कम हैं । अतः चार कक्ष, स्वाध्याय-भवन और अतिथि गृह का निर्माण करवाना एक सामयिक आवश्यकता है । विस्तृत भूखंड में सब्जी-फल आदि उगाने हेतु अनुभवी माली की जरूरत है । व्यायाम के कुछ साधन, खेती के औजार तथा कुछ फर्नीचर की शीघ्र व्यवस्था होना भी आवश्यक है । यद्यपि छात्रावास भवन सुरक्षा हेतु चारों ओर कंटीले तारों की फेंसिंग से सुन्दरता बढ़ी है, पर कमरों की मरम्मत का कार्य भी शीघ्र होना अपेक्षित है ।

विश्वास है कि संघ के दानी-मानी महानुभावों के उदात्त सहयोग से छात्रावास सभी प्रकार से उन्नति करते हुए विकास के पथ पर बढ़ता चला जाएगा ।

संयोजक—विजेन्द्र कुमार पीतलिया
—चांदनी चौक, रतलाम

## शुभकामना

समारोह की आमंत्रिका के लिये आभारी हूं । मैं इससे पहिलें भी मेरी आदरांजलि अर्पित कर चुका हूं । मुझे यह दुःख अवश्य है कि प्रयत्न कर के भी मैं स्वास्थ्य के कारण स्वय इस महोत्सव पर हाजिर रह न पाऊंगा ।

इन्दौर नगर में विराजित प. पू. आचार्य **श्री नानालाल जी म. सा.** एवं समस्त श्रमणवृन्द तथा **महासतियों** की सेवा में, मेरी पत्नी परिवार व मेरी ओर से सश्रद्ध वन्दन नमन अर्पित करने का कष्ट करें ।

आपकी संस्था के २५ वर्ष, जैन जगत के इतिहास के स्वर्ण पृष्ठ हैं । मुझे विश्वास है—यह उत्सव, सिंहावलोकन द्वारा अपने गत इतिहास पर दृष्टिक्षेप कर अपनी शक्तियों को रचनात्मक रूप से सहेज कर अपनी खामियों और त्रुटियों की ओर भी ध्यान देगा और आने वाले वरसों के लिये अधिक कुशल, प्रभावोत्पादक और समग्र आयोजन का अभियान आरम्भ करेगा जो श्रावक-श्राविकाओं के संगठनों को तेजस्वी, चरित्रवान और विकासोन्मुख कर पायेगा ।

उत्सव की समग्र सफलता की शुभ कामनाओं के साथ—

—जवाहरलाल मुणोत
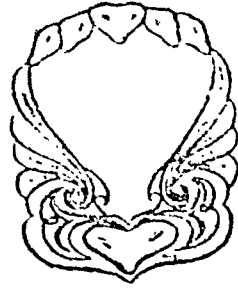
# इतिहास चित्रों के माध्यम से

# ❋ वर्तमान पदाधिकारीगण ❋

संघ अध्यक्ष

श्री चुन्नीलाल जी मेहता
बम्बई

# * वर्तमान पदाधिकारीगण *

उपाध्यक्ष
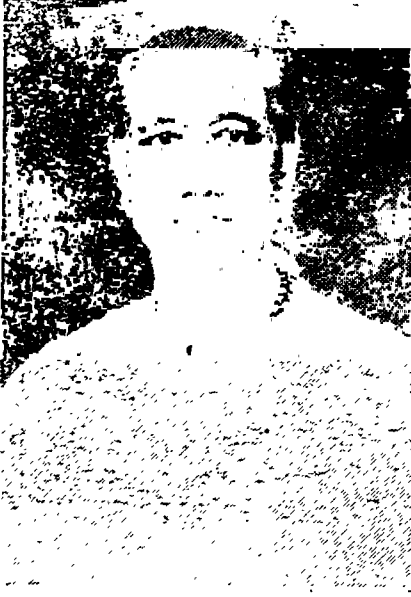
श्री सुन्दरलाल जी कोठारी
वम्बई
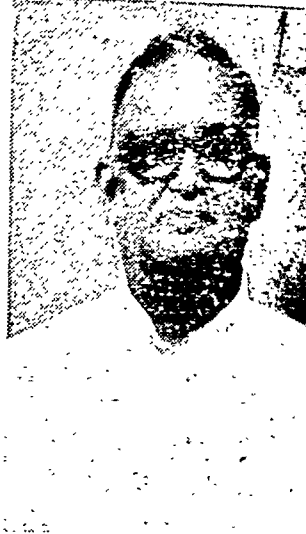
उपाध्यक्ष

श्री सोहनलाल जी सिपानी
वैंगलोर

कोषाध्यक्ष

श्री भंवरलाल जी बडेर
बीकानेर

उपाध्यक्ष

श्री भंवरलाल जी कोठारी
बीकानेर

उपाध्यक्ष

श्री चम्पालाल जी जैन
ब्यावर

# * भूतपूर्व अध्यक्ष एवं सहमन्त्री *

श्री छगनलाल जी बैद
भीनासर

१८-९-६३ से ५-११-६५

श्री पारसमल जी कांकरिया
कलकत्ता

२०-११-६८ से २०-९-७१

उपाध्यक्ष एवं सहमन्त्री
श्री सुन्दरलाल जी तातेड़
बीकानेर
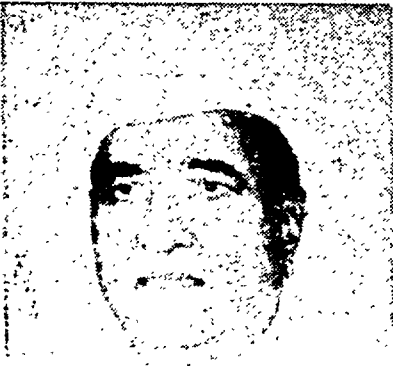
उपाध्यक्ष
९-१०-७२ से ५-१०-७५
सहमन्त्री
१८-९-६३ से ८-१०-७२
४-१०-७८ से १०-१०-८०
सम्प्रति कार्यसमिति सदस्य

श्री गणपतराज जी बोहरा
पीपलियाकलां

६-११-६५ से १९-११-६८

स्व० श्री हीरालाल जी नांदेचा
खाचरोद
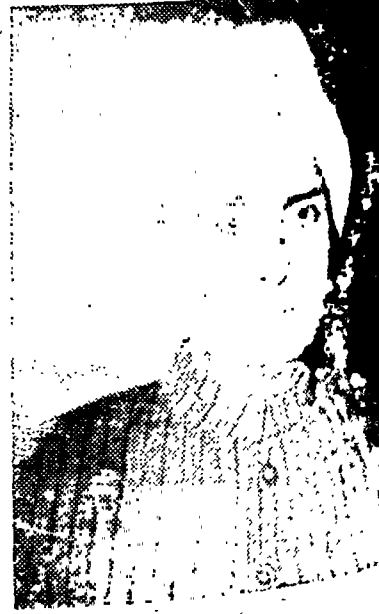
२१-९-७१ से २७-९-७३

# * भूतपूर्व संघ अध्यक्ष एवं मन्त्री *

पूर्व मन्त्री

ुमानमल जी चोरड़िया
ायपुर
६-७३ से १३-१०-७३

श्री जुगराज जी सेठिया
बीकानेर
११-१०-८० से १७-१०-८२

श्री सरदारमल जी कांकरिया
कलकत्ता
४-१०-७८ से १७-१०-८२

ामचन्द जी चौपड़ा
रतलाम
-७७ से १०-१०-८०
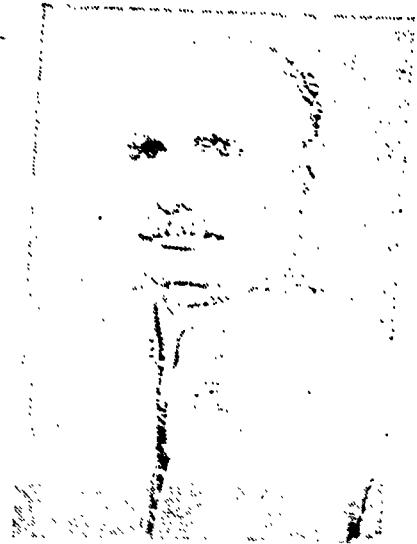
श्री दीपचन्द जी भूरा
देशनोक
१८-१०-८२ से १५-११-८५
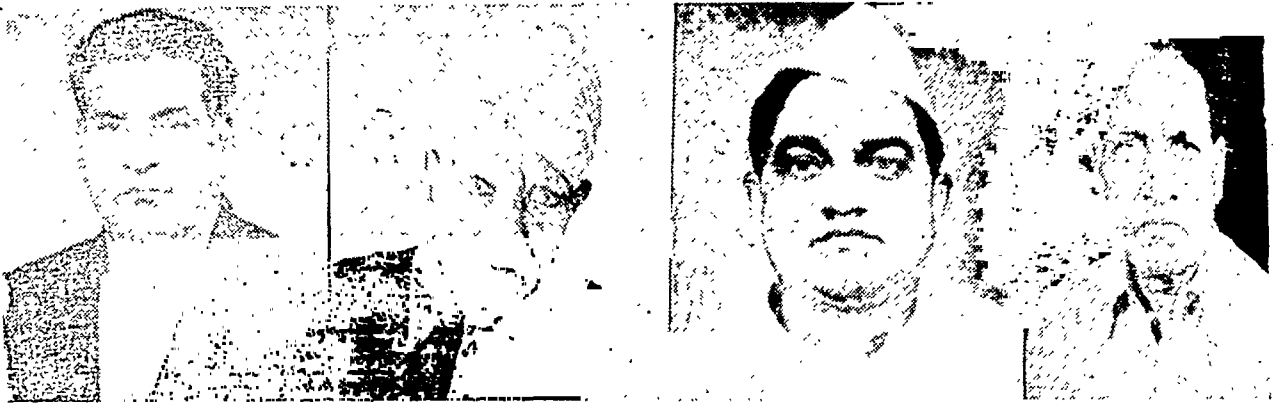
१. स्व. श्री चम्पालालजी सांड, देशनोक–प्रसिद्ध जूट निर्यातक, धर्मपाल प्रवृत्ति सहयोगी,जन्म १९१६ स्वर्गवास १९८
२.स्व.भैरोंदानजी सेठिया बीकानेर–धर्म, समाज एवं साहित्य सेवा में समर्पित, शिक्षा संस्थानों तथा पारमार्थिक संस्था
के संस्थापक, रंग व ऊन के सुप्रसिद्ध व्यवसायीजन्म विजयादशमी सं.१९२३ स्वर्गवास श्रावण शुक्ला ९ संवत् २०१
३. स्व. श्री चम्पालालजी सुराणा रायपुर–संघ के सक्रिय सदस्य, धार्मिक शिविर के प्रेरणा स्रोत, वस्त्र व्यवसायी
४.स्व. श्री हिम्मतसिंहजी सरूपरिया उदयपुर-उदयपुर संघ एवं सु.सां.शिक्षा सोसायटी के अध्यक्ष, जैन शास्त्रों के ज्ञाता

१. स्व. श्री विजयराजजी मूथा मद्रास–प्रसिद्ध व्यवसायी, शिक्षा प्रेमी, धर्मनिष्ठ,जन्म १८९०स्वर्गवास२४जुलाई,१९७
२. स्व. श्री कुन्दनसिंहजी खिमेसरा, उदयपुर–उदयपुर संघ के अध्यक्ष, चांदी के प्रामाणिक व्यवसायी।
३. स्व. सेठ श्री सरूपचन्दजी चोरड़िया, जयपुर–सुप्रसिद्ध रत्नव्यवसायी, धर्मनिष्ठ सुश्रावक एवं समाज प्रेमी
४. स्व.श्री चान्दमलजी पामेचा, ब्यावर–धर्मनिष्ठ समाजसेवी, उत्साही कार्यकर्त्ता, २१जून ७६ को स्वर्गवास।

१. स्व. सेठ श्री जेसराजजी बैद, गंगाशहर–सुप्रसिद्ध समाजसेवी, सुश्रावक, सु. सां. शिक्षा सोसायटी के सहयोगी
२. स्व. श्री गेंदालालजी नाहर, जावरा–धर्मपाल प्रवृत्ति के प्रथम संयोजक एवं उन्नायक।
३. स्व. श्री भीखमचन्दजी भूरा देशनोक-आचार्य श्री के भक्त, धर्म प्रेमी, सु. सां. शिक्षा सोसायटी के सहयोगी
४. स्व. श्री महावीरचन्दजी धाड़ीवाल–रायपुर–संघ के उत्साही, अग्रणी कार्यकर्त्ता, प्रसिद्ध वस्त्र व्यवसायी।

१. स्व. श्री तोलारामजी भूरा, देशनोक–सुप्रसिद्ध समाजसेवी, संघनिष्ठ अग्रणी श्रद्धालु श्रावक ।
२. स्व. श्री मूलचन्दजी पारख, नोखा–नोखामंडी वसाने में अनन्य सहयोग, संघनिष्ठ,श्रद्धालु श्रावक, परम सेवाभावी।
३. स्व. श्री लक्ष्मीचन्दजी वाड़ीवाल, रायपुर–अनन्य श्रद्धालुश्रावक, धर्मनिष्ठ, उदारमना समाजसेवी ।
४. स्व. श्री कुशालचन्दजी गेलड़ा, मद्रास–समाज सुधारक, न्यायप्रेमी, कुशल व्यवसायी, धर्मनिष्ठ, मिलनसार ।

१. स्व. श्री झूमरमलजी वेताला, नोखा–सादाजीवन उच्चविचार, धर्मनिष्ठ, श्री धनराजजी वेताला के पिताजी ।
२. स्व. श्री पाबूदानजी कांकरिया, दुर्ग–संघनिष्ठ, समाजसेवी, धर्मप्रेमी ।
३. स्व. श्री रखवचन्दजी डागरिया, रामपुरा–रत्न व्यवसायी, धर्मनिष्ठ, समाजसेवी, सुश्रावक ।
४. स्व. श्री अमरचन्दजी लोढ़ा, ब्यावर–सरल स्वभावी, प्रवल स्मरणशक्ति, साहित्यप्रेमी, धर्मनिष्ठ, समाजसेवी ।
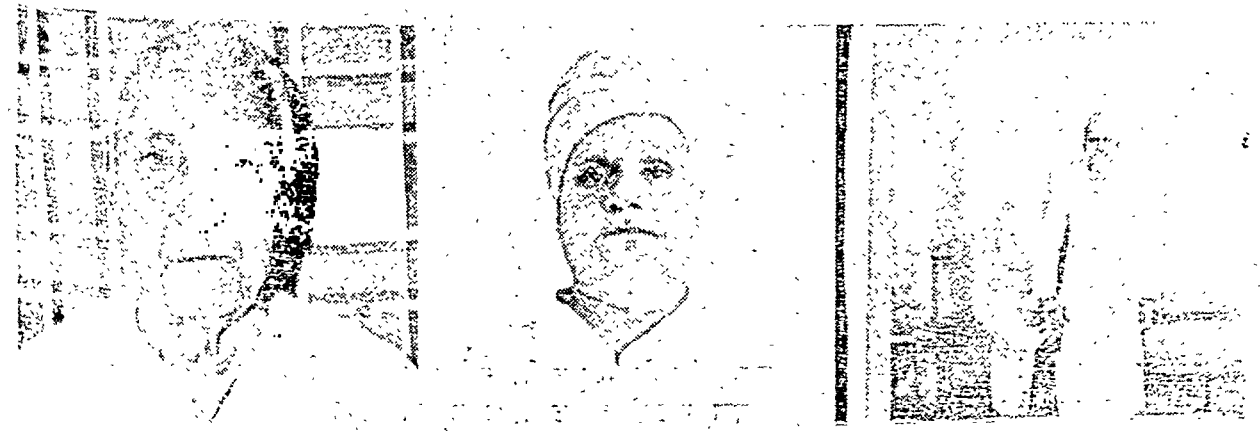
१. स्व. पं. श्यामलालजी ओझा, बीकानेर-अथक परिश्रमी, समाजसेवी, साधु-साध्वियों के अध्यापन में जीवनपर्यन्त रत ।
२. स्व. श्री जीवनचन्दजी वैद, राजनांदगांव–धर्मप्रेमी, समाजसेवी मृदुभाषी, सरलमना, संघनिष्ठ सुश्रावक ।
३. स्व. श्री मोहनलालजी वैद, बीकानेर–समाजसेवी, धर्मप्रेमी सं. १९९१ में बीकानेर में सम्पन्न श्रावक सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष ।
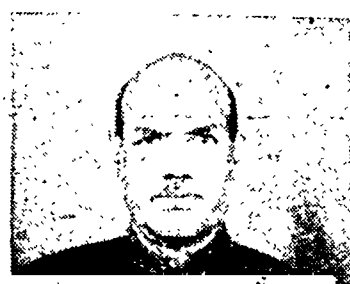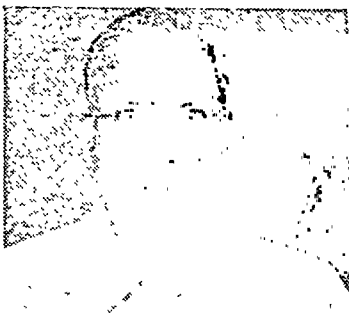
१. श्री कालूराम जी डागा, गंगाशहर–धर्मनिष्ठ, सेवाभावी, सरल स्वभावी, श्रद्धालु श्रावक। संघ हितैषी–
२. श्री फतहचन्द जी डागा, गंगाशहर–सरलमना, मिलनसार, मिष्टभाषी, धर्मप्रेमी। "
३. श्री घूड़चन्द जी डागा, गंगाशहर–मृदुस्वभावी, संघनिष्ठ, श्रद्धालु सुश्रावक, सेवाभावी। "
४. श्री मूलचन्द जी पारख (हिंगुणिया) नोखा–धर्मप्रेमी, उदारचेता, सेवाभावी सुश्रावक। "
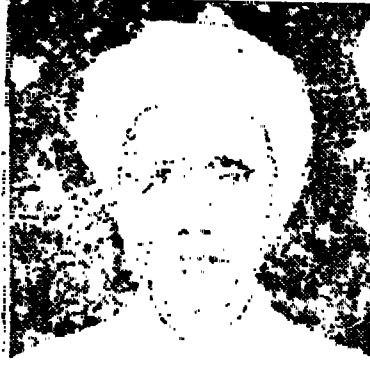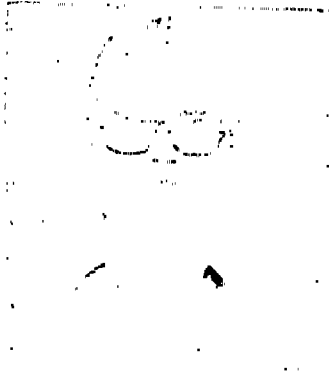
१. श्री भंवरलाल जी बैद, दिल्ली–मृदु स्वभावी, मिष्टभाषी, सरलमना, धर्मप्रेमी।
२. श्री राजमल जी चोरड़िया अमरावती–संघनिष्ठ, धर्मप्रेमी, उत्साही कार्यकर्त्ता।
३. श्री शंकरलाल जी जैन, बालोद—उत्साही, सक्रिय शाखा संयोजक, धर्मनिष्ठ।
४. श्री रामलाल जी बोथरा, गोलकगंज—धर्मप्रेमी, सरल स्वभावी, शाखा संयोजक।

१. श्री बालचन्द रांका, मद्रास—समता युवा संघ के सहमन्त्री, सक्रिय कार्यकर्त्ता।
२. श्री श्रीप्रकाश जैन, ब्यावर—समता बालक मंडली के उत्साही सक्रिय अध्यक्ष।
३. श्री सुशील कोठारी, चिकारड़ा—समता बालक मण्डली के उत्साही सक्रिय सदस्य।
४. श्री सुजानमल जी बोरा, इन्दौर—रजत जयन्ती समारोह के स्वागताध्यक्ष, उदारचेता, धर्मनिष्ठ, उत्साही कार्यकर्त्ता, इन्दौर संघ के अध्यक्ष।
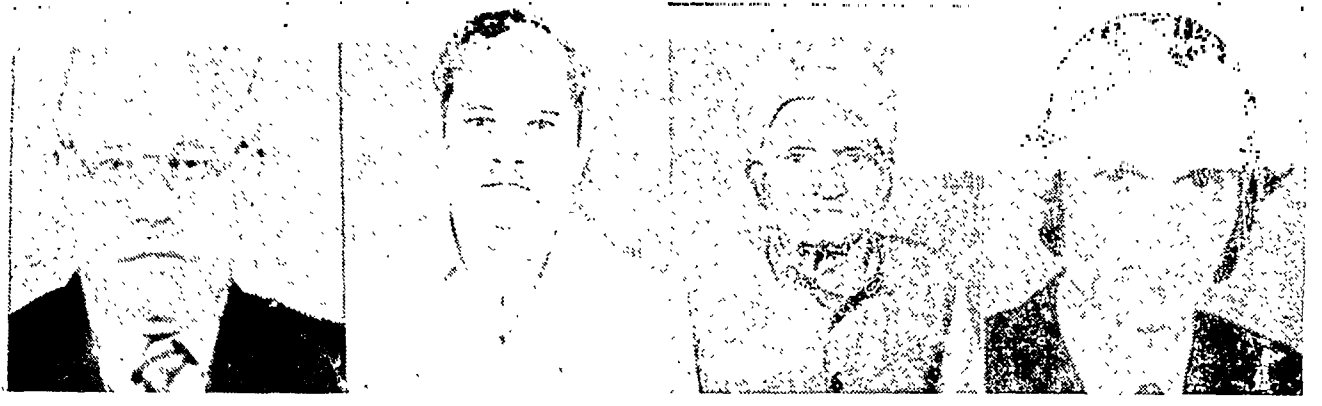
१. श्री विजयेन्द्रजी पीतलिया, रतलाम—संयोजक, धर्मपाल छात्रावास दिलीपनगर, उत्साही,सेवाभावी कार्यकर्त्ता ।
२. श्री धर्मीचन्दजी कोठारी, अजमेर—अभिकर्ता जीवन बीमा निगम, धर्मनिष्ठ, सेवाभावी कार्यकर्त्ता ।
३. श्री हरकलालजी सरूपरिया, चित्तौड़गढ़—वयोवृद्ध श्रद्धालु, सेवाभावी, समाजसेवी, श्रावक ।
४. श्री रिखबचन्दजी जैन, दिल्ली—उत्साही युवा कार्यकर्त्ता, प्रवुद्ध चिन्तक, धर्मप्रेमी, सेवाभावी ।
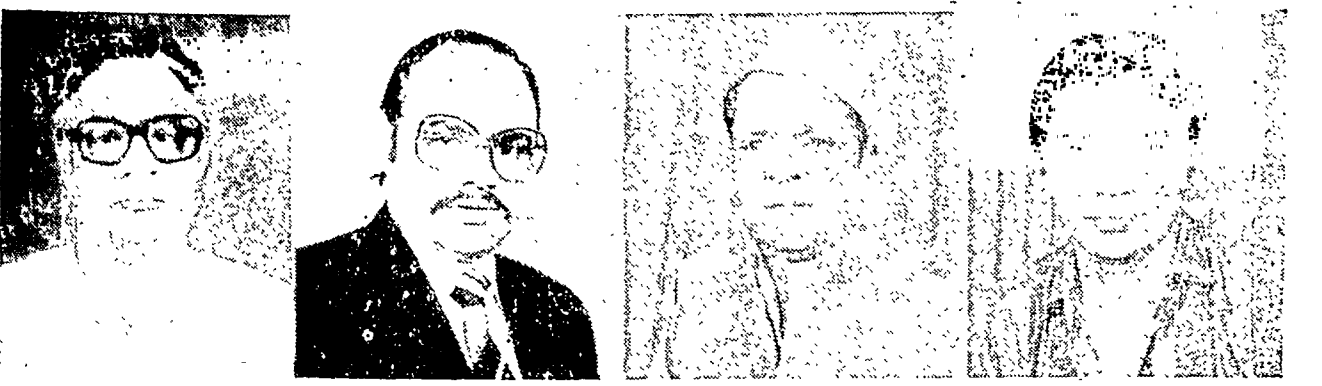
१. श्री शकरलालजी बोथरा, दुर्ग—धर्मप्रेमी, सेवाभावी, समाजसेवी, श्रद्धालु श्रावक ।
२. श्री रतनलालजी हीरावत, दिल्ली—कुशल व्यवसायी, धर्मप्रेमी, उत्साही कार्यकर्त्ता ।
३. श्री नोरतनमलजी छल्लाणी, ब्यावर—अनाज व्यवसायी, साहित्य प्रेमी, समाजसेवी कार्यकर्त्ता ।
४. श्री सायरचन्दजी कवाड़, पाली—उत्साही युवा कार्यकर्त्ता, धर्मनिष्ठ, समाजसेवी ।
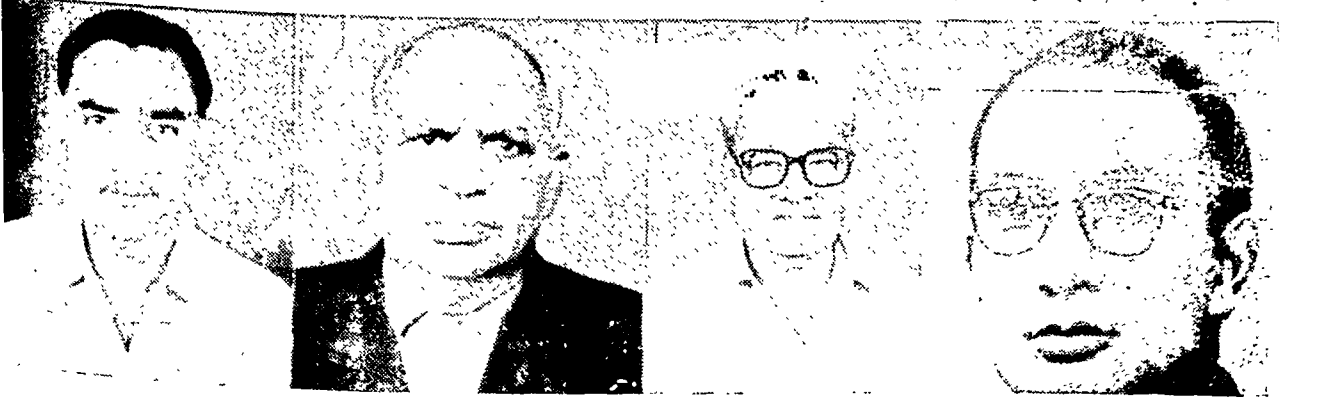
१. श्री मानसिंहजी डागरिया, जलगांव—रत्न व्यवसायी, धर्मप्रेमी, उत्साही, श्रद्धालु कार्यकर्त्ता ।
२. श्री भंवरलालजी सिपानी, मद्रास—धर्मनिष्ठ, उदारचेता, सरल स्वभावी, श्रद्धालु श्रावक ।
३. श्री शान्तिलालजी चौधरी, नीमच—उत्साही, धर्मप्रेमी, समाजसेवी, श्रद्धालु कार्यकर्त्ता ।
४. श्री खेमचन्दजी सेठिया, बीकानेर—प्रसिद्ध लॉयन, सेवाभावी, जागरूक कार्यकर्त्ता, टिकट संग्राहक ।

## कार्यसमिति सदस्य

१. श्री उमरावमलजी ढढ्ढा, जयपुर—पूर्व सहमन्त्री, रत्न व्यवसायी, धर्मनिष्ठ, सेवाभावी श्रावक।
२. श्री चुन्नीलालजी ललवाणी, जयपुर—जीवदया प्रेमी, प्राणिमित्र, ओजस्वीवक्ता, धर्मनिष्ठ।
३. श्री कानसिंहजी मालू, अजमेर—सरल स्वभावी, मिष्टभाषी, धर्मप्रेमी, कार्यकर्त्ता।
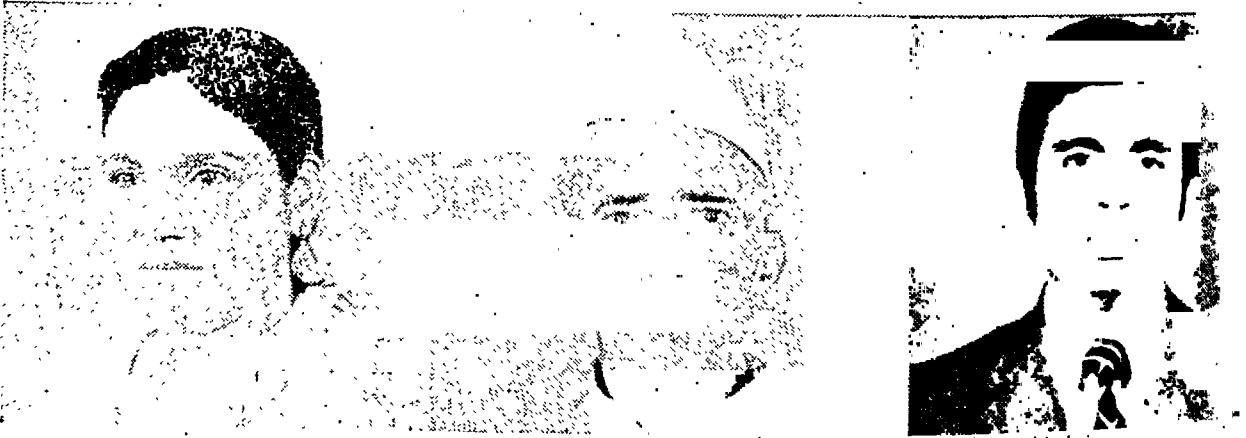
१. श्रीमती प्रेमलता जैन, अजमेर—उपाध्यक्षा म.स, पूर्व सहमंत्री एवं मंत्री म.स., धर्मनिष्ठा, सक्रिय कार्य
२. श्री प्रेमराजजी चौपड़ा, इन्दौर—सरलमना, धर्मनिष्ठ, श्रद्धालु श्रावक, सक्रिय शाखा संयोजक।
३. श्री हनुमानचन्दजी डोसी, डिब्रुगढ़—धर्मप्रेमी, सरल स्वभावी, समाजसेवी कार्यकर्त्ता, शाखा संयोजक

१. श्री रूपचन्दजी वागमार, पाटोदी—समाजसेवी, धर्मप्रेमी, श्रद्धालु श्रावक।
२. श्री जौहरीमलजी सुराणा, धुवड़ी—एडवोकेट, धर्मनिष्ठ, समाजसेवी, सेवाभावी कार्यकर्त्ता।
३. श्री शीतलचन्दजी नलवाया, इन्दौर—रुई के व्यवसायी, धर्मप्रेमी, स्वाध्यायी, कार्यकर्त्ता।
४. श्री लक्ष्मणसिंहजी गन्नुण्डिया, बम्बई—व्यवसायी, धर्मप्रेमी, समाजसेवी, शाखा संयोजक।
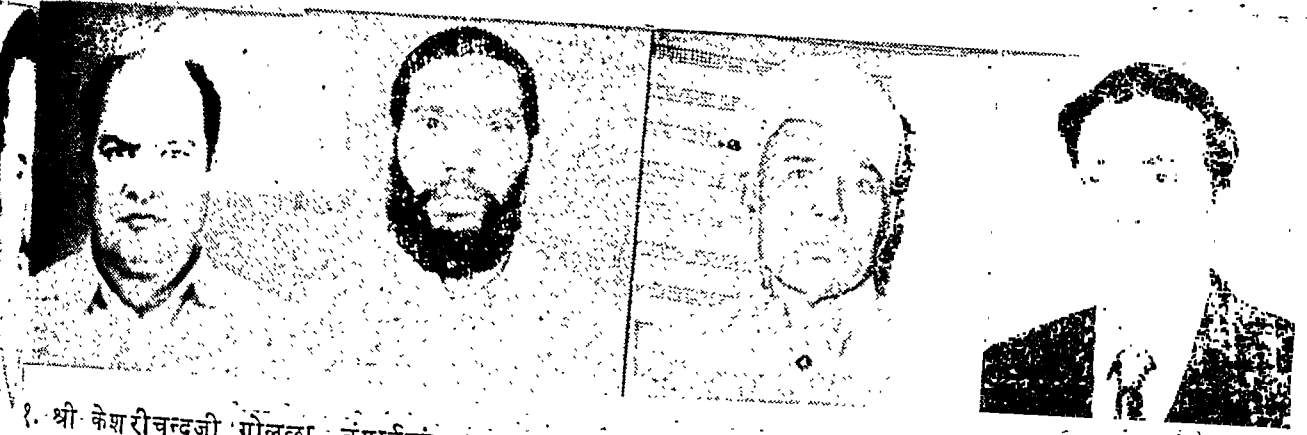
१. श्री केशरीचन्दजी गोलछा, बंगाईगांव—परम उत्साही, सक्रिय, दृढ़ निश्चयी, धर्मनिष्ठ, श्रद्धालु, कार्यकर्त्ता।
२. श्री जम्बूकुमारजी बाफना, कुनूर—सेवाभावी, धर्मनिष्ठ, श्रद्धालु कार्यकर्त्ता।
३. श्री सुजानमलजी मारू, बड़ीसादड़ी—धर्मनिष्ठ, सेवाभावी, श्रद्धालु, स्वाध्यायी, कार्यकर्त्ता।
४. श्री वीरेन्द्रसिंहजी लोढ़ा, उदयपुर—चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट, उदयपुर संघ मन्त्री, सक्रिय कार्यकर्त्ता।

श्री जीवनकुमार जैन, बैंगू—संगीत प्रेमी, उत्साही, धर्मनिष्ठ, सक्रिय कार्यकर्त्ता।
श्री मोहनलालजी बोथरा, गोहाटी—उत्साही, संघनिष्ठ, धर्मप्रेमी कार्यकर्त्ता।
श्री कन्हैयालालजी छींगावत, नारायणगढ़—धर्मप्रेमी, व्यवसायी, श्रद्धालु श्रावक।
श्री घीसुलालजी डागा, ताम्बरम्—सरलस्वभावी, मिलनसार, धर्मप्रेमी श्रावक।

श्री मोहनलालजी गोलछा, हावली—उत्साही, सक्रिय, धर्मनिष्ठ कार्यकर्त्ता।
श्री कन्हैयालालजी बोथरा, रतलाम—उत्साही, धर्मनिष्ठ, कर्मठ श्रद्धालु कार्यकर्त्ता।
श्री मदनलालजो सरूपरिया, भदेसर—उत्साही, कर्मठ स्वाध्यायी, श्रद्धावान कार्यकर्त्ता।
श्री सुगनचन्दजी धोका, तैनमपैठ मद्रास—सरल स्वभावी, धर्मप्रेमी, श्रद्धालु कार्यकर्त्ता।

शाखा संयोजक —

१. श्री मोतीलालजी चंडालिया, कपासन—उत्साही स्वाध्यायी, संघनिष्ठ, धर्मप्रेमी कार्यकर्त्ता।
२. श्री सुन्दरलालजी सिंघवी, गंगापुर—सरल स्वभावी, धर्मप्रेमी, समाजसेवी कार्यकर्त्ता।
३. श्री सागरमलजी चपलोत, निम्बाहेड़ा—वस्त्र व्यवसायी, धर्मप्रेमी, श्रद्धालु कार्यकर्त्ता।
४. श्री मनोहरलालजी जैन, पीपल्यामण्डी—उत्साही, धर्मनिष्ठ, सक्रिय कार्यकर्त्ता।
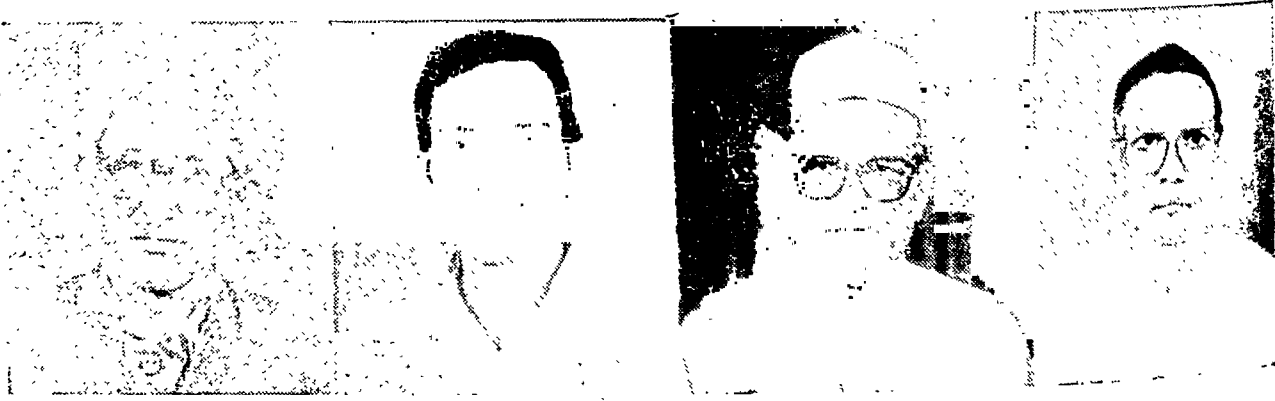
१. श्री देवीलालजी वोहरा, रुण्डेड़ा—स्वाध्यायी, धर्मप्रेमी, संघनिष्ठ, श्रद्धालु कार्यकर्त्ता।
२. श्री गौतमजी पारख, राजनांदगांव—उत्साही, सजग, धर्मनिष्ठ, समाजसेवी कार्यकर्त्ता।
३. श्री जीवराजजी कोचर मूथा, वेलगांव—धर्मप्रेमी, सेवाभावी, सरल स्वभावी श्रावक।
४. श्री सम्पतलालजी सिपानी, सिलचर—उत्साही, प्रबुद्ध, धर्मनिष्ठ कार्यकर्त्ता।
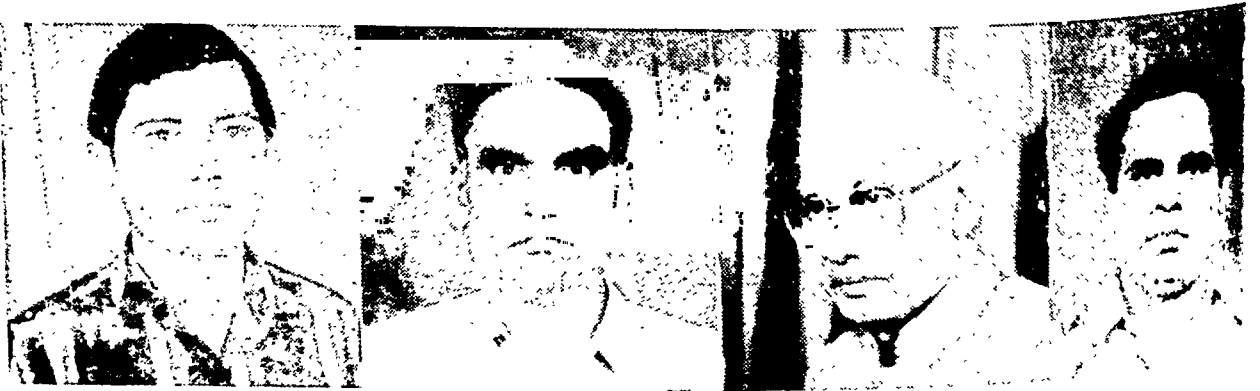
१. श्री उत्तमचन्दजी लोढ़ा, ब्यावर—उत्साही, धर्मप्रेमी, सक्रिय कार्यकर्त्ता।
२. श्री तोलारामजी मिन्नी, मद्रास—धर्मनिष्ठ, मिलनसार, मृदुस्वभावी कार्यकर्त्ता।
३. श्री सोभाग्यमलजी कोटड़िया, मुंगोली—शासनसेवी, धर्मप्रेमी, श्रद्धालु सुश्रावक।
४. श्री मोहनलालजी चोरड़िया, मैलापुर मद्रास—उत्साही, धर्मप्रेमी कार्यकर्त्ता।

कार्यसमिति सदस्य—
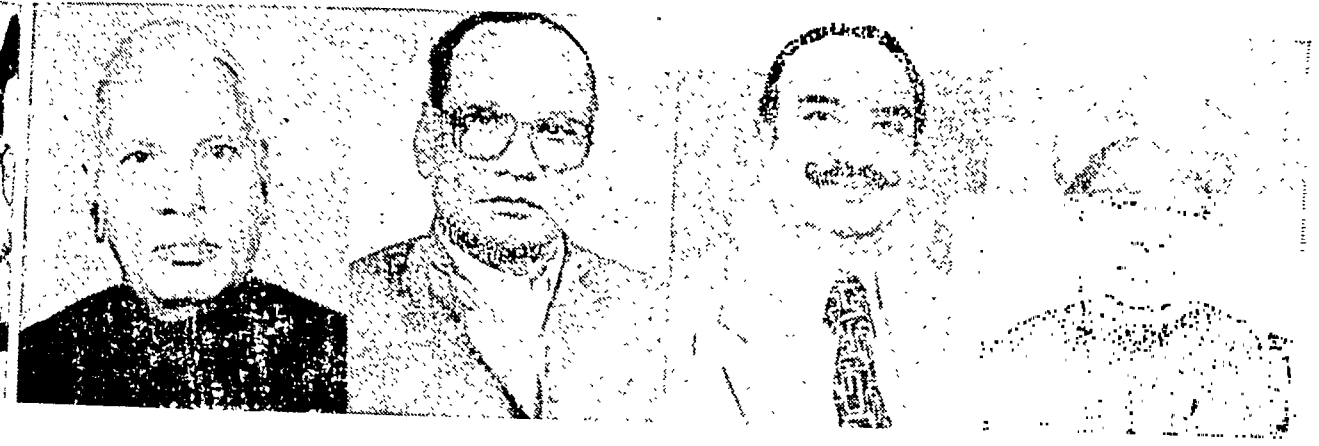
१. श्री कालूरामजी छाजेड़ उदयपुर—संस्थापक सदस्य, वयोवृद्ध, धर्मनिष्ठ, सजग सुश्रावक ।
२. श्री जसकरणजी बोथरा, गंगाशहर—पूर्व सहमन्त्री-कोषाध्यक्ष, सक्रिय, कर्मठ कार्यकर्त्ता ।
३. श्री माणकचन्दजी रामपुरिया, कलकत्ता—पूर्व उपाध्यक्ष, उदारमना, साहित्य मनीषी, धर्मनिष्ठ, शिक्षाप्रेमी ।
४. श्री तोलारामजी डोसी, देशनोक—पूर्व उपाध्यक्ष, धर्मनिष्ठ, सरल स्वभावी, कर्मठ कार्यकर्त्ता ।

१. श्री भंवरलालजी सेठिया, कलकत्ता—धर्मप्रेमी, उदारमना, कर्त्तव्यनिष्ठ सुश्रावक ।
२. श्री मोतीलालजी मालू, अहमदाबाद—पूर्व सहमन्त्री, उत्साही, सजग, कर्मठ कार्यकर्त्ता ।
३. श्री भीकमचन्दजी भंसाली, कलकत्ता धर्मनिष्ठ, साहित्य प्रेमी, सजग, श्रद्धालु सुश्रावक ।
४. श्री प्रेमराजजी सोमावत, मद्रास—उत्साही, धर्मनिष्ठ, श्रद्धालु, कर्मठ कार्यकर्त्ता ।
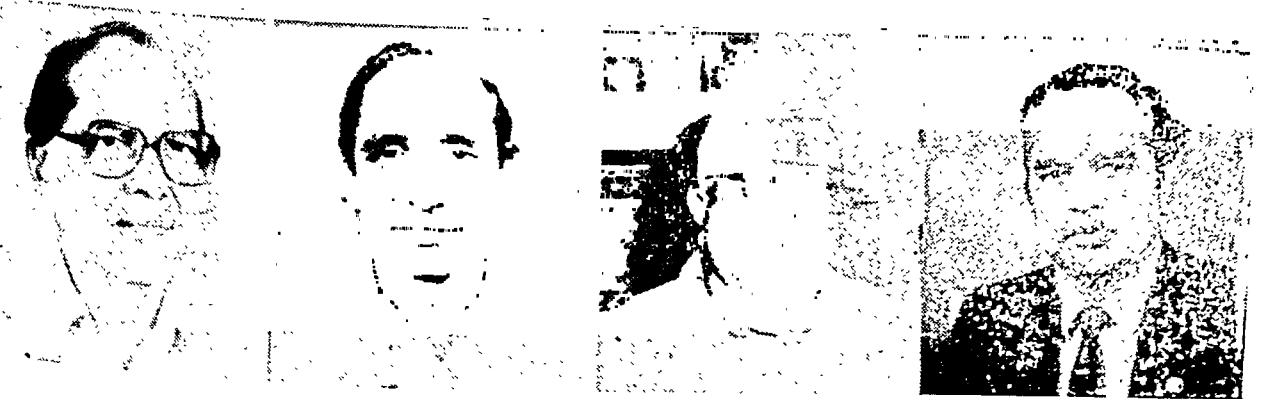
. श्री मोहनलालजी मूथा, जयपुर—ज्ञानमंत्री के रूप में विख्यात, धर्मनिष्ठ, सरल स्वभावी ।
. श्री मगनलालजी मेहता, रतलाम—पूर्व सहमन्त्री, श्रद्धानिष्ठ, गम्भीर अध्येता, ध.प्र. संयोजक (क्षेत्रीय)।
. श्री केवलचन्दजी मूथा, रायपुर—धर्मनिष्ठ, धार्मिक शिविरों के प्रेरणा स्रोत, कर्मठ कार्यकर्त्ता ।
. श्री हस्तीमलजी नाहटा, अजमेर—पूर्व सहमन्त्री एवं युवा संघ अध्यक्ष, चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट धर्मप्रेमी ।

कार्यसमिति सदस्य—
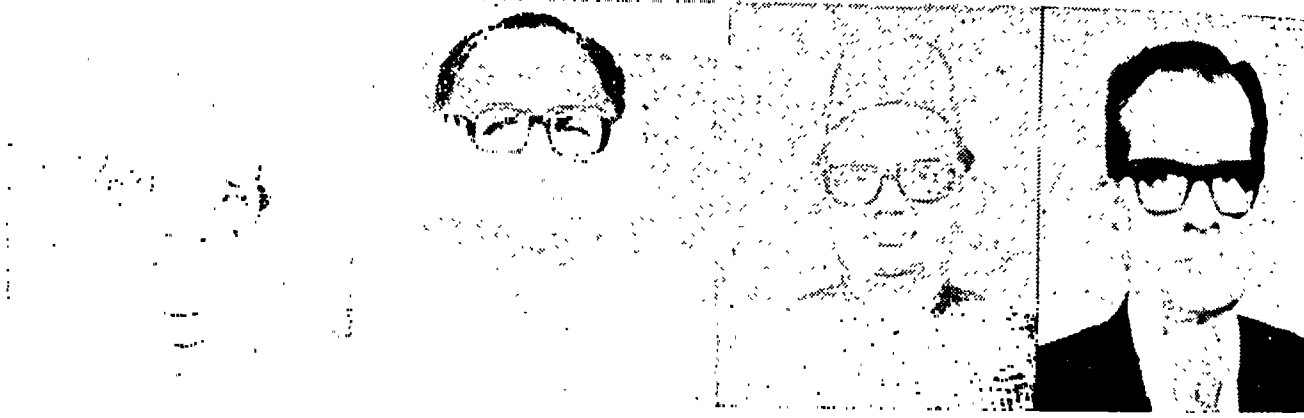
१. श्री सरदारमलजी ढढ्ढा, जयपुर—पूर्व उपाध्यक्ष, प्रसिद्ध रत्न व्यवसायी, धर्मनिष्ठ सुश्रावक ।
२. श्री कन्हैयालालजी मालू, कलकत्ता—पूर्व उपाध्यक्ष, वस्त्र व्यवसायी, धर्मप्रेमी श्रावक ।
३. श्री तोलारामजी हीरावत, दिल्ली—धर्मनिष्ठ, शासनसेवी, श्रद्धालु श्रावक ।
४. श्री फतहलालजी हिंगड़, उदयपुर—प्राकृत संस्थान के मंत्री, धर्मनिष्ठ सक्रिय कार्यकर्त्ता ।

१. श्री समीरमलजी कांठेड़, जावरा—पूर्व सहमंत्री एवं ध.प्र. संयोजक, उत्साही, सक्रिय कार्यकर्त्ता ।
२. श्री कन्हैयालालजी भूरा, कूचबिहार—धर्मनिष्ठ, शिक्षाप्रेमी, जनसेवी उत्साही, कार्यकर्त्ता ।
३. श्री शिखरचन्दजी मिन्नी, कलकत्ता—उदारचेता, सरल स्वभावी, उत्साही, धर्मप्रेमी, कर्मठ कार्यकर्ता ।
४. श्री भोगीलालजी धींग, बड़ीसादड़ी—धर्मनिष्ठ, श्रद्धालु, शासनसेवी सुश्रावक ।
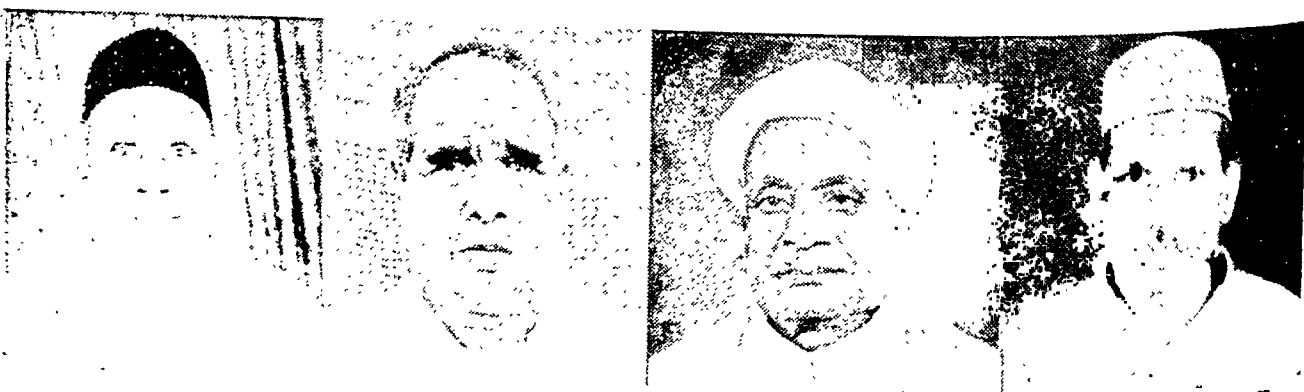
१. श्री भंवरलालजी चौपड़ा, जावद—उदारचेता, शिक्षाप्रेमी, धर्मनिष्ठ, श्रद्धालु कार्यकर्त्ता ।
२. श्री शंकरलालजी जैन, भीम—एडवोकेट, धर्मप्रेमी, साहित्यानुरागी, कार्यकर्त्ता ।
३. श्री लक्ष्मीलालजी पामेचा, बड़ीसादड़ी—धर्मनिष्ठ, कुशल व्यवसायी, श्रद्धालु श्रावक ।
४. श्री कानूरामजी नाहर, ब्यावर—श्री जैन जवाहर मित्र मण्डल के पूर्व मंत्री, धर्मप्रेमी, संघनिष्ठ ।

कार्यसमिति सदस्य—
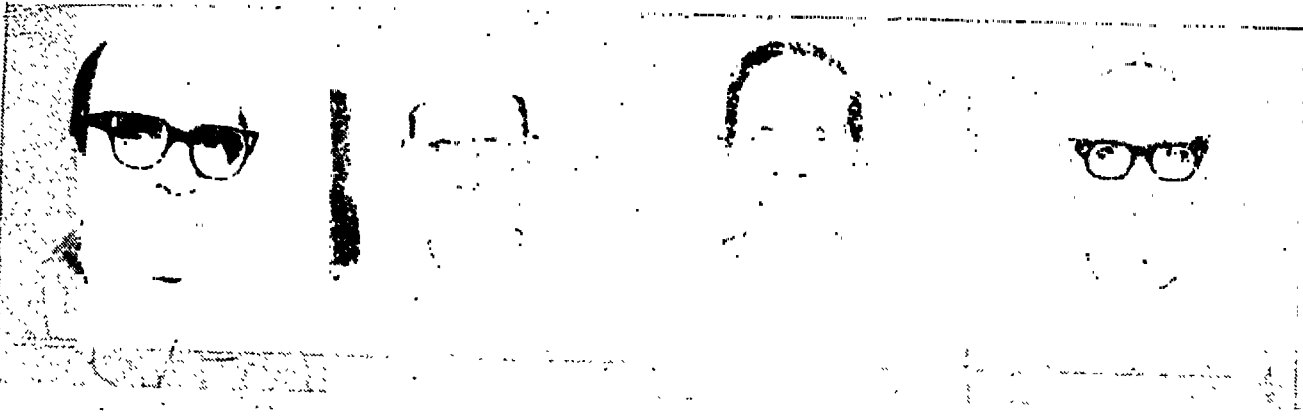
१. डा. नरेन्द्र भानावत, जयपुर—प्रबुद्ध चिन्तक, सम्पादक, जैन विद्वत् परिषद के मंत्री, रीडर राज. विश्व.।
२. श्री चम्पालालजी पिरोदिया, रतलाम—करुणामूर्ति, सेवाव्रती, सर्वोदयी, जनसेवी, सुश्रावक।
३. श्री गणेशीलालजी वया, उदयपुर—समता प्रचार संघ के संयोजक, धर्मनिष्ठ, सेवाभावी, कर्मठ कार्यकर्त्ता।
४. समाजसेवी मानवमुनि, इन्दौर सर्वोदयी, जीवदयाप्रेमी, जीवनदानी, सेवाव्रती, घुमक्कड़,

१. श्री जयचन्दलालजी सुखानी, बीकानेर—शासननिष्ठ, सेवाभावी, धर्मनिष्ठ, कर्मठ कार्यकर्त्ता।
२. श्री मोहनलालजी श्रीश्रीमाल, ब्यावर—उत्साही, शासननिष्ठ, कर्मठ कार्यकर्त्ता, पूर्व सहमंत्री।
३. श्री पारसमलजी दुगड़, विल्लुपुरम्—प्रसिद्ध रत्न व्यवसायी, संघपति, शिक्षाप्रेमी, समाजसेवी।
४. श्री पृथ्वीराजजी पारख, दुर्ग—पूर्व सहमन्त्री, थोक वस्त्र व्यवसायी, शिक्षाप्रेमी, मधुरभाषी, मिलनसार।
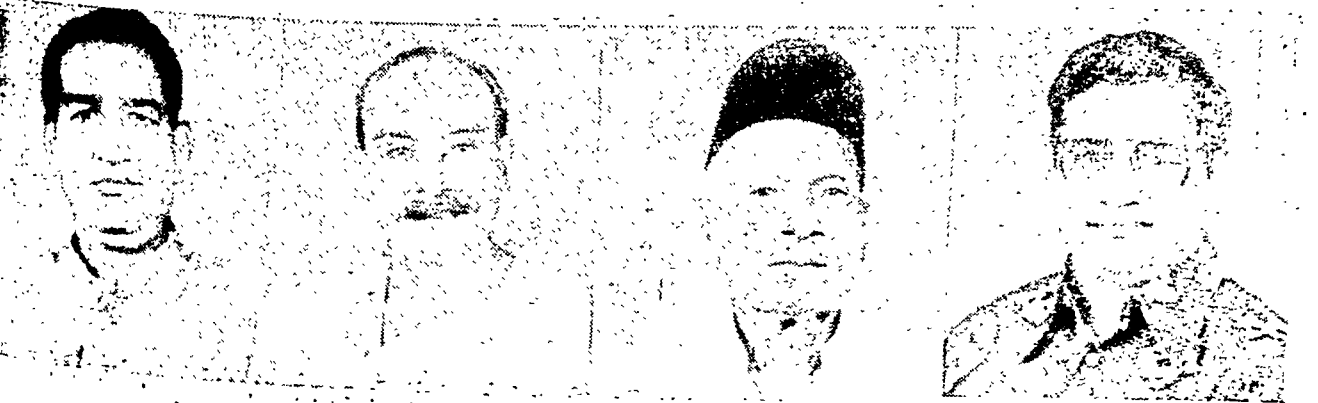
१. श्री धर्मचन्दजी पारख, नोखामण्डी—उत्साही, धर्मनिष्ठ, समाजसेवी, श्रद्धालु, कर्मठ कार्यकर्त्ता।
२. श्री महावीरचन्दजी गेलड़ा, हैदराबाद—शिक्षाप्रेमी, अनेक शिक्षा संस्थानों से सम्बद्ध, सेवाभावी।
३. श्री कन्हैयालालजी मूलावत, भीलवाड़ा—कर्मठ शासननिष्ठ, समाजसेवी, वरिष्ठ कार्यकर्त्ता, सर्राफ।
४. श्री शांतिलालजी सांड, बैंगलोर—धर्मनिष्ठ, उत्साही कार्यकर्त्ता, पितृ-स्मृति में जैन सा. पुरस्कार स्थापना।

१. पं. श्री लालचन्दजी मुणोत. ब्यावर—शासन सेवा समर्पित, शास्त्रज्ञ, मृदु भाषी, वयोवृद्ध श्रावक।
२. पं. श्री कन्हैयालालजी दक, उदयपुर—ओजस्वी वक्ता, साधु-साध्वियों के अध्यापन में रत आगमज्ञ।
३. डा. प्रेमसुमन जैन, उदयपुर—जैन विद्या विभाग के अध्यक्ष, प्रबुद्ध विचारक, देश विदेश भ्रमण।
४. श्री नाथूलालजी जारोली, बीकानेर—कार्यालय सचिव, जैन शिक्षण संघ कानोड़ के उपाध्यक्ष।

१. श्री रोशनलालजी मेहता, अहमदाबाद—तांबा, पीतल, शीशा आदि के व्यवसायी, धर्मप्रेमी, संघ निष्ठ कार्यकर्त्ता।
२. श्री समरथमलजी डागरिया, रामपुरा—रत्न व्यवसायी, भावुक कवि, प्रबुद्ध, धर्मप्रेमी कार्यकर्त्ता।
३. श्री मनसुखलालजी कटारिया, राणावास—उत्साही युवक कार्यकर्त्ता, सेवाभावी, धर्मप्रेमी।
४. श्री मोहनराजजी बोहरा, बैंगलोर—पूर्व उपाध्यक्ष, धर्मनिष्ठ, सेवाभावी, श्रद्धालु श्रावक।

१. श्री मदनलालजी सुरपरिया, चित्तौड़गढ़—उषा सिलाई मशीन, पंखों के व्यवसायी, धर्मप्रेमी, सेवाभावी।
२. श्री चन्दनमलजी जैन, देवगढ़ मदारिया—कुशल व्यवसायी, धर्म निष्ठ, उत्साही कार्यकर्त्ता।
३. श्री नोरतनमलजी डेडिया, ब्यावर—धर्मनिष्ठ, उत्साही, सेवाभावी, श्रद्धालु कार्यकर्त्ता।
४. श्री मिट्ठालालजी लोढ़ा, ब्यावर—सेवाभावी, श्रद्धालु, धर्मप्रेमी, उत्साही कार्यकर्त्ता।

शाखा संयोजक—
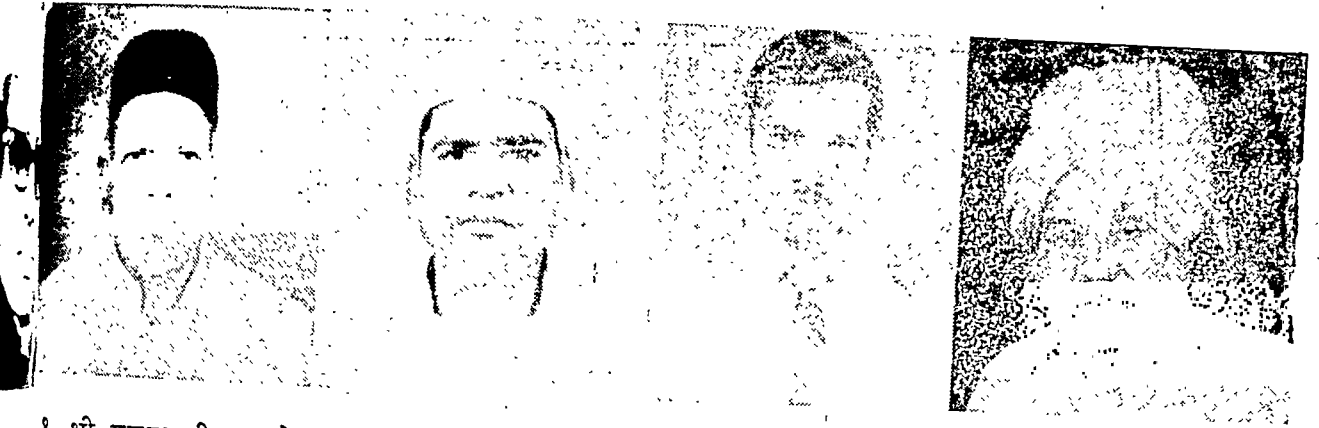
१. श्री मूलचन्दजी सहलोत, निकुम्भ—धर्मनिष्ठ, मृदुभाषी, सेवाभावी, श्रद्धालु श्रावक ।
२. श्री भंवरलालजी श्रीश्रीमाल, देवगढ़—धर्मप्रेमी, श्रद्धालु, समाजसेवी श्रावक ।
३. श्री किशनलालजी कांकरिया, टंगला—उत्साही, धर्मनिष्ठ, सेवाभावी, सक्रिय कार्यकर्त्ता ।
४. श्री दौलतरामजी बाघमार, पाटौदी—धर्मप्रेमी, सेवाभावी, श्रद्धालु श्रावक ।
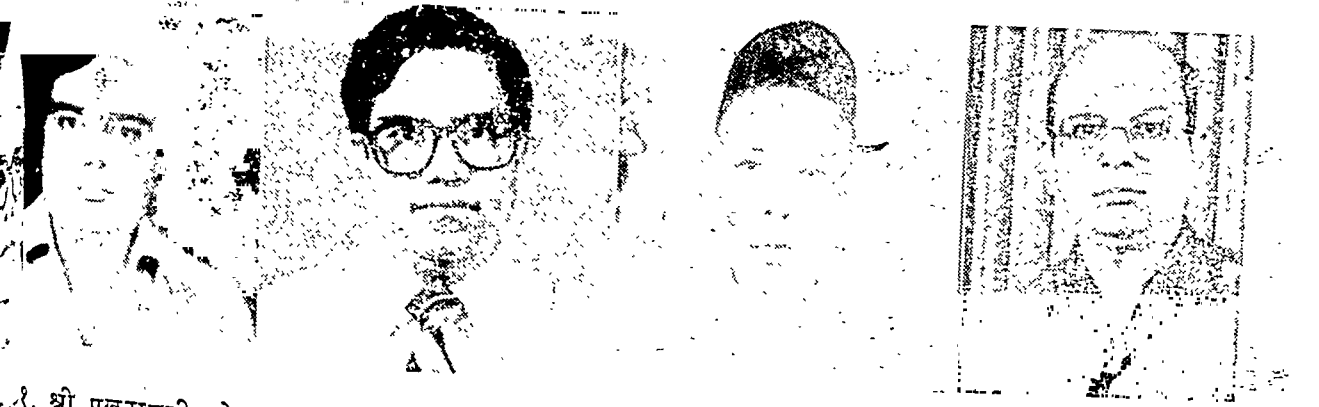
१. श्री पुखराजजी बोथरा, गोहाटी—चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट, धर्मनिष्ठ, सेवाभावी, सक्रिय कार्यकर्त्ता ।
२. श्री विजयकुमारजी कांठेड़, अहमदनगर—चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट, मिष्टभाषी, उत्साही कार्यकर्त्ता ।
३. श्री फकीरचन्दजी पामेचा, जावरा—धर्मपाल प्रवृत्ति संयोजक(क्षेत्रीय), धर्मनिष्ठ, उत्साही कार्यकर्त्ता ।
४. श्री गौतमचन्दजी जगदलपुर—धर्मप्रेमी, उत्साही, सेवाभावी कार्यकर्त्ता ।

१. श्री भंवरलालजी बोरुंदिया, ब्यावर—हुण्डी चिट्ठी ब्रोकर, अध्यक्ष जैन जवाहर मित्र मंडल, जैन मित्र मंडल ।
२. श्री बाबूलालजी जैन, नगरी—सेवाभावी, धर्मनिष्ठ, मिलनसार, उत्साही कार्यकर्त्ता ।
३. श्री शांतिलालजी ललवाणी—साहित्यप्रेमी, धर्मनिष्ठ, उत्साही, ओजस्वी कार्यकर्त्ता ।
४. श्री महेन्द्रजी मिन्नी, गंगाशहर—सेवाभावी, सरल स्वभावी, धर्मप्रेमी कार्यकर्त्ता ।

शाखा संयोजक—

१. श्री वंशीलालजी पोखरना, चित्तौड़गढ़—वस्त्र व्यवसायी, स्वाध्यायी, धर्मप्रेमी, श्रद्धालु कार्यकर्त्ता।
२. श्री पारसमलजी मूथा, उटकमण्ड—सेवाभावी, उत्साही, धर्मप्रेमी, कर्तव्यनिष्ठ कार्यकर्त्ता।
३. श्री अशोककुमारजी दलाल, खाचरौद—एडवोकेट, ध. प्र. क्षे. संयोजक, धर्मप्रेमी, सक्रिय कार्यकर्त्ता।
४. श्री पन्नालालजी लोढ़ा, चिकारड़ा—स्पष्ट वक्ता, धर्मप्रेमी, सेवाभावी, श्रद्धालु श्रावक।
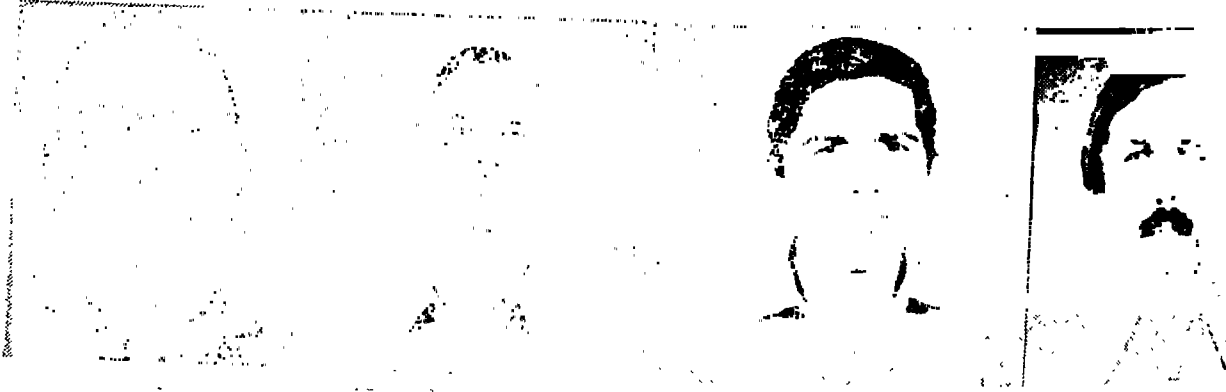
१. श्री हीरालालजी जैन, मोरवण—सेवा निवृत्त अध्यापक, समाजसेवी, स्वाध्यायी, मित भाषी।
२. श्री शांतिलालजी धींग, कानोड़—राज्य सम्मानित अध्यापक, समाजसेवी, सक्रिय कार्यकर्त्ता।
३. श्री सायरचन्दजी कोटड़िया, जोधपुर—व्यवसायी, उत्साही, युवा कार्यकर्त्ता, सेवाभावी।
४. श्री सोहनलालजी सेठिया, सरदारशहर—धर्मप्रेमी, सेवाभावी, श्रद्धालु कार्यकर्त्ता।
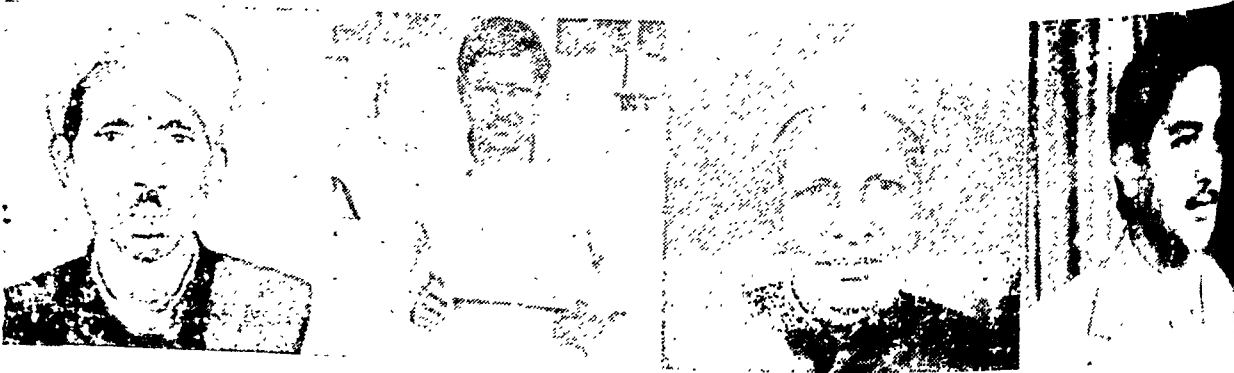
१. श्री छगनलालजी गन्ना, भीम—शासनसेवी, भीम संघ-अध्यक्ष, धर्मनिष्ठ, श्रद्धालु श्रावक।
२. श्री अमृतलालजी दुगड़, सोमेसर—धर्मप्रेमी, सेवाभावी, सरल स्वभावी कार्यकर्त्ता।
३. श्री मदनलालजी नन्दावत, भींडर—प्रधानाध्यापक, मृदुभाषी, सरल स्वभावी, समाजसेवी, भींडर संघ [illegible]
४. श्री अशोककुमारजी सियाल, उत्साही युवा कार्यकर्त्ता, समाजसेवी धर्मनिष्ठ।
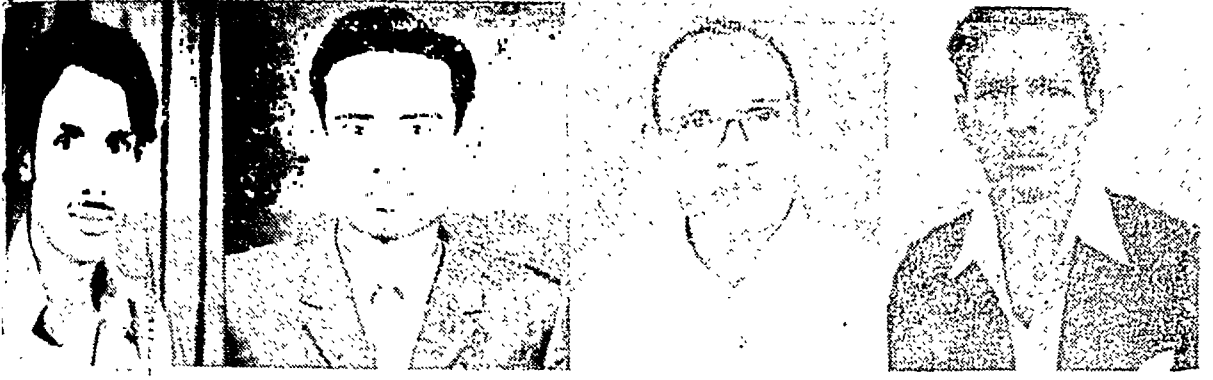
श्री सुभाषजी चौपड़ा, भिलाईनगर–उत्साही, धर्मप्रेमी, सेवाभावी, सक्रिय कार्यकर्त्ता ।
श्री पन्नालालजी कोटड़िया, मुढ़ीपार–धर्मप्रेमी, सरल स्वभावी, समाजसेवी कार्यकर्त्ता ।
श्री जवरचन्दजी जैन, धमधा–सेवाभावी, शिक्षा प्रेमी, धर्मनिष्ठ, श्रद्धालु श्रावक ।
श्री सौभाग्यमलजी जैन, मनावर–सरल स्वभावी, धर्मप्रेमी, सेवाभावी कार्यकर्त्ता ।
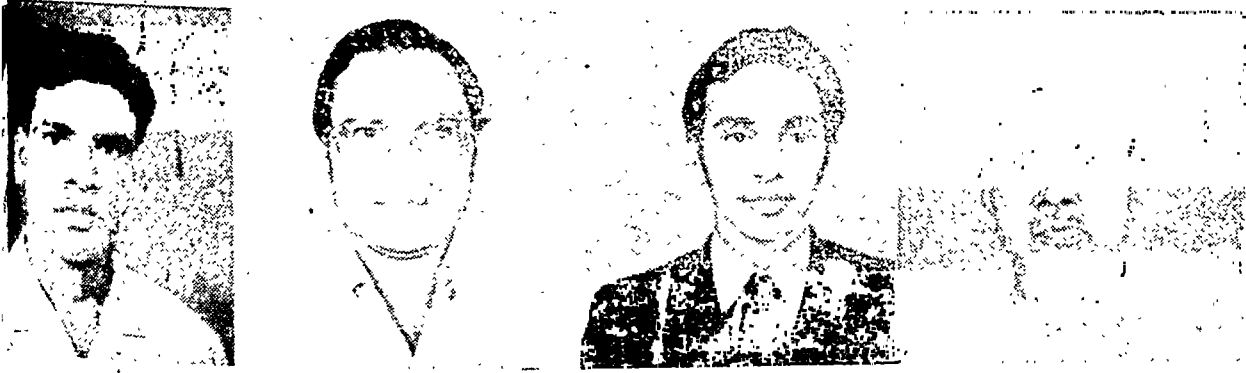
श्री सम्पतराजजी डागा, रानीवेन्नूर–धर्मनिष्ठ, सेवाभावी, सरलमना, युवा कार्यकर्त्ता ।
श्री श्रेणिकराजजी श्रीमाल, विरमावल–समाजसेवी, सरल स्वभावी, धर्मनिष्ठ कार्यकर्त्ता ।
श्री प्रकाशचन्दजी सुराणा, बैतूल–शासनसेवी, वस्त्र व्यवसायी, धर्मनिष्ठ कार्यकर्त्ता ।
श्री माणकचन्दजी बोरा, चिंगलपेट–सेवाभावी, समाजसेवी, धर्मप्रेमी श्रावक ।
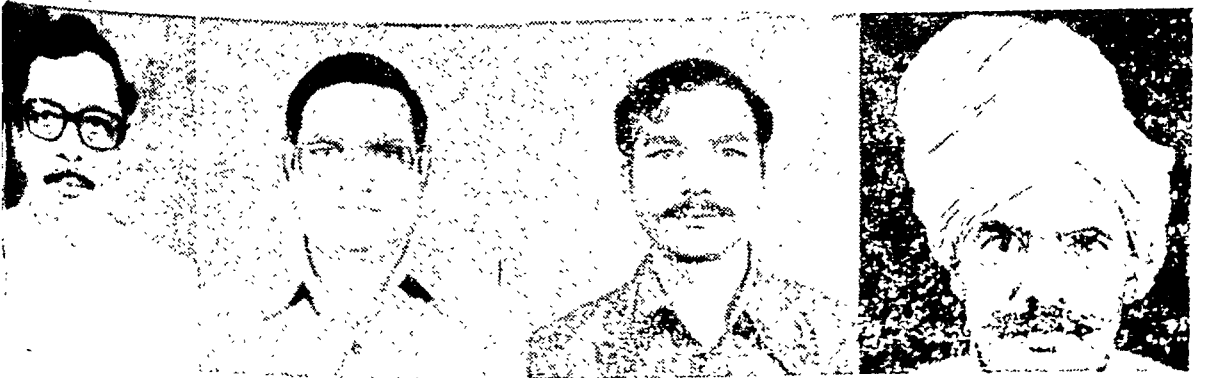
श्री अमरचन्दजी जैन, विल्लुपुरम्–समाजसेवी, शिक्षाप्रेमी, धर्मनिष्ठ कार्यकर्त्ता ।
श्री प्रकाशचन्दजी वेताला, बंगाईगांव–धर्मप्रेमी, सरल स्वभावी, सक्रिय कार्यकर्त्ता ।
श्री हुक्मीचन्दजी मूथा, कोयम्बटूर–सरल स्वभावी, उत्साही, धर्मप्रेमी, श्रद्धालु श्रावक ।
श्री लालचन्दजी गुगलिया, रड़ावास–शासनसेवी, समाजप्रेमी, धर्मनिष्ठ श्रावक ।

शाखा संयोजक–
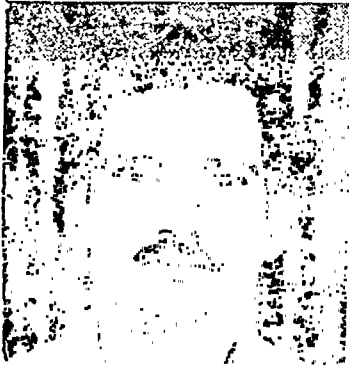
१. श्री लालचन्दजी डागा, कडूर–उत्साही, सेवाभावी, समाजप्रेमी, धर्मनिष्ठ, कार्यकर्त्ता ।
२. श्री कमलचन्दजी भूरा, वासुगांव–सेवाभावी, धर्मप्रेमी, समाजसेवी, सक्रिय कार्यकर्त्ता ।
३. श्री फूसराजजी ललवाणी, बरपेटारोड़–उत्साही, समाजप्रेमी, सेवाभावी, धर्मनिष्ठ श्रावक ।
४. श्री राजमलजी खटोड़, कुर्ला (बम्बई)–धर्मप्रेमी, सेवाभावी, संघनिष्ठ कार्यकर्त्ता ।
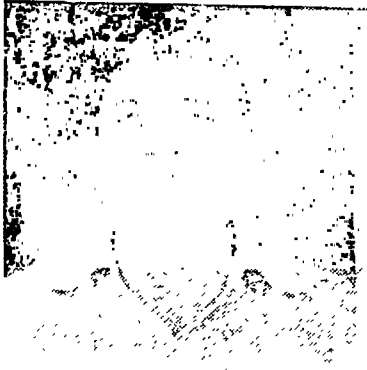
१. श्री मूलचन्दजी पगारिया, मावली–धर्मनिष्ठ, उत्साही, श्रद्धालु कार्यकर्त्ता ।
२. श्री कुन्दनमलजी खींवसरा, बावरा–सेवाभावी, समाजप्रेमी, श्रद्धालु सुश्रावक ।
३. श्री अशोककुमारजी भण्डारी, खिड़किया–समाजसेवी, सेवाभावी, धर्मप्रेमी, युवा कार्यकर्त्ता ।
४. श्री अमृतलालजी चौधरी, जावद–धर्मनिष्ठ, सेवाभावी, श्रद्धालु कार्यकर्त्ता ।

१. श्री भंवरलालजी चौपड़ा, लोनसरा–धर्मप्रेमी, शासननिष्ठ, श्रद्धालु श्रावक ।
२. श्री नूणकरणजी कोटड़िया, लोहावट–धर्मनिष्ठ, सेवाभावी, उत्साही कार्यकर्त्ता ।
३. श्री गुलाबचन्दजी गोलछा, नारायणपुर–सेवाभावी, धर्मप्रेमी, सक्रिय युवा कार्यकर्त्ता ।
४. श्री मोहनलालजी भटेवरा, कोटा–कार्यसमिति के सदस्य, वस्त्र व्यवसायी, धर्मनिष्ठ ।
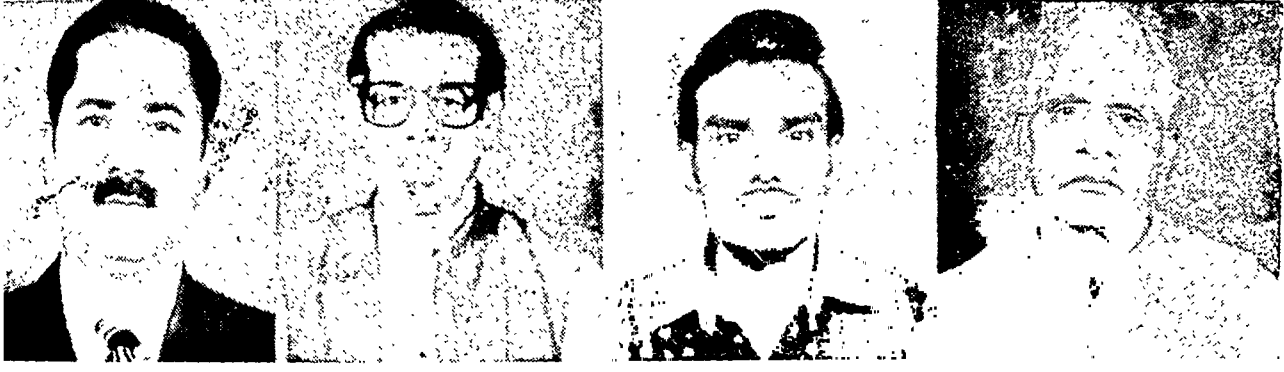
१. श्री किसनलालजी संचेती, नोखा—वस्त्र व्यवसायी, सचिव वस्त्र व्यवसाय संघ, धर्मप्रेमी कार्यकर्त्ता ।
२. श्री चम्पालालजी छल्लाणी, धुवड़ी—धर्मनिष्ठ, सरल स्वभावी, स्वाध्याय प्रेमी, कार्यकर्त्ता ।
३. श्री मोहनलालजी जैन, गीदम समाजसेवी, धर्मप्रेमी, सरल स्वभावी, कार्यकर्त्ता ।
४. श्री भंवरलालजी जैन, श्यामपुरा धर्मनिष्ठ, सेवाभावी, समाजप्रेमी, श्रद्धालु श्रावक ।

१. श्री भीखमचन्दजी चोरड़िया, फलौदी—धर्मप्रेमी, समाजसेवी, शासननिष्ठ, श्रद्धालु श्रावक ।
२. श्री शांतिलालजी रांका, जयनगर—सरल स्वभावी, संघनिष्ठ, धर्मप्रेमी, कार्यकर्त्ता ।
३. श्री रेखचन्दजी सांखला, खैरागढ़—खैरागढ़ संघ अध्यक्ष, अभिकर्त्ता जीवन बीमा निगम, धर्मप्रेमी कार्यकर्त्ता ।
४. श्री तेजमलजी भण्डारी, कंजार्डा—धर्मप्रेमी, सेवाभावी, स्वाध्यायी, श्रद्धालु कार्यकर्त्ता ।

१. श्री गजेन्द्रजी सूर्या, इन्दौर—अध्यक्ष समता युवा संघ, धर्मनिष्ठ, उत्साही युवा कार्यकर्त्ता ।
२. श्री मणिलालजी घोटा, रतलाम—मन्त्री समता युवा संघ, धर्मनिष्ठ, सेवाभावी युवा कार्यकर्त्ता ।
३. प्रो. सतीश मेहता, बीकानेर—धर्मप्रेमी, मिलनसार, मृदु स्वभावी, उत्साही कार्यकर्त्ता ।
४. श्री धर्मचन्दजी गेलड़ा, हैदराबाद तकनीकी स्नातक, उद्योगपति, घुम्मकड़, धर्मप्रेमी कार्यकर्त्ता ।

## महिला समिति-
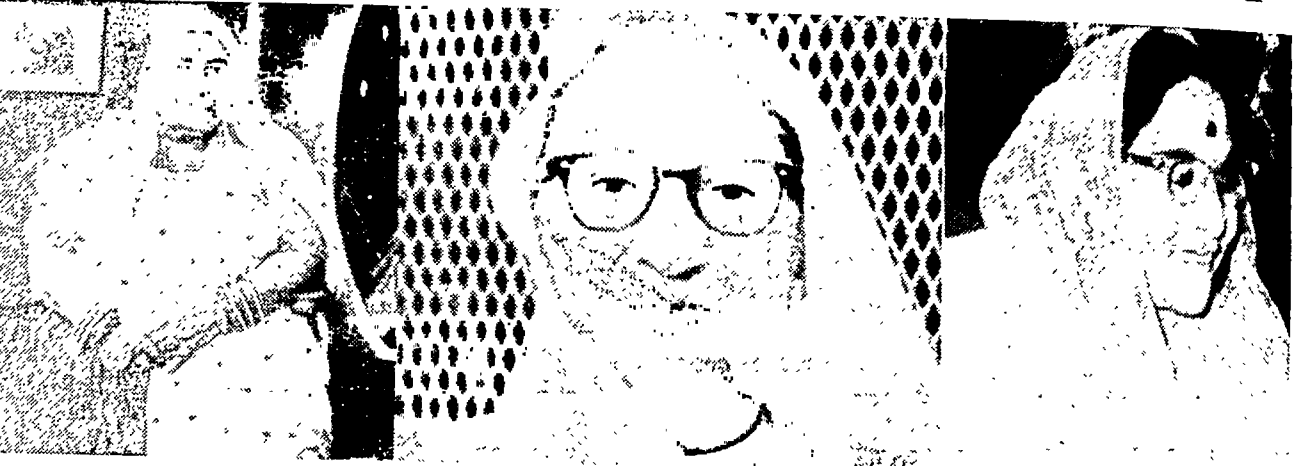
१. स्व. सेठानी लक्ष्मीदेवी धाड़ीवाल, रायपुर—संरक्षिका (१९७३-१९७५) उपाध्यक्षा (१९६७-१९७२)।
२. स्व. सेठानी आनन्दकंवर पीतलिया, रतलाम—संरक्षिका (१९७३-१९७५) अध्यक्षा (१९६७-१९७२)।
३. स्व. श्रीमती मोहनीदेवी मेहता, बम्बई—उपाध्यक्षा (१९८४), धर्मपरायणा, समाजसेवी, श्रद्धालु श्राविका।

श्रीमती रसकंवर सूर्या, उज्जैन—उपाध्यक्षा १९७९-८०, धर्मपरायणा, समाजसेवी, श्रद्धालु श्राविका।
श्रीमती यशोदादेवी बोहरा, पीपलियाकलां--संरक्षिका १९७६ से सतत, अध्यक्षा १९७३-७५ उदारमना, धर्मपरायणा
श्रीमती फूलकंवर कांकरिया, कलकत्ता—अध्यक्षा १९७६ से ७८, उदारमना, सेवाभावी, धर्मपरायणा।
श्रीमती सूरजदेवी चोरड़िया, जयपुर—अध्यक्षा १९८२ से ८४, उपाध्यक्षा १९८१, धर्मपरायणा, सेवाभावी।

श्रीमती विजयादेवी सुराणा, रायपुर—अध्यक्षा १९७९ से ८१, जीवदया प्रेमी, प्राणी वत्सला, सेवाभावी।
श्रीमती कमलादेवी बैद, जयपुर—कोषाध्यक्षा १९८५-८६, मंत्री १९८७ से, उत्साही, सक्रिय कार्यकर्त्री।
श्रीमती भंवरी बाई मूथा, रायपुर- उपाध्यक्षा १९७६ से ७९ सरल स्वभावी, धर्मपरायणा, जीवदया प्रेमी।
श्रीमती रतना ओस्तवाल, राजनांदगांव—सहमंत्री १९८५ से ८७, उत्साही, प्रबुद्ध, सक्रिय कार्यकर्त्री।

१. श्रीमती धनकंवर कांकरिया, नाजिरपुर—मंत्री १९७८ से ८०, उपाध्यक्षा ७६, ८०, ८१ धर्मप्रेमी, उत्साही कार्य.
२. डा. शान्ता भानावत, जयपुर—सहमंत्री १९७४ से ७६, ८३, ८४ प्राचार्य, विदुषी, सेवाभावी कार्यकर्त्री, सम्पादक ।
३. श्रीमती शान्ता मेहता, रतलाम—सहमंत्री १९६९ से ७३, मंत्री ७४ से ७७ उपाध्यक्षा ७७ से ७९, ८२ से सतत
४. श्रीमती कंचनदेवी मेहता, मन्दसौर—का. स. सदस्या, धर्मपरायणा, सरल स्वभावी, सेवाभावी ।
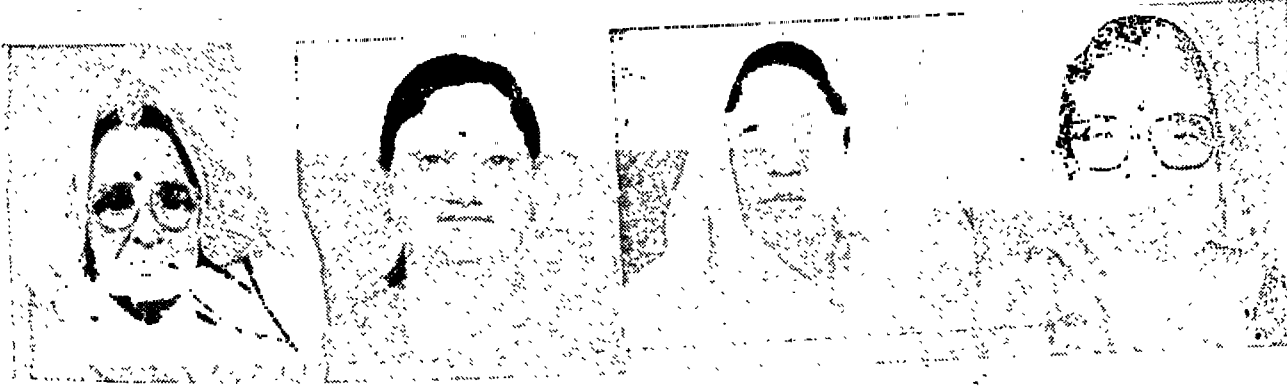
१. श्रीमती चेतनदेवी भंसाली, कलकत्ता—उपाध्यक्षा १९८१, शासन सेवी, धर्म परायणा, सुश्राविका ।
२. श्रीमती शैलादेवी बोहरा, अहमदाबाद— का. स. स., धर्मपरायणा सेवाभावी, उत्साही, कार्यकर्त्री ।
३. श्रीमती सौरभकंवर मेहता, ब्यावर—शासन निष्ठा, धर्मपरायणा, सेवाभावी सुश्राविका ।
४. श्रीमती गुलाबदेवी मूथा, जयपुर—कोषाध्यक्षा १९८७, धर्मपरायणा, उत्साही कार्यकर्त्री ।

१. श्रीमती शान्तिदेवी मिन्नी, कलकत्ता कोषाध्यक्षा ७८ से ८०, उपाध्यक्षा ८७, धर्मपरायणा, सेवाभावी ।
२. श्रीमती छगनीदेवी बेताला, नोखा—धर्मपत्नी संघमंत्री, सरल स्वभावी, धर्मपरायणा, का. स. स.
३. श्रीमती मरुमाया सेठिया, मद्रास—का. स. स., धर्मपरायणा, सरलस्वभावी, सेवाभावी ।
४. श्रीमती विमला बोरदिया, उदयपुर—कार्यसमिति सदस्या, धर्मपरायणा, सेवाभावी ।

महिला समिति-

१. श्रीमती सोहनकंवर मेहता, इन्दौर—उपाध्यक्षा १९७६-७७, धर्मपरायणा, सेवाभावी कार्यकर्त्री।
२. श्रीमती इन्द्रा कोठारी, अजमेर—का. स. सदस्या, धर्मपरायणा, सेवाभावी, कार्यकर्त्री।
३. श्रीमती कान्ता बोरा, इन्दौर—सहमत्री १९८१, ८५, ८६ सेवाभावी, धर्मनिष्ठ, उत्साही कार्यकर्त्री।

१. श्रीमती शान्ति रानी डागरिया, रामपुरा—कार्यसमिति सदस्या, धर्मपरायणा, सेवाभावी श्राविका।
२. श्रीमती कंचनदेवी सेठिया, बीकानेर—कोषाध्यक्ष ८१, ८२, का. स. स., धर्मपरायणा।
३. श्रीमती धापूदेवी डागा, गंगाशहर—कार्यसमिति सदस्या, धर्मपरायण, सेवाभावी, सुश्राविका।
४. श्रीमती कंचन बोरदिया, उदयपुर—कार्यसमिति सदस्या, शिक्षा प्रेमी, धर्मपरायणा, कार्यकर्त्री।

१. श्रीमती प्रेमलता पीरोदिया, रतलाम—कार्यसमिति सदस्या, धर्मनिष्ठ, उत्साही कार्यकर्त्री।
२. श्रीमती पारस बाई बंट, ब्यावर—सहमंत्री १९८५, ८६ धर्म परायणा, सेवाभावी कार्यकर्त्री।
३. श्रीमती चन्द्रकान्ता जैन, भीलवाड़ा—शाखा संयोजिका, धर्मनिष्ठ, उत्साही कार्यकर्त्री।
४. श्रीमती उमराव बाई सहलोत, निकुंभ—शाखा संयोजिका, धर्मपरायणा, सेवाभावी सुश्राविका।

ी हनुमानमलजी बोथरा
गंगाशहर (वीकानेर)
संघ समर्पित उदारदानी

श्री प्यारेलालजी भण्डारी
८० से कार्यकारणी सदस्य
अलीबाग निवासी
उत्साही युवा हृदयी, साहित्य प्रेमी
कुशल व्यवसायी, उदारदानी
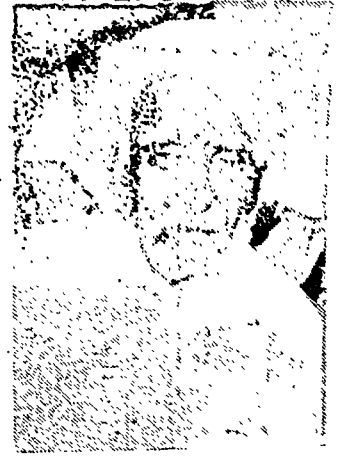
श्री मोतीलालजी धींग
कानोड़
उदार हृदयी, समाजसेवी संघ
समर्पित, वयोवृद्ध
शाखा संयोजक
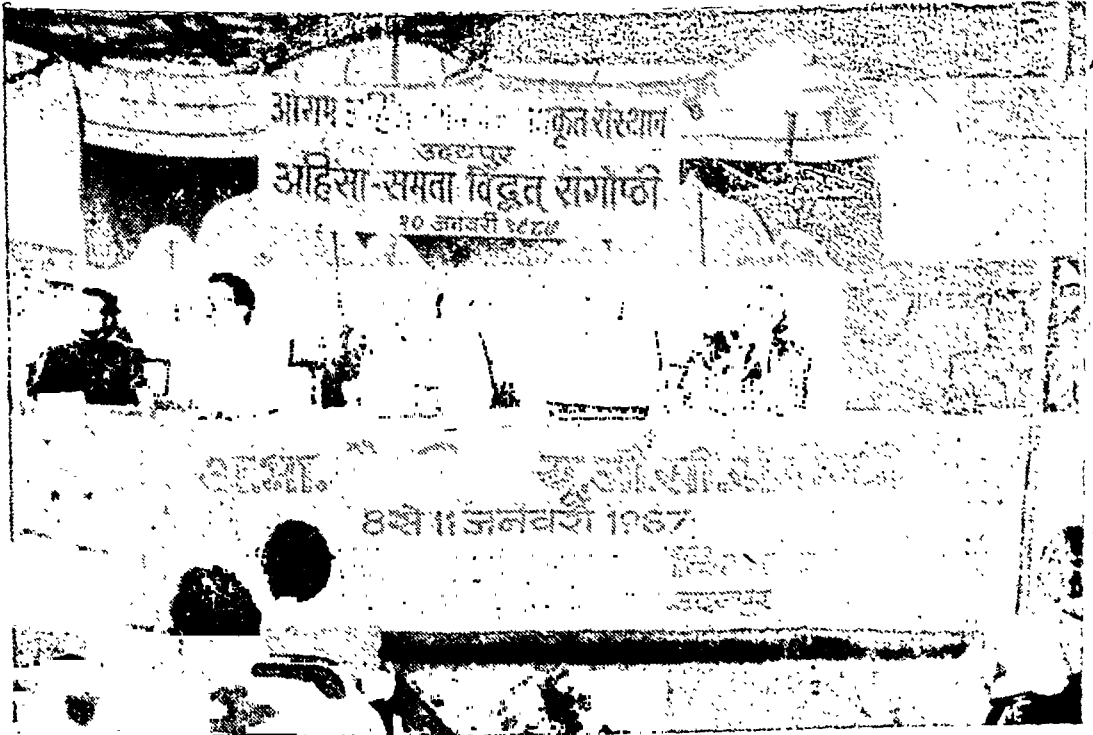
आगम-अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान उदयपुर में अहिंसा समता विद्वत् गोष्ठी को सम्बोधित करते हुए डॉ. सागरमल जैन । मंच पर संगोष्ठी अध्यक्ष डॉ. दयानन्द भार्गव एवं संस्थान अधिकारी ।
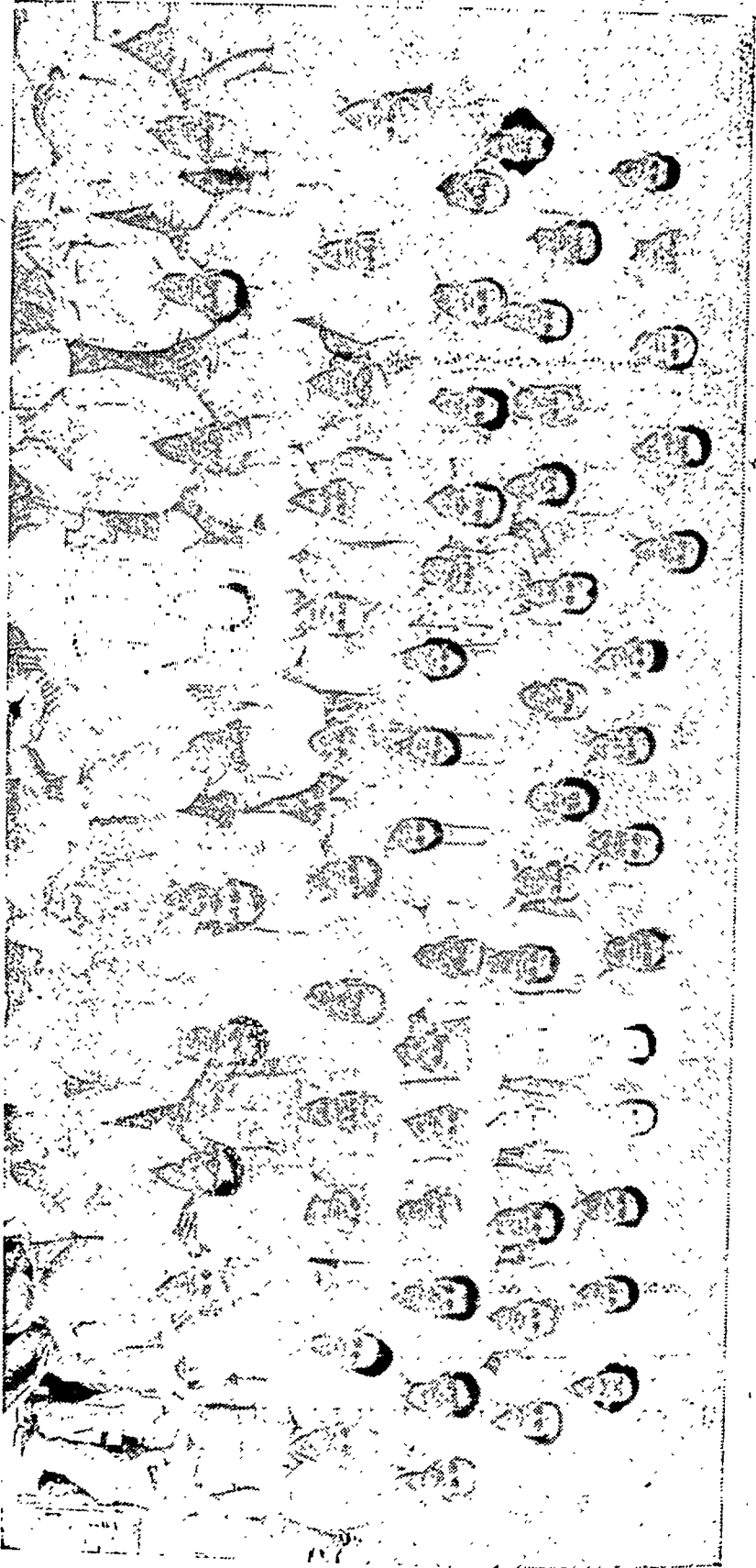
श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ एवं श्री अ. भा. जैन विद्वत् परिषद द्वारा आयोजित बाल संस्कार शिक्षा साहित्य संगोष्ठी अजमेर १९७९ के संभागी विद्वत्जन

ग्राम्य अंचल का एक विरल क्षण–धर्मपाल पदयात्रा में संघ प्रमुख सर्व श्री भंवरलालजी कोठारी, सरदारमलजी कांकरिया, गुमानमलजी चोरड़िया आदि प्रकृति की गोद में बसे बालकों के साथ।

संघ की लोक कल्याणकारी प्रवृत्तियों में उल्लेखनीय अभिनव प्रवृत्ति श्रीमद् जवाहराचार्य स्मृति चल चिकित्सालय का बीजारोपण : इन्दौर में गीता-भवन के बाबा बालमुकुन्दजी, पास में समाजसेवी श्री मानव मुनिजी, ट्रस्टी व पद्मश्री डॉ. नन्दलालजी बोरदिया आदि।

प्रचार प्रसार समिति जावरा

जावरा के भव्य और विशाल धर्मपाल-सम्मेलन को संबोधित करते हुए तत्कालीन प्रवृत्ति-प्रमुख श्री समीरमलजी कांठेड़

जैनविद्यालय कलकत्ता में दि.१४-१-८४ को स्व. श्री प्रदीपकुमार रामपुरिया स्मृति साहित्य पुरस्कार प्राप्त करते हुए श्री मिश्रीलाल जैन गुना

इन्दौर में दिनांक २५-११-८३ को धर्मपाल सम्मेलन में पद्मश्री डॉ. नन्दलालजी बोरदिया, मंचस्थ दाएं से बाएं समाजसेवी श्री मानवमुनि जी, धर्मपाल श्री गणपतराजी बोहरा, श्री गुमानमल जी चोरड़िया आदि
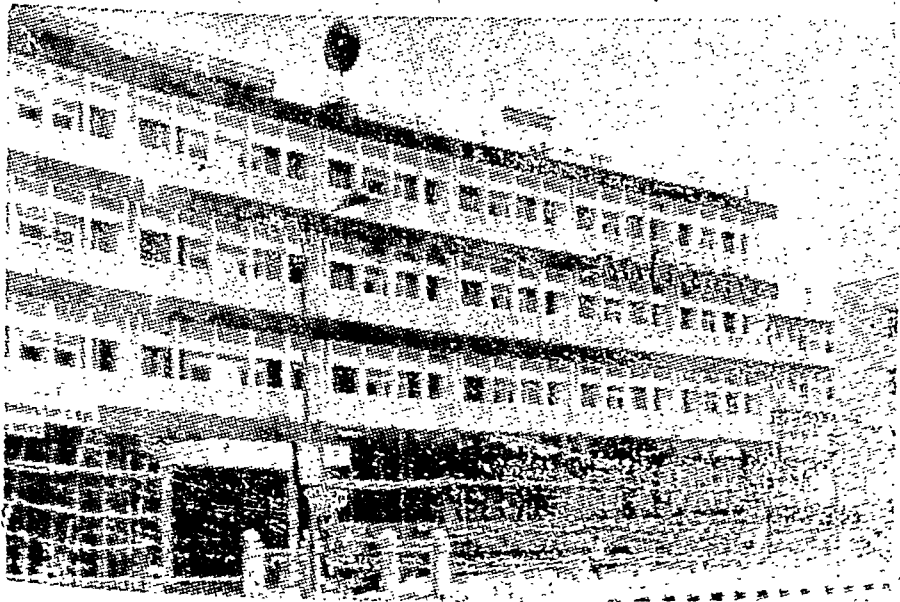
खींवराज काम्पलेक्स ४८० माऊंट रोड़ बिल्डिग नं. २ के इस भव्य भवन के पहले माले में संघ द्वारा क्रय किया गया फ्लैट ।
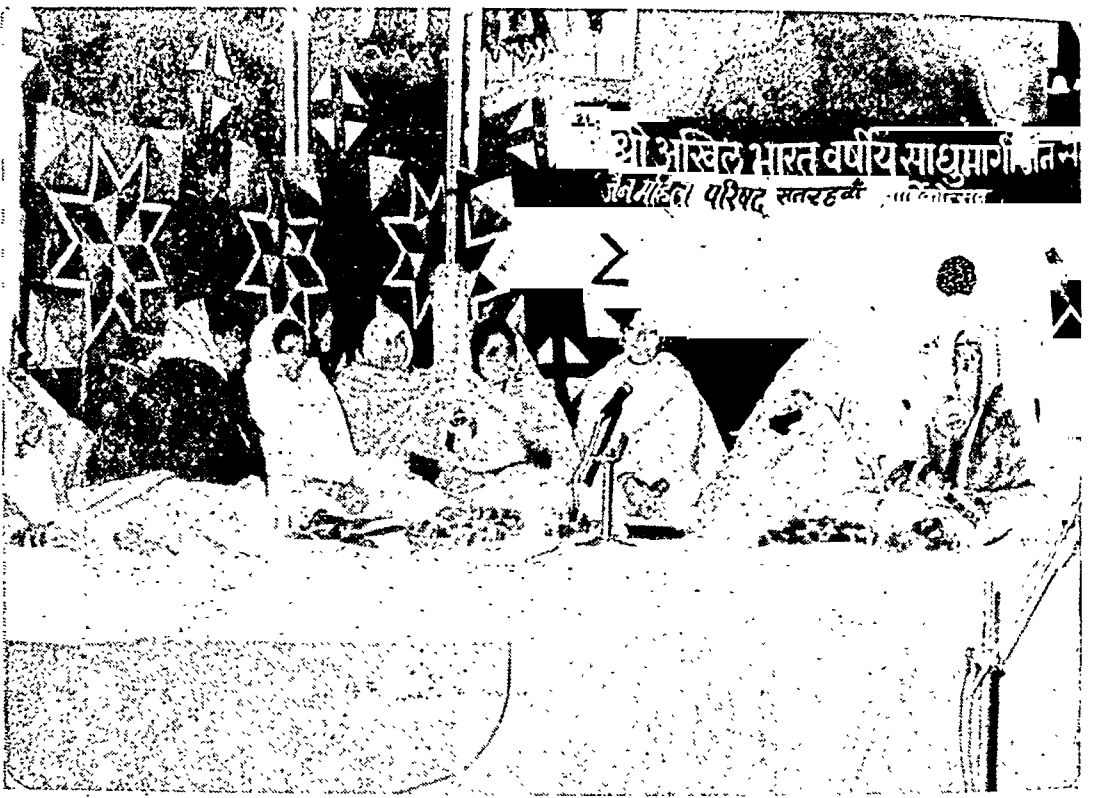
श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन महिला समिति के १७वें अधिवेशन में
बोलते हुए प्रमुख अतिथि श्रीमती मिथिलेश जैन
मंचस्थ दाएं से बाएं—समिति संरक्षिका श्रीमती सौ. यशोदादेवी जी बोहरा, श्रीमती सूरजदेवी जी सेठिया, अध्यक्षा सौ. श्रीमती सूरजदेवी जी चोरड़िया, श्रीमती शांता देवीजी मेहता व प्रेमलता जी जैन ।

महिला श्रोताओं की भाव तन्मयता
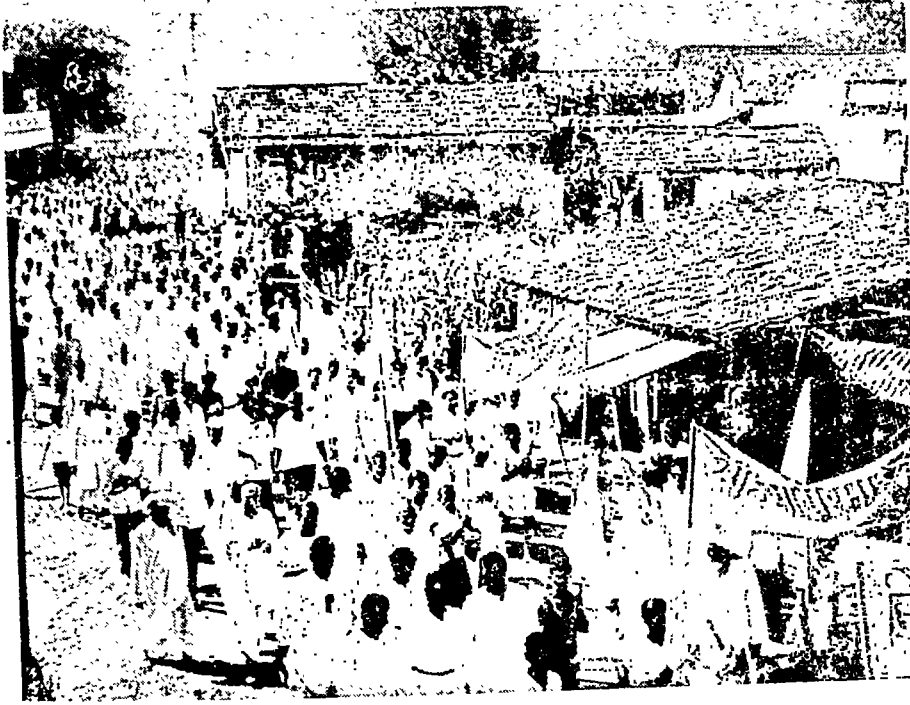
संघ की जीवन साधना, संस्कार निर्माण और 'धर्म जागरण' पद-यात्राओं के दौर की एक साक्षी: उमड़ता जनप्रवाह उछलता उत्साह सागर
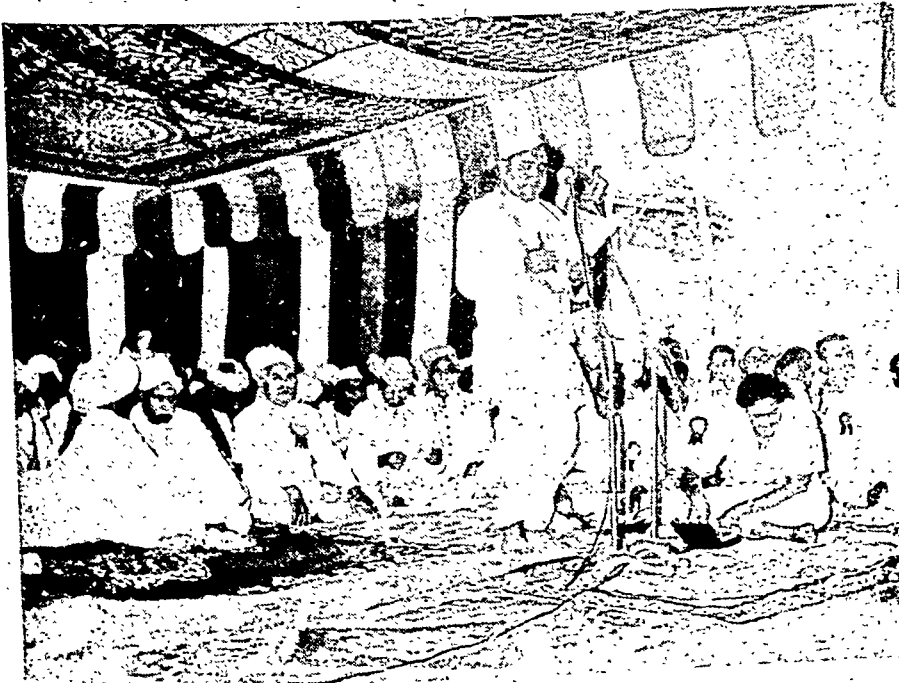
रायपुर संघ-अधिवेशन १६६६ में अध्यक्षीय अभिभाषण पढ़ते हुए श्री गरणपतराजजी वोहरा, पृष्ठ भाग में श्री हीरालालजी नांदेचा श्री छगनमलजी वैद व संघ-प्रमुख

उदयपुर अधिवेशन में अध्यक्षीय अभिभाषण पढ़ते हुए श्री जुगराज जी सेठिया व संघ-प्रमुख ग

श्रोताओं की अपार जनमेदिनी संघ अधिवेशनों और कार्यक्रमों की सहज विशेषता है। श्रोताओं में वर्तमान संघ अध्यक्ष श्री चुन्नीलालजी मेहता,तोलाराम जी डोसी आदि

## श्रमणोपासक की २५ वर्ष की कालयात्रा में प्रकाशित महत्वपूर्ण लेखों का सूची-सार

[श्रमणोपासक के प्रायः प्रत्येक अंक में परम श्रद्धेय समता विभूति आचार्य श्री नानेश के विचारों का किसी न किसी रूप में संकलन रहता है। अतः जीवन के सभी क्षेत्रों को स्पर्श करने वाले इन विचार को पृथक से शीर्षक बाध्य नहीं किया गया है।]

धर्म को सही स्वरूप में धारण करें/श्री रणजीतसिंह कूमट | १३/११/३५
निवृत्ति और प्रवृत्ति: एक तुलनात्मक अध्ययन/डॉ. सागरमल जैन | १३/अनेक अंकों में
जैननीति दर्शन की सामाजिक सार्थकता/डॉ. सागरमल जैन | १४/१९-२०
आनन्दघन रचित पद/श्री रतनलाल कांठेड़ | १४/१५ से अनेक अंकों में
पर्वाधिराज पर आत्म निरीक्षण/आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. | १५/३/१७
समाधिमरण/डॉ. सागरमल जैन | १५/५-६/
कम्मपयडी और उसकी चूर्णी के रचयिता/श्री अगरचन्द नाहटा | १५/१५/३६
जैन दर्शन में आकाश तत्त्व/श्री देवेन्द्रमुनि | १५/२०/१६
आगम साहित्य में उपलब्ध कथाएं और उनका स्वरूप/डॉ. कुसुम पटोरिया | १५/२३/२५
जैन धर्म में नारी प्रतिष्ठा/डॉ. प्रेमचन्द गोस्वामी | १६/५/२०
जैन दर्शन में जीवन मूल्य/डॉ. सागरमल जैन | १६/१३ से सतत/
जैन दर्शन में काल प्रत्यय/डॉ. ए. बी. शिवाजी | १६/१३/२०
वृत ग्रहण/उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी | १६/१८/२३
'ज्ञानार्णव' में प्रतिपादित वीतराग और समता भाव/श्री अगरचन्द नाहटा | १७/२/२४
स्याद्वाद/डॉ. महावीरसिंह मुर्डिया | १८/१२/१७
जैन दर्शन और आधुनिक मानस/डॉ. भागचन्द जैन | १८/१३/१५
महावीर का सन्देश: अपरिग्रह/डॉ. शान्ता भानावत | १८/२३/१८
नैतिकता बनाम अनैतिकता/रिखबराज कर्णावट | १९/१/३६
रहिमन कहता पेट से क्यों न भया तूं पीठ/आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म. सा. | १९/२/२४
जैन साहित्य में माता का स्वरूप/डॉ. हीराबेन बोरदिया | १९/२२/१७
भगवती सूत्र: एक वैज्ञानिक अध्ययन/डॉ. महावीरसिंह मुर्डिया | १९/२४/१६
सामायिक: एक विवेचन/उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी | २०/२ से ८
सम्यक् दर्शन: ज्ञान का प्रवेश द्वार/श्री सुन्दरलाल बी. मल्हारा | २१/७-९/
राष्ट्रीय चेतना के विकास में श्रीमद् जवाहराचार्य का योगदान/श्री संजीव भानावत | २१/१५/२४
क्या राजनीति में अहिंसा संभव है/श्री सिद्धराज ढ़द्ढ़ा | २१/१५/५५
शक्ति के साथ शिवत्व प्रकट हो/मुनि श्री रूपचन्द | २२/१३/२६
समता प्रचार-आत्म दर्शन/श्री प्रतापचन्द भूरा | २२/७-९/
मैं गुणों का पुजारी हूं/श्री जवाहरलाल मुणोत | २२/१७/२४
अष्टाचार्य गौरव गंगा/संकलित अंश | आगे तक
वैयावृत्य विचक्षण आचार्य-प्रवर/संकलित अंश | वर्ष २२-२३
जैन कवियों की दृष्टि में होली/डॉ. पुष्पलता जैन | २३/५/३१
सामायिक: अर्थ और स्वरूप/डॉ. निजामुद्दीन | २३/११/३५
मित्ती मे सव्व भूएसु/डॉ. शिवमुनि | २३/१५/३३
आचारांग के जीवन मूल्य/श्री मानमल कुदाल | २३/१५/४६

प्रस्तुति—जानकी नारायण श्रीम

★

उदार चरितानां
वसुधैव कुटुम्बकम् ।

# विज्ञापन

विज्ञापन-सहयोग हेतु सभी प्रतिष्ठानों एवं महानुभावों के प्रति

**हार्दिक आभार**

जीवन काले-उजले धागे से बुना हुआ है। इसमें मीठे घूंट पीने को मिलते हैं तो कड़ुए भी। दुनिया ने हर क्रान्तिकारी विचारों का विरोध किया है प्रथमतः, किन्तु अन्त में उन्हीं पर फूल बरसाए हैं। अतः जो विरोध से घबराता है, आलोचना से जिसका धैर्य नष्ट हो जाता है, आस्था हिल उठती है वह कदापि सफल नहीं हो सकता। संसार की आलोचना हमें कर्तव्यच्युत नहीं करे तभी हम सद्मार्ग पर बढ़ सकते हैं। साधारणतः लोगों की दृष्टि स्थूल होती है। शीलर कहता है—विरोध उत्साहियों को सदैव उत्तेजित करता है बद-लता नहीं। विरोध सह लेना भी एक कला है। शिक्षित घोड़ा तोपों की आवाज से चमकता नहीं जब कि अशिक्षित घोड़े पटाके की आवाज से ही बेकाबू हो जाते हैं। इसीलिए अर्हतर्षि अज्ञानियों के विरोध को सहन करने के लिए कहते हैं, विरोधियों को क्षमा करने के लिए कहते हैं, उन पर विजय प्राप्त करने को कहते हैं। **"सम्मं सहेज्जा खमेज्जा तितिक्खेज्जा अधियासेज्जा"**।

---

संसार चक्र का अन्त कौन करता है ? इसके उत्तरमें अम्बड अर्हंतपि कहते है जिसने विकार पर विजय पायी है । सूक्ष्म से सूक्ष्म भूलों को भी जो बारीकी से देखता है । जिसके मन, वाणी और कर्म में एकरूपता है, जिसने कषायों पर विजय प्राप्त की है, ब्रह्मचर्य की प्रभा से जिसका मुख आलोकित है, जिसका मन समाधि में लीन है। तात्पर्य यह है कि जिसका अन्तःकरण पवित्र है वही परमात्म—पद प्राप्त कर सकता है।

साधना की भूमि न मन्दिर में है न उपाश्रय में । वह तो है मनुष्य के अन्तःकरण में । हम क्यों न हजारों बार मन्दिर जाएं या उपाश्रय जाएं, वह हमारी भाव परम्परा का अन्त करने में कुछ भी सहायक नहीं बन सकता यदि हमने अपने अन्तःकरण से कषायों को दूर नहीं किया हो । हमें दिखावा छोड़कर आत्मा को परिशुद्ध करना है। जो उपर्युक्त कषायों से स्वयं को दूर करेंगे वे बहिरात्मा से हटकर अन्तरात्मा की ओर आएंगे । परिणामतः अन्तरात्मा से परमात्मा की ओर कदम बढ़ाएंगे ।

अपने पर विजय पाए बिना परमपद मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

---

भयभीत व्यक्ति प्रव्रज्या ले सकता है किन्तु उसका कार्य उतना ही साधारण होता है जितना कि एक प्यासे व्यक्ति का पानी पीना, बुभुक्षु का भोजन करना। घर में अशान्ति हुई साधु बन गया, घर में खाने पीने का ठिकाना नहीं, साधु बन गया। किन्तु जहां भय है, कातरता है वहां सच्चा साधु नहीं बन सकता, अध्यात्म पथ पर नहीं चल सकता। संयम के लिए अन्तर्मन में वैराग्य की धारा बहनी चाहिए। उसका हृदय क्षमा, दया और करुणा से ओतप्रोत होना चाहिए। जो संसार के छोटे-छोटे शूलों से डरता है क्या वह अपमान और तिरस्कार के शूलों को सहन कर सकता है? वह वीर के पथ पर चल सकता है?

**एस मग्गीत्ति वीरस्स–यह वीरों का मार्ग है, कायरों का नहीं।**

---

मानव की अच्छाई और बुराई का पता वस्त्रों से नहीं उसके शुभ और अशुभ आचरण से परिलक्षित होता है। किन्तु हम साधारणतः बाह्य वस्त्रों को अच्छाई-बुराई नापने का गज बना लेते हैं। अच्छे वेशधारियों को पवित्र आत्मा मानने को तैयार हो जाते हैं। हम भूल जाते हैं कि बुराई भी अच्छे वस्त्र पहनकर हमें धोखा दे सकती है। इसके विपरीत कभी-कभी अच्छाई भी बाहरी दुनिया से तिरस्कृत होकर बुराई के गन्दे वस्त्र पहन सकती है तो क्या हम गन्दे वस्त्रों में लिपटी अच्छाई से प्रेम नहीं करेंगे ? अतः जो वस्त्रों से अच्छाई-बुराई मापता है वह आंख मूंदकर चलता है।

किन्तु अनुभव की ठोकर उसकी पलकों को खोल भी सकती है। हम यह क्यों मानें कि श्वेत, पीत या गेरुआ वस्त्रधारी मात्र महात्मा है। हमें तो उन्हें परखना चाहिए कि सफेद, पीला या गेरुआ वस्त्रों के नीचे कहीं काला दिल तो नहीं छिपा है ? इसमें जैसी हमारी भलाई है वैसी ही उनकी भी।

दीपक में जब तक तेल और बत्ती है तब तक दीपक जलता रहेगा। हवा से बुझ जाए या बुझा दिया जाए तो भी वह अन्य प्रज्वलित दीपक के सम्पर्क में आते ही पुनः जल उठता है। वह पूर्णतः तभी बुझेगा जब उसमें तेल और बत्ती नहीं रहेगी।

उसी प्रकार निर्वाण तभी प्राप्त होता है जब कर्म का आदान और बन्ध समाप्त हो जाता है। आदान का अर्थ है ग्रहण। ग्रहण लगने पर सूर्य जिस प्रकार राहुग्रस्त हो जाता है आत्मा भी उसी प्रकार राग-द्वेष रूपी स्पन्दन के कारण कर्म परमाणुओं से ग्रस्त हो जाती है। ग्रस्त होना ही बन्धन है।

बन्धन से मुक्त होने के लिए आदान को समाप्त करना होगा। कारण जब तक आदान है तब तक बन्ध भी है। आदान समाप्त हो जाने पर बन्ध भी समाप्त हो जाएगा।

आदान समाप्त करने का नाम ही संवर है। संवर सिद्ध होने से अपने आप निर्जरा हो जाती है।

---

मानव की अच्छाई और बुराई का पता वस्त्रों से नहीं उसके शुभ और अशुभ आचरण से परिलक्षित होता है। किन्तु हम साधारणतः बाह्य वस्त्रों को अच्छाई-बुराई नापने का गज बना लेते हैं। अच्छे वेशधारियों को पवित्र आत्मा मानने को तैयार हो जाते हैं। हम भूल जाते हैं कि बुराई भी अच्छे वस्त्र पहनकर हमें धोखा दे सकती है। इसके विपरीत कभी-कभी अच्छाई भी बाहरी दुनिया से तिरस्कृत होकर बुराई के गन्दे वस्त्र पहन सकती है तो क्या हम गन्दे वस्त्रों में लिपटी अच्छाई से प्रेम नहीं करेंगे? अतः जो वस्त्रों से अच्छाई-बुराई मापता है वह आंख मूंदकर चलता है।

किन्तु अनुभव की ठोकर उसकी पलकों को खोल भी सकती है। हम यह क्यों मानें कि श्वेत, पीत या गेरुआ वस्त्रधारी मात्र महात्मा है। हमें तो उन्हें परखना चाहिए कि सफेद, पीला या गेरुआ वस्त्रों के नीचे कहीं काला दिल तो नहीं छिपा है? इसमें जैसी हमारी भलाई है वैसी ही उनकी भी।

---

दीपक में जब तक तेल और बत्ती है तब तक दीपक जलता रहेगा । हवा से बुझ जाए या बुझा दिया जाए तो भी वह अन्य प्रज्वलित दीपक के सम्पर्क मे आते ही पुनः जल उठता है । वह पूर्णतः तभी बुझेगा जब उसमें तेल और बत्ती नही रहेगी ।

उसी प्रकार निर्वाण तभी प्राप्त होता है जब कर्म का आदान और बन्ध समाप्त हो जाता है । आदान का अर्थ है ग्रहण । ग्रहण लगने पर सूर्य जिस प्रकार राहुग्रस्त हो जाता है आत्मा भी उसी प्रकार राग-द्वेष रूपी स्पन्दन के कारण कर्म परमाणुओं से ग्रस्त हो जाती है । ग्रस्त होना ही बन्धन है ।

बन्धन से मुक्त होने के लिए आदान को समाप्त करना होगा । कारण जब तक आदान है तब तक बन्ध भी है । आदान समाप्त हो जाने पर बन्ध भी समाप्त हो जाएगा ।

आदान समाप्त करने का नाम ही संवर है । संवर सिद्ध होने से अपने आप निर्जरा हो जाती है ।

---

क्रोध के दो रूप हैं एक प्रकट, दूसरा अप्रकट । पहला प्रज्वलित आग है दूसरा राख में दबी आग । क्रोध का प्रथम रूप अपनी ज्वालाएं बिखेरता दिखायी देता है दूसरे रूप में ज्वालाएं बाहर फूट कर नहीं निकलती किन्तु अनबुझे कोयले की तरह भीतर ही भीतर सुलगती रहती हैं । उदाहरणतः दो व्यक्तियों में झगड़ा हो जाने पर परस्पर बोल-चाल बन्द हो जाती पर क्रोध की ज्वाला समाप्त नहीं होती । हुआ इतनी ही कि बाहर की ज्वाला भीतर पहुंच गयी । भीतर की यह आग बाहरी आग से भी अधिक खतरनाक है। कारण यह भीतरी आग कब विस्फोट करेगी कहा नहीं जा सकता । जिस भांति ऊष्ण युद्ध से शीत युद्ध भयावह होता है क्योंकि शीतयुद्ध की पृष्ठभूमि पर ही उष्ण युद्ध की विभीषिका खड़ी हो जाती है ।

इसीलिए अर्हत्‌र्षि नारायण का कहना है क्रोध जब आग है तो इसे जितनी जल्दी होसके उपशमन करना चाहिए ।

क्रोध के प्रारम्भ में मूर्खता है और अन्त में पश्चात्ताप ।

---

दृष्टि जब सम होती है अर्थात् उसमें भेद नहीं होता, विकार नहीं होता और अपेक्षा नहीं होती, तब उसकी नजर में जो आता है वह न तो राग या द्वेष से कलुषित होता है और न स्वार्थभाव से दूषित। आचार्य श्री नानेश